शोध विधि
(Research Method)

प्रश्न पत्र-VII

Paper-VII

एम.ए. लोक प्रशासन (उत्तरार्द्ध)

M.A. Public Administration (Final)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

रोहतक-124 001

Copyright © 2004, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय सूची

Unit-I

अध्याय 1: विज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति 5

अध्याय 2: सामाजिक अनुसन्धान 19

अध्याय 3: सामाजिक अनुसन्धान में वस्तुनिष्ठता 31

Unit-II

अध्याय 4: अनुसन्धान अभिकल्प 42

अध्याय 5: परिकल्पना या उपकल्पना या प्राक्कल्पना 76

Unit-III

अध्याय 6: आँकड़ों का संकलन 141

अध्याय 7: निरीक्षण या अवलोकन 165

अध्याय 8: साक्षात्कार 187

अध्याय 9: अनुसूचि 208

अध्याय 10: प्रश्नावली 226

Unit-IV

अध्याय 11: सामग्री विश्लेषण की प्रक्रिया 245

अध्याय 12: सम्पादन, वर्गीकरण, संकेंतीकरण तथा सारणीयन 253

अध्याय 13: माध्य प्रव त्तियों की माप : सामानान्तर माध्य, माध्यांक, बहुलक माध्य व मानक विचलन 275

अध्याय 14: माध्य विचलन तथा मानक विचलन 305

अध्याय 15: सहसम्बन्ध 323

Unit-V

अध्याय 16: उपकल्पना परीक्षण 337

अध्याय 17: काई-वर्ग परीक्षण 347

अध्याय 18: अनुसन्धान में कम्प्यूटर की भूमिका 361

अध्याय 19: प्रतिवेदन लेखन 368

M.A. Public Administration (Final)

Paper-VII

Research Method

M. Marks : 100
Time : 3 Hrs.

Note: The question paper shall contain ten questions in all by including two questions from each unit. Every candidate shall attempt five questions in all, selecting one question from each unit. All questions carry equal marks.

UNIT–I

Meaning and characteristic of Science and Scientific Method, Steps in "Scientific method, Meaning, nature and Objectives of Social Research Types of Social Research Objectivity in Social Research.

UNIT–II

Research Design-Meaning, types and its formulation Hypotheses-Meaning, importance, Sources and types, qualities of Workable hypothesis, Difficulties in the formulation of hypothesis.

Sampling: Meaning, Merits and demerits, types and procedure of selecting a representative sample.

UNIT–III

Data Collection: sources of data collection primary and secondary. Techniques of Data Collection Observation, Interview, Questionnaire and Schedule, Content Analysis.

UNIT–IV

Processing and Analysis of data: Editing and Coding of Data; Classification and Tabulation of Data, Measures of Central tendency-Mean, Mode and Medium; Mean Deviation and Standard Deviation, Co-relation

UNIT–V

Testing of Hypothesis Basic concepts concerning testing of hypothesis, procedure for hypothesis testing. Chi-Square Test. Interpretation of data-Meaning, techniques and Precaution, Role of Computer in 'Research, Report Writing.

UNIT - I

अध्याय - 1
विज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति
(Science and Scientific Method)

मानव एक जिज्ञासु प्राणी है। वह अपने चारों तरफ दिन-प्रतिदिन घटने वाली घटनाओं के प्रति जागरूक रहता है और इन घटनाओं में सत्य को खोजने का प्रयत्न करता है। उदाहरण के रूप में चाहे ये घटनाएँ चुनाव से सम्बन्धित हो, सरकार के काम-काज, राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय विभिन्न पहलुओं पर आधारित हो या फिर उसके व्यक्तिगत जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित हो, इन सभी को समझने तथा हल करने के लिए उसने समय-समय पर अनेक अविष्कार किए हैं। अध्ययन की अनेक विधियों का निर्माण करने के साथ-साथ मनुष्य इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि विज्ञान तथा वैज्ञानिक पद्धति के अतिरिक्त ज्ञान-प्राप्ति, समस्याओं को समझने वह हल करने के लिए कोई सरल एवं छोटा रास्ता नहीं है। इसलिए अनुसंधान की प्रकृति का विशलेषण करने के लिए विज्ञान की प्रकृति को समझना आवश्यक है।

वर्तमान युग विज्ञान का युग है, क्योंकि वर्तमान में यथार्थ में विभिन्न पक्षों को समझने एवं विश्लेषित करने के लिए विज्ञान का सहारा लिया जाता है। अगस्त कॉम्टे (Aguste Comte) ने ज्ञान के विकास की तीन अवस्थाओं का उल्लेख किया है, प्रथम धार्मिक, दूसरी तात्विक और तीसरी अवस्था प्रत्यक्षवादी है। अगस्त कॉम्टे का कहना है कि इस प्रत्यक्षवादी अवस्था में मानव-मस्तिष्क, बुद्धि एवं प्रेषण के सुसंयोजित प्रयोग, उनके प्रभावकारी नियमों अर्थात् उनके उत्तराधिकार तथा समरूपता के अपरिवर्ती सम्बन्धों के उनके उत्तराधिकार तथा समरूपता के अपरिवर्ती सम्बन्धों के द्वारा पूर्णतया स्वयं को अनुसंधान कार्य में लगाने हेतु प्रधटना के निकटतम की असम्भाव्यता को स्वीकार करता है।

समाजिक वैज्ञानिकों ने समाज से सम्बन्धित व्यवस्थित ज्ञान-प्राप्ति के लिए समय-समय पर विशिष्ट समाजिक विज्ञानों एवं वैज्ञानिक पद्धतियों का निर्माण किया है। अतः समाज से सम्बन्धित ज्ञान, विज्ञान और अनुसंधान के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए आवश्यक है कि हमें विज्ञान तथा वैज्ञानिक पद्धतियों का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। इस सम्बन्ध में स्टुआर्ट चेज (Stuart Chase) ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए लिखा है कि "विज्ञान का सम्बन्ध वैज्ञानिक पद्धति से है न कि अध्ययन विषय से"।

विज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definitions of Science)

विज्ञान शब्द के सम्बन्ध में सामान्यतः अनेक भ्रांतियाँ प्रचलित हैं। भिन्न-भिन्न अर्थों में विज्ञान शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न रूपों में किया गया है। विज्ञान का प्रयोग प्राकृतिक विज्ञानों जैसे भौतिक

विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान आदि के एक सामूहिक नाम के रूप मे किया जाता है जबकि दूसरी ओर समाजशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन आदि विज्ञानों को विज्ञान नहीं माना जाता। कभी-कभी विज्ञान को इंजीनियरिंग और तकनीकीशास्त्र को पर्यायवाची मान लिया जाता है। स्वचलित यन्त्रों का अविष्कार, यानों का निर्माण, पुलों का निर्माण व बाँधों की रचना आदि क्रियाओं को विज्ञान समझा जाता है। अन्ततः विभिन्न अर्थों के साथ-साथ विज्ञान का कार्य मनुष्य के जीवन को सुविधाजनक बनाने के लिए अविष्कार का अनुसंधान करना है।

विज्ञान शब्द अंग्रेजी भाषा के 'साइंस' (Science) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है जो स्वयं लेटिन (Latin) भाषा के 'सीया' (Scia) शब्द से बना है जिसका आशय है 'जानना (to know)। वस्तुतः सत्य, प्रमाणित और विश्वसनीय ज्ञान के लिए क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित अध्ययन करने को ही विज्ञान कहते है। सुरेन्द्र सिंह के अनुसार, "विज्ञान यथार्थ का अध्ययन, अवलोकन एवं प्रयोग करते हुए प्राप्त तथ्यो से आगमन तथा निगमन द्वारा सामान्यीकरण करते हुए ज्ञान की प्राप्ति का एक उपागम है। वैज्ञानिकों ने विज्ञान की परिभाषा अपने-अपने द ष्टिकोण से प्रस्तुत की हैं, जिसमें से कुछ प्रमुख परिभाषांए इस प्रकार हैं :

गुड तथा हॉट (Goode & Hatt) "विज्ञान समस्त अनुभव सिद्ध संसार के प्रति द ष्टिकोण की एक पद्धति है।" उनका कहना है कि, "विज्ञान की लोकप्रिय परिभाषा व्यवस्थित ज्ञान का संचय है।"

चर्चमैन और एकॉफ (Churchman and Ackoft) के अनुसार, "विज्ञान एक कुशल अन्वेषण है।"

वेनबर्ग तथा शेबत (Weinberg and Shabat) के अुनसार "विज्ञान संसार की ओर देखने की एक निश्चित पद्धति है।"

लेस्ट्रसी (Lastrueci) के अुनसार, "विज्ञान एक वस्तुनिष्ठ, तार्किक एवं व्यवस्थित अध्ययन पद्धति है जो किसी विश्वसनीय ज्ञान की प्रघटना के विश्लेषण में प्रयुक्त होती है। यह विश्लेषण का एक व्यवस्थित स्वरूप है एवं किसी विशिष्ट ज्ञान से सम्बन्धित नहीं है।"

आंइस्टीन तथा एनफील्ड (Einstein and Infield) के अुनसार, "विज्ञान सांसारिक विचारों तथा प्रघटनाओं के मध्य सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए मानवीय मस्तिष्क का एक प्रयास है। विज्ञान का समस्त महत्त्वपूर्ण विचार यथार्थ इसे समझने के हमारे प्रयास के नाटकीय संघर्षों के कारण उत्पन्न हुआ है।"

गिलिन व गिलिन (Gillin and Gillin) के अनुसार, "जिस क्षेत्र का हम अनुसंधान करना चाहते हैं उसकी ओर एक निश्चित प्रकार की पद्धति ही विज्ञान का वास्तविक चिन्ह है"

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विज्ञान किसी ज्ञान या जानकारी का एक व्यवस्थित स्वरूप है। यह एक द ष्टिकोण की प्रणाली है, कुशल अनवेषण है। चर्चमैन तथा ऍकाफ के अनुसार, "विज्ञान ज्ञान का संग्रह नहीं है, यह एक विशिष्ट प्रकार की पूछताछ है।" इस सम्बन्ध में बनाई (Bernard) के अनुसार, "विज्ञान को इसमें निहित छः मुख्य प्रक्रियाओं के संदर्भ में ही परिभाषित किया जा सकता है। ये प्रक्रियायें हैं—परीक्षण, सत्यापन, पारिभाषिक विवेचना, वर्गीकरण, संगठन तथा परिस्थितिजन्यता, जिसमें पूर्वानुमान तथा व्यावहारिक उपयोग की विशेषताओं का भी समावेश है।"

विज्ञान की विशेषताएँ
(Characteristics of Science)

किसी भी अवधारणा के अर्थ एवं प्रकृति को समझने का सबसे सरल तरीका उसके लक्षणों का

अध्ययन करना है। उपर्युक्त आधार पर विज्ञान की प्रकृति को उसकी निम्नलिखित विशेषताओं के द्वारा सरलतापूर्वक समझा जा सकता है :

1. **संशयवाद (Scepticism):** विज्ञान की प्रथम विशेषता संशय (Doubt) या सन्देह उत्पन्न होना है। प्रकृति में तथ्य या घटनाएँ एक दूसरे से प थक् घटित नहीं होकर निश्चित व्यवस्था और क्रम के अनुसार घटित होती हैं अर्थात् वे कुछ नियमों द्वारा संचालित होती हैं। एक वैज्ञानिक इन्हीं नियमों का पता लगाने का प्रयास करता है। ये नियम, तथ्य अथवा प्रघटनाएँ आदि किस प्रकार परस्पर अन्तर्सम्बन्धित हैं एवं किस प्रकार और किन नियमों के तहत संचालित होते हैं। विभिन्न तथ्यों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक के मन में एक अवबोध (Understanding) विकसित होता है जो नये संशय को जन्म देता है। यह नया संशय विज्ञान की मूल आधारशिला है एवं इसी से नया अनुसंधान जन्म लेता है।

2. **प्रमाणिकता (Validity):** विज्ञान का एक अन्य प्रमुख लक्षण यह है कि विज्ञान को प्रमाणों की आवश्यकता पड़ती है और इन्हीं प्रमाणों के आधार पर विज्ञान निष्कर्ष निकालता है। यूरोप में लम्बे समय तक यह माना जाता रहा है कि सूर्य प थ्वी के चारों ओर घूमता है जबकि 16वीं शताब्दी के बाद प्रसिद्ध ज्योतिषी कोपरनिकस ने इसमें सन्देह किया और उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह घोषित किया कि प थ्वी सुर्य के चारों तरफ घुमती है। इस प्रकार विज्ञान प्रमाणों के आधार न केवल नवीन सिद्धान्तों की रचना करता है वरन् वह पूराने सिद्धान्तों को संशोधित भी करता है एवं कई बार उन्हें अस्वीकृत करता है।

3. **परिशुद्धता (Accuracy):** विज्ञान की एक अन्य विशेषता परिशुद्धता है। विज्ञान में यह प्रयास किया जाता है कि जो जानकारी प्राप्त की जाय वह पूरी तरह परिशुद्ध हो। यह ज्ञान एक व्यक्ति को सत्य लगता है वहीं दूसरे के लिए असत्य हो सकता है। विभिन्न व्यक्तियों के सामान्य ज्ञान विभिन्न हो सकते हैं, परन्तु विज्ञान के लिए आवश्यक है कि जो कुछ वह एकत्रित करे वह पूरी तरह सत्य हो, परिशुद्ध हो, चाहे वह किसी के लिए सत्य हो या किसी के लिए असत्य। इसलिए परिशुद्धता किसी भी विज्ञान के लिए अति महत्त्वपूर्ण है।

4. **व्यवस्थितता (Systematization):** हमारा सामान्य ज्ञान अव्यवस्थित एवं तर्क विहिन होता है। इसके विपरीत विज्ञान में एक तन्त्र एवं व्यवस्था होती है। इस व्यवस्थितता के तीन प्रमुख गुण हैं—सम्बन्ध होना, पूर्ण होना एवं तर्क-संगत होना। वैज्ञानिक व्यवस्थितत में विभिन्न सिद्धान्त एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं और मिलकर उस विज्ञान का कलेवर बनाते हैं। पूर्ण का अर्थ यह है कि इसमें वे सारे सिद्धान्त होते हैं जिनसे यह कलेवर बनता है। यदि कोई सिद्धान्त अज्ञात हो, उसके लिए बराबर खोज होती रहती है। तर्कसंगत होने का महत्त्व यह है कि विभिन्न सिद्धान्तों में कोई विरोध नहीं है। विज्ञान में इस व्यवस्थितता के कारण भविष्य की घटनाओं के विषय में ज्ञान संम्भव है।

5. **भविष्यवाणी करने की क्षमता (Predictability):** विज्ञान मात्र व्याख्या करने, नियमों की रचना करने एवं उन्हें अमूर्तता के धरातल पर प्रस्तुत करने का कार्य ही नहीं करता अपितु वह अपनी खोज का आने वाले समय में उपयोग कर देखना चाहता है कि वह कहाँ तक सत्य है विज्ञान भविष्यवाणी करता है कि नवीन स्थितियों में अमुक नियम अमुक प्रकार लागू होगा। भविष्य में अपनी खोज के परिणाम और सत्यापन करने के लिए वह भविष्यवाणी करता है और देखना चाहता है कि जो नियन्त्रण तथ्यों के घटने पर उसे प्राप्त हुआ है वह नवीन स्थितियों मे उसे प्राप्त होगा या नहीं।

6. **अवलोकन** (Observation): एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटानिका में विज्ञान की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि विज्ञान में व्यवस्थित और पक्षपातरहित अवलोकन किया जाता है। प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा अवलोकित सामग्री की जाँच की जाती है जो आगे चलकर वर्गीकरण का रूप गहण कर लेती है। वर्गीकरण की सहायता से सामान्यीकरण के नियम बनाये जाते हैं। इन नियमों को आगे अवलोकनों में लागू किया जाता है; नवीन अवलोकनों एवं मान्य नियमों में तालमेल नहीं होने पर नियमों में संशोधन किए जाते हैं और ये नवीन संशोधन आगे और अवलोकन करने की दिशा और प्रेरणा प्रदान करते हैं। इस प्रकार विज्ञान में यह प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है। सामान्यतया यही विज्ञान की पद्धति का निर्माण करती है। विज्ञान की इसी विशेषता को **गुडे** एवं **हाट** ने निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है, "विज्ञान अवलोकन से प्रारम्भ होता है तथा उसे अन्तिम वैधता के लिए आवश्यक रूप से अवलोकन पर ही लौटकर आना पड़ता है।"

7. **कारणता** (Causality): विज्ञान विभिन्न कराकों के परस्पर कारण-प्रभावों का अध्ययन करता है तथा परिणामों के कारणों की खोज करता है। विज्ञान घटना में विद्यमान कारकों तथा तथ्यों के परस्पर कार्य-कारण सम्बन्धों का अध्ययन, वर्णन और व्याख्या करता है। इस प्रकार से कारणता की खोज करना विज्ञान की एक प्रमुख विशेषता है।

8. **आनुभविकता** (Empirical): विज्ञान जो कुछ जानकारी, निष्कर्ष तथा ज्ञान प्रस्तुत करता है वह प्रत्यक्ष प्रमाणों और परिक्षणों पर आधारित होता है। विज्ञान भौतिक जगत का व्यवस्थित और आनुभविक ज्ञान है जिसे अवलोकन और परीक्षण के द्वारा प्राप्त किया जाता है। यह अनुमान, अटकल, कल्पना अथवा दर्शन पर आधारित नहीं होता। आनुभविकता विज्ञान की प्रमुख विशेषता है।

9. **सार्वभौमिकता** (Universality): विभिन्न अनुसन्धानकर्त्ताओं का कहना है कि विज्ञान की उपर्युक्त विशेषताएँ—कार्य-कारण सम्बन्ध और आनुभविकता-सार्वभौमिक विशेषताएँ है। अर्थात् परीक्षण तथा अनुभव के द्वारा विज्ञान द्वारा प्रस्तुत घटना से सम्बन्धित कार्य-कारण सम्बन्ध की विश्व में कही पर भी जाँच करने पर परिणाम बदलते नहीं हैं।

10. **तार्किकता** (Logicality): सभी अध्ययनों की तरह विज्ञान भी तार्किक होता है। विज्ञान घटना का तर्कपूर्ण प्रस्तुतीकरण होता है। विभिन्न तथ्यों के परस्पर सम्बन्ध को वह तार्किक रूप से सिद्ध करके वर्णन और व्याख्या करता है।

इसलिए विज्ञान का सम्बन्ध वैज्ञानिक पद्धति से है। यह घटना का वस्तुनिष्ठ अध्ययन करता है। विज्ञान और वैज्ञानिक पद्धति परस्पर एक-दूसरे से घनिष्ठतया सम्बन्धित हैं। विज्ञान को वैज्ञानिक पद्धति के बिना नहीं समझ करते। विज्ञान का अर्थ जानने के बाद अब वैज्ञानिक पद्धति का अध्ययन करेंगे।

वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definitions of Scientific Method)

विज्ञान की अवधारणात्मक विवेचना तथा विशेषताओं की व्याख्या के उपरान्त अब हम यह समझ सकते हैं कि विज्ञान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा अध्ययन किया जाता है। सामान्य व्यक्तियों द्वारा विज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान के विषयों का पर्याय मान लेने के कारण तथा प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में अधिक प्रगति होने के कारण, यह भ्रांति उत्पन्न होना स्वाभाविक

है कि वैज्ञानिक पद्धति का आशय प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धति से है। एक अन्य भ्रान्ति वैज्ञानिक पद्धति को लेकर यह है कि वैज्ञानिक पद्धति केवल एक ही हैं इसका प्रमुख कारण वैज्ञानिक पद्धति का एक वचन में प्रयोग होना है। इस भ्रान्ति का प्रभाव वैज्ञानिकों पर पड़ा और उन्होंने आलोचना भी की है। वैज्ञानिक अनुसंधान की कोई एक निश्चित पद्धति नहीं है। साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि कोई भी वह अध्ययन-पद्धति वैज्ञानिक पद्धति है जिसे एक पक्षपात रहित अनुसंधानकर्ता किसी विषय के अध्ययन में प्रस्तुत करता है। यह एक ऐसी पद्धति है जो भावना, दर्शन अथवा तथ्य ज्ञान से सम्बन्धित न होकर वस्तुनिष्ठ अवलोकन, परीक्षण, प्रयोग और वर्गीकरण की एक व्यवस्थित कार्यप्रणाली पर आधारित होती है। इस प्रकार वैज्ञानिक पद्धति को भिन्न-भिन्न वैज्ञानिकों ने अलग-अलग रूप से परिभाषित किया है, जिनमें से कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार है :

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (Encyclopaedia of Britannica) के अनुसार "वैज्ञानिक पद्धति एक सामूहिक शब्द है जो उन अनेक प्रक्रियाओं को स्पष्ट करता है जिनकी सहायता से विज्ञान का निमार्ण होता है।" व्यापक अर्थों मे वैज्ञानिक पद्धति का तात्पर्य अनुसंधान की किसी ऐसी पद्धति से है जिसके द्वारा निष्पक्ष एवं व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

थाउलेस (Thouless) के अनुसार "वैज्ञानिक पद्धति सामान्य नियमों की खोज के लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु प्रविधियो की एक व्यवस्था है जो कि विभिन्न विज्ञानों में कई बातों में भिन्न-भिन्न होते हुए भी एक सामान्य प्रकृति को बनाए रखती है।"

स्प्रोट (Sprott) के अनुसार, "वैज्ञानिक पद्धति में प्रयोगीकरण, उपकल्पना और अध्ययन यन्त्रों में विश्वास करना आवश्यक होता है।"

ए. वुल्फ (A. Wolf) के अनुसार, "विस्त त अर्थों में कोई अनुसंधान विधि जिसके द्वारा विज्ञान का निर्माण एवं विस्तार होता है, वैज्ञानिक पद्धति कहलाती है।"

कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) के अनुसार, "जो व्यक्ति किसी भी प्रकार के तथ्यों का वर्गीकरण करता है, जो उनका परस्पर सम्बन्ध देखता है तथा उनके क्रमों का वर्णन करता है वैज्ञानिक विधि प्रयोग करता है।"

हेगडोर्न एवं लेबोबिज (Hagdorn and Labobitz) के अनुसार, "वैज्ञानिक पद्धति सोचने तथा समस्या के समाधान का एक तरिका है। यह आनुभविक संसार के प्रति अभिमुखन है तथा एक ऐसी प्रविधि है जिसका प्रयोग अधिकांशतः वैज्ञानिक सामाजिक घटनाओं के विज्ञान निर्माण के लिए करते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि वैज्ञानिक पद्धति अध्ययन की निष्पक्ष, वस्तुनिष्ठ, कार्य-कारण पर आधारित, व्यवस्थित, क्रमबद्ध, आनुभाविक तथा तार्किक प्रणाली है सामान्यीकरण, पूर्वानुमान और भविष्यवाणी करने में सक्षम हैं।

वैज्ञानिक पद्धति की विशेषताएँ
(Characteristic of the Scientific Method)

उपरोक्त विवेचना के आधार पर वैज्ञानिक पद्धति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित है :

1. **सत्यापनशीलता (Verifiability):** अध्ययन के अन्तर्गत प्राप्त हुये तथ्यो को परीक्षण तथा पुनः परीक्षण के योग्य होना चाहिये। वैज्ञानिक प्रविधि मे नियमों की बारम्बारता जाँच कर

लेने पर ही उनके सही उतरने पर ही वे विश्वसनीय बन जाया करते हैं। इस तरह व पुनः परीक्षण के द्वारा वैज्ञानिक पद्धति केवल तथ्यों का उद्घाटन ही नहीं करती बल्कि उनकी सार्वभौमिकता को भी प्रमाणित करती है। जेम्स लूथर ने लिखा है कि जिस पद्धति द्वारा पुनः परीक्षा सम्भव नहीं, वह वैज्ञानिक पद्धति नहीं हो सकती है, वह या तो दार्शनिक अथवा काल्पनिक पद्धति होती है।

2. **निश्चितता** (Definitness): वैज्ञानिक पद्धति के अर्न्तगत अस्प श्यता या अनिश्चितता का अभाव होता है। वैज्ञानिक पद्धति का कार्य सबके लिये समान होता है। ऐसा नहीं है कि एक वैज्ञानिक के लिये कुछ और दूसरे वैज्ञानिक के लिए कुछ हो। वैज्ञानिक किसी भी समय अपनी सुविधानुसार सत्य की खोज कर सकता है। वैज्ञानिक पद्धति अपने अन्तर्गत कभी भी अनिश्चितता को स्थान नहीं देती है। उदाहरण के लिये यदि हम यह कहें कि सभी गरीब लुटेरे हैं तो हमारा यह कथन वैज्ञानिक पद्धति के अनुकूल नहीं होगा क्योंकि इस कथन में निश्चितता का अभाव है। इसी तरह यदि हम किसी व्यक्ति को देखकर यह कहें कि अमुक व्यक्ति काफी लम्बा था, तो भी हमारा यह कहना वैज्ञानिक पद्धति के अनुकूल नहीं होगा। इसके स्थान पर यदि हम यह कहें कि अमुक व्यक्ति की लम्बाई 6' 6" है तो हमारे इस कथन से व्यक्ति की लम्बाई का एक निश्चित ज्ञान हमें होगा और इस तरह वह वैज्ञानिक पद्धति के अनुकूल कहा जा सकेगा।

3. **तार्किकता** (Rationality): तार्किकता वैज्ञानिक पद्धति की एक अन्य विशेषता है इसके अन्तर्गत अनुसन्धानकर्ता न केवल तर्क के आधार पर अध्ययन के प्रयोग में लायी जाने वाली पद्धति के औचित्य को स्पष्ट करता है बल्कि अपने निष्कर्षों को भी तार्किक आधार पर प्रस्तुत करता है। वास्तव में अगर देखा जाए तो तर्क का सम्बन्ध तथ्य और विवेक से है वैज्ञानिक पद्धति आधारभूत रूप से अनुभवसिद्ध अध्ययन को महत्व देती है लेकिन यदि कोई तथ्य तार्किक आधार पर उचित मालूम होता है तो उन्हें भी ग्रहण करने में संकोच नहीं करती है। संक्षेप में, विज्ञान प ष्ट प्रमाणों पर खड़ा रहता है। तर्कशास्त्र वज्ञानिक पद्धति का अभिन्न अंग है। तर्क की प्रक्रिया के दो मुख्य भेद हैं—(क) निगमन और (ख) आगमन।

   (क) **निगमन** (Deduction) : 'निगमन' उस तर्क को कहते हैं जिसमें आधार वाक्यों से आवश्यक निष्कर्ष निकाले जाते हैं। यदि आधार वाक्य सत्य हो तो निष्कर्ष भी अवश्य सत्य होगा। उदाहरण के लिए, दो आधार वाक्य लें— (1) क, ख से बड़ा है। (2) ख, ग से बड़ा हैं यदि ये दोनों वाक्य सत्य हों तो यह निष्कर्ष अवश्य सत्य होगा—क, ग से बड़ा है। निगमन का एक और उदाहरण है जिसे न्यायवाक्य (Syleogism) कहा जाता है। सारे मनुष्य मर्त्य हैं। शंकराचार्य एक मनुष्य है। इसलिए शंकराचार्य मत्य है।

   (ख) **आगमन** (Induction) : 'आगमन' का अर्थ है द ष्टान्तों के आधार पर सामान्यीकारण (Generalization) अर्थात् कुछ दुष्टान्तों में पाई गई बात को सबके लिए सत्य मानना। जैसे यदि क्षय के किसी रोगी को एक दवा दी जाए और वह ठीक हो जाए और इसी प्रकार क्षय के बहुत से रोगी उस दवा से ठीक हो जाएँ तो यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वह क्षय रोग की दवा है हमारा यह निष्कर्ष आगमन द्वारा निकाला हुआ कहा जाएगा।

4. **वस्तुनिष्ठता** (Objectivity): वैज्ञानिक पद्धति की प्रथम शर्त उसका वस्तुनिष्ठ या वैषयिक

होना है अर्थात् यह पद्धति व्यक्तिनिष्ठ न होकर वस्तुनिष्ठ होती है। ए. डब्ल्यू. ग्रीन ने लिखा है कि वस्तुनिष्ठता का आशय किसी तथ्य अथवा प्रमाण की निष्पक्षतापूर्वक जाँच करने के इच्छा एवं योग्यता है। वैज्ञानिक पद्धति में अनुसन्ध्यानकर्त्ता के स्वयं के विचारों, इच्छाओं, आदर्शों, मूल्यों, पूर्वधारणाओं, पूर्वाग्रहों आदि का कोई स्थान नहीं है। ए. वुल्फ ने लिखा है "सही ज्ञान की प्रथम शर्त ऐसे तथ्यों को प्राप्त करने की द ढ़ इच्छा एवं योग्यता है जो बाह्य स्वरूप, प्रचलित विचारधारा एवं व्यक्तिगत विचारों से प्रभावित न हो। वस्तुनिष्ठता जितनी सरल दिखाई देती है वस्तुतः उतनी सरल नहीं है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ कुछ मनोव त्तियाँ, संस्कार, विचार एवं द ष्टिकोण अवश्य रखता है और ऐसी स्थिति में उसका पूर्णरूपेण वस्तुनिष्ठ होना बहुत कठिन होता है, किन्तु अनुसन्धान के दौरान यह माना जाता है कि किस सीमा तक वस्तनिष्ठता का पालन करेगा।

5. **सामान्यता** (Generality): वैज्ञानिक पद्धति अधिकतर समान्य घटनाओं के अध्ययन को अधिक महत्व देती है। किसी विशेष घटना को उतना महत्व नहीं दिया जाता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि वैज्ञानिक पद्धति के अन्तर्गत सामान्यता की विशेषता को दो अर्थों में देखा जा सकता है। प्रथम तो यह है कि वैज्ञानिक पद्धति विज्ञान की सभी शाक्षाओं में सामान्य होती है। किसी भी प्रकार का पक्षपात देखने को नहीं मिलता है कि एक शाखा के लिए वैज्ञानिक पद्धति एक तरह की हो और दूसरी शाखा के लिए दूसरी तरह की। इस सम्बन्ध में कार्ल पियर्सन ने भी अपने मतों को व्यक्त करते हुए कहा है कि, **"वैज्ञानिक पद्धति विज्ञान की सभी शाक्षाओं में एक जैसी होती है।"** दूसरा अर्थ यह है कि वैज्ञानिक पद्धति विषय के सम्बन्ध में एक सामान्य सत्य को ढूंढ़ने की विधि है। इस तरह वैज्ञानिक पद्धति में सामान्यता को समानता के आधार पर महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

6. **भविष्यवाणी** (Prediction): वैज्ञानिक पद्धति में भविष्यवाणी करने या पूर्वानुमेयता की क्षमता होती है। यह विशेषता वैज्ञानिक पद्धति की अन्य विशेषताओं से सम्बन्धित है। इस पद्धति के द्वारा घटना को जो अध्ययन किया जाता है उसमे कार्य-कारण सम्बन्धों की व्याख्या की जाती है। 'क्या है?', 'कैसे है?', के आधार पर 'क्या होगा?' का पूर्वानुमान या भविष्यवाणी करना सम्भव हो जाता है। उदाहरण के रूप में समाजशास्त्रीय अध्ययन द्वारा यह मालूम होता है कि महिला शिक्षा से महिलाओं में आर्थिक स्वावलम्बन आता है, वे अपने पैरों पर खड़ी हो जाती हैं। इसके आधार पर यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि अगर महिलाओं की स्थिति सुधारनी है तो स्त्री-शिक्षा पर बल देना चाहिए; इससे उनकी आर्थिक स्थिति सुधरेगी तथा स्त्री शिक्षा से उनका शोषण तथा उन पर अत्याचारों को रोका जा सकता है।

7. **सैद्धान्तीकरण** (Theorization): वैज्ञानिक पद्धति की सबसे महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट विशेषता इसके द्वारा सिद्धान्तों का निर्माण करना है। वैज्ञानिक पद्धति की सिद्धान्तों के निर्माण करने की विशेषता इसके द्वारा किए गए अध्ययन के चरणों में अन्तिम चरण होता है। इस पद्धति के द्वारा प्राक्कल्पना का निर्माण किया जाता है। तथ्य एकत्र किए जाते हैं। उनमें परस्पर कार्य-कारण का अध्ययन करके सामान्यीकरण किया जाता है जो सिद्धान्त के रूप में अन्त मे प्रस्तुत किया जाता है। सिद्धान्त तथ्यों का परस्पर सम्बन्ध बताता है जो वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा किए गए अध्ययनों से ही सम्भ्व है। वैज्ञानिक पद्धति सिद्धान्तों का निर्माण करके विज्ञान में ज्ञान की व द्धि करती है। वैज्ञानिक पद्धति के अध्ययन के अन्तिम चरण मे सैद्धान्तीकरण किया जाता है।

8. **कार्यकरण सम्बन्ध पर आधारित** (Cause and Effect Relationship): कोई भी घटना पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं होती है बल्कि उसके घटित होने का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। वैज्ञानिक पद्धति के अतर्गत घटनाओं की व्याख्या कार्य-करण सम्बन्ध के आधार पर की जाती है।

वैज्ञानिक पद्धति के चरण
(Steps of Scientific Method)

वैज्ञानिक पद्धति में अध्ययन क्रमबद्ध व्यवस्थित, तार्किक और निश्चित चरणों के अनुसार होता है। इसे अधिक-से-अधिक क्रमबद्ध और व्यवस्थित करने के लिए अनुसन्धानकर्त्ताओं ने समय-समय पर उसके चरणों को सुनिश्चित और स्पष्ट किया हैं। इनमें आगस्त कॉम्ट, पी॰ वी॰ यगं, लुण्डबर्ग, गर्ड एवं हॉट आदि हैं। जिन्होंने वैज्ञानिक पद्धति के चरणों पर प्रकाश डाला है। इनके विचार निम्नानुसार हैं :

1. **ऑगस्त कॉम्ट** के अनुसार वैज्ञानिक पद्धति के निम्नलिखित पाँच प्रमुख चरण हैं— (1) विषय का चयन, (2) अवलोकन द्वारा तथ्यों का संकलन, (3) तथ्यों का वर्गीकरण, (4) तथ्यों की जाँच, और (5) नियमों का प्रतिपादन।

लुण्डवर्ग का कथन है कि, **"व्यापक अर्थों में वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ तथ्यों का अवलोकन, वर्गीकरण और व्यवस्था करना है।"** इस कथन के आधार पर लुण्डवर्ग ने वैज्ञानिक पद्धति के चार प्रमुख चरणों का उल्लेख किया है :

1. कार्यशील परिकल्पना का निर्माण।
2. तथ्यों का अवलोकन तथा लेखन।
3. संकलित तथ्यों का वर्गीकरण और संगठन
4. सामान्यीकरण

पी. वी. यंग के कथानुसार वैज्ञानिक पद्धति के छः चरण प्रमुख हैं :

1. अध्ययन से सम्बन्धित समस्याओं का निर्धारण।
2. एक कार्यशील परिकल्पना का निर्माण।
3. वैज्ञानिक प्रविधियों के द्वारा समस्या का अवलोकन तथा उसकी खोज।
4. प्राप्त तथ्यों का व्यवस्थित लेखन।
5. तथ्यों का विभिन्न क्रमों अथवा श्रेणियों में वर्गीकरण।
6. वैज्ञानिक सामान्यीकरण।

वैज्ञानिक पद्धति के उपरोक्त चरणों को और भी स्पष्ट रूप से समझने के लिए यह आवश्यक है कि उनके विषय मे कुछ विस्तारपूर्वक विवेचना की जाए जो कि निम्न प्रकार से है :

1. **कठिनाई एवं समस्या की अनुभूति** (Problem-Obstacle Idea): पर्यावरण में प्रेक्षण करते समय किसी तथ्य को समझने की उत्सुकता होती है। तो मस्तिष्क चकराता है, वह समस्या की चेतना अवस्था है। डीवी ने कहा कि "यदि समस्या की अनुभूति व परेशानी नहीं होती तो गम्भीर चिंतन प्रारम्भ नहीं होता। अच्छी समस्या की चेतना अनुभव पर तथा सत्यान्वेषण की उत्कर्ष्ट प्रेरणा और मनोव त्ति पर निर्भर करती है।" समस्या की चेतना होने पर प्रारम्भ में समस्या अस्पष्ट रहती है।

2. **समस्या का स्पष्ट वर्णन** (Explanation of Problem): समस्या के प्रत्येक पहलू पर गहन चिन्तन करने से समस्या स्पष्ट होने लगती है। अतः वैज्ञानिक अपने अनुभवो के आधार पर मनन कर समस्या से सम्बन्धित तथ्यों का प्रेक्षण करता है और समस्या को परिभाषित करता है। यह वैज्ञानिक पद्धति के अन्तर्गत दूसरी अवस्था है।

3. **उपकल्पनाओ का विकास** (Development of Hypothesis): समस्या पर मनन करते हुए विज्ञानवेत्ता उपकल्पना का निर्माण कर सकता है। उपकल्पनाएँ समस्या के सम्भावित हल हैं अथवा परिक्षण हेतु प्रस्तावित तथ्य कथन हैं उपकल्पनाओं के द्वारा अप्रेक्षित दो या अधिक तथ्यों के सम्भावित सम्बन्धों का वर्णन किया जाता है। कतिपय अनुसन्धानों में उपकल्पनाओं का निर्माण अत्यावश्यक रहता है जबकि कुछ मे आवश्यक नहीं रहता, जैसे सर्वेक्षण अुनसन्धानों में, परन्तु वास्तव में यदि अनुसंधाकर्त्ता उपकल्पनाओं का निर्माण कर सर्वेक्षण आदि अनुसंधान करे तो अशुद्धि की सम्भावनाएँ कम हो जाती है। अच्छी उपकल्पनाओं का निर्माण अन्तर्दृष्टि और अनुभव पर निर्भर करता है। किसी अनुसंधान विशेष में अनेक उपकल्पनाएँ हो सकती हैं। सर्वेक्षण अनुसंधानों के लिए बनी हुई प्रश्नावलियों मे लगभग प्रत्येक प्रश्न वास्तव में एक उपकल्पना की परीक्षा के लिए होता है।

4. **अवलोकन** (Observation): सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में अनुसंधानकर्ता द्वारा समस्या से सम्बन्धित इकाइयों का अवलोकन करना एक महत्वपूर्ण कार्य है। वैसे भी साधारणः प्रत्येक व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में कुछ न कुछ अवलोकन करता ही रहता है, परन्तु उन्हें हम व्यवस्थित रूप में देख नहीं पाते हैं। सामाजिक अवलोकन में हमें विशेषकर उन व्यवहारों से सम्बन्धित होना पड़ता है जिन्हें हम देख या सुन सकते हैं। प्रत्येक वैज्ञानिक अध्ययन अवलोकन से प्रारम्भ होता है तथा प्राप्त निष्कर्षों की प्रामाणिकता भी एक बड़ी सीमा तक सुक्ष्म अवलोकन पर ही निर्भर होती है।

5. **सामग्री का संकलन** (Collection of Data): सामग्री के संकलन में मुख्यतया दो प्रमुख स्रोतों का उल्लेख किया जा सकता है—प्रथम, ऐतिहासिक स्रोत है जिसके अन्तर्गत पुराने ग्रन्थ, शिलालेख, प्राचीन अवशेष, नर-कंकाल आदि आते हैं द्वितीय स्रोत क्षेत्रीय स्रोत हैं जिसके अन्तर्गत प्रत्यक्ष निरीक्षण, साक्षात्कार, सनुसूची तथा प्रश्नावली, अन्य जीवित सूचनादाता आदि आते हैं। आवश्यकतानुसार इन स्रोतों से सूचनायें तथा तथ्य एकत्रित किये जाते हैं इसके लिये किन-किन स्रोतों का प्रयोग किया जायेगा यह अध्ययन-विषय की प्रकृति व क्षेत्र पर निभर करता है।

6. **वर्गीकरण** (Classification): जब समस्त सामग्री को एकत्रित कर लिया जाता है उसके बाद ही उसमें से आवश्यकतानुसार उपयुक्त तथ्यों को प थक करना पड़ता है। वर्गीकरण वह आधार है जिसकी सहायता से विभिन्न घटनाओं अथवा दशाओं के बीच तुलना करना और उसके सह-सम्बन्ध को ज्ञात करना सम्भव हो पाता है। अध्ययनकर्ता द्वारा किये जाने वाले वर्गीकरण की प्रगति उसकी अपनी अन्तर्दृष्टि, अनुभव, योग्यता, अध्ययन का उद्देश्य और तथ्यों की यथार्थता पर निर्भर करेगी। पर किसी भी अवस्था में वर्गीकरण का कार्य जितनी कुशलता व स्पष्ट रूप में किया जायेगा, वैज्ञानिक निष्कर्ष तक पहुँचना अनुसंधानकर्ता के लिये उतना ही सरल होगा।

7. **समान्यीकरण** (Generalization): सामग्री को छाँट लेने तथा उसे क्रमबद्ध एवं वर्गीकृत

कर लेने के पश्चात् वैज्ञानिक अनुसंधान का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान आता है अर्थात् सामान्यीकरण मालूम करना। यह निष्कर्ष या तो अतीत में दिये गये निष्कार्षों का समर्थन करते हैं अथवा उनका खण्डन करते हैं। यह सामान्य निष्कर्ष ही वह महत्त्वपूर्ण आधार है जिसकी सहायता से सिद्धान्तों का निर्माण होता है। यदि कोई अध्ययनकर्त्ता केवल सामग्री को वर्गीकृत करके दे तो सारा प्रयास बेकार ही माना जायेगा जब तक कि कोई अन्तिम परिणाम न पता चल सके। उसे यह भी देखना चाहिये कि जिस आरम्भिक कल्पना को लेकर उसे अपने अध्ययन को आगे बढ़ाया था वह अपने उस प्रारम्भिक विचार का अध्ययन के आधार पर किस सीमा तक प्रमाणित पा सका है, उसमें कितनी यथार्थता रही है।

सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग की समस्या (Problem of use of Scientific Method in Social Research)

समाज के विभिन्न पक्षों के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का प्रभावकारी प्रयोग हो सकता है या नहीं, यह प्रश्न अनुसंधानकर्त्ताओं के बीच विवाद का विषय है। अनुसंधानकर्त्ताओं का एक वर्ग यह मानता है कि सामाजिक अनुसंधानों मे वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग नहीं किया जा सकता जबकि दूसरा वर्ग इसके महत्त्व को स्वीकार करता है। एक लम्बी चर्चा और विवाद के पश्चात् इन दोनों के बीच का मतभेद समाप्त नहीं हो पाया है। दोनों तरह की विचारधाराएँ आज भी समाजिक विज्ञानों में प्रचलित हैं। इन दोनों में से किसे पूर्ण रूप से सही माना जाए, इस समबन्ध में निर्णय देना कठिन है, किन्तु प्रत्येक पक्ष के तर्कों की विस्त त व्याख्या करना उपयुक्त होगा जिनके आधार पर एक निश्चित निष्कर्ष निकालने की सम्भावना बन जाएगी।

यह मूल्यॉंकन आवश्यक है कि वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग सामाजिक अनुसंधानों में नहीं किया जा सकता है। इस व्याख्या के लिए हम लुण्डबर्ग के द्वारा प्रस्तुत प्रारूप को ही आधार बना रहे हैं। लुण्डबर्ग ने लिखा है कि वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग सामाजिक अनुसन्धानों में नहीं हो सकता है उनके तर्क में सामाजिक घटनाओं की जटिलता, सामाजिक घटनाओं की व्यक्तिनिष्ठता एवं अमूर्तता, सामजिक घटना की गुणात्मक प्रकृति, सामाजिक घटनाक्रम की गतिशीलता, पूर्वानुमान न कर पाने की क्षमता आदि वे कारण हैं जो वैज्ञानिक पद्धति के मार्ग में बाधक माने जा सकते हैं। ये निम्न प्रकार हैं :

1. **सामाजिक घटनाओं की जटिलता** (Complexity of Social Phenomena): लुण्डबर्ग लिखते है कि समाजिक घटनाओं की जटिलता अनुसन्धानों में वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग मे कठिनाई उत्पन्न करती है। इस तर्क के समर्थन में यह कहा जाता है कि सामाजिक घटनाएँ और मानव व्यवहार उतने सरल नहीं होते हैं जितने सतही तोर पर सरल नजर आते हैं। सामाजिक घटनाओं में क्रम, व्यवस्था और नियम एक जटिल प्रक्रिया के रूप में आपस में गुँथे रहते हैं। अतः उन्हें समझना आसान नहीं होता।

   सामजिक घटनाएँ अपेक्षाकृत जटिल हैं। लुण्डबर्ग ने लिखा है कि जटिलता वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग की सम्भावना को समाप्त नहीं कर पाती है। अगर सामाजिक घटनाओं पर गहनता से विचार करें तो यह स्पष्ट होता है कि उसमें भी नियमितता, व्यवस्था और क्रमबद्धता है और ऐसी घटनाओं का अध्ययन निश्चित रूप में वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा किया जा सकता है।

2. **सामजिक घटनाओं की व्यक्तिनिष्ठता एवं अमूर्तता** (Subjectivity & Abstractness of

Social Phenomena): सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग में दूसरी बाधा सामाजिक घटनाओं की व्यक्तिनिष्ठता एवं अमूर्तता है। घटनाओं की व्यक्तिनिष्ठता की चर्चा करते हुए अनुसंधानकर्त्ता कहते हैं कि प्राकृतिक विज्ञानों में हम जिन वस्तुओ का अध्ययन करते हैं उनसे हमारा कोई निश्चित लगाव नहीं होता और न ही अपने कोई विचार होते है। ऐसी स्थिति में अनुसन्धानकर्त्ताओं के लिए यह सरल व सम्भव होता है कि वे तटस्थता को बनाए रखते हुए वस्तुनिष्ठ रह कर घटनाओं का अध्ययन कर सकें। इसके विपरीत सामाजिक अनुसंधान के अन्तर्गत अनुसंधानकर्त्ता ऐसे विषय का अध्ययन करते हैं जिसमें उनके स्वयं के अपने निश्चित विचार होते हैं, द ष्टिकोण होते हैं और उसके विभिन्न पक्षों से वे लगाव महसूस करते हैं। ऐसी स्थिति में वे अपने आपको पूर्ण तटस्थ नहीं रख पाते हैं और तथ्य अनुसंधानकर्त्ता के विचार या लगाव से प्रभावित होने लगते हैं। यह व्यक्तिनिष्ठता की स्थिति है। सामाजिक घटनाओं में अमूर्तता की चर्चा करते हुए यह कहा जाता है। कि प्रकृति विज्ञान जिन वस्तुओं का अध्ययन करते हैं उनमें से अधिकाँश मूर्त होती हैं जिन्हें देखा या छुआ जा सकता है। इनके विपरीत सामाजिक सम्बन्ध व सामाजिक घटनाएँ ऐसी स्थितियाँ हैं जो कि अमूर्त हैं।

3. **सामाजिक घटनाओं की गुणात्मक प्रकृति (Qualitative Nature of Social Phenomena):** सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिक पद्धति के महत्त्व में एक बाधा सामाजिक घटनाओं की गुणात्मक प्रकृति है। प्राकृतिक विज्ञान और समाजिक विज्ञान मे महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि प्राकृतिक विज्ञानों में तथ्य परिमाणात्मक होते हैं जबकि समाज विज्ञानों में तथ्य अधिकाँशतः गुणात्मक होते हैं। अभिप्राय यह हुआ कि सामाजिक घटनाओं से प्राप्त तथ्यों का एक बहुत बड़ा भाग ऐसा होता है जिसका माप नहीं किया जा सकता है। यह स्थिति एक वर्ग के विचार में वैज्ञानिक पद्धति के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती है। इस सन्दर्भ में यह ध्यान रखन होगा कि विज्ञान के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसके सभी तथ्य परिमाणात्मक हों या गुणात्मक तथ्यों का अध्ययन वैज्ञानिक विधि से नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर यह ध्यान रखना होगा कि वर्तमान में समाजिक विज्ञान और उसकी प्रविधियाँ इतनी विकसित हो चुकी हैं कि उनके माध्यम से हम गुणात्मक घटनाओं की परिमाणात्मक व्याख्या प्रस्तुत कर सकते हैं। इस सन्दर्भ में यह स्पष्ट करना महत्त्वपूर्ण होगा कि केवल परिमाणात्मक तथ्य अध्ययन के लिए पर्याप्त नहीं होते परिमाणात्मक तथ्यों के साथ-साथ उनका गुणात्मक विश्लेषण तथ्यों की गहन व्याख्या में मदद देता है। अतः इस आधार पर यह माना जाना चाहिए कि तथ्यों की गुणात्मकता या परिमाणात्मकता आलोचना के विषय नहीं हो सकते और यह कि तथ्यों की गुणात्मकता वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग में बाधक हैं, एक भ्राँतिमूलक धारणा है।

4. **सामाजिक घटनाओं की गतिशीलता (Dynamic Nature Social Phenomena):** सामाजिक घटनाओं की प्रकृति की चर्चा करते हुए कहा जाता है कि समाज गतिशील अवस्था मे रहता है। इसके विभिन्न अंग समय-समय पर परिवर्तित होते रहते हैं और इस परिर्विनशीलता के कारण समाज-विज्ञानों में वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग नहीं किया जा सकता है। समाज चूँकि गतिशील अवस्था में रहता है, इस कारण उसके बनाए गए सिद्धान्त आगे आने वाली स्थितियों के लिए और उपयुक्त होंगे, इसकी सम्भावना कम हो जाती है। इस तर्क को दो कारणों से स्वीकार नहीं किया जा सकता है-एक तो यह कि कतिपय भौतिक एवं प्राकृतिक घटनाओं में गत्यात्मकता और परिवर्तनशीलता का तत्त्व होता है

और ऐसा होने पर उनका अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से किया जाता है। सामाजिक घटनाएँ जब परिवर्तित होती हैं, ये परिवर्तन एक व्यवस्थित और नियमित क्रम में होता है और इस कारण उसे समझने में विशेष कठिनाई नहीं हो सकती। यह भी ध्यान में रखना होगा कि यद्यपि समाज में गत्यात्मकता है, किन्तु परिवर्तन और गतिशीलता की दर इतनी कम है कि आज अनुसंधान के आधार पर जो नियम बनाये गये हैं वे कल के लिए सही नहीं होंगे, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि हमारे स्वयं के समाज की विभिन्न संस्थाओं या परम्पराओं पर ध्यान दें तो यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है। इसमें मौलिक परिवर्तन आने में लम्बा समय लग जाता है। इस कारण गत्यात्मकता नियमे के प्रतिपादन के मार्ग में बाधक नहीं बन सकती है।

5. **पूर्वानुमान की सीमित क्षमता (Limited Capacity of Predictibility):** वैज्ञानिक अध्ययनों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि ऐसे अध्ययनो के आधार पर भविष्य में होने वाली घटनाओं का पूर्वानुमान किया जा सकता है। ऐसा पूर्वानुमान प्राकृतिक विज्ञान की आधारभूत विशेषता रही है। विचारकों का एक वर्ग यह मानता है कि समाजिक घटनाओं के सन्दर्भ मे पूर्वानुमान या भविष्यवाणी करना सम्भव नहीं है। वास्तविकता यह है कि इस तर्क को इसी रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्राकृतिक घटनाओं की तुलना में सामाजिक घटनाओं का पूर्वानुमान करना अपेक्षाकृत कठिन है। जॉन मेज ने लिखा है कि काम्टे और स्पेन्सर से लेकर वर्तमान के वैज्ञानिक व विचारक कम से कम इससे सहमत हैं कि भौतिक व प्राकृतिक घटना की तुलना में मानवीय व्यवहार की भविष्यवाणी करना कहीं अधिक कठिन है। इसका मूल कारण यह है कि सामाजिक घटनओं एवं मानवीय व्यवहार की प्रकृति, प्राकृतिक घटनाओं की तुलना में अधिक जटिल होती है। एक आरोप समाज विज्ञानों पर यह भी लगाया जाता है कि इसमें जो पूर्वानुमान किये जाते हैं वास्तविक परिस्थितियों में सही सिद्ध नहीं होते। वस्तुतः पूर्वानुमान की क्षमता और पूर्वानुमान सही साबित होना ये दोनों भिन्न-भिन्न मान लिये जाये तो यह बात समाज विज्ञानों तक ही सीमित नहीं है वरन् प्राकृतिक विज्ञानों में भी द ष्टिगत होती है। मौसम विभाग के द्वारा किये गये पूर्वानुमान कई बार गलत प्रमाणित हुए हैं। पूर्वानुमान के गलत होने का महत्वपूर्ण कारण यह है कि पूर्वानुमान हमेशा निश्चित परिस्थितियों के सन्दर्भ में किये जाते हैं और किसी कारणवश उन परिस्थितियों में कोई मौलिक अन्तर आ जाये तो पूर्वानुमान गलत प्रमाणित हो सकते हैं। ऐसी स्थितियाँ प्राकृतिक एवं सामाजिक दोंनों प्रकार के विज्ञानों में आ सकती हैं। वास्तविकता यह है कि पूर्वानुमानों की क्षमता विषय की विषय-वस्तु पर नहीं, बल्कि अध्ययन पद्धति की विकसित अवस्था पर निर्भर करती है।

अध्याय - 2
सामाजिक अनुसन्धान
(Social Research)

संसार के विभिन्न प्राणीयो में से केवल मानव ही ऐसा प्राणी है जो प्रारम्भ से ही अपने पर्यावरण के प्रति जागरूक एव जिज्ञासु रहा है इसकी यह प्रव त्ति प्राचीनकाल से चली आ रही है तथा चलती रहेगी। अदिकाल से अध्ययनरत होते हुए ही वह वर्तमान वैज्ञानिक युग में विचरण करने लगा है। यह सब मानव के बुद्धि, विवेक एवं कार्यक्षमता की ही देन है कि उसने आज चाँद पर तक अपनी पकड़ प्राप्त कर ली है। मनुष्य के पास ज्ञान का अपार भण्डार है। इस अपार भण्डार के माध्यम से ही ज्ञान की ज्योति प्रज्जवलित कर अज्ञानता को समाज से दूर भगा रहा है। मानव का यह प्रयत्न कभी भी शान्त नहीं हो सकता बल्कि निरन्तर आगे बढ़ता जाएगा। सत्य तक पहुँचने के लिए अध्ययनकर्त्ता को कठिन से कठिन परिश्रम करना पड़ता है। समाज से सम्बन्धित विषयों मे अध्ययनकर्त्ता को समानता तभी प्राप्त हो सकती है जब वह निष्पक्ष होकर अध्ययन करे। मानव आज ऐसे अन्वेषण व परीक्षण करने लगा है कि जिसकी कभी कल्पना तक नहीं कि जा सकती थी, कोई भी कार्य चाहे वह प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में हो या समाज विज्ञान के क्षेत्र मे अगर उसको व्यवस्थित ढंग तथा वस्तु विशेष की महता को समझ कर अध्ययन किया जाए तो उसके परिणाम सदैव ठीक निकलते हैं। यदि अध्ययनकर्त्ता अपने कार्य के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित है तो उसके द्वारा सम्पादित कार्यों में कोई गलती की सम्भावना नहीं रह जाती है। इसके अभाव में वास्तविकता सामने नहीं आ सकती हैं यही कारण है कि सामाजिक अनुसंधानकर्ता सामाजिक अनुसधान की मदद से ही समाज में व्याप्त हर स्थिति/परिस्थिति का अध्ययन कर वास्तविकता को समाज के सम्मुख प्रकट करने में सक्षम होता है। इसलिए सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में सत्य की खोज हो सामाजिक शोध है।

अनुसंधान का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definitions of Research)

सामजिक अनुसंधान का अर्थ जानने से पहले हमारे लिए जरूरी है कि अनुसंधान शब्द का अर्थ क्या होता है। विज्ञान की अवधारणा के विस्त त विवेचन से अनुसंधान की वैज्ञानिकता का महत्त्व स्पष्ट हो जाता हैं अवैज्ञानिक अनुसंधानकार्ता समय व धन का अपव्यय करता है। जे. डब्ल्यू. वेस्ट (J.W. Best) के अनुसार "विश्लेषण की वैज्ञानिक विधि को अधिक आकारिक, व्यवस्थित एवं गहन रूप में प्रयोग करने को अनुसंधान कहा जाता है।"

'The New Century Dictionary' के अनुसार, अनुसंधान का अर्थ किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के विषय मे सावधानी से खोज करना, तथ्यों अथवा विद्धान्तों का अन्वेषण करने के लिए विषय सामगी की निरन्तर सावधानी पूर्वक पूछताछ अथवा पड़ताल करना है।

'Encyclopaedia of Social Sciences' में लिखा है कि "अनुसंधान वस्तुओं, प्रत्ययों तथा संकेतों आदि को कुशलतापूर्वक व्यवस्थित करता है, जिसका उद्देश्य सामान्यीकरण द्वारा विज्ञान का विकास, परिमार्जन अथवा सत्यापन होता है, चाहे वह ज्ञान व्यवहार मे सहायक हो अथवा कला में।"

डिक्शनरी ऑफ सोशियोलोजी मे जी. एम. फिशर (G. M. Fisher) लिखते हैं किसी को हल करने या किसी उपकल्पना की जाँच करने अथवा नवीन घटनाक्रम तथा उसमें पाए जाने वाले नए सम्बन्धों की खोज करने हेतु उपयुक्त पद्धतियों का किसी सामाजिक स्थिति में जो प्रयोग किया जाता है उसे सामाजिक अनुसंधान कहा जाता है।"

रेडमैन और मौरी (L. V. Redman and A. V. H. Mory) के अनुसार, "नवीन ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित प्रयत्न को हम अनुसंधान कहते हैं"

ए. डब्लू. स्माल (A. W. Small) के अनुसार, "इसके निम्नतम स्तर पर सरल अंग्रेजी में अनुसंधान केवल वस्तुओं को खोज निकालने का एक प्रयास है।"

लुण्डवर्ग (Lundberg) के अनुसार, "अनुसंधान की परिभाषा मे अवलोकित सामग्री का सम्भावित वर्गीकरण, साधारणीकरण एवं सत्यापन करते हुए पर्याप्त कर्म विषयक और व्यवस्थित पद्धति है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि शोधकर्त्ता के निरन्तर प्रयोग तथा प्रयत्न से जो ज्ञान की व द्धि करे, अनुसन्धा कहलाता है। शोध नूतन ज्ञान की प्राप्ति तथा उपलब्ध ज्ञान की व्याख्या करता है। वैज्ञानिक का प्रयत्न सफल हो या असफल, उससे लाभ हो अथवा हानि अनुसन्धान का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। इतना की काफी है कि एक प्रयास किया जा रहा है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें तथ्यों का अवलोकन, वर्गीकरण, साधारणीकरण तथा सत्यापन के चरण क्रम से होते हैं। अनुसन्धान एक ऐसा प्रयत्न है जिसमें नवीन ज्ञान की खाज तथा उपलब्ध ज्ञान में परिवर्तन को भी मालूम करना होता है।

सामाजिक अनुसंधान का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definitions of Social Research)

मानव ने आज तक का सम्पूर्ण ज्ञान वैज्ञानिक शोध के द्वारा ही प्राप्त किया है, इसी के द्वारा मनुष्य ने अपने सम्पूर्ण सामाजिक संगठन, अपने पर्यावरण, अनेक प्रचलित नियमें के बारे में जानकारी प्राप्त की है। प्रत्येक शोध को वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता है केवल वही शोध वैज्ञानिक होगा जिसमें इसके दो आवश्यक तत्त्व 1. निरीक्षण 2. कारण दर्शाना सम्मिलित हो।

यह कहा जा सकता है कि सामाजिक शोध वह क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक अध्ययन विधि है जिसके आधार पर सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध मे हम नवीन ज्ञान की प्राप्ति करते हैं या पहले से प्रतिपादित नियमों की पुनः परीक्षा करते हैं तथा साथ ही तथ्यों के कार्य कारण को स्पष्ट करते हैं सामान्यतः यह माना जाता है कि सामाजिक शोध, सामाजिक अनुसंधान का ही एक रूप है क्योंकि इसमे सम्पूर्ण ज्ञान वैज्ञानिक पद्धति (निरीक्षण, वर्गीकरण, प्रयोग, निष्कर्षीकरण) द्वारा प्राप्त किया जाता है और इसी पद्धति के द्वारा पूर्व स्थापित सिद्धान्तों की पुर्नपरीक्षा की जाती है व सत्यता की जाँच की जाती है। वैज्ञानिकों ने सामाजिक अनुसधान की निम्नलिखित परिभाषाएँ दी हैं :

पी॰ वी॰ यंग (P. V. Young) के अनुसार, "सामाजिक शोध एक वैज्ञानिक योजना है जिसका उद्देश्य तार्किक तथा क्रम बद्ध पद्धतियों के द्वारा नवीन तथ्यों का अन्वेषण अथवा पुराने तथ्यों को पुनः

परीक्षा एवम् उनमें पाए जाने वाले अनुक्रमों (Sequences), अन्तः सम्बन्धों; कारण सहित व्याख्याओं तथा उनको संचालित करने वाले स्वाभाविक नियमों का विश्लेषण करना है।"

मोसर (Moser) ने लिखा है कि सामाजिक घटनाओं व समस्याओं के सम्बन्ध में नवीन ज्ञान का प्राप्ति के लिए किए गए व्यवस्थित अनुसन्धान को हम सामाजिक शोध कहते हैं।

बोगार्डस (Bogradus) के अनुसार, "एक साथ रहने वाले लोगों के जीवन मे क्रियाशील अन्तर्निहित प्रक्रियाओं का अनुसन्धान ही समाजिक शोध है।"

ह्विटने (Whitney) का कथन है, "समाजशास्त्रीय शोध में मानव-समूह के सम्बन्धों का अध्ययन होता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि सामाजिक शोध वास्तव में सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों के विषय में अध्ययन करने की एक वैज्ञानिक योजना है। चूँकि यह वैज्ञानिक है अतः इसके अन्तर्गत समस्त अनुसन्धान-कार्य वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार ही होता है; इसमें असम्बद्ध तरीकों का कोई भी स्थान नहीं हैं। यह तार्किक तथा क्रमबद्ध पद्धतियों पर निर्भर है और इन्हीं पद्धतियों के द्वारा यह सामाजिक जीवन व घटनाओं के विषय मे अन्वेषण करता है, पुराने सिद्धान्तों की पुनः परीक्षा करता है तथा विभिन्न सामाजिक तथ्यों के बीच पाए जाने वाले अन्त-सम्बन्धों व अनुक्रमों को दर्शाता है।

सामाजिक अनुसंधान की प्रकृति
(Nature of Social Research)

सामाजिक अनुसन्धान की उपर्युक्त परिभाषाओं में वैज्ञानिकों के द्वारा व्यक्त अनेक लक्षण और विशेषताएँ उभर कर समाने आती हैं, जो इसकी प्रकृति को भी स्पष्ट करती हैं । वे इस प्रकार है :

1. **प्राक्कल्पना की जाँच** (Testing of Hypothesis): सामाजिक अनुसन्धान प्राक्कल्पना के निर्माण से प्रारम्भ होता है तथा इसका मुख्य उद्देश्य समाज से सम्बन्धित प्राक्कल्पनाओं की जाँच करना होता है।

2. **व्यावहारिक एवं शुद्ध अनुसन्धान** (Pure and Applied Research): गुडे एवं हॉट ने लिखा है कि सामाजिक अनुसन्धान समाज से सम्बन्धित दो प्रकार के अनुसन्धान होते हैं (1) शुद्ध अनुसन्धान, तथा (2) व्यावहारिक अनुसन्धान। शुद्ध अनुसन्धान पुस्तकालय में उपलब्ध विषय से सम्बन्धित सामग्री का क्रमबद्ध संकलन, वर्गीकरण तथा विश्लेषण करके शुद्ध सिद्धान्त का निर्माण करता है। व्यावहारिक अनुसन्धान वास्तविक समस्या से सम्बन्धित क्षेत्र से तथ्य एकत्र करके प्राक्कल्पना का परीक्षण करता है।

3. **कार्य-कारण सम्बन्ध का अध्ययन** (Study of Cause-Effect Relation): सामाजिक अनुसन्धान प्राक्कल्पना अथवा अध्ययन की समस्या से सम्बन्धित तथ्यों के परस्पर कारण-प्रभाव सम्बन्ध का अध्ययन करता है। प्राक्कल्पना मे वर्णित समीकरण की जाँच कारण-प्रभाव के सन्दर्भ में करता है।

4. **वैज्ञानिक चरणो का पालन** (Following Scientific Steps): सामाजिक अनुसन्धान में अनुसन्धानकर्त्ताओं द्वारा वैज्ञानिक शोध के चरणों (प्राक्कल्पना का निर्माण तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण तथा निष्कर्ष) का कठोरता से पालन किया जाता किया जाता है।

5. **तथ्यों की खोज** (Discovery of Facts): सामाजिक अनुसन्धान में समाज, सामाजिक व्यवस्था,

संगठन आदि से सम्बन्धित नवीन तथ्यों की खोज की जाती है। तथा पुराने तथ्यों की जाँच की जाती है।

6. **सिद्धान्तों का परीक्षण** (Testing of Theory): सिद्धान्त कई प्रकार के होते हैं, जैसे—विश्लेषणात्मक, आदर्शात्मक, तत्त्वमीमांसीय आदि। सामाजिक अनुसन्धान जब प्राक्कल्पना अथवा सिद्धान्त का परीक्षण करके निर्माण करता है तो वह वैज्ञानिक सिद्धान्त कहलाता है। वैज्ञानिक सिद्धान्तों की जाँच नवीन तथ्यों द्वारा समय-समय पर उनकी प्रामाणिकता, विश्वसनीयता तथा सत्यता के लिए होती रहनी चाहिए। यह कार्य सामाजिक अनुसन्धान करता है। वैज्ञानिक सिद्धान्तों का परीक्षण करके उन्हें पुनः स्थापित, खण्डित, संशोधित करता है अथवा त्याग देता है।

7. **नवीन प्रविधियों की खोज** (Discovery of New Techniques): सामाजिक अनुसन्धान में प्राक्कल्पना की जाँच, तथ्यों का संकलन, सिद्धान्तों की सत्यता आदि से सम्बन्धित अध्ययन करने के अतिरिक्त नवीन प्रविधियों की खोज भी की जाती है। अनेक ऐसी प्राक्कल्पनाएँ हैं जिनकी जाँच करने तथा उनके सम्बन्धित तथ्य-संकलन की प्रविधियाँ विज्ञान में नहीं होती हैं। ऐसी प्राक्कल्पनाओं का परीक्षण करने के लिए सामाजिक अनुसन्धान सर्वप्रथम नवीन प्रविधि की खोज करता है।

सामाजिक शोध की प्रकृति के सम्बन्ध में अन्तिम बात यह है कि यह सामाजिक जीवन व घटनाओं पर अधिकाधिक नियन्त्रण पाने का प्रयत्न करता है। यहाँ नियन्त्रण का अर्थ यह नहीं है कि समाज के सदस्यों को डरा-धमकाकर अपने वश मे कर लेता है। यहाँ नियन्त्रण से तात्पर्य यह है कि अपने अनुसंधान-कार्य में प्रयोगात्मक पद्धति का उपयोग करने के लिए कुछ सामाजिक घटनाओं को नियन्त्रित करके उसी प्रकार की अन्य सामाजिक घटनाओं पर विभिन्न कारकों के प्रभावों को देखना हैं इस प्रकार का नियन्त्रण विषय के सम्बन्ध में शोधकर्त्ता के उत्तरोत्तर ज्ञान पर निर्भर होता है। सामाजिक जीवन व घटनाओं के सम्बन्ध में अधिकाधिक ज्ञान द्वारा उन पर अधिक नियन्त्रण पाना सामाजिक शोध का प्राथमिक लक्ष्य है।

सामाजिक अनुसंधान के उद्देश्य
(Objectives of Social Research)

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम सामाजिक शोध के निम्नलिखित उद्देश्यों का उल्लेख कर सकते हैं; परन्तु यहाँ प्रारम्भ में ही यह कह देना उचित होगा कि सामाजिक शोध के उद्देश्यों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—**प्रथम**, सैद्धान्तिक अथवा ज्ञान सम्बन्धी उद्देश्य और **द्वितीय,** व्यावहारिक अथवा प्रयोगवादी उद्देश्य। उपर्युक्त परिभाषाओं में विशेषतया उद्देश्य पर बल दिया गया है; परन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि इन विद्वानों द्वारा सामाजिक शोध के व्यावहारिक (Applied) पक्ष की भी अवहेलना नहीं की गई है जैसा कि निम्नलिखित विवेचना के स्पष्ट होगा :

1. सैद्धान्तिक उद्देश्य
(Theoretical Objectives)

सैद्धान्तिक अनुसन्धान के उद्देश्य और भूमिकाएँ सामाजिक विज्ञानो में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। समाजिक विज्ञानों में सिद्धान्त, ज्ञान तथ्य-संकलन, अनुसन्धान की दिशा (अभिविन्यास), तथ्यों

की भविष्यवाणी, ज्ञान में कमी को बताना आदि अनेक उद्देश्य सैद्धान्तिक अनुसन्धान के हैं इतना ही नहीं समाजिक अनुसन्धान में अवधारण के विकास की प्रक्रिया तथा वर्गीकरण का महत्त्वपूर्ण कार्य भी सैद्धान्तिक अनुसन्धान करता है इन उपर्युक्त कार्यों, उद्देश्यों तथा भूमिकाओं का उल्लेख **गुडे** एवं **हॉट** ने किया है।

1.1 **अनुसन्धान की दिशा निर्धारण** **(Determination of Research):** अनुसन्धान का प्रमुख सैद्धान्तिक उद्देश्य विभिन्न सामाजिक विज्ञानों में अध्ययन का क्षेत्र, विषय-सामग्री, अध्ययन का द ष्टिकोण आदि का निश्चित करना है। फुटबाल का कई परिप्रेक्ष्यों के अनुसार अध्ययन कर सकते हैं। सैद्धान्तिक अनुसन्धान तय करेगा कि किस सामाजिक विज्ञान मे इसका अध्ययन किन प्रभावों को ध्यान में रखकर किया जाए। सैद्धान्तिक अनुसन्धान इस बात की परिभाषा करने में मदद करता है कि किस प्रकार के तथ्य सम्बन्धित कारक हैं और कौनसे नहीं हैं।

1.2 **संक्षिप्तीकरण** **(Summarization):** सैद्धान्तिक अनुसन्धान का दूसरा और महत्त्वपूर्ण उद्देश्य उस सबका संक्षिप्तीकरण करना है जो किसी अध्ययन की वस्तु के सम्बन्ध में उपलब्ध हैं। इस ज्ञान के संक्षिप्तीकरण को निम्नलिखित दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– (1) आनुभविक सामान्यीकरण, और (2) विभिन्न प्रस्थापनाओं के सम्बन्धों की व्यवस्था। तथ्यों को विज्ञान में जिस द ष्टिकोण से देखा जाना चाहिए वह सैद्धान्तिक अनुसन्धान प्रदान करता है तथा ज्ञान का संक्षिप्ती करण करता है।

1.3 **ज्ञान की कमी बताना** **(Points Gap in the Knowledge):** **गुडे** एवं **हॉट** का कहना है कि जब सैद्धान्तिक अनुसन्धान उपलब्ध ज्ञान का संक्षिप्तीकरण करता है तथा यह भी निर्देश देता है कि किन तथ्यों को एकत्र करना है तथा कौन-कौनसे तथ्य एकत्र किए जा चुके हैं तो वह यह भी बताता है कि अभी और कौन-कौन से तथ्यों को एकत्र करना शेष है तथा कौन-कौनसे अध्ययन करने शेष हैं। इसके द्वारा विशिष्ट सामाजिक विज्ञान में कौन-कौन से अध्ययन नहीं हुए हैं का भी पता चल जाता है। जहाँ उपलब्ध ज्ञान का संक्षिप्तीकरण हो चुका है तब उनेस यह भी पता चल जाता है कि कौनसे तथ्य वर्गीकृत तथा संगठित नहीं किए गए हैं।

1.4 **तथ्यों की भविष्यवाणी** **(Forecast of Facts):** सैद्धान्तिक अनुसन्धान का एक प्रमुख उद्देश्य विज्ञान मे तथ्यों की भविष्यवाणी अथवा पूर्वानुमान प्रस्तुत करना है। सैद्धान्तिक अनुसन्धान का कर्त्तव्य है कि वह स्पष्ट करे कि कौन-कौन से तथ्यों के घटने की सम्भावना है। यह निर्देश देता है कि कौन से तथ्य एकत्र करने हैं और कौन से तथ्य नहीं।

1.5 **तथ्यों का वर्गीकरण** **(Classification of Fact):** सैद्धान्तिक अनुसन्धान विज्ञान में उपलब्ध ज्ञान, तथ्यों आदि का वर्गीकरण, सारणीयन आदि करता है। इसके द्वारा सामाजिक वैज्ञानिकों को विषय की पूर्ण जानकारी हो जाती है कि कौन-कौन से अध्ययन के क्षेत्र शेष हैं जिनका अध्ययन करना बाकी है। इस अनुसन्धान का यह उद्देश्य तथा कार्य विशेष महत्त्वपूर्ण है।

1.6 **समस्याओं के कारणों की खोज** **(Disvovery of Causes of Problems):** सैद्धान्तिक अनुसन्धान का व्यावहारिक समस्याओं के केन्द्रीय कारकों का पता लगाना प्रमुख उद्देश्य

है। मान लीजिए कि विभिन्न प्रजाति के समुदाय खेल के मैदान में लड़ते हैं। इस समस्या का तत्काल समाधान ये कर दिया जाता है अलग-अलग प्रजाति समूहों हो अलग-अलग समय में खेल का मैदान खेलने को दिया जात है। परन्तु सैद्धान्तिक अनुसन्धान इनका समाधान प्रस्तुत करेगा कि उन्हें समाजीकरण, सामाजिक अन्तः क्रिया, समूह के मानदण्ड आदि बचपन से सिखाए जाएँ तो बड़े होकर वे परस्पर मित्रता पूर्ण रहेंगे। सैद्धान्तिक अनुसन्धान सामान्य ज्ञान से कहीं अधिक दूर की जानकारी देता है।

1.7 **समस्याओं का समाधान** **(Remedy for Problems):** सैद्धान्तिक अनुसन्धान अनेक विकल्पों तथा समाधानों का विकास करता है जिसके परिणामस्वरूप समस्याओं के अनेक समाधान उपलब्ध हो जाते हैं। समाधान से समस्याओं के निराकरण की लागत कम हो जाती है। **गुडे** एवं **हॉट** का कहना है कि सिद्धान्तों के विकास के द्वारा अनेक व्यवहारिक समस्याओं का समाधान प्रदान करना है।

1.8 **प्रशासन को व्यवस्थित करना** **(Systematizing of Administration):** अनुसन्धान प्रशासन को व्यवस्थित रूप से चलाने में सहायता पहुँचाता है। सरकारी तथा व्यापारिक संगठनों ने अनुसन्धान केन्द्रों से सूचनाएँ एकत्र करके उनका उपयोग करना शुरू कर दिया है। सामाजिक सैद्धान्तिक अनुसन्धान, उपकरणों तथा तकनीकों का मूल्यांकन करते हैं। जिनका पुरानी तथा नई समस्याओ के समाधान में उपयोग किया जाता है। गुडे एवं हॉट के अनुसार सैद्धान्तिक अनुसन्धान का एक प्रमुख उद्देश्य समस्याओं का समाधान प्रदान करना है जो प्रशासन को मानकात्मक पद्धति प्रदान करता है।

2. व्यावहारिक उद्देश्य (Applied Objectives)

सामाजिक शोध के दूसरे उद्देश्य की प्रकृति व्यावहारिक है। इसका तात्पर्य यह है कि सामाजिक शोध सामाजिक जीवन तथा विभिन्न घटनाओं के सम्बन्ध में हमें जो जानकारी प्रदान करता है उसका उपयोग हम अपने व्यावहारिक जीवन में भी कर सकते हैं। और भी स्पष्ट रूप से सामाजिक शोध सामाजिक जीवन के सम्बन्ध मे हमारे ज्ञान का एक महत्त्पूर्ण शोध है। वह ज्ञान हमें सामाजिक समस्याओं को हल करने व सामाजिक जीवन को अधिक प्रगतिशील बनाने के लिए आवश्यक योजना बनाने में मदद कर सकता है। इस द ष्टिकोण से सामाजिक शोध के व्यावहारिक उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते है :

2.1 **ज्ञान का विकास** **(Development of Knowledge):** अनुसन्धान का प्रमुख उद्देश्य ज्ञान का विकास करना है। सामाजिक अनुसन्धान का उद्देश्य सामाजिक घटनाओं, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं, सामाजिक जीवन, सामाजिक परिर्वतन आदि के सम्बन्ध में ज्ञान का विकास करना है। यह अनुसन्धान समाज की संरचना ओर उसके कार्यों की व्याख्या तथा वर्णन करता है। यह हर क्षेत्र में ज्ञान की उत्तरोत्तर व द्धि करता है। उपलब्ध ज्ञान को एकत्र करके क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित करता है। संचयी ज्ञान के आधार पर आगे अनुसन्धान करता है। नवीन तथ्यों की खोज करता है।

2.2 **प्रकार्यात्मक अध्ययन** **(Function at Study):** व्यावहारिक अनुसन्धान सामाजिक घटनाओं

तथा अध्ययन की सामग्री से सम्बन्धित तथ्यों का प्रकार्यात्मक अध्ययन करता है। तथ्यों में परस्पर एक-दूसरे के बीच कारण-प्रभाव का क्या सम्बन्ध है, सामाजिक व्यवस्था को समझने के लिए, सम्बन्धित तथ्यों के गुण और प्रभाव का अध्ययन आवश्यक है। सामाजिक अनुसन्धान इस कार्य को क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित रूप से करके हमारे सामने प्रस्तुत करता है कि तथ्यों के क्या-क्या गुण, दोष, प्रभाव आदि हैं। विभिन्न तथ्य दूसरे तथ्यों से कैसे प्रभावित होते हैं तथा किस प्रकार से उनको प्रभावित करते हैं। इसमे सामाजिक व्यवस्थाएँ तथा अन्य सामाजिक घटनाओं को समझने में सुगमता रहती है। समाज के सन्तुलन, गतिशीलता, निरन्तरता तथा व्यवस्था आदि के लिए इन सबका ज्ञान आवश्यक है जो सामाजिक अनुसन्धान समाजशास्त्रियों, सामाजिक वैज्ञानिकों, समाज सुधारकों, योजनाकारों आदि को उपलब्ध करवाते हैं। **गुडे** एवं **हॉट** ने भी लिखा है कि बाल-अपराध, निर्धनता, बेकारी आदि सामाजिक समस्याओं को समझने में यह ज्ञान उपयोगी रहता है।

2.3 **सिद्धान्तों की खोज** (Discovery of theories): व्यावहारिक अनुसन्धान का एक प्रमुख उद्देश्य नए-नए सिद्धान्तों की खोज करना है। सिद्धान्त तथ्यों का परस्पर सम्बन्ध बताते हैं। सिद्धान्त तथ्यों का संक्षिप्तीकरण करते हैं। सिद्धान्तों की खोज करना तथा निर्माण करना व्यावहारिक अनुसन्धान के विभिन्न चरणों में से अन्तिम चरण नियमों अथवा सिद्धान्तों का निर्माण, जाँच, संशोधन आदि है। सामाजिक घटना से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन करने के बाद व्यावहारिक अनुसन्धान तथ्यों के आधार पर उनके परस्पर सम्बन्धों को कथन के रूप में प्रस्तुत करता है। ये कथन प्रयोग-सिद्ध तथ्यों पर आधारित होते हैं। व्यावहारिक अनुसन्धान सिद्धान्तों के द्वारा सामाजिक संगठन की व्याख्या तथा भविष्यवाणी करता है। इसके द्वारा घटनाओं का अनुमान लगाना सरल हो जाता है।

2.4 **अवधारणाओं का विकास** (Development of Concepts): व्यावहारिक अनुसन्धान के अनेक चरण हैं। यह कहना तो बहुत कठिन है कि कौन-सा चरण अधिक महत्त्वपूर्ण है और कौन-सा कम; परन्तु प्रत्येक चरण के अन्तर्गत कोई-न-कोई उद्देश्य अवश्य निहित होता है। इसमें एक चरण अवधारणाओं की व्याख्या, स्पष्टीकरण तथा संक्षिप्तीकरण का होता है। अवधारणाएँ तथ्यों की व्याख्या करती हैं। जब नए-नए तथ्य अनुसन्धान द्वारा खोजे जाते हैं तो उनकी व्याख्या करने वाली अवधारणाओं की भी पुनः परीक्षा करनी होती है। नए तथ्यों के सन्दर्भ में पुरानी अवधारणाओं की पुनः व्याख्या करना, स्पष्टीकरण करना, सुनिश्चित करना आदि कार्य सामाजिक अनुसन्धान को करना आवश्यक हो जाता है। बदली हुई परिस्थितियों में अनुसन्धान नए-नए तथ्यों, अवधारणाओं और सिद्धान्तों की खोज करता है, निर्माण करता है, इनकी स्थापना करता है। तथा इनमें आवश्यक होता है तो संशोधन भी करता है।

उपरोक्त विवेचन से यह कदापि नहीं समझ लेना चाहिए कि सामाजिक शोधकर्त्ता ही ज्ञान को व्यावहारिक अथवा सैद्धान्तिक रूप प्रदान करता है। वह केवल ज्ञान प्राप्त करता है तथा तथ्यों के आधार पर सिद्धान्तों को स्थापित करता है। श्रीमती यंग लिखती हैं कि सामाजिक शोध का उद्देश्य केवल सामाजिक जीवन को समझकर उस पर अधिक नियन्त्रण स्थापित करना होता है।

सामाजिक शोध के प्रकार
(Types of Social Research)

सामजिक शोध मुख्य रूप से तीन प्रकार के हो सकते हैं। सामाजिक शोध की प्रकृति को समझने के लिए यह आवश्यक है कि इन प्रकारों के सम्बन्ध में भी विवेचना कर ली जाए। ये तीन प्रकार निम्नलिखित है :

1. **मौलिक या विशुद्ध शोध (Fundamental or Pure Research):** इस प्रकार के सामाजिक शोध में सामाजिक जीवन व घटनाओं के सम्बन्ध में मौलिक सिद्धान्तों व नियमों का अनुसन्धान किया जाता है और इस अनुसन्धान का उद्देश्य नवीन ज्ञान की प्राप्ति व व द्धि तथा पुराने ज्ञान की पुनः परीक्षा द्वारा उसका शुद्धिकरण होता है। इस प्रकार की खोज में नवीन तथ्यों व घटनाओं का अध्ययन किया जाता है। और साथ ही इस बात की भी जाँच की जाती है कि जो प्रचलित पुराने सिद्धान्त व नियम हैं वे वर्तमान परिस्थितियों के संदर्भ में ठीक हैं या नहीं। हो सकता है कि नवीन परिस्थितियों में भी पुराने नियम व सिद्धान्त खरे उतरें, पर यह भी हो सकता है कि नवीन परिस्थितियों के अनुसार उनमें कुछ आवश्यक सुधार या हेरफेर करना जरूरी हो जाए। यह भी हो सकता है कि नवीन परिस्थितियों की माँग नवीन सिद्धान्त व नियम हों। मौलिक शोध के अन्तर्गत नए सिद्धान्तों व नियमों की खोज नवीन परिस्थितियों तथा समस्याओं के उत्पन्न होने पर की जाती है। ऐसा इस उद्देश्य से किया जाता है कि इन नवीन सिद्धान्तों का वर्तमान परिवर्तित परिस्थितियों के साथ अधिकाधिक मेल बैठ जाए और हम उनके सम्बन्ध में अपने नवीनतम ज्ञान के सहारे विद्यमान परिस्थितियों की चुनौती का सामना अधिक सफलतापूर्वक कर सकें। इस द ष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि मौलिक शोध की प्रकृति आधारभूत रूप में सैद्धान्तिक है क्योंकि इसका एकमात्र उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति, व द्धि तथा शुद्धिकरण होता है। सत्य की खोज करना इसका प्रमुख लक्ष्य है और इसीलिए समस्त घटनाओं के अनुसन्धान में यह केवल इसी लक्ष्य की प्राप्ति के प्रति सजग व प्रयत्नशील रहता है। जब यह किसी घटना का अध्ययन करता है तो उसके सम्बन्ध में उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है, जब वह नवीन घटनाओं के सम्बन्ध मे अनुसन्धान करता है तो विद्यमान ज्ञान की व द्धि होती है और जब वह परिवर्तित परिस्थितियों के सन्दर्भ में पुराने नियमों तथा सिद्धान्तों की फिर से जाँच करता है तो उनके सम्बन्ध में उसके ज्ञान में आवश्यक सुधार या हेर-फेर हो जाता है। इस प्रकार फिर हम इसी निष्कर्ष पर आते हैं कि अपने अनुसन्धानों के द्वारा जो सामाजिक शोध ज्ञान की प्राप्ति, परिमार्जन व परिवर्द्धन को अपना लक्ष्य मानता है उसे मौलिक शोध करते हैं।

2. **व्यावहारिक शोध (Applied Research):** पी॰ वी॰ यंग (P. V. Young) ने ठीक ही लिखा है कि खोज का एक निश्चित सम्बन्ध लोगों की प्राथमिक आवश्यकताओं तथा कल्याण से होता है। वैज्ञानिक की मान्यता यह है कि समस्त ज्ञान सारभूत रूप से उपयोगी इस अर्थ में है कि वह एक सिद्धान्त के निर्माण में या एक कला को व्यवहार में लाने में सहायक होता है सिद्धान्त तथा व्यवहार आगे चलकर बहुधा एक-दूसरे में मिल जाते है। इसी मान्यता के आधार पर सामाजिक शोध का जो दूसरा प्रकार प्रकट होता है उसे ही हम व्यावहारिक शोध करते हैं। व्यावहारिक शोध का सम्बन्ध सामाजिक जीवन के व्यावहारिक पक्ष से होता है; और वह सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में ही नहीं अपितु सामाजिक नियोजन, सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध मे ही नहीं अपितु सामाजिक नियोजन, सामाजिक अधिनियम, स्वास्थ,

रक्षा सम्बन्धी नियम, धर्म, शिक्षा, न्यायालय, मनोरंजन आदि विषयों के सम्बन्ध में भी अनुसन्धान करता है और इनके सम्बन्ध में कारण-सहित व्याख्या व तर्कयुक्त ज्ञान से हमको सम द्ध करता है। पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि व्यावहारिक शोध को कोई सम्बन्ध समाज-सुधार से, सामाजिक व्याधियों के उपचार बनाने या सामाजिक नियोजनों को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करने से होता है। वह स्वयं यह सब कुछ नहीं करता है; यह काम तो समाज-सुधारक, राष्ट्रीय नेता, प्रशासकों तथा अधिकारियों का होता है। व्यावहारिक शोध का काम केवल व्यावारिक जीवन से सम्बद्ध जीवन से सम्बन्धित विषयों तथा समस्याओं के सम्बन्ध में हमें यथार्थ ज्ञान देना है।

सामाजिक जीवन में व्यावहारिक शोध के महत्त्व दर्शाते हुए स्टाउफर (Stouffer) ने लिखा है कि यदि समाजिक-विज्ञान को अपना महत्त्व बढ़ाना है तो उसको अपने व्यावहारिक पक्ष पर बल देना होगा। उदाहरणार्थ, यदि समाज-विज्ञान स्पष्ट रूप से यह दर्शा सके कि एक परामर्श देने वाली व्यवस्था (Counselling System) सार्वजनिक स्कूलों में किस भाँति सर्वाधिक प्रभापूर्ण हो सकती है तो यह स्पष्ट है कि समाज-विज्ञान के महत्त्व की सार्वजनिक स्वीकृति बढ़ जाएगी। व्यावहारिक शोध में भी अनसन्धान के उन्हीं उपकरणों का उपयोग किया जाता है जिसका कि मौलिक या 'विशुद्ध विज्ञान में, और इसीलिए इसके द्वारा प्रस्तुत व्यावहारिक ज्ञान बड़े महत्त्व का और साथ ही यथार्थ सिद्ध होता है। व्यावहारिक शोध हमारे व्यावहारिक जीवन में आने-जाने वाली समस्याओं तथा अन्य घटनाओं पर नियन्त्रण प्राप्त करने या उनका अन्य उपचार करने के लिए आवश्यक सिद्धान्तों के विषय में हमारी चिन्तन-प्रक्रिया को उभार सकता है। इसका कारण यह है कि बहुधा यह देखा गया है कि एक आश्चर्यजनक प्रयोग सिद्ध व्यावहारिक खोज की व्याख्या या विश्लेषण करने के दौरान शोधकर्त्ता ऐसे व्यावहारिक सुझावों को प्रस्तुत करता है या ऐसी बातों को कहता है जो कि अनेक सामाजिक समस्याओं के उपचार में सहायक सिद्ध होते हैं। स्टाउफर (Stouffer) ने आगे लिखा है कि सामाजिक विज्ञान के व्यावहारिक शोध के तीन महत्वपूर्ण योगदान है : (i) कतिपय सामाजिक तथ्य किस भाँति समाज के लिए उपयोगी हैं इसके सम्बन्ध में विश्वसनीय प्रमाणों को परस्तुत करना; (ii) इस प्रकार की प्रविधियो का उपयोग व विकास करना जो कि मौलिक शोध के लिए भी उपयोगी सिद्ध हों; (iii) इस प्रकार के तथ्यों तथा विचारों को प्रस्तुत करना जो कि निष्कर्षीकरण या सामान्यीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहित कर सके।

3. **क्रियात्मक शोध (Action Research):** क्रियात्मक शोध व्यावहारिक शोध से अनेक अर्थ में मिलता-जुलता है क्योंकि इसका भी सम्बन्ध सामाजिक जीवन की ऐसी समस्याओं तथा घटनाओं से होता है जिनका कि व्यावहारिक या क्रियात्मक महत्त्व हो। जब समाजिक शोध अध्ययन के निष्कर्षों को क्रियात्मक रूप देने की किसी तात्कालिन अथवा भावी योजना से सम्बन्ध होता है तो उसे क्रियात्मक शोध कहा जाता है। ओर भी स्पष्ट रूप मे हम यह कह सकते हैं कि क्रियात्मक शोध वह अनुसंधान है जो कि किसी सामाजिक समस्या या घटना के क्रियात्मक पक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और साथ ही अनुसन्धान के निष्कर्षों का उपयोग विद्यमान सामाजिक अवस्थाओं में परिवर्तन लाने की योजना के एक भाग के रूप में करता है। गुड तथा हॉट (Goode and Hatt) के अनुसार, "क्रियात्मक शोध उस कार्यक्रम का अंश होता है जिसका कि लक्ष्य विद्यमान अवस्थाओं को परिवर्तित करना होता है; चाहे वह गन्दी बस्ती की अवस्थाएँ हों या प्रजातीय तनाव व पक्षपात हो या एक संगठन की प्रभावशीलता हो।" उदाहरणार्थ, यदि एक शोध-कार्य इस उद्देश्य को समाने रखते

हुये किया जा रहा है कि उसके निष्कर्षों को गन्दी बस्तियो की सफाई के कार्यक्रम के उपयोग में लाया जाएगा अर्थात् उन गन्दी बस्तियों में इस समय रहने वाले व्यक्तियों के जीवन में और गन्दी बस्तियों की सामान्य अवस्थाओं में परिवर्तन लाने की किसी भावी योजना में उस शोध से प्राप्त उपयोगी सिद्ध होगा, तो उसे क्रियात्मक शोध कहेंगे। इसी प्रकार देश की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली व संगठन में अमूल परिवर्तन लाने के लिए कोठारी कमीशन (Kothari Commission) कि नियुक्ति की गई थी, उसने देश की शिक्षा-प्रणाली के प्रत्येक पक्ष से सम्बद्ध इतने निर्भरयोग्य प्रमाणों व तथ्यों को एकत्रित कर आवश्यक सुधार व परिवर्तन लाने के सम्बन्ध में व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत किया कि उस कमीशन की रिपोर्ट भी क्रियात्मक शोध का एक उज्जवल उदाहरण बन गई है। अपनी रिपोर्ट को पेश करने से पूर्व इस कमीशन ने जिसमें स्वदेश तथा विदेश के प्रख्यात विशेषज्ञ सम्मिलित थे, सारे देश दौरा किया, हर जगह शिक्षा-प्रणाली की वास्तविक क्रियाशीलता को देखा, निरीक्षण के द्वारा तथ्यों को एकत्रित किया, सम्बद्ध शिक्षकों, प्रधानाचार्यों, उपकुलपतियों, कुलपतियों, शिक्षा संघ के प्रतिनिधियों तथा अन्य क्रियात्मक एजेन्सियों से साक्षात्कार किया; उनके लिखित व मौखिक विचारों, माँगों तथा सुझावों का विश्लेषण किया और अन्य देशों में प्रचलित शिक्षा-प्रणालियो का भी अध्ययन किया। इसके पश्चात् फिर कहीं समस्त वास्तविक तथ्यों के आधार पर वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के वास्तविक स्वरूप का चित्रण किया, उसमे घर किए हुए गम्भीर दोषो का विश्लेषणात्मक विवरण कारण सहित प्रस्तुत किया और उन्हें दूर करने तथा शिक्षा-व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन लाने के लिए व्यावहारिक सुझावों को प्रस्तुत किया। इस सब का उद्देश्य यही था कि कमीशन के निष्कर्ष तथा सुझाव इस देश की शिक्षा-प्रणाली की वर्तमान अवस्था में परितर्वन लाने के लिए बनने वाली किसी भावी योजना का अंग बन सकें। वास्तव में यही हुआ है। यद्यपि कोठारी कमीशन क्रियात्मक शोध को कोई वास्तविक उदाहरण नहीं है, फिर भी इसके कार्यक्रमों से क्रियात्मक शोध की प्रकृति स्पष्ट होती है।

क्रियात्मक शोध में शोधकर्त्ता को प्रारम्भ से ही कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना पड़ता है। ये इस प्रकार है-

(अ) **अध्ययन के समय घटना या समस्या के वास्तविक क्रिया पक्ष पर ध्यानः** इसका तात्पर्य यह है कि जिस घटना का अध्ययन शोधकर्ता कर रहा है उसमें अन्तर्निहित मानवीय क्रियाओं, उनके कारणों आधारों व नियमों के प्रति वह अत्यधिक सचेत रहता है। यदि वह प्रजातीय पक्षपात का अध्ययन कर रहा है तो वह यह जानने का प्रयत्न करेगा कि श्वेत प्रजाति के लोग श्याम प्रजाति के सदस्यों के प्रति कैसा व्यवहार करते हैं और उनके उन व्यवहारों का क्या कारण व आधार है। साथ ही, शोधकर्त्ता उस समस्या से सम्बद्ध क्रियात्मक एजेन्सियों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा। समस्या के चुनाव के सम्बन्ध में, उस समस्या के सम्बद्ध प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करने के समबन्ध में, उस घटना की वास्तविक क्रियाशीलता को मालूम करने में, यहाँ तक कि तथ्यों के संकलन में भी क्रियात्मक एजेन्सियों का प्रयोग अत्यधिक लाभप्रद सिद्ध होता है।

(ब) **समस्या या घटना के सम्बन्ध में ज्ञानः** इसका तात्पर्य यह है कि क्रियात्मक शोध में शोधकर्त्ता के लिए यह आवश्यक है कि उसे समस्या या घटना के सम्बन्ध मे कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य ही हो। यदि ऐसा हुआ तो उस घटना या समस्या में अन्तर्निहित किसी भी क्रियात्मक पक्ष का यथार्थ अनुसन्धान उसके लिए सम्भव न होगा। अतः

इस प्रकार के शोधकार्य मे शोधकर्त्ता सम्पूर्ण घटना या समस्या को तथा उसमे भाग लेने वाले व्यक्तियों या मानव-समुहों के व्यवहार-प्रतिमान को समझने का प्रयत्न करता है।

(स) **सहयोग की प्राप्तिः** इसका तात्पर्य यह है कि शोधकर्त्ता को निरन्तर इस बात का प्रयत्न करना पड़ता है कि उसे अपने कार्य में कम से कम विरोध का सामना करना पड़े। क्रियात्मक शोध का प्राथमिक उद्देश्य, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, विद्यमान अवस्थाओं में परिवर्तन लाना होता है। हो सकता है कि उस समाज या समूह में इस प्रकार के कुछ लोग या स्वार्थ-समूह हों जो कि इस परिवर्तन के पक्ष में न हों; क्योंकि परिवर्तन होने से उनके स्वार्थ को ठेस पहुँचेगी। इस कारण वे परिवर्तन का विरोध कर सकते हैं जिससे कि शोधकार्य मे बाधा उत्पन्न हो सकती है। अतः शोधकर्त्ता को इस प्रकार की परिस्थितियों को उत्पन्न करना होता है जिससे कि विरोध की सम्भावनाएँ न्यूनतम हों।

(द) **रिपोर्ट को आरम्भ में ही अन्तिम रूप न देनाः** इसका तात्पर्य यह है कि क्रियात्मक शोध की रिपोर्ट को एकदम अन्तिम रूप देकर प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। पहले एक अन्तरिम रिपोट (Interim Report) प्रस्तुत करनी चाहिए जिससे कि उससे प्रभावित होने वाले व्यक्तियों अथवा समूहों की प्रतिक्रियाओं को जाना जा सके। उन प्रतिक्रियाओं के आधार पर अन्तिम रिपोर्ट में आवश्यक सुधार करने की गुंजाइश सदैव रहनी चाहिए। तभी वह अन्तिम रिपोर्ट वास्तव में उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

अतः सामाजिक अनुसन्धान वर्तमान समय में बदलती हुई परिस्थितयों व बदली हुई जन समस्यओं जैसे – गरीबी, बेकारी आदि के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है और इसके द्वारा हो इन सामाजिक समस्याओं का हल हो सकता है। इसलिए सामाजिक अनुसंधान पर सरकार व प्रशासन के ध्यानाकर्षण की जरूरत है। जिससे मानव जीवन को सरल बनाया जा सकता है।

अध्याय - 3
सामाजिक अनुसन्धान में वस्तुनिष्ठता
(Objectivity in Social Research)

यथार्थता किसी भी विज्ञान की प्रारम्भिक आवश्यकता है, और केवल आवश्यकता ही नहीं, अपितु परम उद्देश्य भी है। इस उद्देश्य की प्राप्ति तब तक सम्भव नहीं है जब तक हम तथ्यों को ठीक उसी रूप में खोज न निकलें तथा उनका विश्लेषण न करें जिस रूप में वे वास्तव में हैं। वास्तविक रूप में एक घटना-विशेष का अध्ययन करना वस्तुनिष्ठ अध्ययन कहलाता है। इसके विपरीत, व्यक्तिनिष्ठ या वैषयिक अध्ययन का तात्पर्य उस अध्ययन से है जिसमें अनुसंधान कर्ता के मनोभावों या विचारों की प्रधानता होती है, जबकि वस्तुनिष्ठ अध्ययन में तथ्य प्रधान होता है। व्यक्तिनिष्ठ अध्ययन वर्णनात्मक तथा वस्तुनिष्ठ अध्ययन विश्लेषणात्मक होता है। व्यक्तिनिष्ठ अध्ययन के निष्कर्ष अनुसंधानकर्ता के अपने मस्तिष्क उपज होते हैं, जबकि वस्तुनिष्ठ अनुसंधान वास्तविक तथ्यों के वास्तविक अवलोकन, परीक्षण व विश्लेषण पर आधारित होता है। प्रथम में व्यक्ति बोलता है तथा सत्य पर पर्दा डालने की कोशिश करता है, परन्तु दुसरे में स्वयं तथ्य बोलता है और सत्य की खोज करता है। इसलिए विज्ञान, जो कि सत्य की खोज का एक साधन है, वस्तुनिष्ठ अध्ययन को ही अपना आधार मानता है और वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के प्रति सदैव सचेत रहता है। परन्तु यह कार्य इतना सरल नहीं है क्योंकि व्यक्ति सामाजिक घटनाओं का अपनी इन्द्रियों द्वारा निरीक्षण तथा परीक्षण करता है और विभिन्न सामाजिक घटनाओं व परिस्थितियों के प्रति इन इन्द्रियों का प्रत्युत्तर प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान नहीं होता है। जैसे हम लोकप्रशासन की परिभाषा को ही लेते हैं तो विभिन्न विचारक या सामाजिक वैज्ञानिक इसको अपने-अपने ढंग से परिभाषित करते हैं। कुछ विचारक तो इसका सम्बन्ध केवल कार्यपालिका से बताते है, जहां पर सरकार का कार्य मुख्य रूप से होता है, कुछ इसका सम्बन्ध सरकार के तीनों सतम्भों से बताते हैं जैसे कार्यपालिका, विधानपालिका तथा न्यायपालिका और कुछ इसको लोक नीति को पूर्ण करने अथवा क्रियान्वित करने के साधन के रूप में परिभाषित करते हैं। इस प्रकार की विविधता के कारणों को लुण्डबर्ग (Lundberg) ने इस प्रकार उल्लेखित किया है।

1. किसी भी घटना को प्रत्यक्ष करने की शक्ति बहुत-कुछ प्रशिक्षण तथा अन्य शारीरिक व मानिसक अवस्थाओं पर निर्भर करती है और ये सभी प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न होती हैं।
2. किसी भी घटना के प्रति हमारा प्रत्युत्तर भौतिक तथा पर्यावरण-सम्बन्धी (Environmental) अवस्थाओं – जैसे थकान, आयु, तापक्रम आदि द्वारा प्रभावित होता है।
3. किसी घटना विशेष को हम किस रूप में ग्रहण करेंगे और किस प्रकार उसका विश्लेषण करेंगे यह हमारे पिछले अनुभवों पर निर्भर करता है। कहा जाता है कि 'मनुष्य अपने भूतकाल की आँखों से निरीक्षण करता है।' भूतकाल की ये आँखें या पिछले अनुभव प्रत्येक व्यक्ति

के एक नहीं होते। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति किसी घटना को न तो वस्तुनिष्ठ रूप में और न ही समान रूप में देख पाता है। सामाजिक अनुसन्धानों में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति इसी कारण कठिन होती है और इसी कठिनाई में तथ्यों के खोज की समस्याएँ निहित हैं। पर इस सम्बन्ध में और कुछ विवेचना करने से पूर्व वस्तुनिष्ठता के अर्थ को समझ लेना उचित होगा।

वस्तुनिष्ठता का अर्थ तथा परिभाषा
(Meaning and Definition of Objectivity)

'वास्तव में जैसा है' विशेष का अध्ययन करना वस्तुनिष्ठ अध्ययन कहलाता है। तटस्थ और पक्षपात रहित निरीक्षण द्वारा तथ्यों का उनके वास्तविक रूप में संकलन और विश्लेषण ही वस्तुनिष्ठता है। वस्तुनिष्ठ अध्ययन विश्लेषणात्मक होता है। वस्तुनिष्ठ अध्ययन वास्तविक तथ्यों के वास्तविक अवलोकन, परीक्षण और विश्लेषण पर आधारित होता है। अपने स्वयं की भावना, विचार, उचित-अनुचित के आदर्श, विश्वास, आशा और आकांक्षाओं के रंग में न रंगकर किसी भी तथ्य या घटना को 'जैसा वह है' उसी रूप में देखना और विवेचना करना वस्तुनिष्ठता अथवा वैषयिकता है। घटना या तथ्य का यह वास्तविक रूप बुरा हो सकता है, कटु हो सकता है, अनुसन्धानकर्ता के अपने आदर्शों तथा मूल्यों के विपरीत हो सकता है, फिर भी उस घटना को यदि वह उसके मूल रूप में देखता है और समझता है तो वह वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करने में सफल होता है। वस्तुनिष्ठ द ष्टिकोण रखनेवाला अनुसन्धान्कर्ता केवल सत्य को ही देखता है। विभिन्न सामाजिक वैज्ञानिकों ने वस्तुनिष्ठता को भिन्न-भिन्न रूप से परिभाषित किया है, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

लावल कार (Lowell Carr) के अनुसार, "सत्य की वस्तुनिष्ठता का अर्थ यह है कि घटनामय संसार के किसी व्यक्ति के विश्वासों, आशाओं अथवा भय से स्वतंत्र एक वास्तविकता है जिसको हम अंतर्द ष्टि और कल्पना से नहीं, बल्कि वास्तविक अवलोकन के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।"

ग्रीन (Green) के अनुसार, "वस्तुनिष्ठता प्रमाण की निष्पक्षकता से परीक्षण करने की इच्छा एवं योग्यता है।"

फेयरचाइल्ड (Fairchild) के अनुसार, "वस्तुनिष्ठता या वैषयिकता का अर्थ उस योग्यता से है जिसमें एक अनुसंधानकर्त्ता स्वयं को उन परिस्थितियों से अलग रख सके जिसमें वह सम्मिलित है और द्वेष व उद्वेग के स्थान पर निष्पक्ष प्रमाणों या तर्क के आधार पर तथ्यों को उनकी स्वाभाविक प ष्ठभूमि में देख सके।"

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि वस्तुनिष्ठता वैज्ञानिक अनुसन्धान की वह स्थिति है जिसमें संसार की विभिन्न घटनाओं या तथ्यों की वास्तविकता प्रकट होती है और हमारे लिए सत्य का ज्ञन सम्भव होता है। घटनामय संसार की वास्तविकता सत्य की खोज की कुंजी है और वस्तुनिष्ठता उसी कुंजी से समस्त रहस्यों का रहस्योद्‌घाटन करने का एक साधान है। इस प्रकार वैषयिकता वैज्ञानिक अनुसन्धान की आधारशिला है। अतः इसके विषय में विस्त त विवेचना की आवश्यकता है।

सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता का महत्त्व
(Importance of Objectivity in Social Research)

सामाजिक अनुसन्धान और वस्तुनिष्ठता का संबंध बड़ा गहरा है। वस्तुनिष्ठता के बिना अनुसन्धान

को वैज्ञानिक रूप नहीं दिया जा सकता। उदाहरण के लिए यदि किसी घटना विशेष का अध्ययन किया जाये, तो वस्तुनिष्ठता के अभाव में विभिन्न व्यक्ति उससे विभिन्न प्रकार के परिणाम निकालेंगे। ऐसी स्थिति में अनुसंधानकर्त्ता के पक्षपात के कारण वास्तविक तथ्यों पर प्रकाश नहीं पड़ता। अतः किसी एक घटना या समस्या के अध्ययन को वैज्ञानिक रूप देने के लिए उसमें वस्तुनिष्ठता का होना आवश्यक है। यदि सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता है तो विभिन्न शोधकर्त्ताओं को किसी एक घटना के अध्ययन से एक की प्रकार के निष्कर्ष प्राप्त होंगे। सामाजिक अनुसन्धान में वस्तुनिष्ठता के महत्त्व को निम्न तथ्यों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

1. **उचित रूप से प्रतिनिधित्व करने वाले तथ्यों की प्राप्ति के लिए (To Get an Adequate Representative Facts):** अध्ययन इस प्रकार का होना चाहिए जिससे कि अध्ययन-वस्तु सभी पक्षों का समुचित स्पष्टीकरण हो। यह तब तक सम्भव नहीं जब तक कि अध्ययन में इस प्रकार के तथ्यों का संकलन नहीं किया जाता जोकि एक सामाजिक घटना के विभिन्न पक्षों का उचित प्रतिनिधित्व कर सकें और उस घटना से सम्बद्ध विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में एक संतुलित ज्ञान प्राप्त कर सके और यह तभी सम्भव है जब वस्तुनिष्ठ द ष्टिकोण को अपनाया जाए।

2. **सत्यापन के लिए (For verification):** अध्ययन में वस्तुनिष्ठता है यह इस बात पर निर्भर करता है कि हमारा अध्ययन हमारे अपने विचारों, भावनाओं का कल्पनाओं द्वारा प्रभावित नहीं बल्कि वास्तविक तथ्यों पर आधारित है। वही सामाजिक अनुसन्धान विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है जिसकी कि हम कभी भी पुनः परीक्षा अथवा सत्यापन कर सकें। सत्यापन या पुनः परीक्षा का तत्व वैज्ञानिकता की एक आवश्यक शर्त है और इस शर्त की पूर्ति वस्तुनिष्ठ द ष्टिकोण को अपनाए बिना सम्भव नहीं है। हमारा अध्ययन किस सीमा तक पुनः परीक्षा या सत्यापन के योग्य है। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि किस सीमा तक वस्तुनिष्ठता को प्राप्त कर लिया गया है।

3. **नए अनुसन्धानों की सम्भावनाओं को विकसित करने के लिए (To Explore Possibilities of New Investigations):** वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के दौरान हम एक घटना से सम्बन्धित अनेक नई समस्याओं को समझते हैं और उनके विषय में अध्ययन करने की प्रव त्ति हमारे अन्दर पैदा होती है। वास्तविकता यह है कि वस्तुनिष्ठता केवल एक सत्य को ही नहीं ढूंढ़ निकालती, बल्कि अन्य अनेक सम्भावित सत्यों की ओर संकेत भी करती है जिनके विषय में अनुसन्धान करने की इच्छा अन्य अनुसन्धानकर्त्ताओं में पैदा हो सकती है।

4. **समाजिक-विज्ञान को वैज्ञानिक स्थिति प्रदान करने के लिए (To attribute scientific status of Sociology):** समाजिक-विज्ञान को यथार्थ विज्ञान न मानने वाले यह तर्क पेश करते हैं कि समाजिक-विज्ञान में वैषोयिक अध्ययन नहीं होता है क्योंकि अनुसन्धानकर्ता अपना द ष्टिकोण, सत्यता की खोज में सट्टेबाजी, पक्षपात, विशिष्ट आदर्श को प्रस्थापित करने की अभिलाषा रखता है और ऐसा होने से इस धारणा को पनपने में सहायक हुआ है कि सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने वाला विज्ञान 'समाजिक-विज्ञान' वैज्ञानिक स्थिति को प्राप्त नहीं कर सकता। समाजशास्त्र को इस आरोप से बचाने के लिए सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति बहुत आवश्यक है। यह प्रमाणित हो चुका है कि सामाजिक घटनाओं का भी वस्तुनिष्ठ अध्ययन सम्भव है। आज जरूरत इस बात की है कि सामाजिक अनुसन्धान में पक्षपातपूर्ण द ष्टिकोण, कल्पना तथा पूर्वधारणा से अपने

को विमुक्त रखते हुए सामाजिक घटनाओं की वास्तविकताओं को जानने को लगातार प्रयत्न करें। समाजिक-विज्ञान को वैज्ञानिक स्थिति प्रदान करने का और कोई विकल्प नहीं। इसीलिए इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वस्तुनिष्ठता जरूरी है।

5. **वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग के लिए** (For use of Scientific Method): सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति का अपनाया जाना अध्ययन की यथार्थता के लिए पहली शर्त है। कोई भी अध्ययन कार्य ठीक होगा या गलत यह इस बात पर निर्भर करेगा कि अध्ययनकर्ता वैज्ञानिक पद्धति का ठीक ढंग से प्रयोग कर रहा है या नहीं। परन्तु वैज्ञानिक पद्धति का समुचित प्रयोग तब तक नहीं हो सकता जब तक कि उसमें वस्तुनिष्ठता का अभाव हो। इसीलिए वैज्ञानिक पद्धति की पहली शर्त वस्तुनिष्ठता है और इसकी प्राप्ति वस्तुनिष्ठ पद्धति द्वारा ही सम्भव है। इसलिए यदि हमारा उद्देश्य समाजशास्त्र में वैज्ञानिक पद्धति का सफल प्रयोग है तो अपने अध्ययन में वस्तुनिष्ठता लाने का हमें प्रयत्न करना होगा।

6. **सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में वास्तविक ज्ञान की व द्धि के लिए** (For Advancement of Knowledge About Social Phenomena): वस्तुनिष्ठता वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति की आधारशिला है। इस आधारशिला के बिना हमारे वर्तमान ज्ञान-भण्डार की सम द्धि असम्भव है। यदि वस्तुनिष्ठ द ष्टिकोण से सामाजिक घटनाओं का अध्ययन किया जाए तो उन घटनाओं के सम्बन्ध में हमारे वास्तविक ज्ञान की व द्धि होती जाएगी। कोई भी समाजशास्त्री यदि अज्ञानता के अन्धकार को दूर करना चाहता है तो उसे वैषयिक द ष्टिकोण अपनाना होगा।

7. **निष्पक्ष निष्कर्षों की प्राप्ति के लिए** (To Achieve Unprejudiced Conclusions): सामाजिक अनुसन्धान में वस्तुनिष्ठता का महत्त्व यह है कि इसके बिना निष्पक्ष निष्कर्षों तक पहुँचना अनुसन्धानकर्ता के लिए सम्भव नहीं होगा। वस्तुनिष्ठता का अर्थ ही है पक्षपात रहित होकर घटनाओं की वास्तविकताओं को ढूंढ़ निकालना। इसीलिए अनुसन्धानकर्ता के लिए निर्भर योग्य निष्कर्षों तक पहुँचने के लिए तब तक सम्भव नहीं जब तक उसमें वस्तुनिष्ठ अध्ययन करने की क्षमता न हो। वस्तुनिष्ठ अध्ययन द्वारा ही अध्ययनकर्ता के लिए यह सम्भव होता है कि वह अपने व्यक्तिगत पक्षपातों, मूल्यों तथा आदर्शों आदि से स्वतन्त्र रहते हुए किसी सामाजिक घटना के सम्बन्ध में निर्णय योग्य निष्कर्षों को निकाल सके।

वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करने में कठिनाइयां
(Difficulties in Obtaining Objectivity)

सामाजिक अनुसन्धान में वस्तुनिष्ठता का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। किंतु इसे प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयां हैं। इन कठिनादयों का उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है :

1. **भावात्मक प्रभाव** (Emotional Effect): सामाजिक अनुसन्धान में, जिन सामाजिक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है, वह भावात्मक प्रभाव से परिपूर्ण होती हैं। भौतिक विज्ञानों की भांति सामाजिक विज्ञानों में अनुसन्धानकर्त्ता अपने को घटना के प्रभाव से वंचित नहीं कर सकता। भौतिक विज्ञानों की विषय-वस्तु, भौतिक पदार्थ है। इन पदार्थों का अध्ययन, अनुसन्धानकर्त्ता के ह्रदय में कोई प्रभाव उत्पन्न नहीं करता। लेकिन सामाजिक अनुसन्धान में, मनुष्य की संस्कृति, सभ्यता, व्यवहार अथवा प्रव त्ति का अध्ययन किया जाता है, जिससे

शीर्घ ही अनुसंधानकर्त्ता इनसे प्रभावित हो जाता है। इसके फलस्वरूप पर पक्षपातपूर्ण स्थिति पैदा हो जाती है। अनुसन्धानकर्त्ता इस प्रकार अपने निष्कर्ष को तटस्थ नहीं कर पाता।

2. **विषय-वस्तु की जटिलता (Complexity of Subject Matter):** सामाजिक अनुसन्धान में, वैयक्तिकता प्राप्त करने में द्वितीय कठिनाई अध्ययन की विषय वस्तु के कारण पैदा होती है। सामाजिक जीवन अत्यंत जटिल और उलझा हुआ है। सामाजिक जीवन के अधिकांश तत्त्व अस्थायी हैं। उनमें सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ अंतर उत्पन्न होता है।

3. **एकरूपता का अभाव (Lack of Uniformity):** सामाजिक समस्याओं के बारे में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इनमें एकरूपता का नितांत अभाव है। एक प्रकार की समस्या का स्वरूप, विभिन्न काल में अलग-अलग होता है। भौतिक विज्ञानों के अंतर्गत समस्या का स्वरूप प्रत्येक काल में समान होता है। लेकिन सामाजिक समस्याओं की प्रकृति बदलती रहती है। उनमें एकरूपता स्थिर नहीं रहती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों की भौगोलिक परिस्थितियों की भिन्नता एकरूपता को उत्पन्न नहीं होने देती।

4. **नैतिक प्रभाव (Moral Effects):** अनुसन्धानकर्त्ता के नैतिक आदर्शों का प्रभाव भी वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में कठिनाई पैदा करता है। लुंडबर्ग का मत है कि सामाजिक अनुसंधान में अशुद्धता उत्पन्न होने का एक सामान्य कारण अनुसन्धानकर्त्ता का नैतिक पक्षपात है। अनुसन्धानकर्त्ता तथ्यों के संकलन और विवेचन करने में नैतिक आदर्शों का भी ध्यान रखता है। इनका प्रभाव मनुष्य के हृदय में इतना द ढ़ होता है कि वह प्रायः इनके विपरीत किसी भी निष्ठता को स्वीकार नहीं करता। विज्ञान तभी तक शुद्ध है, जब तक कि वह शोधकर्त्ता के नैतिक प्रभाव से दूर हो। लेकिन अनुसन्धानकर्त्ता का नैतिक प्रभाव, परिणाम को प्रभावित करता है तो इससे अशुद्धता पैदा हो जाती है। इसलिए अनुसन्धानकर्त्ता का नैतिक प्रभाव वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में कठिनाई पैदा करता है।

5. **मौलिक तथ्यों पर प्रभाव (Effects on Fundamental Facts):** अनुसन्धानकर्त्ता का लक्ष्य निहित घटनाओं में मौलिक तथ्यों का वर्णन करता है। यह मौलिक तथ्य अपने सजातीय तथ्यों का प्रतिनिधि होता है। अगर ऐसा नहीं होगा तो अनुसन्धान सार्वभौमिक सत्य का आधार नहीं बन सकता। यदि वह अपनी ओर से अध्ययन में थोड़ा-सा भी अपना निर्णय जोड़ता है। तो तथ्यों की मौलिकता समाप्त हो जाती है। इसलिए तथ्यों को वास्तविक दशाओं में दर्शाने के लिए वस्तुनिष्ठता की अत्यंत आवश्यकता है।

6. **निष्पक्ष निष्कर्ष की प्राप्ति (For Unprejudiced Conclusion):** अनुसन्धानकर्त्ता को अपने अध्ययन के पश्चात् ऐसे निष्कर्षों को वस्तुतः करना चाहिए जो वास्तविकता तथा प्रमाणिकता पर आधारित हों। जनसाधारण इन निष्कर्षों को तभी स्वीकार कर सकता है जब यह पक्षपात और स्वार्थपरता से रहित होंगे। अतः अनुसन्धानकर्त्ता को पूरी तरह तटस्थ रहना चाहिए।

7. **सामान्य ज्ञान द्वारा उत्पन्न भ्रम (Misunderstanding caused by General Knowledge):** सामाजिक अनुसन्धान में प्रायः हम अपने सामान्य ज्ञान के आधार पर किसी घटना या समस्या के संबंध में अपना निर्णय निश्चित करते हैं। जो सिद्धांत हमारे सामान्य ज्ञान की कसौटी पर खरे नहीं उतरते उन्हें हम गलत मान लेते हैं। इसके विपरीत, अनेक गलत सिद्धांत जो हमारे सामान्य ज्ञान से मेल खाते हैं, उन्हें हम सही मान लेते हैं। इस प्रकार भ्रम के फलस्वरूप अनेक गलत सिद्धांतों को सही मान लिया जाता है और अनेक सही सिद्धांतों को गलत मान लिया जाता है।

8. **विषय-वस्तु का गुणात्मक रूप** (Qualitative Nature of Subject Matter): वस्तुनिष्ठता प्राप्ति की कठिनाई वस्तु के गुणात्मक रूप के कारण उत्पन्न होती है। गुणात्मक रूप का तात्पर्य अमूर्त से है, जिसे देख नहीं सकते, केवल अनुभव कर सकते हैं। सामाजिक विश्वास, मान्यताएं व धारणाओं आदि का रूप गुणात्मक होता है। अतएव उनके अध्ययन में भौतिक विज्ञानों की भांति निश्चित मापदंडों को प्रयोग करना कठिन है।

9. **अनुसंधानकर्त्ता का स्वार्थ** (Self-interest of Researcher): पी. वी. यंग का मत है कि सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने की एक प्रमुख कठिनाई का कारण अनुसंधानकर्त्ता क निजी स्वार्थ भी है। कभी-कभी अनुसंधान के परिणाम में अनुंसंधानकर्त्ता का निजी स्वार्थ निहित होता है। अतएव यह उन्हीं तथ्यों को खोजता है, जो उसके स्वार्थ का पूर्ति में सहायक सिद्ध हों। ऐसे अवसर पर वह स्वीकृत सिद्धांतों का अस्वीकार कर उस सिद्धांत को अपनाता है जोकि उसके विचारों के अनुकूल हों।

10. **सामाजिक दर्शन का प्रभाव** (Effect of Scoial Philosophy): भौतिक विज्ञानों में अनुसंधानकर्त्ता का संबंध जड़ और अचेतन वस्तुओं से है। लेकिन सामाजिक अनुसंधान में मानव समाज का अध्ययन किया जाता है। अतः समाज का वर्तमान दर्शन भी अनुसंधानकर्त्ता को प्रभावित करता है। इस कारण वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में बाधा पैदा होती है। इसके अतिरिक्त अनुसंधानकर्त्ता स्वयं भी उसी समाज का एक सदस्य होता है जिसे वह अध्ययन के लिए खोलता है। उसके अंदर भी मानव स्वभाव की कमियों का होना स्वाभाविक है। उसके विचार, संस्कार, धारणायें इत्यादि समाज के पर्यावरण द्वारा पहले से निश्चित रहती हैं। वह अपने पूर्व विचार, संस्कार व धारणाओं के अनुकूल, अनुसंधान के परिणामों के टालने के प्रयत्न करता है जिससे अनुसंधानकर्त्ता की तटस्थता समाप्त हो जाती है और वह अपने अनुसधान में वस्तुनिष्ठता का निर्वाह नहीं कर पाता है।

11. **अनुसंधान की शीघ्रता** (Research Conducted Hurriedly): अनेक अवसरों पर अनुसंधान कार्य बड़ी शीघ्रता से संपन्न किया जाता है। इस शीघ्रता के कारण अनुसंधानकर्त्ता के अंदर प्रायः किसी भी निष्कर्ष को मान लेने की प्रव त्ति होती है। इसी कारण सही परिणाम प्राप्त करना कठिन होता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक अनुसंधान की विषय-वस्तु इतनी जटिल होती है जिसके लिए दीर्घकालीन अध्ययन और धैर्य भी आवश्यक होता है। किंतु अनुसंधान कार्य की शीघ्रता के फलस्वरूप पूर्णतया सही निष्कर्ष प्राप्त नहीं होते हैं। केवल आंशिक रूप से सत्य परिणामों को ही पूर्णरूपेण सत्य मान लिया जाता है। अतः शीघ्र संपन्न किये गये अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता का निर्वाह नहीं होता है।

वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने के साधन
(Means for Achieving Objectivity)

यह सच है कि सामाजिक घटनाओं का वस्तुनिष्ठ अध्ययन करने के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ हैं। पर इसका तात्पर्य कदापि यह नहीं है कि सामाजिक घटनाओं के अनुसन्धान वस्तुनिष्ठता से रहित होते हैं और उनमें यथार्थ निष्कर्ष की सम्भावनाएँ बिलकुल ही नहीं होती हैं। वास्तविक परिस्थिति इससे कुछ विपरीत ही है। वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति सामाजिक अनुसन्धान के क्षेत्र में कठिन हो सकती है, पर कभी भी असम्भव नहीं। अपने अनुभवों तथा अन्वेषणों के आधार पर समाजशास्त्रियों ने उन अनेक साधनों का पता लगा लिया है जिनके द्वारा सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में भी वस्तुनिष्ठता प्राप्त की जा सकती है। कहा जाता है कि वस्तुनिष्ठ रहने की

इच्छा और वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहना इस दिशा में महत्त्वपूर्ण है। तटस्थ रहने की इच्छा का सम्बन्ध स्वयं अनुसन्धानकर्त्ता से है और उसकी अभिव्यक्ति इस रूप में होती है कि अनुसन्धानकर्त्ता स्वयं वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के लिए सचेत रहता है और उसके लिए समस्त व्यक्तिगत राग-द्वेष, विचार, मूल्य, पक्षपात, मिथ्या-झुकाव आदि से हर पग पर बचता है। दूसरी और वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने का प्रयत्न इस बात का द्योतक है कि अनुसन्धानकर्त्ता ऐसी विधियों को अपनाता है, ऐसे तथ्यों को संकलित करने का प्रयत्न करता है कि उसका अध्ययन अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ हो सके। इन इच्छाओं तथा प्रयत्नों को ही उन साधनों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है जो कि सामाजिक अनुसन्धान में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। ये साधन निम्नलिखित हैं :

1. **प्रयोगसिद्ध विधियां (Empirical Methods):** प्रत्यक्ष प्रयोगसिद्ध अध्ययन-पद्धतियां वे विधियां हैं जिनके द्वारा अनुसंधानकर्त्ता या अध्ययनकर्त्ता को स्वयं क्षेत्र में जाकर सूचना संकलित करनी पड़ती है। केवल पुस्तकों के आधार पर, मनगढंत अथवा सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास करके जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं वे व्यक्ति प्रधान (Subjective) होते हैं, वैषयिक नहीं। बाह्य साधनों के द्वारा जो सूचना या सामग्री मिलती है, वह हमारे विचारों के वीपरीत होते हुए भी सही है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति निरीक्षण परीक्षण करके बाह्य साधनों से वही सामग्री प्राप्त करेगा जिनके निष्कर्ष समान होंगे। व्यक्तिगत चिंतन-मनन कितना ही व्यवस्थित क्यों न हो, उसमें भ्रम तथा भ्रांतियों के समावेश की संभावना हो सकती है किंतु क्षेत्रीय साधनों से एकत्रित सूचना में व्यक्तिगत मान्यताओं का प्रभाव कम हो जाता है।

   ठोस, निश्चित और गणनात्मक विवरण वैषयिकता प्राप्त करने में पर्याप्त सहायक होता है। सामाजिक अनुसंधान में इन प्रत्यक्ष प्रयोगसिद्ध विधियों का प्रचलन बढ़ रहा है और इसमें अधिकाधिक वैषयिकता लाने का प्रयत्न किया जा रहा है। उदाहरण के लिए 'रहन-सहन का स्तर' (Standard of Living) एक सामान्य शब्द है जिसको माप का कोई विशेष साधन नहीं है, लेकिन प्रत्यक्ष प्रयोगसिद्ध पद्धतियों के आधार पर जीवनोपयोगी वस्तुओं और गुणों की निश्चित सूची बनाकर उनकी प्राप्ति तथा अभाव का प्रत्यक्ष अध्ययन करके किसी को भी व्यक्ति, परिवार, समूह या वर्ग का निश्चित 'रहन-सहन का स्तर' समझने का वर्णन करने में सुविधा हो गई है और इसमें अध्ययनकर्त्ता का निर्णय या मत कहीं अधिक बाधक नहीं वनता। मानवशास्त्री भी इन विधियों के प्रयोग से अपने अध्ययनों में वैषयिकता प्राप्त करने जा रहे हैं।

2. **परिभाषाओं और अवधारणाओं का प्रमापीकरण (Standardization of Terms and Concepts):** समाज-विज्ञान में पारिभाषिक शब्द तथा अवधारणाओं का विशेष अर्थ लगाया जाता है और यह विशेष अर्थ भी विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न रूप में लगाया है। इस प्रकार स्वयं विद्वानों के 'समाज' शब्द को मूर्त और अमूर्त रूपों में समझा और प्रयोग किया है। इस प्रकार सामाजिक विज्ञानों में कोई व्यक्ति किसी शब्द का मनमाना अर्थ लगा लेता है और जब एक ही तथ्य को प्रकट करने वाला निश्चित शब्द नहीं होता तो खोज के निष्कर्ष भी समान नहीं होते। इस द ष्टि से वैषयिकता होते हुए भी छिप जाती है। समाज विज्ञानों के अतिरिक्त प्राकृतिक विज्ञानों में प्रत्येक शब्द अपना विशिष्ट अर्थ रखता है जिसे प्रत्येक अनुसन्धानकर्त्ता उसी अर्थ में प्रयोग करता है। समाज-विज्ञानों में प्रयुक्त परिभाषाओं और अवधारणाओं का समान अर्थ न होने के कारण अनुसंधान या अध्ययन में एकरूपता नहीं रहती जो वैषयिकता का प्रधान आधार है। अतः अव प्रयत्न चल रहा है कि प्रत्येक परिभाषा

और शब्द निश्चित, प्रमाणित तथा प्रमाणित अर्थो में ही प्रयोग किया जाये ताकि सब लोग उसका समान अर्थ लगायें, तथा सामाजिक तथ्यों और इकाइयों को संख्यात्मक रूप में समझ सकें। ऐसा करने से अध्ययन में पर्याप्त वैषयिकता लाई जा सकती है।

3. **यांत्रिक साधनों का उपयोग (Use of Mechanical Devices):** अनुसंधान में जितना ही अधिक कार्ययंत्रों के आधार पर होगा, उतनी ही अधिक वैषयिकता उपलब्ध हो सकेगी। यद्यपि सामाजिक तथ्यों के अध्ययन की प्रत्येक प्रक्रिया में यंत्रों का उपयोग संभव नहीं हो पाता है, फिर भी मनोविज्ञान में इस प्रकार के यंत्रों का सफल प्रयोग हो रहा है। समाजशास्त्र में भी तथ्यों के संकलन में 'टेपरिकार्डर', फिल्म, मानचित्र, समाजमिति पैमाने, फोटो आदि के द्वारा वैषयिक सामग्री संकलित की जा रही है। विश्लेषण व विवेचन में गणना करने, सारणीयन (Tabulation) करने आदि की मशीनों का उपयोग सफलतापूर्वक होता जा रहा है। कुछ भी हो इन साधनों के अधिक प्रयोग द्वारा वैषयिकता लाने पर हर संभव प्रयत्न किया जा रहा है।

4. **प्रयोगात्मक विधियां (Experimental Method):** अध्ययन में पूर्ण वैषयिकता प्राप्त करने के लिए नियंत्रित परीक्षण (Controlled Experiment) अत्यंत उपयोगी व महत्त्वपूर्ण उपाय है। समाज-विज्ञानों में यद्यपि विषय-वस्तु को नियंत्रित करके उसका परीक्षण करना सरल नहीं है किंतु इस दिशा में सतत प्रयत्न किये जा रहे हैं। प्रयोगत्मक विधि में दो प्रकार के समूहों को चुन लिया जाता है। दोनों समूह सभी द ष्टियों से समान होते हैं। एक समूह को नियंत्रित कर दिया जाता है अर्थात् उसमें कोई परिवर्तन नहीं होने दिया जाता, दूसरे समूह को परीक्षाण के लिए स्वतंत्र कर दिया जाता है। यह स्वतंत्रता केवल विशेष कारक का प्रभाव मालूम करने के लिए की जाती है, अर्थात् परीक्षात्मक समूह में कोई कारक उत्पन्न करके उसका प्रभाव देखा जाता है। जैस एलटन मयो नें इस विधि का प्रयोग हाथाने प्रयोग में किया था। इस प्रकार प्रयोगत्मक प्रणाली अभिमति व पक्षपात को कम कर देती है किंतु सामाजिक अनुसंधान में अभी इसका प्रयोग अधिक विकसित नहीं हुआ है। आशा है कि भविष्य में इस दिशा में महत्त्वूर्ण उपलब्धियां प्राप्त होंगी।

5. **सामूहिक अनुसंधान का उपयोग (Use of Group Research):** सामूहिक अनुसंधान का तात्पर्य यह है कि किसी भी सामाजिक समस्या की खोज केवल एक व्यक्ति के द्वारा न होकर अधिक व्यक्तियों द्वारा की जानी चाहिए। एक ही प्रकार की पद्धति तथा प्रणालियों के द्वारा एक ही समस्या का अध्ययन जब कई अनुसंधानकर्त्ता करते हैं या फिर एक ही अनुसंधानकर्त्ता भिन्न-भिन्न प्रणालियों द्वारा एक ही समस्या का अध्ययन कर रहा होता है तो पक्षपात की संभावना बहुत कम हो जाती है। सामूहिक अनुसंधान या समूह अनुसंधान से प्राप्त प्रत्येक अध्ययनकर्त्ता के निष्कर्षों की तुलना की जाती है। तुलना करने पर यदि अंतर आता है तो इस अंतर के कारणों का पता लगाया जाता है। इसके अतिरिक्त, यदि एक ही अनुसंधानकर्त्ता विभिन्न पद्धतियों द्वारा प्राप्त निष्कर्षों में अंतर पाता है तो वह भी अंतर का कारण ज्ञात कर सकता है। सामूहिक अनुसंधान पद्धति वास्तव में कई व्यक्तियों द्वारा एक ही समस्या के अध्ययन के लिए अधिक उपयोग में लायी जाती है। विभिन्न अनुसंधानकर्त्ताओं के निष्कर्षों में अंतर दूर करने के लिए पुनः अधिक वैषयिक अध्ययन किय जाता है और इस प्रक्रिया में पूर्ण वैषयिकता प्राप्त की जा सकती है। इतना ही नहीं, अब प्रत्येक अनुसंधानकर्त्ता को यह ध्यान होता है कि अन्य लोग भी उसी समस्या का उसी पद्धति से अध्ययन कर रहे हैं तो स्वाभाविक रूप से वह प्रारंभ से

ही सावधानीपूर्वक तटस्थ द ष्टि से निरीक्षण-परीक्षण विवेचन व विश्लेषण करता है, ताकि तुलनात्मक अन्वेषण में उसके निष्कर्ष ठीक उतरें। इस विधि में भी एक प्रकार से 'सांख्यिकीय नियमितता का नियम' (Law of Statistical Regularity) काम कर रहा होता है। सच तो यह है कि यह पद्धति वैषयिकता प्राप्त करने की द ष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें अध्ययनकर्त्ता के दोष स्पष्ट हो जाते हैं और प्रत्येक दोष का निवारण भी हो जाता है। एक ही परीक्षण को जितनी बार दोहराया जाता है उतनी ही उसमें शुद्धता आती है। इस प्रकार सामूहिक अनुसंधान इस युग की मांग है और सामाजिक तथ्यों की जटिल प्रकृति का वैषयिक अध्ययन करने में अत्यधिक सहायक है। समाज-विज्ञानों में इसका प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

6. **दैव निदर्शन पद्धति का उपयोग (Use of Random Sampling Method):** वैषयिकता प्राप्ति में एक कठिनाई, "निदर्शन" चुनने के कारण भी होती है। वर्ग या समूह में से अध्ययन के लिए प्रतिनिधि इकाइयों के चुनाव के समय अध्ययनकर्ता की अभिमति, पक्षपात अथवा बाहरी कारकों का प्रभाव काम कर जाता है और सही प्रतिनिधित्व करने वाली इकाइयों या व्यक्तियों के स्थान पर ऐसी इकाइयों या व्यक्तियों को अध्ययन के लिये चुन लिया जाता है जो वास्तव में समूह का प्रतिनिधित्व नहीं करती, फलस्वरूप निष्कर्ष सत्यापन व परीक्षण के योग्य नहीं होते। इस समस्या या कठिनाई को दूर करने के लिए सैंपल चुनने के लिए 'दैव निदर्शन पद्धति' का प्रयोग किया जाता है। इस पद्धति के द्वारा प्रत्येक इकाई को प्रतिनिधि के रूप में चुने जाने की संभावना होती है और अनुसन्धानकर्त्ता या अध्ययनकर्त्ता की इच्छा उसके चुनाव को प्रभावित नहीं कर पाती है। दैव निदर्शन सांख्यिकीय नियमितता के नियम (Law of Statistical Regularity) पर आधारित है जिसके द्वारा कभी भी अनायास चुनाव करने पर हर प्रकार की इकाइयों को चुने जाने की समान संभावना रहती है। अतः दैव निदर्शन के उपयोग से वैषयिकता लाने में पर्याप्त सहायता मिलती जा रही है।

7. **प्रश्नावली और अनुसूची का उपयोग (Use of Questionnaire and Schedule):** सामाजिक घटना का अध्ययन केवल व्यक्तिगत अवलोकन अथवा सामान्य वार्तालाप तक सीमित रखकर कोई भी अनुसंधानकर्त्ता समान निष्कर्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। इस समस्या या कठिनाई को दूर करने में प्रश्नावलियां तथा अनुसूचियां विशेष तौर पर सहायक सिद्ध हुई हैं। अनुसूचियों में प्रमाणित व निश्चित प्रश्न होते हैं, जिनका निश्चित अर्थ होता है। अतः न तो प्रश्नों का अर्थ सूचनादाताओं द्वारा प थक-प थक लगाया जा सकता है और न ही अध्ययनकर्त्ता अपनी इच्छा से कोई कम या अधिक प्रश्न पूछ सकता है। निश्चित प्रश्न के निश्चित उत्तर होने से वैषयिकता के मार्ग में सफलता प्राप्त हो जाती है। किंतु सबसे बड़ी कठिनाई प्रश्नावली या अनुसूची के प्रमाणीकरण की है। प्रत्येक अध्ययनकर्त्ता अनुसूची व प्रश्नावली में प्रश्नों के निर्माण के समय उनके स्वरूप और भाषा में अंतरंग भावना का समावेश कर सकता है इसलिए यदि भिन्न-भिन्न प्रकार की अनुसूचियों व प्रश्नावलियों का प्रमापीकरण कर दिया जाये तो वह समस्या हल हो सकती है। लेकिन कठिनता यह है कि सामाजिक समस्याएं, घटनाएं तथा अध्ययन के उद्देश्य एक समान नहीं होते, अतः एक प्रमाणित प्रश्नावली या अनुसूची तैयार करना बड़ा कठिन कार्य है। इसका उपाय यह हो सकता है कि – प्रमुख समस्याओं को खंडों में विभाजित करके प्रत्येक खंड की प थक् विशेषताऐं या अनुसूची तैयार कर दी जाये और जिस खंड से अध्ययन संबंधित

हो, उसकी प्रमाणित प्रतिलिपि प्रयोग में लाई जाये। इस प्रमाणित प्रश्नावली या अनुसूची के साथ अध्ययन क्षेत्र की स्थानीय विशेषताओं से संबंधित प्रश्न अध्ययनकर्त्ता स्वयं जोड़ सकता है। इस प्रकार सामाजिक अनुसंधान में काफी सीमा एक वैषयिकता लायी जा सकती है।

8. **अंतर-अनुशासन अथवा सहकारी अनुसंधान (Inter Disciplinary or Co-operative Approach):** समाज एक जटिल पूर्णता है जिसमें प्रत्येक घटना को मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा अन्य कारक सम्मिलित रूप से प्रभावित करते हैं इसलिए केवल एक ही सामाजिक विज्ञान में निपुण व्यक्ति प्रत्येक द ष्टिकोण से सामाजिक समस्या का सर्वागीण अध्ययन नहीं कर सकता है। अतः ऐसी स्थिति में भिन्न-भिन्न सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा एक ही समस्या का अपने-अपने विशिष्ट द ष्टिकोणों से अध्ययन किया जाना चाहिए। इस प्रकार उस समस्या का यथार्थ, वास्तविक व बहुमुखी चित्र पूरे तौर पर सामने आ सकता है। इस सहकारी ढंग से किये गये अध्ययन को ही 'अंतर अनुशासन' अथवा 'सहकारी अनुसंधान' के नाम से जाना जाता है। मूल बात यह है कि सहकारी अनुसंधान में समाजशास्त्री, मानवशास्त्री, अर्थशास्त्री, राजनीतिशास्त्री, भूगोलशास्त्री, भूगर्भशास्त्री, इंजीनियर, प्रशासन आदि सभी विज्ञानों के विशेषज्ञों की सहायता ली जाती है। लीप्ले (Leplay) ने जो एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी अर्थशास्त्री थे इस पद्धति के द्वारा पारिवारिक स्तर का सफल अध्ययन किया, इस अध्ययन का उद्देश्य कारीगरों पर औद्योगीकरण का प्रभाव ज्ञात करना था। उन्होंने अपने अन्वेषण में अर्थशास्त्रियों, राजनीति-विशेषज्ञों आदि के अतिरिक्त इंजीनियरों से भी सहायता प्राप्त की इस पद्धति की मूल विशेषता यह है कि विषय का अध्ययन सभी द ष्टिकोणों से किया जाता है। विभिन्न शाखाओं के निष्कर्षों के दोष तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा आसानी से स्पष्ट हो जाते हैं और उनके निवारण का पर्याप्त व उचित अवसर भी मिल जाता है।

अंतर-अनुशासन पद्धति के विषय के क्षेत्र में यंग (P.V. Young) लिखते हैं, "सहकारी अनुसंधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह वर्तमान जीवन में जटिलतापूर्वक गुथे हुये सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक व्यक्तियों के जाल के अध्ययन एवं विश्लेषण को सरल बना देता है।

आज किसी भी घटना के एक कारक पर बल देने की गलती समाज वैज्ञानिक नहीं करते हैं। आज अपराध के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक आदि सभी कारकों की विवेचना की जाती हैं। ऐसा करने से ही हमारे अध्ययन में यथार्थता या वस्तुनिष्ठता पनप पाती है। ऐसा करना हमारे लिए तभी सम्भव होता है जबकि उस विषय पर विभिन्न विज्ञानों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों का प्रभावपूर्ण उपयोग करने में हम सफल होते हैं। इस प्रकार विभिन्न विज्ञानों के सहयोग पर आधारित अध्ययन या द ष्टिकोण को ही अन्तः वैज्ञानिक या सहयोगी अध्ययन कहते हैं। आज यह स्वीकार किया जाने लगा है कि अनुसन्धानकर्ता कार्य के दौरान विभिन्न विज्ञानों के बीच जितना सहयोग होगा अध्ययन के निष्कर्ष उतने ही अधिक वस्तुनिष्ठ होंगे।

UNIT-II

अध्याय - 4
अनुसन्धान अभिकल्प
(Research Design)

अनुसन्धान समस्या का चयन करने और फिर उसे परिभाषित करने के उपरान्त अनुसन्धानकर्ता के समक्ष जो सबसे प्रमुख कार्य होते है वह है अनुसन्धान करने के लिए एक अभिकल्प या प्रारूप तैयार करना जिसे हम 'अनुसन्धान अभिकल्प' के नाम से जानते हैं। जिस प्रकार किसी भी कार्य करने से पूर्व उसके बारे में विस्त त योजना तैयार की जाती है, जिस प्रकार एक मकान बनाने से पूर्व आर्किटैक्ट उस मकान का ढाँचा तैयार करता है, जिस प्रकार सेना कोई भी सैनिक कार्यवाही करने से पूर्व उस कार्यवाही के बारे में विस्त त रणनीति (Strategy) तैयार करती है ठीक उसी प्रकार अनुसन्धानकर्ता भी अध्ययन कार्य वास्तव में आरम्भ करने से पहले अनुसन्धान अभिकल्प तैयार करता है। यह अभिकल्प अनुसन्धानकर्ता को पूरे अध्ययन के विस्त त चित्रण से अवगत करवाता है तथा भविष्य में अध्ययन कार्य को वास्तव में लागू करते समय अध्ययन कार्य को मार्ग से हटने से बचाता है। इसके साथ ही अनुसन्धान अभिकल्प शोधकर्ता का समय, धन, श्रम आदि के अनावश्यक अपव्यय से भी बचाता है। शोध अभिकल्प तथ्यों के संकलन एवं विश्लेषण से सम्बंधित दशाओं को इस तरह आयोजित करता है कि वे कार्यविधि में बचत करती हुई शोध के प्रयोजन के साथ संगतिपूर्ण हो सके।

वास्तव में अनुसन्धान अभिकल्प या प्रारूप अध्ययन से सम्बन्धित एक अवधारणात्मक ढाँचा है जिसकी परिधि में रहकर अध्ययन कार्य पूरा किया जाता है तथा जिसके अर्न्तगत आँकडों का संकलन उनके मापने की विधियाँ और उनके विश्लेषण को सम्मिलित किया जाता है।

अनुसन्धान अभिकल्प : अर्थ एवं परिभाषा

अन्वेषण कार्य प्रारम्भ करने से पहले अनुसन्धान अन्वेषण या अध्ययन के सम्बन्ध में जो कार्ययोजना तैयार करता है उसे अनुसन्धान अभिकल्प या प्रारूप कहते हैं। अनुसन्धान अभिकल्प अन्वेषण कार्य के सम्बन्ध में कुछ आधारभूत प्रश्नों जैसे क्या, कब, कैसे, कहाँ, कितने संसाधनों द्वारा आदि के निर्णय या उत्तर प्रदान करता है। अनुसन्धान अभिकल्प या निर्णयन-प्रक्रिया है, जिनमें अन्वेषण सम्बन्धी निर्णय अध्ययन सम्बन्धी उन परिस्थितियों से पूर्व लिए जाते हैं जिनमें ये निर्णय कार्यरूप में लाए जाते हैं। उदाहरणार्थ, अध्ययन के सम्बन्ध में निर्दशन-पद्धति, निर्दशन-आकार, आंकड़ों के सकलन की विधि तथा उनके विश्लेषण की पद्धति आदि के विषय में निर्णय अनुसन्धान प्रारूप के स्तर पर ही ले लिए जाते हैं जबकि इन निर्णयों को लागू करने की परिस्थितियाँ वास्तव में जब अध्ययन या अन्वेषण कार्य कार्यान्वित किया जाता है तब पैदा होती हैं।

अनुसन्धान प्रारूप या प्ररचना को अनेक सामाजिक वैज्ञानिकों ने परिभाषित किया है। इनमें से कुछ प्रमुख के द्वारा दी गई परिभाषाएं नीचे दी जा रही हैं :

सेलिज, जहोदा, ड्यूश एवं कुक ने अपनी पुस्तक 'रिसर्च मेथड्स इन सोशल रिलेशनस' में अनुसन्धान प्रचना को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "एक अनुसन्धान प्रचना आँकड़ों के एकत्रीकरण एवं विश्लेषण के लिए उन दशाओं का प्रबन्ध करती है जो अनुसन्धान के उद्देश्यों की संगतता को कार्यरीतियों मे आर्थिक नियन्त्रण के साथ सम्मिलित करने का उद्देश्य रखती है।"

आर. एल. ऐकॉफ ने अपनी पुस्तक का नाम 'दि डिजाइन ऑफ सोशल रिसर्च' रखा है। ऐकॉफ के अनुसार, "प्ररचित करना नियोजित करना है, अर्थात् प्ररचना (Design) उस परिस्थिति के उत्पन्न होने से पूर्व निर्णाय लेने की प्रक्रिया है जिसमें निर्णय को लागू किया जाना है। यह एक सम्भावित स्थिति को नियन्त्रण में लाने की दिशा में एक पूर्व आशा (Anticipation) की प्रक्रिया है।"

सेनफोर्ड लेबोबिज एवं रॉबर्ट हैगडार्न ने भी 'इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च' में इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि "एक अनुसन्धान प्ररचना उस तार्किक ढंग को प्रस्तुत करती है, जिसमें व्यक्तियों एवं अन्य इकाईयों की तुलना एवं विश्लेषण किया जाता है। यह आँकड़ों के लिए विवेचन का आधार है। प्ररचना का उद्देश्य ऐसी तुलना का आश्वासन दिलाना है, जो विकल्पीय विवेचनों से प्रभावित न हो।"

आल्फेड जे. काह ने भी इसकी विवेचना करते हुए 'दि डिजाइन ऑफ रिसर्च' के नाम से लिखे एक लेख में लिखा है कि "अनुसंधान प्ररचना की सर्वात्तम परिभाषा अध्ययन की तार्किक युक्ति के रूप में की जाती है। यह एक प्रश्न का उत्तर देने, परिस्थिति का वर्णन करने, अथवा एक परिकल्पना का परीक्षण करने से सम्बन्धित है। दूसरे शब्दों में, यह उस तर्कयुक्तता से सम्बन्धित है जिसके द्वारा कार्यविधियों (Procedures), जिनमें आँकड़ों का संग्रह एवं विश्लेषण दोनों सम्मिलित हैं के एक विशिष्ट समूह से एक अध्ययन की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति की आशा की जाती है।"

एफ. एन. कर्लिजर ने भी 'फाउन्डेशनस ऑफ बिहैवरीयल रिसर्च' में लिखा है कि "अनुसन्धान प्ररचना अन्वेषण की योजना, संरचना (Structure) एवं एक रणनीति (Strategy) है जिसकी रचना इस प्रकार की जाती है कि अनुसंधान प्रश्नों के उत्तर प्राप्त हो सकें तथा विविधताओं (Variance) को नियन्त्रित किया जा सके। यह प्ररचना या योजना अनुसन्धान की सम्पूर्ण रूपरेखा अथवा कार्यक्रम है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक चीज की रूपरेखा सम्मिलित होती है जो अनुसन्धानकर्त्ता उपकल्पनाओं के निर्माण एवं उनके परिचालनात्मक अभिप्रायों से लेकर आँकड़ों के अंतिम विश्लेषण तक करता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि अनुसंधान के उद्देश्यों के आधार पर अध्ययन विषय के विभिन्न पक्षों को उद्घटित करने के लिए पहले से ही बनाई गई योजना की रूपरेखा को शोध अभिकल्प कहते हैं। शोध अभिकल्प एक विशिष्ट कार्य प्रणाली है जिसमें संकलन एवं विश्लेषण के माध्यम से अध्ययन की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति की आशा की जाती है। अतः ऐसी योजना जो विषय वस्तु के विभिन्न अंगों का अन्वेषण करके संशोधन के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्यान्वित की जाती है, अनुसंधान प्रारूप या अभिकल्प कहलाती है।

अनुसंधान प्रारूप, मुख्य रूप से, निम्न प्रश्नों के उत्तर प्रदान करता है :

(i) अध्ययन किस विषय से सम्बन्धित है?

(ii) अध्ययन की क्या अवश्यकता है?

(iii) अध्ययन किस स्थान पर कार्यान्वित किया जाएगा?

(iv) अध्ययन के लिए किस प्रकार के आँकड़ों की आवश्यकता होगी?

(v) अध्ययन के लिए आवश्यक आंकड़े कहाँ से प्राप्त होंगे?

(vi) अध्ययन किस समयावधि से सम्बन्धित होगा?

(vii) निर्दशन या प्रतिदर्शन प्रारूप क्या होगा?

(viii) आँकड़े एकत्रित करने के लिए कौन सी पद्धति का प्रयोग किया जाएगा?

(xi) आँकड़ों का विश्लेषण किस प्रकार किया जाएगा?

(x) अध्ययन की रिर्पोट किस प्रकार तैयार की जाएगी अर्थात उसका प्रारूप क्या होगा?

शोध प्रारूप पूरे अध्ययन से सम्बन्धित होता है और उसमे अध्ययन के सभी पक्षों की विस्त त योजना की रूपरेखा का समावेश किया जाता है। अतः शोध-प्रारूप के अर्न्तगत कुछ उप-शोध प्रारूप भी तैयार किए जाते हैं जो शोध के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित होते हैं। सामान्यतः शोध-प्रारूप के निम्नलिखित भाग या उप-शोध प्रारूप होते हैं :

(a) **निर्दशन प्रारूपः** यह प्रारूप अध्ययन के लिए विभिन्न इकाईयों के चयन की पद्धति से सम्बन्धित होता है।

(b) **अवलोकन प्रारूपः** यह प्रारूप उन शर्तों का उल्लेख करता है जिनके अन्तर्गत अध्ययन सम्बन्धी अवलोकन किए जाएंगे।

(c) **सांख्यिकीय प्रारूपः** इस प्रारूप में इस बात का उल्लेख किया जाता है कि शोध के अर्न्तगत कितनी इकाईयों का अध्ययन किया जाएगा और संकलित आँकड़ों के विश्लेषण के लिए कौन-सी पद्धति प्रयोग में लाई जाएगी।

(d) **कार्यात्मक प्रारूपः** कार्यात्मक प्रारूप उन तकनीकों से सम्बन्धित है जिनके द्वारा निर्देशन, अवलोकन और सांख्यिकीय प्रारूपों के अर्न्तगत दर्शाई गई पद्धतियों को लागू किया जाएगा।

शोध अभिकल्प की विशेषताएँ

शोध अभिकल्प के अर्थ को समझने एवं उसे परिभाषित करने के बाद हम इसकी कुछ आधार-भूत विशेषताओं को वर्णन कर सकते हैं। अनुसंधान प्ररचना की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :

1. अनुसन्धान प्ररचना का सम्बन्ध सामाजिक अनुसन्धान से होता है।
2. अनुसन्धान प्ररचना अनुसन्धानकर्त्ता को अनुसन्धान की एक निश्चित दिशा का बोध कराती है। इस अर्थ में अनुसन्धान प्ररचनाएँ एक प्रकार की दिग्दर्शक हैं।
3. अनुसन्धान प्ररचना की मुख्य विशेषता सामाजिक घटनाओं की जटिल प्रकृति को सरल रूप में प्रस्तुत करना है।
4. अनुसन्धान प्ररचना अनुसन्धान की वह रूपरेखा है जिसकी रचना अनुसन्धान कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व की जाती है।
5. अनुसन्धान प्ररचना की एक और विशेषता अनुसन्धान प्रक्रिया के दौरान आगे आने वाली परिस्थितियों को नियन्त्रित करना एवं अनुसन्धान कार्य को सरल बनाना है।
6. अनुसन्धान प्ररचना न केवल मानवीय श्रम को कम करती है बल्कि वह समय एवं लागत को भी कम करती है।

7. अनुसन्धान प्रचना अनुसन्धान के दौरान आने वाली कठिनाइयों को भी कम करने में अनुसन्धानकर्त्ता की सहायता करती है।
8. अनुसन्धान प्रचना की एक और विशेषता यह है कि यह अनुसन्धान के अधिकतम उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता करती है।
9. अनुसन्धान प्रचना का चयन सामाजिक अनुसन्धान की समस्या एवं उपकल्पना की प्रकृति के आधार पर किया जाता है।
10. अनुसन्धान प्रचना समस्या की प्रतिस्थापना से लेकर अनुसन्धान प्रतिवेदन के अन्तिम चरण तक के विषय में सभी उपलब्ध विकल्पों के बारे में व्यवस्थित रूप में श्रेष्ठ निर्णय लेने में सहायता करती है।

शोध-प्रारूप का महत्त्व या आवश्यकता

शोध प्रारूप विभिन्न शोध क्रियाओं को सुचारू रूप से संचलित करने में सहायक होता है। शोध-अभिकल्प तैयार करके शोधकर्ता शोधकार्य को अधिकाधिक कुशलतापूर्वक इस प्रकार सम्पन्न कर सकता है कि अध्ययन से अधिकाधिक ज्ञान का प्रसार कम से कम धन, समय तथा श्रम के निवेश से सम्भव हो सके। जिस प्रकार एक अच्छे, आकर्षक तथा कम खर्चीले मकान का निर्माण करने के लिए हमें सदैव एक नक्शे (Map) की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार शोध-कार्य को भली प्रकार से पूरा कने के लिए हमें सदैव ही एक शोध-प्रारूप की आवश्यकता होती है। शोध-प्रारूप शोध के उद्देश्यों एवं समय, धन और शोध कार्मिकों की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए आवश्यक आँकडों के संकलन और उनके विश्लेषण की तकनीकों के सम्बन्ध में योजना बनाकर भविष्य में अध्ययन कार्य को मार्ग से हटने से रोकता है। वास्तव में शोध प्रारूप पूरे शोध कार्य की नींव है तथा यह शोध के निष्कर्षों को भी प्रभावित करता है। यही कारण है कि अनुसन्धान अभिकल्प या प्रारूप तैयार करते समय पूरी सावधानी बरती जानी चाहिए क्योंकि शोध प्रारूप की कोई भी त्रुटि पूरे शोध कार्य को प्रभावित करती है। परन्तु खेद का विषय यह है कि सामान्यतः शोधकर्त्ताओं द्वारा शोध-प्रारूप के महत्त्व को नहीं समझा जाता और उसे पूरी गंभीरता के साथ तैयार नहीं किया जाता। फलस्वरूप, ऐसे अध्ययन जिन्हें आरम्भ करने से पहले सुविचारित अनुसन्धान प्रारूप तैयार नहीं किए गए, न केवल वांछित परिणाम नहीं दे पाते अपितु अनेकों बार भ्रामक परिणाम भी देते हैं जिससे कि पूरा शोध कार्य, व्यर्थ हो। जाता है और धन, समय और श्रम की हानि होती है इसीलिए यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक शोध-कार्य को आरम्भ करने से पहले एक सुविचारित शोध प्रारूप तैयार किया जाए। इतना ही नहीं शोधकर्ता को यह भी चाहिए कि वह उस शोध-अभिकल्प के बारे में किसी विशेषज्ञ की टिप्पणी भी ले तथा उसके द्वारा बताई गई कमियों को ध्यान में रखते हुए शोध-प्रारूप को पुनः तैयार करे या उसमें वांछित फेरबदल करे।

एक अच्छे अनुसन्धान अभिकल्प की विशेषताएँ

सामान्यतः एक अच्छे अनुसन्धान प्रारूप में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं :

1. **लोचपूर्णता (Flexibility):** शोध प्रारूप की प्रकृति में अनेक तत्वों का समावेश रहता है, सभी तत्व परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। इसलिए प्रारूप में भी इन परिवर्तनों का समावेश किया जाना आवश्यक है। इससे शोध प्रारूप में लोचपूर्णता का गुण आवश्यक है। अनेक बार अध्ययन में कुछ समय नये तथ्यों का समावेश करना आवश्यक होता है तथा कुछ समय पश्चात् इनको हटाना पड़ता है क्योंकि ये अनावश्यक एवं अनुपयुक्त प्रतीत

होते हैं। ऐसी स्थिति में तथ्यों का समावेश एवं उनको निकालने के लिए पारूप में लोचपूर्णता का गुण आवश्यक है।

2. **सत्यता** **(Accuracy):** शोध प्रारूप सत्यता पर आधारित होना चाहिये। "सत्यता प्रारूप की आत्मा है" (Accuarcy is the soul of design) प्रारूप का निर्माण करते समय अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता रहती है। इसमें किसी भी प्रकार की कमी शोध की सत्यता पर ऊँगली उठा देगी। जहाँ तक हो सके इसमें कमी को कम से कम किया जाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

3. **विश्वसनीयता** **(Reliability):** सामाजिक विज्ञान का उपयोग अध्ययन में किया जाता है। तथ्य सामग्री एवं सांख्यिकीय जानकारी के आधार पर ही शोध का कार्य प्रभावी हो पाता है। इस सामग्री एवं सांख्यिकीय जानकारी की प्रमाणिकता एवं विश्वसनीयता की जाँच करना भी आवश्यक है। शोधकर्ता द्वारा निकाते गये निष्कर्ष शोध के प्रयोजन के समरूप है अथवा नहीं, की जाँच करना भी आवश्यक है। यदि शोध के प्रयोजन के अनुरूप निष्कर्ष निकाले गये हैं तो इससे अनुसंधान की विश्वसनीयता और बढ़ जाती है और इससे आगे और अनुसन्धान को गति मिलती है।

4. **पुस्तकालय का उपयोग** **(Use of Library):** पुस्तकालय की सहायता से अनुसन्धानकर्ता अपने शोध के लिए बहुमूल्य सामग्री प्राप्त कर सकता है। शोधकर्ता यदि अपने शोध प्रारूप को विशेष स्थान देने की इच्छा रखता है तो इसके लिए उसे शोध पत्रिकाओं में आये अपने विषय से संबंधित लेखों का उपयोग करना चाहिये। प्रारूप को 'विशेष स्थान प्रदान' करने पर अनुसन्धानकर्ता के शोध के मूल्य में व द्धि होगी।

   सामाजिक विज्ञान में अनुसन्धानकर्ता अपने विषय की शोध पत्रिकाओं का अध्ययन करता है। यदि उसे स्वाभाविक विज्ञान की शोध पत्रिकाओं को पढ़ने की रूचि है तो यह उसकी विशेषता होगी जिससे उसके ज्ञान में व द्धि होगी और वह इस ज्ञान का उपयोग अपने शोध कार्य में कर सकेगा।

5. **सारगार्भित अवधारणाओं के चयन में सावधानी** **(Carefullness in Selecting Partinent Concepts):** प्रारूप के निर्माण के समय और अपने अनुसन्धान के लिए सारगर्भित अवधारणाओं का चयन करते समय विशेष सावधानी रखनी आवश्यक है। प्रारूप के निर्माण में परीक्षित ज्ञान और सारमर्भित अवधारणाओं का उपयोग किया जाना चाहिये। किसी भी अध्ययन के लिए ऐसी कल्पना का चुनाव किया जाना चाहिए जो स्पष्ट हो अन्यथा बार-बार उसमें संशोधन करना पड़ेगा।

6. **चरों की परिभाषा और मूल्य कथन** **(Defining Variables and Mentioning Their Values):** अनुसंधान प्रारूप के स्तर पर अध्ययन से सम्बन्धित चर, घटकों और उद्देश्यों आदि की परिभाषा की जाती है। इन परिभाषाओं से संशोधन का मार्ग प्रशस्त होता है। शोध के स्वरूप के अनुसार चरों के स्थिर अथवा परिवर्तनशील मूल्यों का स्पष्टीकरण करना भी आवश्यक है। चरों का स्वरूप स्थिर रहता है अथवा बदलता है, यह शोध की समस्या से संबंधित स्थिति पर भी निर्भर करता है।

शोध-प्ररचना के प्रकार

सभी शोध अध्ययनों का एक ही आधारभूत उद्देश्य होता है और वह है ज्ञान की प्राप्ति। परन्तु

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साधन या मार्ग अलग-अलग हैं। इसी कारण शोध-प्रारचनाएं भी अलग-अलग प्रकार की होती हैं। सामान्यतः शोध-प्रचना या प्रारूप निम्न चार प्रकार की होती है :

1. अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक शोध-प्रचना,
2. विवरणात्मक अथवा वर्णनात्मक शोध-प्रचना,
3. निदानात्मक शोध प्रचना,
4. प्रयोगात्मक शोध प्रचना।

कुछ विद्वान विवरणात्मक तथा निदानात्मक शोध प्रचानाओं में भेद नहीं करते और शोध प्रचनाओं के केवल तीन प्रकार या भेद ही बताते हैं। इन विद्वानों के अनुसार अन्वेषणात्मक, विवरणात्मक/निदानात्मक तथा प्रयोगात्मक ज्ञान अथवा खोज की तीन सीढ़ियाँ हैं। अन्वेषणात्मक अध्ययन किसी विषय में खोच की प्रारम्भिक अवस्था होती है। इस प्रकार के अध्ययन के द्वारा विषय से परिचय प्राप्त किया जाता है तथा नवीन अवधारणाओं एवं उपकल्पनाओं का निर्माण किया जाता है। इस खोज की अगली सीढ़ी है वर्णनात्मक अध्ययन। इन अध्ययनों के द्वारा किसी घटना परिस्थिति, संगठन आदि के लक्षणों का विशुद्ध अध्ययन किया जाता है। यह भी कहा जा सकता है कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वर्णनात्मक उपकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है। खोज की अन्तिम सीढ़ी प्रयोगात्मक अध्ययनों की है। इसे 'कार्य – कारण सम्बन्धी अध्ययन' भी कहा जाता है। इसके द्वारा किसी कार्य (जैसे मनोबल की कमी) के कारणों का पता लगाने का प्रयास किया जाता है और इस उद्देश्य से बनाई गई उपकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है।

अब हम यहां उपरोक्त चारों शोध-प्रचनओं के बारे में विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे।

1. अन्वेषणात्मक अथवा निरुपणात्मक शोध प्रचनाः

जब किसी शोध-कार्य का उद्देश्य किन्हीं सामाजिक घटना में अन्तर्निहित कारणों को ढूँढ निकालना होता है तो उससे सम्बद्ध रूपरेखा को अन्वेषणात्मक शोध-प्रचना कहते हैं। इस प्रकार की शोध-प्रचना में शोध-कार्य की रूपरेखा इस ढंग से प्रस्तुत की जाती है कि घटना की प्रकृति व धाराप्रवाहों की वास्तविकताओं की खोज की जा सके। समस्या या विषय के चुनाव के पश्चात् प्राक्कल्पना का सफलतापूर्वक निर्माण करने के लिए इस प्रकार की प्रचना का बहुत महत्त्व है क्योंकि इसकी सहायता से हमारे लिये विषय का कार्य-कारण सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। मान लीजिए हमें किसी विशेष सामाजिक परिस्थिति में तलाक-प्राप्त (divorced) व्यक्तियों में व्याप्त यौन-व्यभिचार के विषय में अध्ययन करना है तो उसके लिए सबसे पहले उन कारकों का ज्ञान आवश्यक है जो कि उस प्रकार के व्यभिचार को उत्पन्न करते हैं। अन्वेषणात्मक शोध-प्रचना इन्हीं कारकों के खोज निकालने की एक योजना बन सकती है। इसी प्रकार कभी-कभी समस्या के चुनाव और शोध-कार्य के लिए उसकी उपयुक्तता के सम्बन्ध में हमें अन्य किसी स्रोत से कुछ ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता है। उस अवस्था में अन्वेषणात्मक शोध-प्रचना की सहायता से हमें पर्याप्त सहायता मिल सकती है।

अन्वेषणात्मक अभिकल्प की अनिवार्यताएँः

अन्वेषणात्मक अभिकल्प के निर्माण की सर्वप्रथम अनिवार्यता अनुसंधानकर्ता की योग्यता व अनुभव है। इसके साथ-साथ इस अभिकल्प की कुछ अन्य अनिवार्यताएँ भी हैं जिनका वर्णन आगे किया जा रहा है :

1. **संबंधित साहित्य का अध्ययन (Study of the Pertient Literature):** सामाजिक अनुसंधान में मितव्ययिता के लिए, दूसरे अनुसंधानकर्त्ताओं द्वारा संपादित अध्ययन कार्यों का सिंहावलोकन आवश्यक है। अन्वेषणात्मक अभिकल्प में इस सिंहावलोकन को उपकल्पनाओं की खोज पर केंद्रित किया जाता है। फलस्वरूव सर्वेक्षण का कार्य सरल हो जाता है। अनेक समस्याओं के संबंध में अन्य उपकल्पनाएं भी प्राप्त होती हैं। अतः ऐसे अवसरों पर अन्वेषण पद्धति द्वारा कार्य करने वाला अनुसन्धानकर्त्ता उन समस्त उपलब्ध उपकल्पनाओं को संकलित कर, आगामी अध्ययन के आधार के लिए उनकी उपयोगिता का मूल्यांकन करता है। इसके विपरीत उन क्षेत्रों में जहां पूर्व प्रतिस्थापित उपकल्पना उपलब्ध नहीं है वहां अनुसंधानकर्त्ता उपलब्ध साहित्य का अनुशीलन करता है और प्राप्त निष्कार्षों के आधार पर उपकल्पना का निरूपण करता है।

2. **अनुभवपूर्ण सर्वेक्षण (Experience Survey):** समाज में अनेक ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो अपने व्यावहारिक अनुभव द्वारा मानवीय संबंधों में उत्पन्न प्रतिक्रियाओं को समझने में समर्थ होते हैं, किंतु व्यस्त जीवन के कारण अपने अनुभव एवं ज्ञान का लिखित प्रतिपादन नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए किसी सांस्कृतिक संस्था का व्यवस्थापक अथवा किसी व्यवसायी संघ का जनसंपर्क अधिकारी अनेक दैनिक कार्यों द्वारा सामाजिक जीवन की अनेक समस्याओं से भलीभांति अवगत होता है। इस प्रकार के व्यक्तियों का ज्ञान व अनुभव, अनुसन्धानकर्त्ता के लिए उपयोगी होता है। इन समस्त अनुभवों के आधार पर, अनुसन्धानकर्त्ता प्रभावकारी तत्त्वों को समझने में समर्थ होता है जो अध्ययन की समस्या में गतिशील रहते हैं। इसलिए इन अनुभवी व्यक्तियों के ज्ञान से लाभ उठाने के लिए अनुसंधानकर्त्ता का उनके साथ संपर्क स्थापित करना एवं समस्या के संबंधित प्रश्नों क उत्तर प्राप्त करना आवश्यक है। यह कार्य अनुभवपूर्ण सर्वेक्षण द्वारा संपन्न होता है।

3. **सूचनादाताओं का चयन (Selection of Respondents):** अन्वेषणात्मक अभिकल्प में अनुभवी सूचनादाताओं को निर्वाचित करना आवश्यक है। इस प्रकार के निर्वाचन का मुख्य उद्देश्य, समस्या की वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त करना है। अतएव सूचनादाताओं का निर्वाचन उनके अनुभव को द ष्टि में रखकर होना चाहिए। दूसरे शब्दों में सूचना-प्राप्ति के लिए केवल उसी सूचनादाता का चुनाव वांछनीय है, जो समस्या की वास्तविकता के ऊपर प्रकाश डालने में समर्थ हो। अतएव एक अनुभवपूर्ण सर्वेक्षण (Experience Survey) में उन व्यक्तियों से साक्षात्कार करना निरर्थक है जो समस्या के संबंध में विवरण प्रदान करने के लिए उपयुक्त नहीं हैं या जिनका ज्ञान सीमित है अथवा जिन्हें केवल ज्ञान है किंतु उसे अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं है। इसलिए सूचनादाताओं के निर्वाचन की सबसे प्रत्यक्ष पद्धति यह है कि केवल उन व्यक्तियों को सूचना प्रदान करने के लिए चुना जाये, जो समस्या से संबंधित क्षेत्र में किसी महत्त्वपूर्ण पद पर कार्य कर रहे हों। साथ ही जिनमें सामाजिक समस्याओं के प्रति विश्लेषण की अभिरुचि हो।

4. **सूचनादाताओं से प्रश्न (Questioning of Respondents):** समस्या के संबंध में ज्ञान एवं अनुभव की प्राप्ति के लिए सूचनाओं के निर्वाचन के बाद उनके समक्ष वांछनीय प्रश्नों को पेश करना आवश्यक है। इन प्रश्नों के निरूपण से पूर्व समस्या से संबंधित प्राथमिक धारणाओं (Concepts) का ज्ञान होना आवश्यक है। इन धारणाओं की प्राप्ति

का प्रधान स्त्रोत विवरणत्मक सर्वेक्षण (Bibillographical Survey) है। इस प्रकार के सर्वेक्षक द्वारा प्राप्त सूचनाओं के अनुपूरक के लिए उन व्यक्तियों का साक्षात्कार करना आवश्यक है, जिन्हें अध्ययन के क्षेत्र का अनुभव एवं ज्ञान है। किंतु इस संबंध में कितने व्यक्तियों का साक्षात्कार किया जाये, इसके लिए निश्चित नियम नहीं है।

5. **अनुभवपूर्ण सर्वेक्षण का उपयोग (Use of Experience Survey):** अन्वेषणात्मक अभिकल्प में अनुभवपूर्ण सर्वेक्षण अनेक द ष्टि से उपयोगी है। अध्ययन की प्रारंभिक प्रक्रिया की द ष्टि से अनुभवूपर्ण सर्वेक्षण समस्या से संबंधित उपकल्पनाओं को प्रदान करते हैं, जिन पर आगामी चरण आधारित होते हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के सर्वेक्षण सूचनाएं प्रदान करते हैं। जिनके आधार पर अनुसन्धान के लिए उस पद्धति को अपनाया जाता है जिसका समस्या के संदर्भ में व्यावहारिक उपयोग संभव है।

6. **प्रेरक घटनाओं का विश्लेषण (Analysis of Insight Stimulating Cases):** निरीक्षण-प्रेरक घटनाओं का विश्लेषण, अन्वेषणात्मक अभिकल्प का त तीय आधार है। इसका तात्पर्य उन घटनाओं के विश्लेषण एवं अनुशीलन से है जो अनुसन्धानकर्त्ता को प्रेरित करती हैं तथा उप-कल्पनाओं की प्रतिस्थापना के लिए उपयोगी विचारों को विस्त त करती हैं। इनमें वैयक्तिक विषय अध्ययन प्रमुख हैं। वैयक्तिक विषय अध्ययन अनुसन्धानकर्त्ता के प्रोत्साहन का प्रधान स्त्रोत है। इसके अंदर निम्नलिखित तथ्य हैं :

   (क) **सर्वेक्षक का द ष्टिकोण (Attitude of Investigator):** वैयक्तिक विषय के अध्ययन में सर्वेक्षक का द ष्टिकोण महत्त्वपूर्ण होता है, जिसके फलस्वरूप वह उपलब्ध उप-कल्पनाओं के परीक्षण में केंद्रित नहीं होता बल्कि अध्ययन वस्तु की विशिष्टताओं से प्रभावित होता है।

   (ख) **वैयक्तिक अध्ययन की गहनता (Intensity of Case Study):** वैयक्तिक अध्ययन की दूसरी विशेषता, इसके अध्ययन स्तर की गहनता है। वैयक्तिक का तात्पर्य केवल किसी व्यक्ति विशेष में नहीं। समूह, समुदाय इत्यादि को एक इकाई मानकर वैयक्तिक अध्ययन की संज्ञा दी गई। वैयक्तिक अध्ययन में विषय का सर्वांगीण अध्ययन किया जाता है।

   (ग) **सर्वेक्षक की संगठित शक्तियां (Integrative Powers of Investigator):** वैयक्तिक अध्ययन की त तीय प्रोत्साहक विशेषता, सर्वेक्षण की वह शक्ति है जिसके अनुसार, वह विषय से संबंधित सूक्ष्म-से-सूक्ष्म सूचना को भी संकलित करता है।

   (घ) **सर्वेक्षक के लिए प्रेरक घटनाएं (Motivating Events for Surveyor):** निरीक्षण प्रेरक घटनाओं के चयन के लिए कोई पूर्व निश्चित नियम नहीं होता। सामान्य रूप से निम्न प्रकार की घटनाएं अनुसंधानकर्त्ता को प्रेरित करती हैं :

      (i) **अपरिचितों की प्रतिक्रियायें (Reactions of Strangers):** किसी समुदाय की विशेषताओं के अध्ययन के लिए, अपरिचित व्यक्तियों द्वारा प्रकट की गई प्रतिक्रियाएं महत्त्वपूर्ण होती हैं। अतः अपरिचित व्यक्ति की प्रतिक्रियाएं भी सामुदायिक जीवन की विशेषताओं की ओर, ध्यान आकर्षित करती है। इन प्रक्रियाओं को यात्रियों के व तांतों में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए प्राचीनकाल में फाहयान, मेगास्थानीज इत्यादि विदेशी यात्री भारत आये। अपने संस्मरणों में, उन्होंने भारतीय समाज का जो चित्रण किया

है, उसे दूसरे शब्दों में, भारत की तत्कालीन स्थिति के प्रति उनकी प्रतिक्रिया की कह सकते हैं। ऐसे व तांत सर्वेक्षण प्रेरणा के स्रोत रहे हैं।

(ii) **सीमांत व्यक्तियों द्वारा वर्णन (Description by Marginal Individuals):** सीमांत व्यक्तियों से तात्पर्य उन व्यक्तियों से है जो न किसी समुदाय में सम्मिलित हैं और न पूर्णतया समुदाय से प थक हैं। अर्थात् वे व्यक्ति जो एक सांस्कृतिक समुदाय से दूसरे सांस्कृतिक समुदाय में आते रहते हैं। इनकी स्थिति समुदायों के मध्यम की स्थिति है। अतएव इस तरह के व्यक्ति प्रत्येक समुदाय के प्रभावों को स्पष्ट रूप से प्रकट कर सकते हैं।

(iii) **संक्रमणशील समस्याएं (Transitional Cases):** सर्वेक्षक की प्रेरणा के लिए ऐसी समस्याएं भी महत्त्वपूर्ण होती हैं जिनमें विकासक्रम जारी रहता है। अर्थात् ये घटनाएं एक स्तर से दूसरे स्तर में अग्रसर होती रहती हैं। उदाहरण के लिए बच्चे को अबोध अवस्था से विकसित होकर, एक पूर्ण वयस्क के रूप में बदल जाना। बच्चे का यह विकास, भिन्न प्रक्रमों तथा सामाजिक व मनोवैज्ञानिक लक्षणों को दर्शाता है।

(iv) **व्याधिशास्त्र समस्याएं (Pathological Cases):** व्याधिशास्त्रीय समस्याएं भी सर्वेक्षक को अध्ययन के लिए प्रेरित करती हैं। इनसे सामाजिक विघटन होता है। अतः इनका स्वरूप संगठनात्मक शक्तियों से भिन्न होता है।

(v) **स्पष्ट समस्याएं (Uncomplicated Cases):** स्पष्ट समस्याओं का तात्पर्य उन समस्याओं से है जिनका स्पष्टीकरण जटिल नहीं है और जिनका अध्ययन सरलतापूर्वक किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि मानसिक बीमारियों तथा सामाजिक वातावरण के संबंधों का अध्ययन करना है तो विभिन्न मानसिक अवस्थाओं के ऊपर विचार करना आवश्यक है। समस्या की सरलता उसके स्पष्टीकरण में सहायक होती है। साथ ही सर्वेक्षक को प्रोत्साहित भी करती है।

(vi) **व्यक्तियों की विशेषताएं (Characteristics of Individuals):** प्रत्येक व्यक्ति की कुछ प थक् विशेषताएं होती हैं। व्यक्ति की विशेषताएं जिस सामाजिक स्थिति के लिए अनुकूल होती हैं, उसके लिए दूसरे व्यक्ति की विशेषताएं अनुकूल नहीं होती। इन विशेषताओं की पारपरिक भिन्नता से परिस्थिति के ऊपर प्रकाश पड़ता है।

7. **सामाजिक संरचना में विभिन्न स्थितियां (Different Positions in Social Structure):** अध्ययन के लिये, सामाजिक संरचना की प्रत्येक स्थिति का प्रतिनिधित्व करने वाली समस्याएं स्थिति के संबंध में एक स्वस्थ द ष्टिकोण प्रदान करती हैं। अधिकांश सामाजिक समूहों में व्यक्तियों के सामाजिक स्तर और कार्यों के बीच भिन्नता पाई जाती है। इस प्रकार व्यक्ति अपने विभिन्न स्तरों से स्थिति का पर्यावलोक करता है। यदि उनके द ष्टिकोणों से समस्या का अवलोकन किया जाये तो समस्या से संबंधित अनुभव की व द्धि होती है। परिणामस्वरूप सर्वेक्षण को प्रोत्साहन मिलता है।

इस प्रकार उपर्युक्त समस्यायें अन्वेषणात्मक अभिकल्प में, अनुसन्धानकर्त्ता को प्रेरित

करती हैं। यह प्रेरणा अनुसन्धानकर्त्ता के लिये, अनुसंधानकर्त्ता की प्राथमिक प्रक्रियाओं को पूरा करने के लिए, विशेष रूप से उपयोगी है। इन्हीं विशेषताओं के कारण अन्वेषणात्मक या निरूपणात्मक अभिकल्प सामाजिक अनुसंधान के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है — क्योंकि यह निरीक्षण एक गहन अध्ययन पर आधारित है।

अन्वेषणात्मक अभिकल्प का महत्त्व

अन्वेषणात्मक अभिकल्प का सामाजिक अनुसन्धानों में निम्नलिखित महत्त्व है :

1. **तात्कालिक स्थिति संबंधी सूचनाः** कार्य की द ष्टि से अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक अभिकल्प, समस्या की तात्कालिक स्थितियों के संबंध में सूचनाएं प्रदान करता है, जिनके आधार पर पूर्व प्रतिस्थापित उपकल्पना का परीक्षण किया जाता है। साथ ही यह विभिन्न प्रकार की अध्ययन प्रणालियों को प्रयोग में लाने की व्यावहारिक संभावनाओं को स्पष्ट करता है।

2. **महत्त्वपूर्ण समस्याओं को प्रस्तुत करनाः** अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक अभिकल्प का द्वितीय कार्य सामाजिक महत्त्व की समस्याओं को प्रस्तुत करना है। इसका तात्पर्य उन समस्याओं की ओर अनुसंधानकर्त्ता को प्रेरित करना है जो अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि महत्त्पूर्ण समस्याओं के अभिकल्प की सामाजिक उपयोगिता, उन समस्याओं के अध्ययन से अधिक हैं जिनका सामाजिक महत्त्व अधिक नहीं है।

3. **अपरिचित क्षेत्र का अध्ययनः** अन्वेषणात्मक अभिकल्प अनुसन्धान की दीर्घकालीन आयोजनों की द ष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। दीर्घकालीन अनुसंधान के लिये सिद्धांत (Theory) तथा उपकल्पना का व्यवस्थित आधार आवश्यक है लेकिन एक अपरिचित क्षेत्र के अध्ययन में ये आधार उपलब्ध नहीं होते हैं। अतएव इनकी प्राप्ति के लिए अन्वेषणात्तमक अभिकल्प समस्या के विविध पक्षों के संबंध में जानकारी प्रदान करता है।

4. **अनुसंधान का प्रारंभः** उपयुक्त कार्यों के अतिरिक्त, अनुसंधान कार्य को प्रारंभ करने की द ष्टि से भी अन्वेषणात्मक अभिकल्प महत्त्वपूर्ण है। जहोडा और कुक के अनुसार, "प्रयोग में, किसी भी अध्ययन का सबसे जटिल भाग उसको आरंभ करने का है। अध्ययन के अनुवर्ती स्तरों पर सतर्क पद्धतियों की बहुत कम उपयोगिता है यदि उसका प्रारंभ गलत एवं असंगत हुआ है।" ("In practice, the most difficult portion of any enquiry is its initiation. The most careful methods during the letter stages of an investigation are of little value if an incorrect or irrelevant start has been made.")

   इसलिए अन्वेषणात्मक अभिकल्प का प्रमुख कार्य, अध्ययन के आरंभ में उपयोगी उपकल्पना के निर्धारण में आवश्यक सूचनाओं को एकत्रित करता है। यदि उपकल्पना यथार्थ है और उसका आधर सैद्धांतिक है, तो अनुसंधान कार्य सफल एवं उपयोगी होता है।

5. **सैद्धांतिक महत्त्वः** इनके अतिरिक्त समाज-विज्ञान की अनेक शाखाओं के अंतर्गत अन्वेषणात्मक अभिकल्प को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया और अभिकल्प के उसी अंश को वैज्ञानिक अध्ययन स्वीकार किया गया, जिसका आधार परीक्षणात्मक था। किंतु परीक्षणात्मक अभिकल्प के लिए, सामाजिक तथा सैद्धांतिक महत्त्व का होना अत्यंत

आवश्यक है। विशेषकर समाज-विज्ञान में अभिकल्प को केवल परीक्षण की विषय-वस्तु तक ही सीमित न होकर, व्यापक समस्याओं तक विस्त त होना चाहिए। यह केवल अन्वेषणात्मक पद्धति द्वारा भी संभव होता है। इस प्रकार अन्वेषण अभिकल्प, विज्ञान को परंपरागत सीमाओं में युक्त कर, उसके अध्ययन-क्षेत्र का विकास करता है।

6. **अनिश्चित समस्याओं का निर्धारण:** अन्वेषणात्मक अभिकल्प का एक महत्त्वपूर्ण कार्य अनिश्चित समस्याओं के अध्ययन को निश्चित करना है। इसमें नवीन खोज पर बल दिया जाता है। अतः समस्या के प्रारंभिक रूप को अध्ययन की प्रक्रिया आरंभ करने के बाद अंतिम रूप दिया जाता है। साथ ही निरीक्षण द्वारा समस्य के केंद्रीय स्वरूप का ध्यान एकाग्र किया जाता है। इस प्रकार अन्वेषणात्मक अभिकल्प द्वारा समस्या को निश्चित स्वरूप दिया जाता है और उसके पक्ष विशेष पर अध्ययन को केंद्रित किया जाता है।

अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के उद्देश्य
(Objects of Exploratory Research Design)

अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के अनेक उद्देश्य, प्रकार्य या प्रयोजन हो सकते हैं। प्रमुख रूप से एक अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के चार उद्देश्य हो सकते हैं जो निम्न निम्नाँकित हैं :

1. **अनुसन्धान विषय की जानकारी करना:** अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना का एक मुख्य उद्देश्य का प्रकार्य (Function) यह हो सकता है कि यदि हम किसी ऐसे विषय के बारे में अनुसन्धान करना चाहते हैं जिस पर पहले अनुसन्धान नहीं हुआ है तो उस विषय या समस्या का परिचय या जानकारी प्राप्त करनी होगी। उदाहरण के लिए, जैसे हम किसी संस्था का अध्ययन करना चाहें तो पहले हमें यह पता लगाना पड़ेगा कि यह संस्था कब, किसने व क्यों स्थापित की? इसकी स्थापना के पीछे कौन से कारण थे? इसका आय-व्यय क्या है? आदि। इस प्रकार हमें सबसे पहले अनुसन्धान विषय की जानकारी करनी होती है।

2. **अनुसन्धान की सम्भावनाओं एवं क्षेत्र का निर्णय:** अन्वेषणत्मक अनुसन्धान प्ररचना का दूसरा उद्देश्य है अनुसन्धान की सम्भावनाओं का पता लगाना। इस प्रकार का अध्ययन वर्णनात्मक अनुसन्धान प्ररचना का मार्ग प्रशस्त करता है। बड़े एवं अधिक धन वाले अध्ययनों से पहले हमें इस बात की जानकारी प्राप्त की जानी चाहिए कि हमारा मार्ग सही है। अन्यथा हो सकता है, हम व्यर्थ ही समय एवं धन को व्यर्थ व्यय कर बैठें? इसी प्रकार सामाजिक अनुसन्धान में हम अन्वेषणात्मक प्ररचना से यह पता लगाते हैं कि किसी विषय-विशेष में अनुसन्धान की क्या वास्तविक सम्भावनाएँ हैं। जैसे यदि हम किसी सरकारी संगठन का अध्ययन करना चाहते हैं तो सम्भव है वहाँ यह कठिनाई हो कि उसके तथ्य एवं आँकड़े सरकार गोपनीय मानती हो। यदि हम अन्वेषणत्मक अध्ययन करें तो यह बात हमें पहले ही ज्ञात हो जाएगी कि सरकार से उनकी अनुमति प्राप्त हो जाएगी तो हम विषय को छोड़ देंगे। इसी प्रकार अन्वेषणात्मक प्ररचना से हम विषय का क्षेत्र निर्धारण भी ठीक प्रकार कर सकेंगे।

3. **अवधारणाओं का स्पष्टीकरण एवं नवीन अवधारणाओं की खोज:** अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचनाओं का एक और उद्देश्य हो सकता है अवधारणाओं का स्पष्टीकरण एवं नवीन

अवधारणाओं की खोज। वस्तुतः किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन में यदि हमारी अवधारणाएँ स्पष्ट न हों तो हमारे अनुसन्धान कार्य का मूल्य बहुत कम हो जाने की सम्भावना है। दूसरे शब्दों, सें, यह कहा जा सकता है कि हम यह भी नहीं जानते कि हम किसका अध्ययन कर रहे हैं। जैसे यदि हम किसी संस्था की कार्यकुशलता का अध्ययन कर रहे हैं तो हमारा अध्ययन तब तक पूर्ण नहीं होगा जब तक कि हम यह भी 'न' जानें कि 'कार्यकुशलता' की अवधारणा क्या है? एवं यह किस प्रकार 'लाभ' व अन्य समानार्थक अवधारणाओं से भिन्न है?

इसके अगला अवधारणाएँ सैद्धान्तिक संरचना (Theoretical Structure) की आधार होती है इसलिए नई सैद्धान्तिक संरचना के लिए कभी-कभी नवीन अवधारणाओं की रचना की जाती है। मार्क्स का 'वर्ग-संघर्ष', वेबर का 'आदर्श प्रारूप' (Ideal Type) आदि इसी प्रकार की नवीन अवधारणाएँ हैं। यहाँ अनुसन्धानकर्त्ता किसी पुरानी अवधारणा की नवीन परिभाषा भी कर सकती है, जैसे कार्ल मार्क्स ने 'वर्ग' (Class) के सन्दर्भ में की। इस प्रकार दोनों ही आधारों में अवधारणाओं का उपयोग अन्वेषणात्मक प्ररचना से बढ़ जाता है।

4. **उपकल्पनाओं का निर्माणः** अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना का एक और उद्देश्य उपकल्पनाओं का निर्माण है। ये उपकल्पनएँ अनुसन्धान में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती हैं' वर्णनात्मक अध्ययनों में भी इन उपकल्पनाओं का अत्यन्त महत्त्व होता है। किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन का उद्देश्य होता है सिद्धान्तों का परीक्षण। सिद्धान्त उपकल्पनाओं के तन्त्र होते हैं इसलिए क्रियात्मक द ष्टिकोण से हमारा उद्देश्य उपकल्पनाओं का परीक्षण हो जाता है। इस प्रकार उपकल्पनाएँ वैज्ञानिक अध्ययन को दिशा देती हैं। ये बताती हैं कि हमें किन लक्षणों एवं सम्बन्धों का अध्ययन करना है। इस प्रकार विषय का समस्या से परिचय प्राप्त करके, उसका निरूपण करके, इन मुख्य उद्देश्यों या प्रकार्यों के अतिरिक्त अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के कुछ उद्देश्य और बताए जा सकते हैं, जैसे –

   1. अनुसन्धानकर्त्ता को प्रघटना के बारे में जागरूकता एवं समझ प्रदान करना।
   2. भविष्य में आने वाले अनुसन्धान के विषय में प्रधानता या प्रमुखता (Priorities) की स्थापना करना।
   3. सामाजिक महत्त्व की समस्याओं की ओर अनुसन्धानकर्त्ता को प्रेरित करना।
   4. समस्या के किसी क्षेत्र में अध्ययन को केन्द्रित किया जाए, इसका निर्धारण करना।
   5. विज्ञान को परम्परागत सीमाओं से मुक्त करके उसके अध्ययन-क्षेत्र का विकास करना।

अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना के लिए कुछ आवश्यकताओं या अनिवार्यताओं का होना भी आवश्यक होता है। वस्तुतः अन्वेषणात्मक प्ररचना में सबसे बड़ी कठिनाई समस्या का उपयुक्त चुनाव करने की है। सामान्यतः समस्या का चयन करते समय निम्न बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए –

1. समस्या का सामाजिक महत्त्व,
2. समस्या का व्यावहारिक परिपेक्ष्य, एवं
3. विश्वसनीय तथ्यों की प्राप्ति की सम्भावनाएँ।

अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्रारचना की विधियाँ
(Methods of Exploratory Research Designs)

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अनुसन्धान का अन्वेषणात्मक प्रारूप प्राथमिक दिशाएँ प्रदान करता है। इसका महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है; क्योंकि प्रारम्भिक द ष्टिकोण निश्चित करने में भी यह सहयोगी सिद्ध होता है। जब तक किसी अनुसन्धानकर्त्ता को समस्या की सुस्पष्ट व्याख्या उसके सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों तथा प्रयोगात्मक पक्षों का ज्ञान नहीं होगा, तब तक वह अनुसन्धान करने में समर्थ नहीं हो पाएगा। अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना की कुछ विधियाँ/पद्धतियाँ होती हैं, जो प्रमुखतः निम्न हैं–

1. सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण एवं सिंहावलोकन।
2. आनुभविक व्यक्तियों से सर्वेक्षण।
3. एकल-विषय अध्ययन (Case-Studies)।

इस विधियों को हम थोड़ा विस्तार से देखेंगे –

1. **सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण एवं सिंहावलोकन**

किसी भी अनुसन्धान कार्य को प्रारम्भ करते समय उसकी समालोचना करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हमें शून्य से प्रारम्भ नहीं करना है। आज शायद ही कोई ऐसा विषय हो जिस पर कुछ भी काम न हुआ हो। अतः अनुसन्धानकर्त्ता को सबसे पहले यह पता लगाना चाहिए कि उस विषय पर क्या ज्ञान हो चुका है। अतः हमें उस विषय पर उपलब्ध साहित्य का सर्वेक्षण एवं सिंहावलोकन करना चाहिए।

इस सर्वेक्षण व सिंहावलोकन के परिणामस्वरूप उसे यह पता चल जाएगा कि उस विषय से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त कौन-कौन से हैं? इन सिद्धान्तों के प्रकाश में उसे बहुत-सी नवीन उपकल्पनाएँ भी सूझ जाएँगी। पिछली उपकल्पनाओं को एकत्र करके अनुसन्धान के सन्दर्भ में उनकी उपयोगिता को देखकर भी नवीन उपकल्पनाएँ बनाई जा सकती है।

इसी प्रकार सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण एवं सिंहावलोकन के लिए वर्तमान में अनेक उपकरण भी प्रचलित हैं, जैसे –

A) संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography),

B) लेखों के साराँश (Summary),

C) अनुक्रमणिका (Index).

वर्तमान में लगभग प्रत्येक विषय की विभिन्न शाखाओं-उपशाखाओं से सम्बन्धित साहित्य की सूचियाँ, अनुक्रमणिका, सन्दर्भ ग्रन्थ-सूचियाँ आदि पुस्तकालयों में उपलब्ध हो जाती हैं। अतः इसकी सहायता से अनुसन्धानकर्त्ता को अपने विषय के लगभग कुछ प्रकाशित साहित्य के विषय में पता लग जाता है। फिर टिप्पणियों (References) की सहायता से वह पढ़ने योग्य पुस्तकें और लेख इनमें से चुन सकता है। दूसरा सहायक उपकरण है साराँश। कुछ संस्थाएँ अनुसन्धान लेखों व अनुसन्धान ग्रन्थों के साराँथ पत्रिकाओं के रूप में प्रकाशित करती हैं। इन्हें पढ़ने से अनुसन्धानकर्त्ता को साराँश का पता लग जाता है और वह आवश्यकतानुसार अपने मतलब की अध्ययन सामग्री का चयन

उसमें से कर सकता है। पुस्तकों को पूरी आद्योपाँत पढ़ने की भी आवश्यकता उसे नहीं है। यहाँ अनुक्रमणिका (Index) उसकी मदद करती है। इस प्रकार अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना में हम सबसे पहले सम्बन्धित अनुसन्धान साहित्य का सर्वेक्षण एवं सिंहावलोकन कर लेते हैं।

2. **आनुभविक व्यक्तियों से संरक्षण**

समाज विज्ञान की प्रयोगशाला सम्पूर्ण समाज है और अनुभव के द्वारा इसे परिपुष्टता प्राप्त होती है। किसी भी विषय के साथ परिचय प्राप्त करने का सीधा ढंग है अनुभवी व्यक्तियों से बातचीत। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनुभव द्वारा हमें ऐसी अनेक जानकारियाँ प्राप्त होती हैं जो न तो हमें ज्ञात थीं, न लिखित रूप में उपलब्ध थीं और न ही जिनके बारे में हम सोच भी सकते थे। इसलिए समस्याओं का जितना ज्ञान अनुभवी व्यक्तियों को होता है, दूसरों को नहीं। उनसे बातचीत करके हम सहज की मूल्यवान उपकल्पनाएँ प्राप्त कर सकते हैं फिर चाहे ये उपकल्पनएँ हमें सुझाएँ या वे हमें स्वयं सूझ जाएँ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ विशेष प्रकार के व्यक्ति समस्या के क्षेत्र पर अन्य व्यक्तियों की तुलना में अधिक सामग्री प्रदान कर सकते हैं और उपकल्पनाओं के निर्माण के लिए अधिक आवश्यक सूचना प्रदान कर सकते हैं। सेलिज, जहोदा एवं अन्य ने इन विशिष्ट व्यक्तियों की श्रेणी में निम्नाँकित को सम्मिलित किया है :

1. अजनबी एवं नवागन्तुक
2. सीमान्त व्यक्ति (Marginal Man) जो एक साँस्कृतिक समूह से दूसरे साँस्कृतिक समूह में आते-जाते रहते हैं तथा दोनों समूहों से अपने सम्पर्क बनाए रखते हैं।
3. वे व्यक्ति जो विकास की एक स्थिति से दूसरी स्थिति की ओर संक्रमण काल में हैं।
4. विचलनपूर्ण व्यक्ति, एकाकी व्यक्ति तथा समस्याग्रस्त व्यक्ति।
5. विशुद्ध, आदर्श अथवा जटिलताविहीन व्यक्ति।
6. अत्यधिक सामंजस्य की स्थिति में पाए जाने वाले व्यक्ति।
7. सामाजिक संरचना के अन्तर्गत विभिन्न स्थितियों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति।
8. जाँच-पड़ताल करने वाले व्यक्तियों के अपने अनुभव का पुनरावलोकन तथा उसकी निजी प्रक्रियाओं की परीक्षा।

3. **एकल-विषय अध्ययन**

अनुसन्धान प्ररचना के अन्वेषणात्मक प्रारूप की एक और महत्त्वपूर्ण पद्धति एकल-विषय अध्ययन (Case-Study) है। इसका साधारण आशय है किसी एक मामले (Case), समूह (Group), व्यक्ति (Individual), संस्था (Institution) या घटना का सर्वांगीण एवं गहन अध्ययन। इस प्रकार एकल-विषय अध्ययन मूल में किसी विशिष्ट इकाई का अध्ययन करता है।

इस प्रकार के अध्ययन अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना में महत्त्वपूर्ण होते हैं क्योंकि प्रथम को यह अध्ययन सर्वांगीण होता है। इसमें हम सभी अंगों का अध्ययन करते हैं। दूसरा, एकल-विषय अध्ययन हमें इस इकाई का उसकी समग्रता में अध्ययन करते

हैं। तीसरा, यह गहन (Deep) अध्ययन होता है। इस प्रकार यह मूल में ही एक प्रकार से अन्वेषणात्मक पद्धति है। इस प्रकार अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्रारचना की उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि यह मूलतः उन आधारों को प्रस्तुत करता है जो कि एक सफल अनुसन्धान कार्य के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। सेलिज, ज्योदा एंव उनके सहयोगियों ने लिखा है कि "अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना उस अनुभव को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है जो कि अधिक निश्चित अनुसन्धान हेतु सम्बन्धित उपकल्पना के निरूपण में सहायक होगा।"

2. वर्णनात्मक अनुसंधान प्ररचना

विषय या समस्या के सम्बन्ध में वास्तविक तथ्यों के आधार पर वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत करना वर्णनात्मक शोध-प्ररचना का मुख्य उद्देश्य है। इसके लिए यह आवश्यक होता है कि विषय के सम्बन्ध में हमें यथार्थ तथा पूर्ण सूचनाएँ प्राप्त हो जाएँ, क्योंकि इनके बिना अध्ययन-विषय या समस्या के सम्बन्ध में हम जो कुछ भी वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत करेंगे वह वैज्ञानिक न होकर केवल दार्शनिक ही होगा। वैज्ञानिक वर्णन का आधार वास्तविक व विश्वसनीय तथ्य ही है। अतः यदि हमें किसी समुदाय की जातीय संरचना, शिक्षा स्तर, आवास (Housing) अवस्था, आयु-समूह, परिवार के प्रकार आदि का वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत करना है तो हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम इनमें सम्बद्ध वास्तविक तथ्यों को किसी एक या एकाधिक वैज्ञानिक प्रविधि के द्वारा एकत्रित करें। इसके लिए आवश्यक यह है कि अपने उद्देश्य को सामने रखते हुए एक शोध-प्ररचना (Research Design) को विकसित किया जाए। जिस शोध प्ररचना का उद्देश्य वर्णनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना होता है उसे वर्णनात्मक शोध-प्ररचना कहते हैं।

इस प्रकार की शोध-प्ररचना में तथ्यों का संकलन किसी भी वैज्ञानिक प्रविधि (Techniqu) के द्वारा किया जा सकता है। प्रायः साक्षात्कार (Interview), अनुसूची व प्रश्नावली (Schedule and questionnaire), प्रत्यक्ष निरीक्षण, सहभागी-निरीक्षण (Participant Observation), सामुदायिक रिकार्ड (Community record) का विश्लेषण आदि प्रविधियों को वर्णनात्मक शोध-प्ररचना में सम्मिलित किया जाता है।

वर्णनात्मक शोध-प्रारूप के आवश्यक तत्त्वः

वर्णनात्मक शोधक-प्ररचना का निर्माण करते समय कुछ आवश्यक तत्वों को ध्यान में रखना आवश्यक है। ये तत्व निम्न प्रकार से हैं :

(अ) सर्वप्रथम तो अध्ययन-विषय के चुनाव में सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है क्योंकि शोध का विषय इस प्रकार का होना चाहिए जिससे सम्बद्ध आवश्यक व निर्भर योग्य तथ्य हमें प्राप्त हो सकें। वर्णनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करने की सर्वप्रथम शर्त यही है।

(ब) दूसरी बात यह है कि इन तथ्यों को जिन प्रविधियों (Techniques) के द्वारा सबसे अधिक उपयुक्त रूप में संकलित किया जा सके उनका चुनाव भी खूब सावधानी से होना चाहिए। किसी भी शोध-कार्य की यथार्थता प्रविधियों के उचित चुनाव पर निर्भर करती है। वर्णनात्मक शोध-कार्य में इस प्रकार के चुनाव का और भी अधिक महत्त्व इस कारण है कि यदि चुनाव ठीक ढंग से नहीं किया गया। तो शोध-कार्य में वैज्ञानिकता पनपने के स्थान पर उसमें दार्शनिक तत्त्वों का अधिक प्रवेश हो जाएगा।

(स) मिथ्या-झुकाव आदि से सुरक्षा इस दिशा में तीसरी महत्त्वपूर्ण ध्यान देने योग्य बात है। चूँकि इस प्रकार के शोध में विषय के वर्णनात्मक पक्ष पर बल दिया जाता है, अतः पक्षपात, मिथ्या-झुकाव (Bias), पूर्वधारणा आदि के वर्णनात्मक विवरण में प्रवेश कर जाने की सम्भावना अधिक रहती है। अपने वर्णन को अधिक रोचक तथा आकर्षक बनाने का लोभ संभालना प्रायः बहुत कठिन हो सकता है और शौधकर्त्ता के वर्णन में अति-शयोक्ति या अतिरंजना का पुट सरलता से देखने को मिलता है। अतः हर प्रकार की स्थिति से बचने की आवश्यकता है।

(द) विशिष्ट व आकर्षक तथ्यों के सम्बन्ध में भी अति संतुलित द ष्टिकोण को अपनाने की आवश्यकता है। वर्णनात्मक विवरण को एक 'साधारण' रूप प्रदान करने के लिए प्रायः शोधकर्त्ता अपना ध्यान आकर्षक व विशिष्ट तथ्यों पर अधिक केन्द्रित कर सकते हैं। पर यह 'प्रव त्ति' वैज्ञानिक प्रव त्ति नहीं हो सकती।

(य) अन्त में शोध के व्यय में मितव्ययिता करने की भी आवश्यकता होती है। वर्णनात्मक शोध-कार्य प्रायः विस्त त होते हैं; अतः यह जरूरी है कि शोध-प्रयत्न को सीमित किया जाए। अनावश्यक मदों (Items) पर न तो श्रम और न ही धन को बर्बाद करना उचित होता है।

वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प के उद्देश्य :

वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प के भी कुछ महत्त्वपूर्ण उद्देश्य हैं। संक्षेप में इन उद्देश्यों को तीन वर्गों में प्रस्तुत किया जा सकता है :

1. **समूह अथवा परिस्थिति के लक्षणों का परिशुद्ध वर्णनः** वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प में हम किसी समूह जैसे कोई राजनीतिक दल (Political Party) अथवा किसी परिस्थिति जैसे हड़ताल या चुनाव (Election) आदि का परिशुद्ध वर्णन करते हैं एवं क्रमवार विस्त त ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह ज्ञान गुणात्मक (Qualitative) एवं संख्यात्मक (Quantitative) दोनों ही प्रकार का हो सकता है। जैसे गुणात्मक ज्ञान से हम यह पता लगाते हैं कि किस चुनाव के उम्मीदवार किस-किस राजनीतिक दल के थे अथवा के किस-किस जाति के थे? संख्यात्मक ज्ञान संख्या पर आधारित होता है। यह सामान्यतः किसी चर की आव त्ति होती है। जैसे किसी चुनाव में कितने लोगों ने भाग लिया।

2. **किसी चर की आव त्ति निश्चित करनाः** वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प के अध्ययन करते समय हमें विषय या समस्या का कुछ ज्ञान रहता है। यह ज्ञान पहले किए हुए अनेवषणात्मक या दूसरे लोगों के अध्ययनों द्वारा प्राप्त होता है। इसलिए वर्णनात्मक अध्ययन के उद्देश्य सुस्पष्ट होते हैं। जैसे यह निश्चित रहता है कि हमें किन लक्षणों का वर्णन करना है। समस्त लक्षणों का वर्णन किसी एक अध्ययन में नहीं होता है। जैसे किसी संस्था के विभिन्न भागों का आकार एक महत्त्वपूर्ण लक्षण हो सकता है किंतु यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक अध्ययन में इसका समावेश हो। इसी प्रकार किन चारों की आव त्ति देखनी है यह तय होता है। किसी एक ही समूह का अध्ययन अलग-अलग द ष्टिकोणों से हो सकता है और प्रत्येक के लिए भिन्न चरों की आव त्ति देखनी होती है।

3. **चरों के साहचर्य (Association) के विषय में पता लगानाः** वर्णनात्मक अनुसंधान

अभिकल्प का एक और उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा चरों के साहचर्य के विषय में पता लगाया जाता है। जैसे पिछड़े देशों में आय और शिक्षा मे धनात्मक साहचर्य (Positive Association) पाया जाता है अर्थात् अमीर व्यक्ति सामान्यतः अधिक शिक्षित होते हैं। वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प में हम इसी प्रकार विभिन्न चरों के साहचर्य का पता लगाते हैं, अर्थात् यह देखते हैं कि साहयर्च है या नहीं और यदि है तो किस प्रकार का। यहां यह ध्यान रखने योग्य बात है कि समस्त चरों का एक-दूसरे के साथ साहचर्य हम नहीं देखते। हम केवल उन चरों का साहचर्य देखते हैं जहां हम इनकी आशा करते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वर्णनात्मक अभिकल्प वर्णनात्मक उपकल्पनाओं की परीक्षा करना है।

इसके अतिरिक्त वर्णनात्मक अध्ययन कार्यकारण संबंधी उपकल्पनाओं के निर्माण में भी सहायक होता है। इस प्रकार की उपकल्पनाओं का परीक्षण एक अधिक विकसित अभिकल्प द्वारा होता है। वर्णनात्मक अध्ययन द्वारा केवल इन उपकल्पनाओं का निर्माण होता है। जैसे यदि हम किन्हीं चरों में बहुत अधिक साहचर्य पाएं तो हम यह उपकल्पना बना सकते हैं कि उनमें से एक कारण है और दूसरा कार्य। यहां यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि ऐसा संयोग से भी हो सकता है।

सामाजिक अनुसंधाान, मूलरूप से दो प्रकार की समस्याओं से संबंधित होते हैं। प्रथम समस्या सामान्य नियमों के खोज की समस्या है और द्वितीय समस्या विशिष्ट परिस्थितियों के निदान से संबंधित है। इसलिए, एक स्वस्थ एवं विवेकशील सामाजिक क्रिया की यह विशेषता है कि यह अनुसंधान से संबंधित दोनों समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है। इसलिए क्रियाओं की एक उपर्युक्त कार्यविधि के चुनाव के लिए समस्या के विशिष्ट लक्षणों का ज्ञान आवश्यक है। इस समस्या का समाधान वर्णनात्मक अभिकल्पों द्वारा होता है जो कि समस्या में निहित लक्षणों के विवेचन को विशेष महत्त्व देते हैं।

ऐतिहासिक द ष्टि से, सामाजिक अध्ययन में विवरणात्मक पक्ष को महत्त्व दिये जाने की परंपरा प्राचीन-काल से चली आई है। विभिन्न समयों पर राज्यों द्वारा मानवीय साधनों के मूल्यांकन किये जाने का उल्लेख इतिहास द्वारा प्राप्त होता है। किंतु इन वर्णनात्मक अभिकल्पों का मूल उद्देश्य केवल आर्थिक एवं प्रशासन की सुविधा प्राप्त करना था। समाज विज्ञान से विकास के साथ वर्णनात्मक अभिकल्प के प्रचलन में भी व द्धि हुई है।

वर्णनात्मक अभिकल्पों का प्रधान लक्ष्य, चुनी हुई समस्या के संबंध में, पूर्ण जानकारी हासिल करना है। इसलिए अन्वेषणात्मक अभिकल्प की अपेक्षा, इसमें मानवीय अभिमति से बचाव के लिए अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त, इन अध्ययनों में अधिकतम सामग्री को संग्रह करने के प्रयास किए जाते हैं। अतएव वर्णनात्मक अभिकल्प के लिए मानवीय अभिमति से बचाव की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

वर्णनात्मक शोध अभिकल्प के विभिन्न चरण या स्तर

वर्णनात्मक शोध अभिकल्प तैयार करते समय इसके विविध चरणों या स्तरों को ध्यान में रखना आवश्यक है। ये चरण या स्तर या सोपान निम्नलिखित हैं :

(क) शोध के उद्देश्यों का निरूपण (Formulation) वर्णनात्मक शोध का प्रथम चरण होता है जिसक अर्न्तगत शोध से सम्बद्ध मौलिक प्रश्नों का स्पष्टीकरण तथा लक्ष्यों को

परिभाषित करना सम्मिलित होता है जिससे कि अनावश्यक व असम्बद्ध तथ्यों का संकलन न हो तथा श्रम व धन की बर्बादी से बचा जा सके।

(ख) उद्देश्यों को स्पष्ट करने के पश्चात् यह आवश्यक है कि तथ्य-संकलन की प्रविधियों का चुनाव (Selection of the techniques of data collection) उचित ढंग से कर लिया जाए क्योंकि यह चुनाव ठीक प्रकार से किए बिना विषय से सम्बद्ध निर्भरयोग्य तथ्यों, आँकड़ों अथवा प्रमाणों को एकत्रित करने की कोई सम्भावना नहीं रहती है। भिन्न-भिन्न शोध-पद्धतियों के अपने-अपने गुण हैं। समस्या तथा उद्देश्य के अनुसार हम कितनी उपयुक्त पद्धति का चुनाव करने में सफल होते हैं, इस बात पर सम्पूर्ण शोध-कार्य की सफलता निर्भर करती है।

(ग) निदर्शनों का चुनाव (Selection of Samples) इस दिशा में तीसरा आवश्यक चरण है क्योंकि समूह के प्रत्येक सदस्य या विषय की प्रत्येक इकाई का अध्ययन करना अत्यन्त कठिन है। अतः निदर्शनों का चुनाव अर्थात् सम्पूर्ण जनसंख्या की कुछ प्रतिनिधि इकाइयों का अध्ययन उपयोगी सिद्ध हो सकता है क्योंकि इस प्रकार के अध्ययन के आधार पर सम्पूर्ण जनंसख्या के विषय में विश्वसनीय निष्कर्ष निकाला जा सकता है। इस प्रतिनिधि इकाइयों के चुनाव में भी मिथ्या-झुकाव (Bias) से बचने की आवश्यकता है।

(घ) आँकड़ों का संकलन तथा उनकी जाँच (Collection and scrutiny of data) इस दिशा में चौथा चरण माना जाता है। निदर्शनों के चुनाव के उपरान्त यह आवश्यक हो जाता है कि वैज्ञानिक प्रविधियों की सहायता से आवश्यक आँकड़ों का न केवल संकलन ही किया जाए अपितु उनकी जाँच भी उचित ढंग से हो ताकि वर्णनात्मक विवरण में अनावश्यक बातों का समावेश न हो सके। वास्तविकता तो यह है कि साक्षात्कारकर्त्ता (interviewer) अथवा निरीक्षणकर्त्ता की ईमानदारी तथा परिश्रम पर शुद्ध तथा यथार्थ सूचनाएँ एकत्र की जा सकती हैं। अतः सामग्री संकलन के समय भी कार्यकर्त्ताओं पर नियमित रूप से निगरानी रखनी चाहिए।

(ङ) परिणामों का विश्लेषण (Analysis of the results) इस दिशा में पंचम चरण है और इसका अर्थ है जिन आँकड़ों अथवा तथ्यों का संकलन किया गया है उनका समानता या भिन्नता के आधार पर विभिन्न समूहों में वर्गीकरण, सारणीयन तथा अन्य सांख्यिकीय विवेचना। शुद्धता तथा प्रशिक्षण इस कार्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकताएँ हैं। अतः इस स्तर का अत्यन्त निगरानी रखने की आवश्यकता रहती है।

(च) अन्तिम स्तर पर रिपोर्ट का प्रस्तुतीकरण (Reporting) आता है जिसमें शोध-विषय के सम्बन्ध में तथ्ययुक्त (Factual) विवरण तथा सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाता है। इस स्तर पर भाषा के प्रयोग पर विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है क्योंकि अत्यधिक अलंकारयुक्त भाषा से विषय के विवरण में अतिरंजना पनप सकती है और उसका विभिन्न लोगों के द्वारा विभिन्न अर्थ लगाए जाने का भी डर रहता है। इन सम्स्त चरणों से सफलतापूर्णक गुजरने के पश्चात् ही वर्णनात्मक शोध-कार्य अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है।

3. निदानात्मक शोध प्ररचना

शोध-कार्य का मूलभूत उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति तथा ज्ञान की व द्धि है। पर यह भी हो सकता

है कि शोध-कार्य का उद्देश्य किसी समस्या के कारणों के सम्बन्ध में वास्तविक ज्ञान प्राप्त करके उस समस्या के समाधानों को भी प्रस्तुत करना हो। इसी प्रकार की शोध-प्रचना को निदानात्मक शोध-प्रचना कहते हैं। अर्थात् विशिष्ट सामाजिक समस्या के निदान की खोज करने वाले शोध-कार्य को निदानात्मक शोध कहते हैं। इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट रूप से स्मरणी है कि इस प्रकार के शोधकर्त्ता समस्या का हल प्रस्तुत करता है, न कि स्वयं उस समस्या को हल करने के प्रयास में जुट जाता है, समस्या को हल करना समाज-सुधारक, प्रशासक तथा नेताओं का काम होता है, शोर्धकर्त्ता केवल वैज्ञानिक पद्धतियों के द्वारा समस्या के कारणों को जान लेने के बाद उसका उचित समाधान किस ढंग से सर्वोत्तम रूप में हो सकता है इस बात की खोज करता है। इसीलिए निदानात्मक शोध-कार्य में समस्या का पूर्ण एवं विस्त त अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से करके समस्या की गहराई में पहुँचने का प्रयास किया जाता है जिससे कि समस्या के प्रत्येक सम्भावित कारण का पता ठीक ढंग से लग सके। इस प्रकार समस्या के कारणों का ज्ञान सर्वप्रथम है, उसके निदानों की खोज उसके बाद की बात है। इस प्रकार की खोज इस कारण की जाती है क्योंकि समस्या-विशेष का हल तत्काल ही करने की आवश्यकत होती है। सम्भावित हल को ध्यान में रखते हुए इसलिए प्राक्कल्पना (Hypothesis) का निर्माण किया जाता है जिससे कि अध्ययनकार्य वैज्ञानिक ढंग से किया जा सके।

उपयुक्त विवेचना के आधार पर निदानात्मक शोध की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है :

1. निदानात्मक शोध-कार्य वैज्ञानिक पद्धति का निश्चित रूप से अनुसरण करता है जिसका कि प्रथम चरण प्राक्कल्पना का निर्माण और उसी के आधार पर अध्ययन का संचालन है।
2. निदानात्मक शोध-कार्य की आवश्यकता सामाजिक व्यवस्था व सामाजिक सम्बन्धों से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं को तत्काल दूर करने का उपचार की खोज करने से सम्बद्ध होती है।
3. निदानात्मक शोध में सर्वप्रथम वैज्ञानिक ढंग से कारणों का सही रूप में पता करने का प्रयत्न किया जाता है क्योंकि यह माना जाता है कि वास्तविक कारणों के सम्बन्ध में उचित व पर्याप्त ज्ञान के बिना आवश्यक समाधान की खोज असम्भव है।
4. निदानात्मक शोध किसी विशिष्ट सामाजिक समस्या के निदान की खोज से सम्बद्ध होता है। अर्थात् केवल शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति करना ही इसका उद्देश्य नहीं होता, अपितु उसके हल को भी ढूँढ़ना इसका काम होता है।
5. निदानात्मक शोधकर्त्ता समस्या का समाधान ढूँढ़ता अवश्य है, पर उस समस्या को हल करना उसका काम नहीं होता। वह तो वैज्ञानिक तौर पर केवल रास्ता बता देता है, उस रास्ते पर चलकर समस्या को सुलझाना समाज-सुधारक, प्रशासक आदि का काम होता है।

विवरणात्मक या वर्णनात्मक तथा निदानात्मक शोध प्रचनाओं में अन्तर या भिन्नता

वर्णनात्मक तथा निदानात्मक दोनों ही शोध-प्रचनाएँ किसी समस्या में प्रकट लक्षणों के विस्त त अध्ययन पर अधिक बल देते हैं और इसी कारण अनेक विद्वान इन दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं करते अपितु दोनों को शोध-प्रचना का एक ही रूप मानते हैं। किन्तु

इस समानता के होते हुए भी ये दोनों अभिकल्प एक दूसरे से भिन्न है। इन दोनों प्ररचनाओं में मुख्यतः निम्न आधारों पर अन्तर किया जा सकता है :

1. **विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचनाः** समस्या से सम्बन्धित तथ्यों का वर्णन प्रस्तुत करती है, जबकि निदानात्मक अनुसन्धान प्ररचना समस्या का वास्तविक स्वरूप बताकर समस्या के निदान के उपाय या हल भी बताती है।
2. **विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचनाः** के अध्ययन उपकल्पनाओं द्वारा पूर्ण रूप से निर्देशित नहीं होते, जबकि निदानात्मक अनुसन्धान प्ररचना के अध्ययनों को उपकल्पनाएँ पूर्ण रूप से निर्देशित करती हैं।
3. **विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचनाः** का मुख्य उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति ही होता है, जबकि निदानात्मक अनुसन्धान प्ररचना की प्रमुख उद्देश्य समाज में उपस्थित निवर्तमान (Contemporary) समस्याओं के कारणों का पता लगाकर समाधान प्रस्तुत करना होता है।
4. **विवरणात्मक अध्ययनः** उस क्षेत्र में विकास पाता है, जहाँ समस्याओं के बारे में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं हो चुकी होती है, जबकि निदानात्मक अध्ययन उसी क्षेत्र में हो जाते हैं, जहाँ पर कि समस्याओं का स्वरूप स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आ जाता है।
5. **विवरणात्मक अध्ययनः** प्रायः प्रारम्भिक स्तर के अध्ययन होते हैं जबकि निदानात्मक अध्ययन उच्चस्तरीय होते हैं।

इस प्रकार वर्णनात्मक का विवरणात्मक अनुसन्धान प्ररचना एवं निदानात्मक अनुसन्धान प्ररचना में अन्तर किया जा सकता है। लेकिन इन प्ररचनाओं के क्रियान्वयन के लिए अनुसन्धानकर्त्ता को अनुसन्धान प्रशिक्षण, समय, धन व कार्यक्षमता पर ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार जब अन्वेषएणात्मक ज्ञान की प्राप्ति हमारे अध्ययन का उद्देश्य होता है तो हम अन्वेषणात्मक अनुसन्धान प्ररचना का प्रयोग करते हैं, लेकिन जब किसी समूह, समुदाय या परिस्थितियों का वर्णन एवं विश्लेषण करना होता है तो हम 'विवरणात्त्क अनुसन्धान प्ररचना' का प्रयोग करते हैं।

4. प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना

अनुसन्धान प्ररचना का चौथा प्रकार प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना है। प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है 'प्रयोग (Experiment) की अवधारणा पर आश्रित है। प्रयोग मूलतः एक प्रकार का नियन्त्रिन अन्वेषण (Controlled Inquiry) है। प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना को विस्तार से समझने के लिए यह आवश्यक होगा कि हम 'प्रयोग' को समझ लें।

आर. एल. एकॉफ ने लिखा है कि "प्रयोग एक क्रिया है और एक ऐसी क्रिया है जिसे हम अन्वेषण कहते हैं।

ई. ग्रीनवुड के अनुसार, 'एक प्रयोग एक ऐसी उपकल्पना का प्रमाण है जो दो कारकों को ऐसी विरोधी परिस्थितयों के अध्ययन के माध्यम से कारणात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है, जिनमें केवल अभिरुचिपूर्ण कारण को छोड़कर अन्य सभी कारकों पर नियन्त्रण कर लिया

जाता है, बाद वाले अभिरुचिपूर्ण कारक या तो उपकल्पनात्मक कारण या उपकल्पनात्मक प्रभाव होता है।"

सेलिज, जहोदा एवं अन्य के अनुसार, "अपने सबसे सामान्य अर्थ में एक प्रयोग को प्रमाण के संग्रह के संगठन के ऐसे ढंग से रूप में समझा जा सकता है, जिससे उपकल्पना की सत्यता के विषय में परिणाम निकालने की अनुमति मिल सके।"

इस प्रकार प्रयोग की मूलभूत रूपरेखा अत्यन्त सरल है। एक उदाहरण से इसे हम और स्पष्ट कर सकते हैं। मान लें, हम यह जानना चाहते हैं कि पढ़ाने में संगणकों (Computers) का उपयोग परम्परागत पढ़ाने के ढंग से अधिक लाभदायक है या नहीं।

इसके लिए हम दो समान समूह लेंगे — एक 'प्रयोगात्मक समूह' कहलाएगा एवं दूसरा 'यथारथ समूह'। प्रयोगात्मक समूह पर हम स्वतन्त्र चर (या प्रयोगात्मक चर) का प्रभाव डालते हैं। यहाँ हमारा प्रयोगात्मक चर संगणक (Computer) है। अब हम किसी स्कूल की कक्षा के दो समूह बनाते हैं और एक समूह (प्रयोगात्मक) को संगणकों के माध्यम से पढ़ाते हैं व दूसरे को परम्परागत ढंग से। शिक्षा सत्र के अन्त में दोनों समूहों को एक ही परीक्षा में विठाकर उनके परीक्षाफल की तुलना करते हैं। यदि हम पाते हैं कि र्सगणक द्वारा शिक्षित समूह का परीक्षाफल श्रेष्ठ है तो हम कह सकते हैं कि संगणकों द्वारा पढ़ाना अधिक लाभकारी है।

इस प्रकार प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना 'प्रयोग' पर आधारित है। यह भी भौतिक विज्ञानों में प्रयोगों की भाँति होती है। इस प्रकार की प्ररचनाओं का निर्माण अत्यन्त सोच-समझकर किया जाता है। इस प्ररचना के आधार पर तार्किक निष्कर्षों को निकाला जाता है। 'जॉन स्टुअर्ट मिल' पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने प्रयोगात्मक विधि के आधार पर अनुसन्धान प्ररचनाओं के सम्बन्ध में सुधार किए।

प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना में कारणत्व (Causility) की अवधारणा का विश्लेषण करना भी परमावश्यक हो जाता है। सामान्य शब्दों में, इसका आशय यह है कि एक घटना दूसरी घटना का कार्य का कारण होती है। इस प्रकार इसमें अधिकतर दो या दो से अधिक घटनाओं, कारकों या चरों के मध्य कार्य-कारण सम्बन्ध की अनेक परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है।

प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना में कारणात्मक सम्बन्धों को व्यक्त करने वाली उपकल्पनाओं का परीक्षण करने के लिए प्ररचित किसी भी नियन्त्रित प्रयोग के अन्तर्गत निम्न तत्त्व पाए जाते हैं :

1. इसमें ऐसी दो परिस्थितियों या समूहों (एक प्रयोगात्मक समूह व दूसरा यथारथ समूह) का परीक्षण किया जाता है, जो अन्य सभी महत्त्वपूर्ण पक्षों में समान होते हैं।
2. कारणात्मक समझे जाने वाले कारक को प्रयोगात्मक समूह में ढूँढ़ा जाता है अथवा उसमें इसका समावेश कराया जाता है।
3. भविष्वाणी की जाने वाली घटना की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति पर्यवेक्षण प्रयोगात्मक एवं नियन्त्रित दोनों ही समूहों पर किया जाता है।

प्रयोगात्मक शोध-प्ररचना के विविध प्रकार

सामाजिक विज्ञानों में सदा प्रयोग की समस्त शर्तों को पूरा करना सम्भव नहीं होता है। इसलिए आवश्यकता एवं सुविधा के अनुसार प्रयोग के ढंग में कुछ फेर-बदल कर लिया

जाता है। इसलिए प्रयोगात्मक अनुसन्धान प्ररचना के अनेक प्रकार बन जाते हैं। इन्हें मुख्यतः दो वर्गों में रखा जाता है :

1. **केवल पश्चात् परीक्षण** (Only After Experiment),
2. **पूर्व-पश्चात् परीक्षण** (Before-After Experiment).

1. **केवल 'पश्चात् माप' वाले प्रयोग (Only After Experiments):**

   इस प्रकार के प्रयोग में प्रयोगात्मक और यथास्थ समूह ऊपर बताई गई प्रविधियों के अनुसार बनाए जाते हैं। प्रारम्भ में कोई भी चर नहीं मापे जाते। फिर प्रयोगात्मक समूह पर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव डाला जाता है। यथास्थ समूह पर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव नहीं डाला जाता। प्रयोग के दौरन या अन्त में परतन्त्र चर ख को दोनों समूहों में मापते हैं। दोनों समूहों में ख का अन्तर, क का प्रभाव माना जाता है।

   इस अभिकल्प में यह सह-परिवर्तन का प्रमाण हमें इस प्रकार मिलता है कि प्रयोगात्मक समूह पर प्रयोगात्मक चर (कारण) का प्रभाव पड़ता हे। और यथास्थ समूह पर नहीं। इसलिए दोनों समूहों में परतन्त्र चर (कार्य) में पाया जाने वाला भेद प्रयोगात्मक चर के प्रभाव के कारण ही हो सकता है। घटनाक्रम का प्रमाण इस प्रकार मिलता है कि दोनों समूह प्रारम्भ में समान थे और यथास्थ समूह पर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव नहीं पड़ा। इसलिये यथास्थ समूह में ख का 'पश्चात्' माप (अर्थात् प्रयोग के पश्चात् का माप) प्रयोगात्मक समूह में ख के 'पूर्व' माप (अर्थात् प्रयोग के पूर्व का माप) के बराबर माना जा सकता है। इस प्रकार अन्त में दोनों समूहों में पाया हुआ भेद प्रयोगात्मक चर का प्रभाव पड़ने के बाद ही हो सकता है। अन्य सम्भव चरों के विलोपन का प्रमाण यथास्थ समूह के होने से मिलता है। अन्य चरों ने इसे भी प्रभावित किया होगा। इसलिये दोनों समूहों का भेद अन्य कारकों के प्रभाव को घटा कर आता है।

   इस प्रयोग के एक अच्छे उदाहरण में अमरीका में द्वितीय महायुद्ध के समय एक फिल्म 'द बेटल ऑफ ब्रिटेन' का प्रभाव देखा गया था। इसमें सेना की टुकड़ियों को मिलाकर दो समूह बनाये गये थे। यह समूह शिक्षा, आयु, जन्म-क्षेत्र, परीक्षाफल, प्रशिक्षण-स्तर आदि के आधार पर समान थे। फिर सिक्का उछाल कर तय किया गया कि कौनसा प्रयोगात्मक समूह माना जाये। इस समूह को साधारण प्रशिक्षण के कार्यक्रम के अन्तर्गत यह फिल्म दिखाई गई दूसरे समूह को यथास्थ समूह माना गया, फिल्म नहीं दिखाई गई। लगभग एक सप्ताह के बाद दोनों समूहों से एक प्रश्नावली भरवाई गई। सैनिकों को यह पता नहीं था कि उन पर कोई प्रयोग हो रहा है या फिल्म के प्रभाव का अध्ययन हो रहा है। दोनों समूहों के उतरों के भेद के आधार पर फिल्म के प्रभाव का पता लगाया गया।

2. **'पूर्व और पश्चात् माप' वाले प्रयोग (Before/After Experiment):**

   इस अभिकल्प में प्रयोगात्मक समूह तो सदा होता है किन्तु यथास्थ समूह कभी होता है और कभी नहीं। कभी-कभी दो या अधिक यथास्थ समूह भी होते हैं। इसके छः मुख्य प्रकार हैं :

   (अ) एक समूह द्वारा पूर्व और पश्चात्' अध्ययन,

   (ब) एक यथास्थ समूह वाला 'पूर्व और पश्चात्' अध्ययन,

5(स) समूहों को अदल-बदल पर 'पूर्व और पूश्चात्' अध्ययन,
(द) दो यथास्थ समूहों वाला 'पूर्व और पश्चात्' अध्ययन,
(य) तीन यथास्थ समूहों वाल 'पूर्व और पश्चात्' अध्ययन,
(र) दो या अधिक प्रयोगात्मक चरों के संयुक्त प्रभाव का अध्ययन।

(अ) **एक समूह द्वारा 'पूर्व और पश्चात्' अध्ययनः** इस प्रकार के अध्ययन की विशेष बात यह है कि इसमें यथास्थ समूह नहीं होता। एक ही समूह में प्रयोग के पहले और बाद के भेद को प्रयोगत्मक चर का प्रभाव मान लिया जाता है। साधारण जीवन में हम इस प्रकार के प्रयोग करते ही रहते हैं। जैसे किसी को कोई रोग है। वह एक दवा लेता है और उसका रोग कम हो जाता है। यह स्वास्थ्यलाभ को दवा का प्रभाव मान लेता है। वैज्ञानिक शोध से इस प्रकार के प्रयोग पर आधारित अनुमानों को पूर्ण रूप से प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। केवल किसी विशेष स्थिति में ही, जहाँ यथास्थ समूह बनाना सम्भव न हो, इसका उपयोग किया जाता है। जैसे, यदि किसी भोषण रोग की चिकित्सा से संबंधित शोध करनी हो और इस चिकित्सा से शीघ्र लाभ की आशा हो तो सम्भव है अपने प्रयोग में सभी रोगियों की हम यही चिकित्सा करें, यथास्थ समूह न बनाएँ। यहाँ यथास्थ समूह बनाने का अर्थ होगा कुछ रोगियों को इस चिकित्सा से वंचित रखना। इसलिए ऐसे प्रयोग में यह समूह नहीं बनाया जाता। निष्कर्ष भी पूर्णतया मान्य या प्रामाणिक नहीं होता।

(ब) **एक यथास्थ समूह वाला 'पूर्व और पश्चात्' अध्ययनः** प्रयोगात्मक अभिकल्प का सबसे सरल और अधिक प्रयुक्त होने वाला रूप यही है। इसमें प्रयोगात्मक और यथास्थ दोनों प्रकार के समूह बनाये जाते हैं और दोनों में पूर्व और पश्चात् परतन्त्र चर का माप किया जाता है। प्रयोग के पश्चात् दोनों समूहों के माप का अन्तर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव माना जाता है।

पढ़ाने में टेलीविजन पुराने तरीके से अधिक लाभकर है या नहीं, यह पता लगाने के लिए किये जाने वाले प्रयोग में हम इस प्रकार के अध्ययन का विवेचन कर आये हैं। इसमें दो लगभग एक जैसे समूह बनाकर दोनों को एक ही परीक्षा में बिठाते हैं। अब एक समूह के सब विद्यार्थियों के अंकों का औसत निकालते हैं। यह उस समूह का 'पूर्व' माप हुआ। इसी तरह दूसरे समूह का 'पूर्व' माप निकालते हैं। फिर सिक्का उछाल कर एक समूह को प्रयोगत्मक बना देते हैं अर्थात् इसे टेलीविजन की सहायता से पढ़ाते हैं। दूसरे समूह को यथास्थ कहते हैं, अर्थात् इसे पूराने तरीके से पढ़ाते हैं। शिक्षा-सत्र के अन्त में दोनों समूहों को फिर एक ही परीक्षा में बिठाते हैं। फिर दोनों समूहों का अलग-अलग 'पश्चात्' माप निकालते हैं। फिर प्रयोगात्मक समूह के 'पश्चात्' माप में से उसका 'पूर्व' माप घटाते हैं। इसे हम प्रयोगात्मक समूह में हुआ अन्तर कहेंगे। इसी तरह यथास्थ समूह में हुआ अन्तर भी निकालते हैं। अब यह देखते हैं कि कौनसा अन्तर अधिक है – प्रयोगात्मक समूह वाला या यथास्थ समूह वाला। यदि प्रयोगात्मक समूह में यथास्थ समूह से अधिक अन्तर हुआ है तो कहेंगे कि टेलीविजन से पढ़ाना अधिक लाभकर है, अन्यथा नहीं।

(स) **समूहों को अदल-बदल कर 'पूर्व और पश्चात्' अ ययनः** इस प्रकार के अध्ययन में, प्रयोगात्मक और यथास्थ दोनों समूह होते हैं। 'पूर्व माप केवल यथास्थ समूह में किया जाता है, प्रयोगात्मक समूह में नहीं किया जाता। प्रयोगात्मक चर का प्रभाव केवल प्रयोगात्मक समूह पर डाला जाता है। 'पश्चात्' माप केवल प्रयोगात्मक समूह में लिया जाता है। दोनों मापों का अन्तर प्रयोगत्मक चर का प्रभाव माना जाता है।

जैसा कि स्पष्ट हो गया होगा इस प्रकार के प्रयोग की विशेष बात यह है कि इसमें दोनों समूहों में प्रयोग के पूर्व और पश्चात् माप नहीं लिया जाता। एक में 'पूर्व और दूसरे (प्रयोगात्मक समूह) में 'पश्चात्' माप लिया जाता है। इसका एक विशेष लाभ है। कभी-कभी पहला माप लेने से दूसरा माप प्रभावित हो जाता है। जैसे यदि हम कुछ लोगों से दो बार साक्षात्कार करें तो सम्भव है वे दूसरी बार यह प्रयत्न करें कि उनके उत्तर पहली बार के उत्तरों से भिन्न न हों , चाहे फिर इस बीच उनके विचारों में परिवर्तन ही क्यों न आ गया हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'पूर्व' माप में 'पश्चात्' माप प्रभावित हो सकता है। इस समस्या का एक हल यह अभिकल्प है। इसमें हम जिन लोगों से पहली बार साक्षात्कार करते हैं उनसे दूसरी बार नहीं। इस प्रकार 'पूर्व' माप से 'पश्चात्' माप प्रभावित नहीं हो सकता। किन्तु चूँकि दोनों समूह प्रारम्भ में समान होते हैं, अतः यह मानना तर्कसंगत होगा कि प्रयोगात्मक समूह के लोगों से भी यदि पहले प्रश्न पूछे गये होते तो लगभग वही उत्तर मिलते तो यथास्थ समूह के लोगों से मिले थे। इसलिये दोनों मापों के अन्तर को प्रयोगात्मक चर का प्रभाव मान लेते है।

उदाहरण के लिए मान लें, मनोविज्ञान में सीखने के किसी प्रयोग में हम सिखान की किसी पद्धति का प्रभाव मापना चाहते हैं। हमारी कठिनाई यह है कि हमारे पास परीक्षण करने का एक ही ढंग है। साथ ही किसी भी व्यक्ति का एक परीक्षण दो बार नहीं किया जा सकता क्योंकि पहली बार के परीक्षण से दूसरी बार के परीक्षण के प्रभावित हो जाने की सम्भावना है। ऐसी स्थिति में हम दो एक जैसे समूह बनाकर केवल एक समूह का परीक्षण पहले करते हैं। यह 'पूर्व' माप हुआ। इस समूह को यथास्थ समूह कहते हैं और इसे नई पद्धति से नहीं सिखाते। दूसरे समूह को प्रयोगात्मक कहते हैं और नये ढंग से सिखाते हैं। अन्त में प्रयोगात्मक समूह का परीक्षण करते हैं। यह 'पश्चात्' माप हुआ। यहाँ हम यह मानकर चलते हैं कि दोनो समूहों के एक जैसे होने के कारण उनका 'पूर्व' माप लगभग एक जैसे ही था। इसलिए 'पश्चात्' और 'पूर्व' मापों का भेद प्रयोगात्मक चर का प्रभाव माना जा सकता है।

(द) **दो यथास्थ समूहों वाला 'पूर्व और पश्चात्' अध्ययनः** यह अभिकल्प एक दूसरी कठिन समस्या को हल करता है। यह पिछले दोनों अभिकल्पों के मिश्रण से बनता है। जैसे पिछले अभिकल्प में हमने देखा था कि कभी-कभी 'पूर्व' माप 'पश्चात्' माप को प्रभावित कर देता है, उसी प्रकार कभी-कभी 'पूर्व' माप प्रयोगात्मक चर को भी प्रभावित कर देता है। इस प्रकार प्रयोगात्मक चर का विशुद्ध प्रभाव हम नहीं जान पाते। प्रयोगात्मक चर के 'पूर्व' माप द्वारा

इस प्रकार प्रभावित हो जाने को दोनों की अन्योन्य क्रिया कहते हैं। इस अभिकल्प द्वारा हम प्रयोगात्मक चर का प्रभाव और अन्योन्य क्रिया दोनों का पता लगा लेते हैं। इसमें दो यथास्थ समूह होते हैं। प्रयोगात्मक और दोनों यथास्थ समूह लगभम एक जैसे होते हैं। प्रयोगात्मक समूह में 'पूर्व' और 'पश्चात्' दोनों माप लिए जाते हैं। प्रथम यथास्थ समूह में भी 'पूर्व' और 'पश्चात्' माप लिये जाते है। प्रयोगात्मक समूह पर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव डाला जाता है, किन्तु पहले यथास्थ समूह पर नहीं। द्वितीय यथास्थ समूह में 'पूर्व' माप नहीं लिया जाता, इस पर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव डाला जाता है और 'पश्चात्' माप लिया जाता है।

यद्यपि द्वितीय यथास्थ समूह का 'पूर्व' माप नहीं लिया जाता, हम यह माप का अनुमान कर लेते हैं। हम यह मान लेते हैं कि तीनों समूहों में प्रयोग क 'पूर्व' माप लगभग एक जैसा था। इसलिए प्रयोगात्मक समूह और प्रथम यथास्थ समूह के 'पूर्व' मापों की औसत को हम द्वितीय यथास्थ समूह के 'पूर्व' माप के बराबर मान लेते हैं। इस प्रकार द्वितीय यथास्थ समूह के 'पूर्व' माप का हम अनुमान कर लेते हैं। इसका 'पश्चात्' माप हम स्वयं ले लेते हैं। इस पर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव डाला जात है किन्तु इनमें 'पूर्व' माप और प्रयोगात्मक चर के बीच अन्योन्य किया की सम्भावना नहीं है, क्योंकि 'पूर्व' माप वास्तव में इसमें कभी नहीं लिया गया। साथ ही 'पूर्व' माप द्वारा 'पश्चात्' माप के प्रभावित होने की सम्भावना भी नहीं है। इसलिए इस समूह के (अनुमानित) 'पूर्व' और 'पश्चात्' मापों का अन्तर प्रयोगात्मक चर का विशुद्ध प्रभाव बताता है।

प्रथम यथास्थ समूह पर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव नहीं पड़ा इसलिए वहाँ भी अन्योन्य क्रिया नहीं हो सकती। इसलिए यदि यह मानता तर्कसंगत हो कि अन्य सम्भव चरों का प्रभाव नगण्य है, तो प्रथम यथास्थ समूह में 'पूर्व' और 'पश्चात्' मापों में यदि कोई अन्तर है तो वह 'पूर्व' माप के प्रभाव स हो सकता है।

प्रयोगात्मक समूह पर प्रयोगात्मक चर का प्रभाव पड़ा है, 'पूर्व' माप हुआ है और अन्योन्य क्रिया की सम्भावना भी है, इसलिए इस समूह में 'पूर्व' और 'पश्चात्' मापों का अन्तर इन तीनों प्रभावों का योग है।

अपने अनुमानों को संक्षेप में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि यदि यह मानना तर्कसंगत हो कि अन्य सम्भव चरो (जैसे समसामयिक घटनाओं और विकास की प्रक्रियाओं) का महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा है तो :

1. प्रयोगात्मक समूह में 'पूर्व और 'पश्चात्' मापों का अन्तर (ख) = प्रयोगात्मक चर का प्रभाव + 'पूर्व' माप का 'पश्चात्' माप पर प्रभाव + अन्योन्य क्रिया;
2. प्रथम यथास्थ समूह में 'पूर्व' और 'पश्चात्' मापों का अन्तर (ख) = 'पूर्व' माप का 'पश्चात्' माप पर प्रभाव; और
3. द्वितीय यथास्थ समूह में (अनुमानित) 'पूर्व' और 'पश्चात्' मापों का अन्तर ($ख_2$) = प्रयोगात्मक चर का प्रभाव।

इस प्रकार द्वितीय यथास्थ समूह का 'पश्चात्' माप और 'अनुमानित' 'पूर्व' माप का अन्तर हमें प्रयोगात्मक चर का विशुद्ध प्रभाव बता देता है।

साथ ही हमें अन्योन्य क्रिया का भी अनुमान हो जाता है। ऊपर के समीकरणों से स्पष्ट है कि

ख – अन्योन्य क्रिया = $ख_1$ + $ख_2$
अन्योन्य क्रिया = ख – ($ख_1$ + $ख_2$)

(य) **तीन यथास्थ समूहों वाला 'पूर्व और पश्चात्' अध्ययनः** ऊपर के अन्तिम अभिकल्प में हमने यह मान लिया था कि समसामयिक घटनाओं और विकास की प्रक्रियाओं का प्रभाव नगण्य है। किन्तु यह मानना तर्कसंगत न हो और यह सम्भावना भी हो कि अन्योन्य क्रिया हो रही है तो हम तीन यथास्थ समूहों वाले अभिकल्प का उपयोग करते हैं। इसमें जो नया, त तीय यथास्थ समूह होता है उसक 'पूर्व' माप नहीं लिया जाता, उस पर प्रयोगात्क्म चर का प्रभाव भी नहीं डाला जाता, केवल 'पश्चात्' माप लिया जाता है। इस प्रकार इस समूह का 'पश्चात्' माप पर समसामयिक और विकासात्मक आदि अन्य सम्भव चरों का प्रभाव तो होता है, 'पूर्व' माप और प्रयोगात्मक चर का प्रभाव नहीं होता। बाकी अभिकल्प ठीक वैसा ही रहता है जैसे दो यथास्थ समूहों वाला था। इसके अनुमानों को हम इस प्रकार कह सकते हैं:
प्रयोगात्मक समूह में 'पूर्व' और पश्चात्' मापों का अन्तर

(ख) = प्रयोगात्मक चर का प्रभाव + अन्य सम्भव चरों का प्रभाव + 'पूर्व' माप का 'पश्चात्' माप पर प्रभाव + अन्योन्य क्रिया।

प्रथम यथास्थ समूह में 'पूर्व और 'पश्चात्' माप पर प्रभाव।
द्वितीय यथास्थ समूह में (अनुमानित) 'पूर्व' और 'पश्चात्' मापों का अन्तर
(ख) = प्रयोगात्मक चर का प्रभाव + अन्य सम्भव चरों का प्रभाव।

त तीय यथास्थ समूह में (अनुमानित) 'पूर्व' और 'पश्चात्' मापों का अन्तर
(ख) = अन्य सम्भव चरों का प्रभाव।

ऊपर के समीकरणों से स्पष्ट है कि -
(1) प्रयोगात्मक चर का प्रभाव = $ख_2$ - $ख_3$
(2) अन्योन्य क्रिया = ख - ($ख_1$ + $ख_2$ - $ख_3$)
= ख - ($ख_1$ + $ख_2$ - $ख_3$)

इस प्रकार हम प्रयोगात्मक चर का विशुद्ध प्रभाव और अन्योन्य क्रिया दोनों को मापने में समर्थ हो जाते हैं।

(र) **दो या अधिक प्रयोगात्मक चरों के संयुक्त प्रभाव का अध्ययनः** ऊपर के अभिकल्पों में हमने केवल एक प्रयोगात्मक चर का प्रभाव जानने का प्रयत्न किया है। किन्तु कभी-कभी दो या अधिक प्रयोगात्मक चर एक साथ सक्रिय होते हैं। इसके संयुक्त प्रभाव के अध्ययन के लिए हमें अधिक जटिल अभिकल्प बनाने होते हैं, जिनमें बहुत से समूह होते हैं। फिर अनुमान के लिए सांख्यिकी की विशेष प्रविधियों जैसे अन्तर्वर्ग विश्लेषण का उपयोग किया जाता है।

प्रयोगात्मक अभिकल्प की आलोचना
(Criticism of Experimental Design)

प्रयोगात्मक अभिकल्प का लाभ यह है कि इसके द्वारा हम विभिन्न कारकों के प्रभाव का वैज्ञानिक पद्धति से पता लगा सकते हैं, अर्थात् चरों कें सम्बन्धों के विषय में अमूर्त परिकल्पनाओं का परीक्षण कर सकते हैं। यदि ये परिकल्पनाएँ सत्य सिद्ध हों तो हमारे सिद्धान्त को बल मिलेगा और अन्य परीक्षणों द्वारा हम नियमों की खोज की दिशा में प्रगति कर सकेंगे।

प्रयोग की पद्धति में कुछ हानियाँ भी हैं। इसकी एक आलोचना यह है कि केवल दो चरों के सम्बद्ध का अध्ययन करते समय यह अन्य चरों के प्रभाव को आँखों से ओझल कर देती है। दूसरे शब्दों में, प्रयोग की पद्धति चरों को एक-दूसरे से कृत्रिम ढंग से अलग कर देती है। वास्तव में, चर अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग प्रभाव डालते हैं। जैसे एक प्रकार की परिस्थिति में सत्तावादी नेत त्व प्रभावशाली हो सकता है और दूसरे प्रकार की स्थिति में प्रभावहीन। इस आलोचना के अनुसर सामाजिक विज्ञान में शोध को प्रयोग के स्थान पर क्षेत्रीय अध्ययन का रूप लेना चाहिये जिसमें विभिन्न परिस्थितियों के प्रतिनिधि प्रतिदर्श का अध्ययन किया जायें। इसमें चरों के नियन्त्रण की प्रचलित पद्धति को छोड़ना होगा। जिन परिस्थितियों का अध्ययन किया जा रहा है उनमें जो अन्योव्य क्रिया मिलती है वह हम स्वीकार कर लेंगे। इस प्रकार के अध्ययनों के मुख्य उपकरण होते हैं साँख्यिकी की आँशिक सह-सम्बन्ध और बहु-समबन्ध की प्रविधियाँ। मनोविज्ञान के क्षेत्र में इस पद्धति का विशेष उपयोग हुआ है।

शोध-अभिकल्प का निर्माण

अब तक हम यह जान चुके हैं कि शोध-अभिकल्प किसी भी अनुसन्धान के लिए कितना महत्त्व रखता है। इसके साथ ही हम शोध-अभिकल्प के विभिन्न प्रकारों से भी अवगत हो चुके हैं। अब हमारे समक्ष अगला प्रश्न आता है शोध अभिकल्प के निर्माण का। सभी शोध-अभिकल्प के निर्माण की एक निश्चित प्रक्रिया है जो कि, सभी शोध-अभिकल्पों पर समान रूप से लागू होती है। इस प्रक्रिया में अनेक चरण हैं जिनका वर्णन हम नीचे कर रहे हैं :

1. अनुसन्धान प्ररचना में सर्वप्रथम अध्ययन समस्या (Study Problem) का प्रतिपादन किया जाना चाहिए।
2. वर्तमान में जो अनुसन्धान कार्य किया जा रहा है उसको अनुसन्धान समस्या से स्पष्ट रूप से सम्बन्धित करता अनुसन्धान प्ररचना का दूसरा मुख्य चरण है।
3. वर्तमान में हमें जो अनुसन्धान कार्य करना है उसकी सीमाओं (Boundries) को स्पष्ट रूप से निर्धारित करना।
4. अनुसन्धान प्ररचना का चौथा चरण में हम अनुसंधान के विभिन्न क्षेत्रों का विस्त त विवरण प्रस्तुत करने का है।
5. अनुसन्धान प्ररचना के इस चरण में हम अनुसन्धान परिणामों के प्रयोग के विषय में निर्णय लेते हैं।
6. इसके पश्चात् हमें अवलोकन, विवरण तथा परिमापन के लिए उपयुक्त चरों का चयन करना चाहिए तथा इन्हें स्पष्ट रूप से परिभाषित करना चाहिए।
7. तदुपरान्त अध्ययन क्षेत्र (Study Area) एवं समग्र (Universe) का उचित चयन एवं इनकी परिभाषा प्रस्तुत करनी चाहिए।

8. इसके बाद अध्ययन के प्रकार एवं विषय-क्षेत्र के विषय में विस्त त निर्णय लेने चाहिए।
9. अनुसन्धान प्ररचना के आगामी चरण में हमें अपने अनुसन्धान के लिए उपयुक्त विधियों (Methods) एवं प्रविधियों (Techniques) का चयन करना चाहिए।
10. इसके बाद अध्ययन में निहित मान्यताओं (Assumptions) एवं उपकल्पनाओं (Mypothesis) का स्पष्ट उल्लेख करना चाहिए।
11. बाद में उपकल्पनाअें की परिचालनात्मक परिभाषा (Operational Definition) करते हुए उसे इस रूप में प्रस्तुत करना चाहिए कि वह परीक्षण के योग्य हो।
12. अनुसन्धान प्ररचना के आगामी चरण के रूप से हमें अनुसन्धान के दौरान प्रयुक्त किए जाने वाले प्रलेखों (Documents), रिपोर्टों (Reports) एवं अन्य प्रपत्रों का सिंहावलोकन करना चाहिए।
13. तदुपरान्त अध्ययन के प्रभावपूर्ण उपकरणों का चयन एवं इनका निर्माण करना तथा इनका व्यवस्थित पूर्व-परीक्षण (Pre-Testing) करना
14. आँकड़ों के एकत्रीकरण का सम्पादन (Editing) किस प्रकार किया जाएगा इसकी विस्त त व्यवस्था का उल्लेख करना।
15. आँकड़ों के सम्पादन की व्यवस्था के उल्लेख के बाद उनके वर्गीकरण (Classification) हेतु उचित श्रेणियों (Categories) का चयन किया जाना एवं उनकी परिभाषा करना।
16. आँकड़ों के संकेतीकरण (Condification) के लिए समुचित व्यवस्था का विवरण तैयार करना।
17. आँकड़ों को प्रयोग योग्य बनाने हेतु सम्पूर्ण प्रक्रिया की समुचित व्यवस्था का विकास करना।
18. आँकड़ों के गुणात्मक (Qualitative) एवं संख्यात्मक (Quantitative) विश्लेषण के लिए विस्त त रूपरेखा तैयार करना।
19. इसके पश्चात् अन्य उपलब्ध परिणामों की प ष्ठभूमि में समुचित विवेचन की कार्यविधियों का उल्लेख करना।
20. अनुसन्धान प्ररचना के इस चरण में हम अनुसन्धान प्रतिवेदन (Research Report) के प्रस्तुतीकरण के बारे में निर्णय लेते हैं।
21. अनुसन्धान प्ररचना का यह चरण सम्पूर्ण अनुसन्धान प्रक्रिया में लगने वाला समय, धन एवं मानवीय श्रम का अनुमान लगाने का है। इसी दौरान हम प्रशासकीय व्यवस्था की स्थापना एवं विकास का अनुमान भी लगाते हैं।
22. यदि आवश्यक हो तो पूर्व-परीक्षणों (Pre-Tests) एवं पूर्वगामी अध्ययनों (Pilot-Studies) का प्रावधान करना।
23. अनुसन्धान प्ररचना के इस चरण में हम कार्यविधियों (Proceducres) से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रक्रिया, नियमों, उपनियमों को विस्तारपूर्वक तैयार करते है।
24. अनुसन्धान के इस चरण में हम कर्मचारियों, अध्ययनकर्त्ताओं के प्रशिक्षण के ढंग एवं कार्य विधियों का उल्लेख करते हैं।
25. अनुसन्धान प्ररचना के इस अन्तिम चरण में हम यह प्रावधान करते हैं कि समस्त कर्मचारी एवं अध्ययन अनुसन्धानकर्त्ता एक सामंजस्य की स्थिति को बनाए रखते हुए कार्य के नियमों, कार्यविधियों की पालन करते हुए किस प्रकार सन्तोषप्रद ढंग से कार्य को पूर्ण करेंगे।

शोध-अभिकल्प की विषय-वस्तु

शोध-प्रचना के विभिन्न चरणों का अध्ययन करने के बाद यह भी आवश्यक हो जात है कि हम यह जान लें कि शोध-अभिकल्प में किन-किन बातों का समावेश किया जाता है अर्थात शोध-अभिकल्प की विषय-वस्तु क्या होती है। सामान्यतः अनुसन्धान अभिकल्प मे निम्न लिखित विषयों का समावेश किया जाता है :

1. **शोध का विषय** (Topic of Research): ऐसा करने से अध्ययन के विषय का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है तथा उसके क्षेत्र एवं सीमाओं का पता चल पाता है। उसके स्वरूप निर्धारण, खोज आदि के विषय में उपलब्ध साहित्य पत्र-पत्रिकाओं आदि का अध्ययन करना पड़ता है। अध्ययन के स्रोत सरकारी, गैर सरकारी, व्यक्तिगत, पुस्तकालयों या परिवेश सम्बन्धी हो सकते हैं।

2. **अध्ययन की प्रकृति** (Nature of Study): इसमें शोध का प्रकार एवं स्वरूप निर्धारित करना पड़ता है। वह साँख्यिकीय, व्यक्तिगत, तुलनात्मक, प्रायोगिक, विश्लेषणात्मक, अन्वेषणात्मक या मिश्रित प्रकार का हो सकता है।

3. **प्रस्तावना एवं प ष्ठभूमि** (Introduction & Background): इसमें उस विषय को चुनने की प ष्टभूमि बतानी पड़ती है तथा उसकी शुरूआत करनी पड़ती है। इससे पता चल जाता है कि शोधक की उक्त विषय में रुचि किस प्रकार उत्पन्न हुई तथा समस्या का स्वरूप एवं स्थिति क्या थी। अब तक उस समस्या का किस-किस ने तथा किन परिणामों को प्राप्त एवं अध्ययन किया? उनमें क्या कमियाँ एवं त्रुटियाँ रहीं? उनको अब दूर किया जाना किस प्रकार सम्भव एवं वाँछनीय है? आदि।

4. **उद्देश्य** (Objectives): इसमें अनुसन्धानकर्त्ता या अन्वेषक अपना उद्देश्य बताता है। इसमें वह उप-उद्देश्य या लक्ष्य भी की प्रकट करता है, अर्थात् प्रमुख एवं सहायक उद्देश्यों का उल्लेख करता है। ये प्रायः चार या पाँच वाक्यों में स्पष्ट किए जाते हैं।

5. **अध्ययन का सामाजिक, साँस्कृतिक, राजनीतिक एवं भौगोलिक सन्दर्भ** (Social, Cultural, Political & Geographical Context of Study): इसमें शोधक स्पष्ट करता है कि वह किस प्रकार के समाज एवं संस्कृति के पर्यावरण में रह रहा है तथा उसके प्रमुख मूल्य, परम्पराएँ, मान्यताएँ आदि क्या हैं? इसमें स्थानीय मानक, रीति-रिवाज, परिपाटियाँ, आदि भी आ जाती हैं। इसके सन्दर्भ मे राजनीतिक व्यवस्था, व्यवहार एवं मूल्यों का उल्लेख कर दिया जाता है। भौगोलिक सन्दर्भ में मानव-व्यवहार को प्रभावित करने वाले तथ्य, स्थिति, जलवायु, प्राकृतिक बनावट, प्रकृति, उत्पादन आदि आते हैं। यदि सम्भव हो तो आर्थिक परिवेश का भी परचिय दे दिया जाना चाहिए। राजनीतिक शोध को सामाजिक, साँस्कृतिक, आर्थिक एवं औद्योगिक आयामों में समायोजित करना चाहिए।

6. **अवधारणा, चर एवं प्रकल्पना** (Concept,Variable & Hypothesis): इस क्षेत्र में सबसे पहले यदि कोई सिद्धान्त या अवधारणात्मक रूपरेखा को आधार बनाया गया है, तो उसका उल्लेख किया जाना आवश्यक है। उसके सन्दर्भ में प्रमुख अवधारणाओं को स्पष्ट किया जाना चाहिए। उनको सुनिश्चित बनाने के लिए उनकी कार्यकारी परिभाषाएँ दी जानी चाहिए। जैसे यदि 'भ्रष्टाचार' की अवधारणा के प्रयुक्त किया गया है तो यह बताया जाना चाहिए कि उसे किन अर्थों में प्रयोग किया गया है। इसी तरह, यह बताया जा सकता है कि

किन-किन चरों को केन्द्रीय विषय बनाया जा रहा है तथा उनसे सम्बन्धित कौन-कौन सी प्रकल्पनाओं का निर्माण किया गया हैं। जैसा कि पीछे बताया जा चुका है कि प्रकल्पनाओं का निर्माण अन्वेषण को सुनिश्चित बना देता है तथा उनसे शोध की दिशा, सीमा, क्षेत्र आदि निर्धारित हो जाते हैं।

कोहन एवं नगेल ने बताया है कि हम समस्या के प्रस्तावित व्याख्याओं या समाधान के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। ये समस्या से सम्बद्ध विषय-सामग्री तथा शोधक के पूर्वज्ञान द्वारा सुझाए जाते हैं। जब इन सुझावों या व्याख्याओं को प्रस्तावनाओं की तरह रखा जाता है, वे प्रकल्पनाएँ कहलाती हैं। ये प्रकल्पनाएँ तथ्यों में सुव्यवस्था लाकर शोध को निर्देशित कर देती हैं।

7. **काल-निर्देश (Period-indication):** इसमें यह बताया जाता है कि शोध किस समय, काल या परिवेश से सम्बन्धित है। समय राजनीतिक अनुसन्धान में एक अतिशय महत्त्वपूर्ण कारक होता है।

8. **तथ्य-सामग्री के चयन के आधार एवं संकलन प्रविधियाँ (Basis of Selection of Datas and Techniques of Collection):** इसमें तथ्य सामग्री के चयन के आधार बताए एवं निश्चित किए जाते हैं। यहाँ उनका औचित्य भी स्पष्ट किया जाना चाहिएं ये आधार प्रलेखीय, भौतिक अथवा वैचारिक प्रेक्षणीय आदि हो सकते हैं। तथ्य-संकलन की प्रविधियाँ मानवीय या मशीनी हो सकती हैं। अवलोकन, प्रश्नावली, साक्षात्कार, प्रेक्षपण आदि युक्तियों के द्वारा तथ्य एकत्र किए जा सकते हैं। इनकी उपयुक्तता पर ध्यान दिया जाना आवश्यक होता है।

9. **विश्लेषण एवं निर्वचन (Analysis and interpretation):** सामग्री के एकत्रित होने के बाद उसके सारणीयन, वर्गीकरण एवं विश्लेषण प्रणालियों का संकेत दिया जा सकता है। उसके निर्वचन में कौन सी पद्धतियों का सहारा लिया जाएगा? अथवा उसकी सामान्यता या प्रामाणिकता की मात्रा क्या होगी? आदि बातों का उल्लेख न्यूनाधिक मात्रा में किया जा सकता है।

10. **सर्वेक्षण-काल, समय एवं धन (Survey-Period, Time and Money):** इसमें यह भी संकेत दिया जाना चाहिए कि सर्वेक्षण कितने समय के भीतर सम्पन्न हो सकता। उसे लगातार एक ही बार, या कई बार किया जाएगा? इसी प्रकार शोध में लगने वाले समय एवं धन का अनुमान भी बताया जाना चाहिए।

यंग ने रोले के एक आदर्श-अनुसन्धान-अभिकल्प को प्रस्तुत किया है। उसमें कुल बारह बातें बताई गई हैं :

1. **शोध-विषय की प्रकृतिः** व्यक्तिगत, दो या अधिक व्यक्तियों के समूह, उप-समूह, समाज या इनके मिश्रित समूह।
2. **घटनाओं की संख्याः** एक, कुछ चयनित घटनाएँ, या कई चुनी हुई घटनाएँ।
3. **सामाजिक-भौतिक परिवेशः** किसी एक समय में एक ही समाज से सम्बद्र मामले, या कई समाजों के कई मामले।
4. **घटनाओं को चुनने की प्राथमिक आधारः** प्रतिनिधित्वपूर्ण, विश्लेषणात्मक या दोनों।

5. **समय का तत्त्वः** (एक ही समय में किया जाने वाला) स्थैतिक अध्ययन, (एक प्रक्रिया या लम्बे समय में घटित परिवर्तन वाला) गत्यात्मक अध्ययन।
6. अध्ययन के अन्तर्गत व्यवस्था के ऊपर शोधक के नियन्त्रण की सीमा, व्यवस्थित या अव्यवस्थित नियन्त्रण।
7. **आधार-सामग्री के मूल स्रोतः** प्रस्तुत उद्देश्य के लिए शोधक द्वारा नई आधार-सामग्री का संकलन (शोध-समस्या की आवश्यकता के अनुसार)।
8. **आधार-सामाग्री को एकत्र करने की पद्धतिः** अवलोकन, प्रश्न या दोनों अमिश्रित, या अन्य कोई।
9. **शोध में प्रयुक्त चरों या गुणों की संख्याः** एक, कुछ या कई।
10. **एक गुण का विशेषण करने की पद्धतिः** अव्यवस्थित वर्णान, चरों का मापन।
11. **विभिन्न गुणों या चरों के मध्य सम्बन्धों के विश्लेषण की पद्धतिः** अव्यवस्थित वर्णन, व्यवस्थित विश्लेषण।
12. ऐकिक या सामूहिक रूप में व्यवस्था के गुणों का अध्ययन।

एक अच्छे अन्वेषण-रूपाँकन या प्ररचना में अनेक विशेषताएँ पाई जाती हैं। वह शोध-प्रक्रिया के दौरान आवश्यकतानुसार संशोधित एवं परिवर्तित किए जा सकने के कारण लचीला होता है। उसकी अवधारणाएँ स्पष्ट, सुनिश्चित एवं आनुभविक होती हैं। इससे शोध में परिशुद्धता आ जाती है। दूसरे शब्दों में, शोध को अभिनतियों तथा पूर्वाग्रहों से बचाने का पूर्व प्रबन्ध कर लिया जाता है। ऐसा करने से उसमें विश्वसनीयता बढ़ जाती है। शोध-प्ररचना सभी उपलब्ध सामग्री, साधनों एवं स्रोतों का अध्ययन करने के पश्चात् ही बनाई जाती है। उसको सभी सम्बद्ध पक्षों से जोड़ने का प्रयास भी किया जाता है। किन्तु ऐसा करते समय अन्य विषयों या अनुशासनों से सामग्री यथावत् ग्रहण नहीं की जाती। उसमें अवधारणाओं को प्रयोग करते समय राजनीतिक सन्दर्भ का ध्यान रखा जाता है। चरों का स्वरूप स्पष्ट कर देने से शोधक अपने मूल्यों को प थक रखने में सफल हो जाता है और अनुसन्धान मूल्य मुक्त बन जाता है। अनुसन्धान प्रकल्प की उपयुक्त सभी विशेषताएँ एवं अंश किन्हीं कटोर एवं निर्धारित मार्गों पर चलने को बाध्य नहीं हैं। नई स्थितियों, दशाओं एवं विशेषताओं के द ष्टिगोचर हो जाने पर उनमें स्पष्टीकरण देते हुए परिवर्तन कर लिया जाता है। वस्तुतः राजनीतिक-विषयक अनुसन्धान-प्रकल्प में ऐसा करना आवश्यक भी हो जाता है।

अध्याय - 5

परिकल्पना या उपकल्पना या प्राक्कल्पना

(Hypothesis)

सामाजिक शोध सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है और कोई भी अध्ययन तब तक वैज्ञानिक नहीं हो सकता जब तक उनमें वैज्ञानिक पद्धति को काम में ने लायाजाए इस वैज्ञानिक पद्दति का सदुपयोग तब तक नहीं हो सकता जब तक हमें अपने अध्ययन-विषय के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ आरम्भिक ज्ञान एवं सामान्य अनुभव न हो। इस आरम्भिक ज्ञान व अनुभव के आधार पर हम अपने अध्ययन-विषय के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में एक सामान्य अनुमान पहले से ही लगा सकते हैं। यह सामान्य अनुमान शोधकर्त्ता के लिए एक मार्ग-निर्देशक बन जाता है और शोधकर्त्ता का ध्यान कुछ निश्चित व आवश्यक तथ्यों पर ही केन्द्रित करके अनुसन्धान की दिशा को निर्धारित करता है और उसे अनिश्चितता के अन्धकार में भटकने से बचा देता है। उदाहरणार्थ, यदि हमारा अध्ययन-विषय 'बाल-अपराध' है तो हम अपने आरम्भिक ज्ञान व सामान्य अनुभव के आधार पर एक कामचलाऊ अनुमान यह कर सकते हैं कि निर्धनता व टूटे परिवार ही बाल-अपराध को जन्म देने के सबसे प्रभावशाली कारक हैं। उस अवस्था में हमारा यह अनुमान हमारे अध्ययन-कार्य में अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा क्योंकि हमें यह निश्चित रूप में पता होगा कि हमें आर्थिक तथा पारिवारिक कारकों पर ध्यान केन्द्रित करना है, उन्हीं से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित करना है और फिर देखना है कि जो 'अनुमान' हमने आरम्भ में लगाया था वह सही है अथवा गलत। इसी आरम्भिक सामान्य तथा कामचलाऊ अनुमान को जो कि आगे के अध्ययन-कार्य का आधार और वैज्ञानिक के लिए एक सहारा बन जाता है, कार्य-निर्वाही अथवा कामचलाऊ अनुमान को जो कि आगे के अध्ययन-कार्य का आधार और वैज्ञानिक के लिए एक सहारा बन जाता है, कार्य-निर्वाही अथवा कामचलाऊ प्राक्कल्पना या उपकल्पना (Working Hypothesis) कहते हैं। प्रो॰ यंग (Young) के अनुसार कार्यनिर्वाही अथवा कामचलाऊ प्राक्कल्पना का निर्माण वैज्ञानिक पद्धति का प्रथम चरण (first step) हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि **"उपकल्पना का निर्माण वैज्ञानिक अनुसन्धान का अन्तिम लक्ष्य नहीं है।"** अर्थात् अपने उपकल्पना को सच प्रमाणित करने के उद्देश्य से वैज्ञानिक अनुसन्धान-कार्य में उपकल्पना का निर्माण नहीं किया जाता। वैज्ञानिक अनुसन्धान का अन्तिम लक्ष्य तो सच को ढूंढ़ निकालना है और सत्य की खोज वास्तविक तथ्यों के आधार पर ही सम्भव है, न कि उपकल्पना के आधार पर उपकल्पना का निर्माण तो हम केवल इसलिए करते हैं कि अध्ययन-कार्य में हमें निश्चित रूप से क्या करना है उसके सम्बन्ध में हमें एक अन्दाजा लग जाए और हम एक ही समय में एक ही विषय से सम्बन्धित सभी पहलुओं पर अपने ध्यान को बिखरा देने की गलती न करके अपने अनुसन्धान-क्षेत्र को सीमित करके अपने उपकल्पना या प्राक्कल्पना के अनुसार अध्ययन-विषय के एक विशिष्ट पहलू पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। और उसी से सम्बन्धित तथ्यों

को एकत्रित करें। इस प्रकार उपकल्पना हमें अध्ययन-कार्य के दौरान इधर-उधर भटकने से बचाता है और हम एक निश्चित दिशा में सत्य की खोज में आगे बढ़ सकते हैं। हो सकता है कि वास्तविक तथ्यों को एकत्रित कर लेने के पश्चात् हम यह पायें कि अपने अध्ययन-विषय के सम्बन्ध में जिस उपकल्पना का निर्माण हमने किया था, वह गलत है और वास्तविक तथ्यों के सन्दर्भ में उसे बदलने की आवश्यकता है। अर्थात् प्राक्कल्पना (उपकल्पना) के निर्माण के बाद हम अपने अध्ययन-कार्य के दौरान विषय से सम्बन्धित कुछ वास्तविक तथ्यों को एकत्रित करते हैं और फिर उन तथ्यों के आधार पर उस उपकल्पना की परीक्षा करते हैं कि वह सही है अथवा गलत। दूसरे शब्दों में, वास्तविक तथ्यों के आधार पर उपकल्पना को सही या गलत प्रमाणित करना वैज्ञानिक अनुसन्धान का अन्तिम लक्ष्य है, न कि केवल उपकल्पना का निर्माण। हाँ, यह सच है कि उपकल्पना का निर्माण कुछ वैज्ञानिक उद्देश्यों की पूर्ति करने में मदद करता हे अर्थात् अनुसन्धान-कार्य में सहायक सिद्ध होता है। प्राक्कल्पना के इस महत्व या लक्ष्यों की विवेचना इसी अध्याय में आगे के प ष्ठों में करेंगे। पर उससे भी पहले प्राक्कल्पना के वास्तविक अर्थ व प्रकृति को समझ लेना आवश्यक होगा।

परिकल्पना की परिभाषा

विभिन्न सामाजिक विद्वानों ने परिकल्पना को अलग-अलग तरह से परिभाषित किया है। नीचे कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं को प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. बेबस्टर न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी आफ दी इंगलिश लेंगवेज के अनुसार 'एक परिकल्पना,' एक विचार, दशा या सिद्धांत होती है जो कि सम्भवतः बिना किसी विश्वास के मान ली जाती है जिससे कि उसके तार्किक परिणाम निकाले जा सकें और ज्ञात या निर्धारित किए जाने वाले तथ्यों की सहायता से इस विचार की सत्यता की जाँच की जा सके।"
2. एमोरी एस॰ बोगार्डस ने इसे **"परीक्षित किए जाने वाले विचार के रूप में परिभाषित किया है।"**
3. पी॰वी॰ यंग के अनुसार, "एक अस्थाई लेकिन केन्द्रीय महत्व का विचार जो उपयोगी अनुसंधान का आधार पर बन जाता है, उसे हम एक कार्यकारी परिकल्पना कहते हैं।"
4. लुण्डवर्ग के अनुसार, "एक परिकल्पना एक सामाजिक या कार्यवाह सामान्यीकरण होता है जिसकी सत्यता का परीक्षण करना अभी शेष रहता है।"
5. गुड व स्केट्स के शब्दों में, 'एक परिकल्पना प्रेक्षित तथ्यों या अवस्थाओं को समझाने और अध्ययन को आगे मार्ग दर्शित करने के लिए बनाया गया व अस्थाई रूप में अपनाई गई एक बुद्धिमत्तापूर्ण कल्पना का निष्कर्ष होता है।"
6. प्र॰ गुडे एवं हाट के शब्दों में "एक परिकल्पना एक विचार है जिसकी सत्यता या सार्थकता को आँकने के लिए उसको परीक्षा हेतु रखा जाता है।"
7. बर्नाड फिलिप्स लिखते हैं कि, "वे किसी घटना में विद्यमान सम्बन्धों के विषय में अस्थाई कथन है।" परिकल्पनाओं को 'प्रकृति से पूछे गए प्रश्न' कहा जाता है और वे वैज्ञानिक अनुसंधान में प्राथमिक महत्व के यंत्र होते हैं।
8. पीटर एच॰ मैनन की परिकल्पना को "एक कार्यवाहक कल्पना" ही मानते हैं।
9. एम॰एन॰ गोपाल ने परिकल्पना को इन शब्दों के साथ परिभाषित किया हैः "यह ज्ञात व प्राप्त तथ्यों के एक सामान्य प्रेक्षण पर आधारित एक कार्यवाहक या अस्थाई उपचार या

हल होता है, जो कि कुछ विशेष घटनाओं के समझने व अन्य की खोज में मार्गदर्शन के लिए अपनाया जाता है।

परिकल्पनाओं के उपर्युक्त प्रकारों के आधार पर अन्त में प्रो॰ गुडे एवं हाट ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए लिखा है कि, "वास्तव में अधिक जटिल अनुसंधान के क्षेत्रों में पुनः शोध करने के लिए उपकरणों और समस्याओं का निर्माण करना इस प्रकार की परिकल्पना का महत्वपूर्ण कार्य है।

परिकल्पना की विशेषताएँ

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह ज्ञात होता है कि परिकल्पना एक ऐसा पूर्व विचार, निष्कर्ष या सामान्यीकरण होता है जिसे कि अध्ययनकर्ता अपने अनुसंधान की समस्या के बारे में बना लेता है और फिर उसकी सार्थकता की जाँच करने के लिए आवश्यक तथ्यों को एकत्रित करता है। यदि यह अध्ययन में प्राप्त किए तथ्यों से इसकी सच्चाई सिद्ध हो जाती है तो यह विचार या सामान्यीकरण जिसे परिकल्पना कहा गया है, एक सिद्धांत का रूप धारण कर लेता है। यह देखा गया है कि अधिकतर वैज्ञानिक अनुसंधान में परिकल्पना की आवश्यकता होती है। यद्यपि यह प्रत्येक दशा में आवश्यक नहीं है तथापि इसके बिना सही तरह से आगे बढ़ना सम्भव नहीं है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना अति आवश्यक है कि आरम्भ में जब एक वैज्ञानिक किसी परिकल्पना को बनाता है तो उस समय घटनाओं के विषय में उसका ज्ञान सीमित होता है लेकिन जैसे-जैसे वह अपने अनुसंधान में आगे बढ़ता जाता है और त्थ्यों पर अधिकार प्राप्त करता चला जाता है, उसका ज्ञान बढ़ता जाता है और तब वह यह अनुभव करने लगता है कि वह अपने द्वारा बनाई गई परिकल्पनाओं का निर्माण करे। ऐसा करने में वह तनिक भी घबराता नहीं है। इन तथ्यों के आधार पर परिकल्पना की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएं हैं-

(i) परिकल्पनाएँ अध्ययन-क्षेत्र में अनुसन्धानकर्ता का मार्गदर्शन करने के लिए अपनायी जाती हैं। केवल काल्पनिक रूप से उन्हें गढ़ने से वे अध्ययन को गलत बना सकती हैं। इसलिए अध्ययनकर्त्ता जितने भी तथ्यों के बारे में जानता है, उस जानकारी के आधार पर ही अपनी परिकल्पनाओं का निर्माण करता है।

(ii) परिकल्पना में तथ्यों का वर्णन या सारांश नहीं होता है बल्कि वह उसके विषय में एक सामान्यीकरण, विचार एवं प्रस्थापना होती है।

(iii) एक परिकल्पना के लिए यह आवश्यक है कि वह स्पष्टतया सामान्य प्रकार की हो जिससे वैज्ञानिक क्षेत्र में उसको अच्छी तरह समझा जा सके। अतः अनुसन्धानकर्त्ता के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपने विज्ञान की शब्दावली से भली-भांति परिचित हो।

(iv) परिकल्पना सरल होनी चाहिए। सरलता का तात्पर्य यह है कि वह न तो आवश्यकता से अधिक और न आवश्यकता से कम कारकों को अपनी परिकल्पना में सम्मिलित करे तथा वह जो कुछ विचार उसमें रखना चाहे वह सरल व सीधे-सादे प्रत्यक्ष रूप में रखा जाए।

(v) यदि परिकल्पना प्रचलित अनुसन्धान पद्धतियों से मेल खाने वाली होती है तो वह व्यवहारिक प्रश्नों के हल में सहायक सिद्ध होती है। लेकिन ऐसा होना सदैव जरूरी नहीं होता है, यदि अध्ययनकर्त्ता किसी महत्वपूर्ण घटना से सम्बन्धित एक या अधिक परिकल्पनाओं का स्पष्टतया व सरलतापूर्वक निर्माण कर चुका है तो यह सम्भव हो सकता है कि वह अपने

अध्ययन के लिए कोई नवीन पद्धति को बना डाले, लेकिन प्रायः सामान्य अध्ययनकर्त्ताओं से इस प्रकार की आशा करना निरर्थक ही है।

(vi) परिकल्पना में प्रयोगसिद्धता का गुण होना चाहिए।

(vii) परिकल्पना अध्ययन का समस्या के मुख्य सिद्धांत से घनिष्टतापूर्वक सम्बन्धित हो।

(viii) कई बार निषेधात्मक या ऋणात्मक तथ्यों के आधार पर परिकल्पना बनाई जाती हैं। वह निष्कर्षों के घनात्मक तर्क का विरोध करती है। अतः इसे निराकरणीय परिकल्पना कहा जा सकता है।

(ix) वह केवल मात्र ऐसे आदर्श वाक्य के रूप में ही व्यक्त न हो जिसका विद्यमान तथ्यों या प्राप्त होने वाले तथ्यों में मेल न हो अर्थात् जिसे प्राप्त करना कठिन हो।

(x) यदि एक परिकल्पना उचित है तो उसके अनुसार एकत्रित किए जाने वाले तथ्य उपयोगी ही होंगे चाहे वे उसकी पुष्टि करें अथवा उसका खण्डन दोनों ही अवस्थाओं में लाभदायक होगा।

सामाजिक अनुसन्धानों में उपकल्पनाओं का महत्व या उपयोगिता

सामाजिक अनुसन्धान में उपकल्पना का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक प्रघटनाओं के अध्ययन में विषय क्षेत्र चूँकि अधिक व्यापक होता है अतः उपकल्पना का निर्माण अनुसन्धान क्षेत्र को सीमित कर उसे नियन्त्रण योग्य बना देता है। पी.वी.यंग का कहना है कि **"उपकल्पना का प्रयोग उन तथ्यों की अंधी खोज व अंधाधुन्ध संकलन पर नियन्त्रण लगाता है जो बाद में अध्ययन किए जाने वाली समस्या के लिए अप्रासंगिक सिद्ध होता है।"** अतः मार्गदर्शन के लिए उपकल्पना समुद्रों में जहाजों को रास्ता दिखाने वाले प्रकाश स्तम्भ (Light House)) के समान है जो अनुसन्धानकर्ता व वैज्ञानिकों को इधर-उधर भटकने से बचाता है। **डॉ॰ सत्यदेव** ने अपनी कृति **'सामाजिक विज्ञानों की शोध पद्धतियाँ'** में उपकल्पना के महत्त्व को एक उदाहरण से समझाया है। वे लिखते हैं कि "वनस्पति विज्ञान का एक विद्यार्थी पौधों के विकास के सम्बन्ध में शोध कार्य करना चाहता है। इस उद्देश्य से यदि वह नगर के पेड़-पौधों की पत्तियाँ गिनना प्रारम्भ करे तो उसका प्रयत्न हास्यास्पद होगा। इसका मुख्य कारण यह है कि उसका तथ्य संकलन आधार-हीन है। किन्तु यदि कोई सैद्धान्तिक आधार हो तो यही काम अर्थयुक्त हो सकता है। जैसे उसकी उपकल्पना यह हो सकती है कि किसी विशेष खाद के प्रयोग के पत्तियों की (जैसे बालक की पत्तियों की) संख्या बढ़ जाती है। इसकी परीक्षा के लिए वह दो क्यारियों में पौधों की पत्तियों की संख्या की तुलना करता है— एक ऐसी जिसमें खाद डाली गई है और दूसरी जिसमें खाद नहीं डाली गई है। इस तुलना द्वारा यह जाना जा सकता है कि खाद पत्तियों की संख्या बढ़ाने में उपयोगी है या नहीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पत्तियाँ जितना भी उपयोगी हो सकता है यदि इसके पीछे उपकल्पना का आधार हो।"

इसी प्रकार सामाजिक विज्ञान में भी शोध के लिए उपकल्पनाओं का आधार आवश्यक है। राजनीति के क्षेत्र में एक उपकल्पना हो सकती है कि "मजदूर वामपंथी दलों को दक्षिण-पंथी दलों की अपेक्षा अधि पसन्द करते हैं।" लोक-प्रशासन के क्षेत्र में उपकल्पना हो सकती है कि "जितनी ही कड़ी निगरानी कर्मचारियों की होती है उतना ही उनका मनोबल कम हो जाता है।" जैसा ऊपर कहा जा चुका है, अंतसम्बन्धित उपकल्पनाओं या उपकल्पनाओं के तंत्र को सिद्धांत कहते हैं।

कॉल पापर (**Karl Peper**) के अनुसार, वैज्ञानिक उपकल्पनाओं के लिए यह आवश्यक है कि उसका परीक्षण हो सके और यदि वे असत्य हो तो उन्हें सिद्ध किया जा सके। यदि किसी उपकल्पना को अनुभव के आधार पर असत्य सिद्ध करना असम्भव हो तो उसे वैज्ञानिक उपकल्पना नहीं कहा जाएगा। जो उपकल्पनाएँ परीक्षण की कसौटी पर खरी उतरती है उससे ही विज्ञान का कलेश्वर बनता है। उनके परीक्षण के लिए पहले आधार-सामग्री का संग्रह करते हैं और फिर उसके आधार पर अनुमान लगाते हैं कि उपकल्पना स्वीकार्य है या अस्वीकार्य।

जहोदा एवं कुक ने तो उपकल्पना को अनुसन्धान का प्रमुख वैज्ञानिक उद्देश्य माना है। वे स्वयं लिखते हैं कि "उपकल्पनाओं का निर्माण तथा सत्यापन करना ही वैज्ञानिक अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य होता है।

एम. कोहेन के मत में, "उपकल्पनाओं के बिना अथवा प्रकृति में आशा किए बिना आनुभविक तथ्यों के संचय के ढंग के माध्यम से भी वैज्ञानिक अन्तर्राष्टि में वास्तविक प्राप्ति नहीं हो सकती। पथ-प्रदर्शन करने वाले किसी न किसी विचार के बिना हम वह नहीं जानते हैं कि किन तथ्यों का संग्रह करना है। सिद्ध करने के लिए किसी वस्तु के बिना हम यह निश्चित नहीं कर सकते कि क्या संगत अैर क्या असंगत है।

उच. ध्यायनकेयर ने भी लिखा ने भी लिखा है, "यह प्रायः कहा गया है कि प्रयोग का पूर्वकल्पित विचारों के बिना किया जाना असभव है। वह न केवल प्रत्येक प्रयोग को निष्फल बनाएगा बल्कि यदि हम इसे करना भी चाहें तो भी यह नहीं किया जा सकता है।

कोहेन और नैगन ने यह विचार व्यक्त किया है "किसी भी पूछताछ में हम तब तक कदम आगे नहीं बढ़ा सकते हैं तब तक कि उस कठिनाई के प्रस्तावित स्पष्टीकरण अथवा समाधान से हम आरम्भ न करें जिससे इसे उत्पन्न किया है। इस प्रकार के कामचलाऊ स्पष्टीकरण हमें विषय-वस्तु के अन्तर्गत किसी वस्तु या हमारे पूर्व ज्ञान द्वारा सुझाये जाते हैं। जब ये पूर्वकल्पना के रूप में प्रतिपादित किए जाते हैं तो इन्हें उपकल्पनाएं कहा जाता है।

उपकल्पना का कार्य घटनाओं के बीच विशिष्ट सम्बन्धों को इस प्रकार व्यक्त करता है कि इस सम्बन्ध का आनुभाविक परीक्षण किया जा सके। एक उपकल्पना का कार्य तथ्यों में क्रम की हमारी खोज को निर्देशित करना है। उपकल्पना में प्रतिपादित सुझाव समस्या के समाधान हो सकते हैं। वे हैं या नहीं, यह पूछताछ का कार्य है। सुझावों से कोई भी आवश्यक रूप से हमारे उद्देश्य की और नहीं भी ले जा सकता है और प्रायः कुछ सुझाव एक-दूसरे के विरोध की स्थिति में भी हो सकते हैं ताकि ये सभी उसी समस्या के समाधान न हो सके।

वैज्ञानिक ढंग के प्रयोग की एक मौलिक आवश्यकता यह हे कि अवधारणाओं, वाक्य-विन्यासों एवं चरों की आवश्यक परिभाषा करने के पश्चात् अगला कदम यह है कि अनुसन्धान प्रश्नों का स्पष्ट एवं विस्त त रूप से निर्माण किस प्रकार किया जाए जिनका उत्तर प्राप्त करने की हम आशा रखते हैं। ये प्रश्न हमें उपकल्पनाओं के निर्माण की ओर ले जाते हैं। एक उपकल्पना यह व्यक्त करती है कि हमें किस चीज की तलाश है। जब तथ्यों को एकत्रित कर उन्हें व्यवस्थित करते हुए उनके पारस्परिक सम्बन्धों की स्थापना की जाती है तो सिद्धांत का निर्माण होता है। सिद्धांत सही नहीं, बल्कि ये तथ्यों पर आधारित होते हैं। सिद्धांत के अन्तर्गत विभिन्न तथ्यों का तार्किक विश्लेषण किया जा सकता है तथा सम्बन्धों की भी स्थापना की जा सकती है। इस स्थल पर हमें इस बात की कोई जानकारी नहीं होती कि निगमनित नवीन सम्बन्ध सत्य है अथवा असत्य।

ये निगमनित सम्बन्ध उपकल्पना का निर्माण करते हैं। यदि पुनः एकत्रित किए गए आंकड़ों के आधार पर इनकी पुष्टि हो जाती है तो यह भविष्य में किए जाने वाले सिद्धान्त निर्माण का एक अंग बन जाता है। जॉर्ज के शब्दों में, "प्रयोग में सिद्धांत एक विस्तुत उपकल्पना है जो सरल उपकल्पना की तुलना में अधिक प्रकार के तथ्यों के साथ कार्य करती है— अन्तर स्पष्ट रूप में पारिभाषित नहीं है। सिद्धांत से अन्य पूर्व-उपकल्पनाओं की उत्पत्ति दिखाई जा सकती है, यह पूर्व-कल्पनाएँ ही उपकल्पनाएँ हैं।"

उपकल्पना आनुभविक परीक्षण की दिशा में हमें ले जाती है चाहे कुछ भी परिणाम क्यों न हो। इस प्रकार उपकल्पना प्रस्तुत किया गया एक प्रश्न है जिसका किसी न किसी प्रकार आगे चल कर उत्तर प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार उपकल्पना के महत्व को हम निम्नांकित बिन्दुओं में रखकर समझ सकते हैं—

1. **उपकल्पना अध्ययन में निश्चितता स्थापित करती है। (Hypothesis Establishes Definiteness in the Study):** उपकल्पना की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसमें स्वयं में निश्चितता का तत्त्व या गुण पया जाता है जिसके परिणामस्वरूप अध्ययन को एक स्पष्टता प्राप्त होती है। फलस्वरूप अनुसन्धानकर्ता को यह स्पष्टतः ज्ञात हो जाता है कि उसे क्या-क्या करना है किन-किन तथ्यों को एकत्रित करना है, किन-किन तथ्यों को छोड़ना है। स्वयं गुडे एवं हट्ट ने लिखा है कि उपकल्पना यह बताती है। कि हम किसी खोज कर रहे हैं। इस प्रकार उपकल्पना के अध्ययन कार्य को निश्चितता प्रदान करने के परिणामस्वरूप अध्ययन कार्य में यथार्थता बढ़ जाने की सम्भवना रहती है क्योंकि अनुसन्धानकर्ता इधर-उधर के व्यथ के आँकड़ों एवं अनुपयोगी तथ्यों में न उलझकर केवल उन तथ्यों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करता है जिनकी सहायता से इसकी सत्यता या असत्यता को प्रमाणित किया जा सके।

2. **उपकल्पना अध्ययन-क्षेत्र को सीमित करने में सहायक होती है (Hypothesis Helpful in the Limiting Subject Matter):** उपकल्पना द्वारा अध्ययन क्षेत्र को इस प्रकार सीमित करना सम्भव हो जाता है कि अनुसन्धानकर्त्ता अपना ध्यान अध्ययन के एक विशेष पहलू अथवा कुछ विशेष तथ्यों पर ही केन्द्रित कर सके। वास्तव में, प्रत्येक अध्ययन विषय के बहुत से पहलू हो सकते हैं। यदि अध्ययनकर्ता सभी पहलुओं को एक साथ लेकर अध्ययन करना आरम्भ कर दे तो किसी भी पहलू की गहराई में जाकर तथ्यों की एकत्रित नहीं किया जा सकता। अध्ययन की वैज्ञानिकता के लिए अध्ययन क्षेत्र का सीमित होना आवश्यक है जो उपकल्पना की सहायता से ही सम्भव हो सकता है। लुण्डवर्ग के शब्दों में, "उपकल्पना के प्रयोग से अध्ययन-क्षेत्र सीमित हो जाता है और अध्ययनकर्ता गहराई में जाकर विषय का अध्ययन करने में सफल हो सकता है।"

3. **उपकल्पना अनुसन्धान की दिशा निर्धारित करती है (Hypothesis Determines the Direction of the Research):** उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि उपकल्पनाएँ अनुसन्धानकर्त्ता का ध्यान अध्ययन विषय के एक विशिष्ट पहलू पर केन्द्रित कर देती है और अनुसन्धानकर्ता उसी के अनुसार एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ता चला जाता है। इस अर्थ में उपकल्पना अनुसन्धानकर्त्ता के लिए ध्रुव तारे का काम करती है। अपनी उपकल्पना के आधार पर अनुसन्धानकर्त्ता यह जानता है कि उसे क्या करना है और क्या नहीं करना है, क्या उसके लिए काम की चीज है और क्या निरर्थक, किस दिशा को उसे अपनाना है और किस को

नहीं। वास्तव में ठीक-ठीक उपकल्पना का निर्माण कर लेने से न केवल अध्ययन-क्षेत्र का ही अपितु लक्ष्य का भी, स्पष्टीकरण हो जाता है और अनुसन्धानकर्ता का प्रत्येक प्रयास उद्देश्यपूर्ण, अर्थयुक्त तथा वैज्ञानिक धारणा के अनुकूल हो जाता है।

4. **उपकल्पना उद्देश्य को स्पष्ट करती है (Hypothesis Clears the Objects):** उपकल्पना एक ऐसा मापदण्ड स्थापित करती है जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अध्ययन का क्या उद्देश्य है? कुछ अध्ययन बहुद्देश्यीय होते हैं, अतः उन्हें स्पष्ट करना आवश्यक होता है। तब उद्देश्य सुस्पष्ट हो जाता है तो अध्ययनकर्त्ता को सामग्री संकलन करने में कठिनाई नहीं होती। वह कई स्रोतों से आवश्यक और अभीष्ट सूचना प्राप्त कर सकता है। कई बार अनुसन्धानकर्ता उद्देश्य की स्पष्टता के अभाव में इतना भटक जाता है कि अन्त में निराशा ही हाथ आती है। उसके श्रम का कोई लाभ नहीं होता चाहे उसने कितनी ही निष्ठा, दिलचस्पी, लगन के साथ कार्य किया हो, अतः उपकल्पना इन मुख्य दोषों से बचाती है।

5. **उपकल्पना उपयोगी तथ्यों के संकलन में सहायक होती है (Hypothesis helpful in the Collection of Useful Facts):** किसी भी सामाजिक घटना अथवा समस्या का अध्ययन करते समय अध्ययनकर्त्ता के सामने अनेक प्रकार के तथ्या आते हैं। कभी-कभी उन तथ्यों की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता को न समझ पाने के कारण अध्ययनकर्ता उपयोगी तथ्यों को छोड़कर व्यर्थ के तथ्यों के संकलन में लग जाता है। इसके फलस्वरूप सम्पूर्ण अध्ययन अव्यवस्थित और अवैज्ञानिक बन सकता है। इस स्थिति में "उपकल्पना सहायता से यह निश्चित करना आसान हो जाता है कि किन तथ्यों को एकत्रित किया जाए और किन्हें सरलता से छोड़ा जा सकता है" इसका तात्पर्य है कि उपकल्पना ही वह महत्त्वपूर्ण आधार है जो अध्ययनकर्त्ता पर नियन्त्रण बनाए रखकर अध्ययन को वैज्ञानिक बनाने में सहायता देता है।

6. **उपकल्पना तर्कसंगत निष्कर्षों में सहायक होती है (Hypothesis helpful in the Logical Conclusions):** आरम्भ में ही यह स्पष्ट किया जा चुका है कि उपकल्पना की यह मान्यता है जिसके द्वारा अनुसन्धान-कार्य आरम्भ करने से पहले ही एक कामचलाऊ निष्कर्ष प्रस्तुत कर दिया जाता है। यह निष्कर्ष सत्य है अथवा असत्य, इसका परीक्षण बाद में एकत्रित तथ्यों के आधार पर किया जाता है। तथ्यों के आधार पर यदि उपकल्पना से सम्बन्धित निष्कर्ष सही प्रमाणित होता है तो उसे एक सामान्य नियम के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि उपकल्पना का सावधानी से निर्माण किया जाए तो यह उपयुक्त और तर्कसंगत निष्कर्ष निकालने में अत्यधिक सहायक होती है।

7. **उपकल्पना निष्कर्ष निकालने में सहायक होती है (Hypothesis helpful in drawing Conclusions):** उपकल्पना के निर्माण के बाद हम उससे सम्बन्धित तथ्यों का संकलन करते हैं। इन तथ्यों के आधार पर हम यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि उपकल्पना सही है या गलत। यदि सही है तो हम सिद्धांत का निर्माण करते हैं जो अन्य अनुसन्धानों के लिए आधार बन जाते हैं। यदि गलत भी सिद्ध होती है तो हमें वास्तविकता का पता चलता है। उदाहरणार्थ यह कल्पना है कि "विद्यार्थी वर्ग का राजनीतिज्ञ केवल अपने संकीर्ण हितों की रक्षा के लिए शोषण करते हैं" यदि यह गलत भी सिद्ध होता है तो हमें वास्तविकता का तो ज्ञान होता ही है। श्रीमती पी. वी. यंग के अनुसार, वैज्ञानिक के लिए एक नकारात्मक

परिणाम उतना ही महत्त्वपूर्ण तथा रोचक है जितना कि सकारात्मक परिणाम। दोनों ही अवस्थाओं में हमें सत्य का ज्ञान होता है जो उपकल्पना से ही सम्भव है। पी.वी. यंग के अनुसार उपकल्पना की उपयोगिता अनुसन्धानकर्ता की निम्न बातों पर निर्भर करती है— 1. तीक्ष्ण अवलोकन, 2. अनुशासित कल्पना एवं स जनात्मक चिन्तन, 3. कुछ निरूपित सैद्धांतिक स्वरूप।

8. **उपकल्पना सिद्धान्तों के निर्माण में योगदान देती है (Hypothesis Contributes in Formation of Theories):** सामाजिक अनुसन्धान का अन्तिम उद्देश्य सिद्धांतों का निर्माण करना होता है। इस कार्य में उपकल्पना की भूमिका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुई है। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, उपकल्पना का निर्माण साधारणतया किसी पूर्व स्थापित सिद्धांत के आधार पर होता है। एक अनुसन्धानकर्त्ता जब नई परिस्थितियों के सन्दर्भ में किसी पुराने सिद्धांत की सार्थकता को देखने का प्रयत्न करता है तो उपकल्पना उसके इस कार्य को बहुत सरल बना देती है। उपकल्पना की सहायता से जो सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाते हैं वे नए सिद्धांतों का निर्माण करने में भी अत्यधिक सहायक होते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि किसी भी अनुसन्धान में उपकल्पना का महत्त्व केन्द्रीय है। यही कारण है कि सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित कोई भी अनुसन्धान कार्य ऐसा नहीं होता जिसमें किसी न किसी उपकल्पना को आधार मानकर एकत्रित न किया जाए।

उपकल्पना के स्रोत

उपकल्पना की अवधारणा की जानकारी के पश्चात् यह आवश्यक है कि अनुसन्धानकर्त्ता को उन उद्गम-स्रोतों (Sources) की जानकारी हो जहां से वह उपकल्पनाओं को प्राप्त कर सकता है, अथवा उन्हें निर्मित कर सकता है। दूसरे शब्दों में, वे कौन से उद्गम-स्थल एवं स्रोत हैं जिनसे किसी विशेष उपकल्पना या उपकल्पनाओं के निर्माण की प्रेरणा अनुसन्धानकर्त्ता को प्राप्त होती है। हमारा सामान्य अनुभव आसपास पाए जाने वाले संसार, साहित्य कविता, अथवा कोई भी चीज उपकल्पना का स्रोत हो सकती है। **जॉर्ज लुण्डवर्ग** लिखते हैं कि "एक उपयोगी उपकल्पना की खोज में हम कविता, साहित्य, दर्शन, सामाजशास्त्र से विस्तुत वर्णनात्मक साहित्य, माानव, जातिशास्त्र, कलाकारों के काल्पनिक सिद्धान्तों या उन गम्भीर विचारों के सिद्धांतों की सम्पूर्ण दुनिया में विचरण कर सकते हैं, जिन्होंने कि मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों के गहन अध्ययन कार्य में अपने को नियोजित किया है।"

सामान्यतः सामाजिक विज्ञानों में उपकल्पनाओं के दो प्रमुख स्रोतों का उल्लेख किया गया है—

1. वैयक्तिक या निजी स्रोत (Personal or Individual Sources),
2. बाह्य स्रोत (External Sources),

वैयक्तिक या निजी स्रोत में अनुसंधानकर्ता की अपनी स्वयं की अन्तद ष्टि, सूझ-बूझ, कोरी कल्पना, विचार, अनुभव कुछ भी हो सकता है। एक अनुसन्धानकर्त्ता सामान्यतया अपनी प्रतिभा, दूरदर्शिता, विचारों की मौलिकता तथा अनुभवों के आधार पर उपकल्पना का निर्माण कर सकता है। अनेक उदाहरण ऐसे दिए जा सकते हैं जिनमें वैज्ञानिकों ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर ऐसी अनेक उपकल्पनाओं का निर्माण किया, जिनके आधार पर विश्व-विख्यात वैज्ञानिक नियमों का प्रतिपादन सम्भव हुआ।

ब्राह्य स्रोत में कोई भी साहित्य, कल्पना, कहानी, कविता, विचार, अनुभव, सिद्धांत, साहित्य

दर्शन, नाटक, उपन्यास अथवा प्रतिवेदन आदि कुछ भी हो सकता है। इसका मूल आशय यह है कि जब कभी अनुसंधानकर्ता किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा प्रतिपादित एक सामान्य विचार के आधार पर अपनी उपकल्पना का निर्माण करता है, तो उसे हम उपकल्पना का वाह्य स्त्रोत कहते हैं। अनेक समाजिक वैज्ञानिकों ने उपकल्पना के विभिन्न स्त्रोतों का उल्लेख किया है जिन्हें निम्नलिखित रूपों में स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **सामान्य संस्कृति** (General Culture)**:** व्यक्तियों की गतिविधियों को समझने का सबसे अच्छा तरीका उनकी संस्कृति को समझना है। व्यक्तियों का व्यवहार एवं उनका सामान्य चिन्तन, बहुत सीमा तक उनकी अपनी संस्कृति के अनुरूप ही होता है। अतः अधिकांश उपकल्पनाओं का मूल स्त्रोत वह सामान्य संस्कृति होती है, जिसमें विशिष्ट विज्ञान का विकास होता है। संस्कृति लोगों के विचारों, जीवन-प्रणाली तथा मूल्यों को प्रभावित करती है। अतः प्रमुख सांस्कृतिक मूल्य प्रत्यक्षतः शोध-कार्य की प्रेरणा बन जाते हैं। उदाहरण के लिए, जैसे पश्चिमी संस्कृति में व्यक्तिगत सुख, भौतिकवाद, सामाजिक गतिशीलता, प्रतिस्पर्द्धा, एवं सम्पन्नता आदि पर अधिक जोर दिया जाता है, जबकि भारतीय संस्कृति में दर्शन, आध्यात्मिकता, धर्म, संयुक्त परिवार, जाति-प्रथा आदि का गहन प्रभाव दिखाई देता है। इस प्रकार सामान्य संस्कृति भी अनुसन्धानकर्त्ता को उपकल्पना के लिए स्त्रोत प्रदान करती है।

   सामान्य संस्कृति को तीन प्रमुख भागों में बांटकर समझा जा सकता है–

   (क) **सांस्कृतिक प ष्ठभूमि** (Cultural Background)**:** जिस सामान्य सांस्कृतिक प ष्ठभूमि को लेकर विज्ञान का विकास होता है, वह संस्कृति स्वयं ही उपकल्पना निर्माण के विभिन्न स्त्रोत उपलब्ध करती है। जैसे– भारत एवं ब्रिटेन की प थक्-प थक् सांस्कृतिक प ष्ठभूमि।

   (ख) **सांस्कृतिक चिह्न** (Cultural Traits)**:** इसमें हम किसी समाज या संस्कृति के लोक-ज्ञान के विभिन्न अंग जैसे लोक-विश्वास, लोक-कथाएं, लोक-साहित्य, लोक-गीत, कहावतें आदि को रख सकते हैं जिनके आधार पर उपकल्पनाओं का निर्माण किया जा सके।

   (ग) **सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन** (Socio-Cultural Changes)**:** समय-समय पर उस संस्कृति, विशेषकर उसके संस्थात्मक ढांचे के विभिन्न अंगों में परिवर्तन किया जाता है। इन परिवर्तनों के कारण परिवर्तित सांस्कृतिक मूल्य भी उपकल्पना के स्त्रोत बना सकते है। अतः सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों के आधार पर उपकल्पनाएं निर्मित की जा सकती हैं।

2. **वैज्ञानिक सिद्धान्त** (Scientific Theories)**:** वैज्ञानिक सिद्धान्त, जो समय-समय पर वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं, भी कुछ उपकल्पना के स्त्रोत हो सकते हैं। **गुडे एवं हट्ट** ने तो यहाँ तक लिखा है कि "उपकल्पनाओं का जन्म स्वयं विज्ञान से होता है।" प्रत्येक विज्ञान में अनेक सिद्धान्त होते हैं। इन सिद्धान्तों से हमें एक विषय के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार इन सिद्धान्तों के अन्तर्गत सम्मिलित पक्षों के सम्बन्ध में प्राप्त ज्ञान भी उपकल्पनाओं का स्त्रोत माना जा सकता है।

   एक अनुसन्धानकर्त्ता अपने अध्ययन के द्वारा सामान्यतः केवल नवीन सिद्धान्तों की रचना ही नहीं करता बल्कि नवीन परिस्थितियों में पहले से स्थापित सिद्धान्तों का परीक्षण भी करता है। उक्त सिद्धान्तों के पुर्नपरीक्षण से उनके अन्तर्गत विद्यमान कमियां एवं अशुद्धियां भी सामने आ जाती हैं। इस प्रकार प्रचलित सिद्धांन्त सामाजिक अध्ययनों को दिशा प्रदान

करते हैं एवं नवीन उपकल्पनाओं को जन्म देते हैं। उदाहरण के लिए प्रमुख समाजशास्त्री रिजले (Risley) एवं नेसफील्ड (Nesfield) ने भारत में 'जाति-प्रथा' की उत्पत्ति का अध्ययन करने के लिए जाति-प्रथा की उत्पत्ति से सम्बन्धित पहले के सिद्धान्तों के आधार पर ही अपनी उपकल्पनाए बनाई दुर्खीम के द्वारा प्रस्तुत आत्महत्या का सिद्धान्त (Theory of suicide) भी इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। दुर्खीम के द्वारा प्रस्तुत "आत्महत्या के विभिन्न कारणों तथा सामाजिक प्रभावों का विवेचना करने के पश्चात् उससे सम्बन्धित जिन नियमों का निर्माण किया जाएगा उनका सामुहिक नाम 'आत्महत्या का सिद्धांत' कहलाएगा।"

इस प्रकर अनेक बार पूर्व सिद्धान्तों के निष्कर्षों या सामान्यीकरणों के आधार पर उपकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है। इस आधार पर उपकल्पनाओं के द्वारा इन सिद्धान्तों की पुष्टि या इन्हें अस्वीकृत अथवा नवीन सिद्धान्तों की रचना भी की जा सकती है। अतः वैज्ञानिक सिद्धान्त उपकल्पनाओं के प्रमुख स्रोत हैं।

3. **साद श्यताएं (Analogies):** जब कभी दो क्षेत्रों में कुछ समानताएं या समकपताएं दिखाई देती हैं, तो सामान्यतया इस आधार पर भी उपकल्पनाओं का निर्माण कर लिया जाता है अर्थात् ऐसी समरूपताएं या साद श्यताएं भी उपकल्पनाओं के लिए स्रोत बन जाती हैं। **ए.वुल्फ (A. Wolf)** ने लिखा है कि "साद श्यता उपकल्पनाओं के निर्माण तथा घटना में किसी काचलाऊ नियम की खोज के लिए अत्यन्त उपयोगी पथ-प्रदर्शन है।" कभी-कभी दो तथ्यों के मध्य समानता के कारण नई उपकल्पना का जन्म होता है, और इनकी प्रेरणा का कारण साद श्यताएं होती हैं। **जुयिन हक्सले** ने बताया है कि किसी विज्ञान की प्रकृति के सम्बन्ध में सामाजिक अवलोकन उपकल्पनाओं के आधार बन जाते हैं। ये समानताएं या तो विभिन्न व्यवहार-क्षेत्रों (उदाहरणार्थ - पशु-मनुष्य, वनस्पति-मनुष्य) में समरूपता की ओर संकेत करती हैं, या जो घटनाएं एक ही अवसर या समय पर विभिन्न स्थानों पर घटित होती हैं, साद श्यता की प्रकृति को बताती हैं। कुछ विशिष्ट व्यवहार 'मनुष्यों' एवं पशुओं में समान हो सकते हैं। परिस्थिति-विज्ञान के अन्तर्गत समान्य मानवीय रूप अथवा क्रियाएँ समान क्षेत्रों अथवा परिस्थितियों में रहने वाले व्यक्तियों में देखी जा सकती हैं। पौधों में नर-मादा का परस्पर सम्बन्ध एवं व्यवहार भी पुरुषों-स्त्रियों के पारस्परिक यौन-सम्बन्धों की ओर संकेत करता है।

   लुई पाश्चर (Lui Pasture) द्वारा चेचक के टीके लगाने के सिद्धांतों में "गायों के चेचक से संक्रमित होने तथा उसी के साद श्य मनुष्य के शरीर में चेचक के कीटाणु छोड़ने को उपकल्पना माना गया है।"

   हरबर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) ने सामाजिक उद्विकास के सिद्धांतों को प्रस्तुत करने के लिए जिस उपकल्पना का निर्माण किया वह इस साद श्यता पर आधारित थी कि "समाज की उत्पत्ति, विकास और विनाश जीव-रचना के जन्म-विकास और म त्यु के ही समान है।"

4. **व्यक्तिगत प्रकृति-वैशिष्ट्य अनुभव (Personal-Ideosyncratic Experiences):** गुडे एवं हट्ट के मतानुसार व्यक्तिगत प्रकृति-वैशिष्ट्य अनुभव भी उपकल्पना के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। संस्कृति, विज्ञान एवं समरूपता ही उपकल्पना निर्माण के लिए आधार-सामग्री नहीं जुटाते बल्कि व्यक्ति का अपना अनुभव भी उपकल्पना के निर्माण में महत्वपूर्ण होता है। सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति प्रकृति से कुछ विशिष्ट अनुभव प्राप्त करता है और उसी अनुभव के आधार पर वह उपकल्पना का निर्माण कर सकता है।

न्यूटन (**Newton**) ने पेड़ से गिरने वाले सेव (Apple) को देखकर (जो एक समान्य प्रकृति-वैशिष्ट्य अनुभव था) गुरुत्वाकर्षण के महान् सिद्धान्त स्थापित करने में अपने व्यक्तिगत अनुभवों पर ही उपकल्पनाओं का निर्माण करना पड़ा था। **माल्थस** (Malthus) ने भी जनसंख्या की की तीव्र एवं खाद्य पदार्थों की धीमी व द्वि का सिद्धान्त अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर बनाया। अपराधशास्त्री लोम्ब्रोसो (Lombroso) ने सेना के एक चिकित्सक के रूप में अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर एक उपकल्पना का निर्माण किया कि "अपराधी जन्मजात होते हैं (Criminals arc born) एवं अपनी शारीरिक विशेषताओं में वे सामान्य व्यक्तियों से भिन्न होते हैं **सर हरबर्ट रिजले** (Sirc Herbert Risley) ने 1901 में जनगणना के अधीक्षक के रूप में जिस विषिष्ट ढंग से भारतीय जनता को देखा एवं उनके बारे में अनुभवों को प्राप्त किया वह उनके जाति के प्रजातीय सिद्धान्त (Racial Theory of Castes) की उपकल्पना की आधारशिला बनी हैं।

इस प्रकार मोटे तौर पर उपकल्पनाओं के स्रोतों को दो महत्वपूर्ण वर्गों में रखा जा सकता है। उपकल्पनाओं का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत सिद्धान्त (Theory) है। सिद्धान्त हमारे चिन्तन को दिशा देता है। दूसरे शब्दों में, वह हमें यह बताता है कि किसी की व्याख्या के लिए कौन से कारक महत्वपूर्ण हैं। हमारे संचित हज्ञान में विभिन्न सिद्धान्त हमारे चिन्तन को दिशा देता है। दूसरो शब्दों में, वह हमें यह बताता है कि किसी की व्याख्या के लिए कौन से कारक महत्वूपर्ण हैं। हमारे संचित ज्ञान में विभिन्न सिद्धान्त हैं। प्रत्येक सिद्धांत से निगमन के द्वारा हमें अनेक उपकल्पनाएं प्राप्त हो जाती हैं फिर इन उपकल्पनाओं से निगमन द्वारा हम कुछ निष्कर्ष निकालते हैं। इन निष्कर्षों की अनुभव द्वारा ज्ञात तथ्यों से तुलना की जाती है। यदि निष्कर्ष इस कसौटी पर खरे नहीं उतरते तो हम उपकल्पना को अस्वीकार कर देते हैं। कार्ल मार्क्स का प्रमुख सिद्धान्त जैसे समााजिक परिवर्तन का मुख्य कारक प्रौद्यौगिकी का विकास से अनेक उपकल्पनाओं को प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार प्रशासन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त मानवीय सम्बन्धों का है। मानवीय सम्बन्धों के सिद्धान्त से हम निम्न उपकल्पनाओं को प्राप्त कर सकते हैं—

(1) उत्पादन के स्तर का निर्णय सामाजिक प्रतिमानों द्वारा होता है।

(2) ऐसे पुरस्कार और दण्ड जो आर्थिक नहीं है, कामगारों के व्यवहार को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं।

(3) बहुधा कामगार व्यक्तियों की भांति नहीं बल्कि समूहों के सदस्यों की भांति व्यवहार करते हैं।

(4) नेता समूह के प्रतिमानों को निश्चित और लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका रखता है।

(5) यदि निर्णय कर्मचारियों की राय लेकर किए जाते हैं तो मनोबल और उत्पादकता बढ़ते हैं।

उपकल्पनाओं का दूसरो महत्वपूर्ण स्रोत है—दूसरे अध्ययन (Other Studies)। जब हम कोई शोध करते हैं तो कभी-कभी हमें कुछ ऐसी जानकारी भी मिलती है जिसकी हमें पहले से आशा नहीं होती। लेकिन उस समय यह कहना कठिन हो सकता है कि यह बात केवल उसी अध्ययन किए जाते हैं। इस प्रकार किसी अध्ययन में संयोग से मिली जानकारी दूसरे अध्ययनों के लिए परिकल्पना बन सकती है। उदाहरण के लिए, मतदान के क्षेत्र में **लेजार्सफील्ड** (Lazarsfield) ने महत्वपूर्ण शोध की जो वोटिंग (Voting) के नाम से प्रकाशित हुई है, में इस **सिद्धान्त** को प्रस्तुत किया है। किन्तु इस शोध में परीक्षित कुछ महत्वपूर्ण परिकल्पनाएं इससे पिछले अध्ययन 'दि पिपुल्स च्वाइस' में प्रापत हुई थीं। प्रथम अध्ययन से यह परिकल्पना मिली थी कि मतदान के सम्बन्ध में अपना निर्णय बदलने वाले लोग मुख्यतया वे होते हैं जिन पर परस्पर-विरोधी दबाव पड़ते हैं, जैसे जब

उनके धर्म के लोग एक दल को वोट देते हैं और आर्थिक वर्ग के दूसरे दल को। दूसरे अध्ययन में शोध-अभिकल्प इस प्रकार बनाया गया कि इसका परीक्षण हो सके और उसे सत्य पाया था। इस प्रकार मतदान के विषय में इस महत्वपूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हुई।

उपकल्पनाओं के प्रकार

सामाजिक यथार्थ की जटिल एवं मूर्त प्रकृति के कारण उपकल्पनाओं का कोई एक सर्वमान्य वर्गीकरण प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। अतः अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मतानुसार उपकल्पनाओं को वर्गीकृत किया है।

एम॰एन॰ गोपाल ने परिकल्पनाओं को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया है—

(1) अशुद्ध, मिली-जुली तथा मौलिक (Crude)

(2) विशुद्ध तथा पुनर्परीक्षित (refined): दूसरे प्रकार की उपकल्पनाओं को गोपाल ने फिर तीन प्रकार से विभाजित किया है—

   (क) सामान्य स्तरीय (Simple-Level)

   (ख) जटिल स्तरीय (Simple-Level)

   (ग) जटिलतम अनेक सम्बन्धित (Complicated Inter-Related)

डा॰ सुरेन्द्र सिंह ने उपकल्पनाओं को दो भागों में वर्गीकृत किया है :

(1) तात्विक उपकल्पना (Substantive Hyporthesis),

(2) साँख्यिकीय उपकल्पना (Statistical Hypothesis)।

1. **तात्विक उपकल्पना:** इस प्रकार की उपकल्पना में दो अथवा दो से अधिक चरों के मध्य अनुमान पर आधारित सम्बन्धों को व्यक्त किया जाता है। यह एक प्रकार के सामान्य प्रकार की उपकल्पना है। सामान्यतः ये तात्विक उपकल्पनाएँ परीक्षण योग्य नहीं होतीं। जैसे एक नेता जितने अधिक प्रजातन्त्रिक ढँगों को अपनाएगा, उसका नेत त्व उतना ही सफल होगा तथा उसके अनुयायी उसकी बातों को उतना ही अधिक मानेंगे।

2. **साँख्यिकीय उपकल्पना:** एक साँख्यिकीय उपकल्पना तात्विक उपकल्पना के सम्बन्धों से निगमनित साँख्यिकीय सम्बन्धों का एक अनुमान पर आधारित कथन है। साँख्यिकीय उपकल्पना के परीक्षण के लिए किसी न किसी अधार का होना आवश्यक है। इनका परीक्षण हम एक विकल्पीय उपकल्पना की प ष्ठभूमि में करते हैं।

हेज ने केवल दो प्रकार की उपकल्पनाएँ बतायी हैं—

1. **सरल उपकल्पना (Simple Hypothesis):** इसमें सामान्य उपकल्पना लेते हैं और किन्हीं दो चरों में सहसम्बन्ध ज्ञात करते हैं।

2. **जटिल उपकल्पना (Complex Hypothesis):** इसमें एक से अधिक चर होते हैं तथा उनमें सह-सम्बन्ध ज्ञात करने के लिए उच्च साँख्यिकीय प्राविधियों का प्रयोग करते हैं। दोनों के उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं।

कुछ विद्वानों ने अनुसन्धान-उपकल्पना और साँख्यिकीय उपकल्पना के रूप में वर्गीकरण किया है—

1. **अनुसन्धान उपकल्पना (Research Hypothesis):** जब उपकल्पना का निर्माण अनुसन्धानों

द्वारा प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर होता है तो उसे अनुसन्धान उपकल्पना कहते हैं। इसी को व्यक्तियों ने वैज्ञानिक उपकल्पना, सामान्य उपकल्पना तथा निम्नात्मक उपकल्पना आदि नाम भी दिए हैं।

2. **साँख्यिकीय उपकल्पना (Statistical Hypothesis):** शून्य उपकल्पना (Null Hypothesis) को साँख्यिकीय उपकल्पना भी कहते हैं।

मैक ग्इगन (Mc Guigan) के अनुसार अनुभवाश्रित उपकल्पनाएँ दो प्रकार की होती हैं—

1. **सार्वभौमिक (Universal):** इस वर्ग में वे परिकल्पनाएँ सम्मिलित की जाती हैं जिनका अध्ययन किया जाने वाला सम्बन्ध सभी चरों से सभी समय तथा सभी संस्थानों पर रहता है, जैसे किसी समस्या-बक्स पर चूहों को एक ओर (यथा दाहिनी) मुड़ने पर पुरस्कृत किया जाय तो सभी चूहे उसी ओर मुंड़ेंगे।

2. **अस्तित्वात्मक (Existental)**: ऐसी उपकल्पना जो कम से कम एक मामले में चरों के अस्तित्व को उचित घोषित कर सके। पिछले उदाहरण की इस वर्ग की उपकल्पना को इस प्रकार रचित किया जा सकता हे कि कम से कम एक चूहा ऐसा है कि यदि उसे एक ओर (यथा, दाहिनी) मुड़ने पर पुरस्कृत किया जाय तो वह समस्या -बक्स में उस ओर अवश्य मुड़ेगा।

सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानों में सार्वभौमिक उपकल्पनाओं की अपेक्षा अस्तित्वात्मक उपकल्पनाओं का अधिक उपयोग होता है क्योंकि मनोवैज्ञानिक कई बार यह अनुमान करता है कि किसी प्रपंच का अस्तित्व की ओर ध्यान देता है लेकिन उसकी आव त्ति से अधिक सम्बन्धित नहीं होता।

वैज्ञानिक अनुसन्धान में उपकल्पना को सिद्ध करना वैज्ञानिक का मख्य कार्य है। वैज्ञानिक अस्तित्वात्मक उपकल्पना द्वारा अपनी अनुसन्धानिक उपकल्पना को सिद्ध करने में अधिक सफल रह सकता है तथा वह किसी प्रपंच या घटना के अस्तित्व को स्थापित करता है। तत्पश्चात् वह अध्ययन की जाने वाली घटना का सामान्यीकरण करना चाहता है। किसी विशिष्ट घटना का अस्तित्वात्मक उपकल्पना द्वारा अध्ययन अथवा निरीक्षण करना कठिन कार्य है। इसी कारण अति विशिष्ट उपकल्पना से सार्वभौमिक उपकल्पना बनाने में वह कठिनाई अनुभव करता है। वैज्ञानिक का मुख्य कार्य यह स्थापित करना होता है कि किन विशेष दशाओं में कोई घटना अथवा प्रपंच उत्पन्न हाता है जिससे वह आवश्यक दशाओं को पाकर सार्वभौमिक उपकल्पनाओं का निर्माण कर सके। अनुसन्धानों में सार्वभौमिक कथनों को भी आवश्यकता होती है। सार्वभौमिक कथनों में पूर्वानुमान मूल्य विशिष्ट कथनों की अपेक्ष अधिक होता है। अतएव इस प्रकार के कथन अनुसन्धान में अधिक महत्त्वपूर्ण है।

(क) **सकारात्मक कथन (Positive Statement):** इसमें उपकल्पना का कथन सकारात्मक रूप में करते हैं— उदाहरणार्थ (अ) वर्ग 'अ' की बुद्धिलब्धि वर्ग 'ब' से अधिक है, (ब) लड़के लड़कियों की अपेक्षा कथन के स्वरूप के आधार पर अधिक बुद्धिमान् होते हैं, (स) अभ्यास से सीखने में उन्नति होती है (ब) 16 वर्ष के पश्चात् रुचियों में स्थायित्व आ जाता है, आदि।

(ख) **नकारात्मक कथन (Negative Statement):** इस प्रकार की उपकल्पना में कथन नकारात्मक रूप में होता है। उदाहरणार्थ, (अ) वर्ग 'अ' की बुद्धिलब्धि वर्ग 'ब' से अधिक नहीं है, (ब) लड़के लड़कियों से अधिक बुद्धिमान नहीं होते, (स) अभ्यास से सीखने में उन्नति नहीं होती (द) 16 वर्ष के पश्चात् रुचियों में स्थायित्व नहीं आता।

इन दोनों प्रकार की उपकल्पनाओं को निर्देशित उपकल्पना कहते हैं। इनमें एक दोष यह होता है कि जब अनुसन्धानकर्त्ता एक कथन सकारात्मक अथवा नकारात्मक रूप में कर देता है तो उसमें उनके स्वनिहित हो जाने की सम्भावना रहती है। पुनः वह उसे प्रमाणित अथवा गलत सिद्ध करने में लग जाता है। इस सम्भावना के कारण ही इन्हें बहुत अच्छी नहीं मानते।

इन उपकल्पनाओं के बहुत अच्छी न होने का एक अन्य कारण भी है। इनके परीक्षण में सदैव एक-पुच्छ परख (One Tail Test) का ही प्रयोग करते हैं। एक सम्भावना पर विचार करते समय हम दूसरी सम्भावनाओं पर ध्यान नहीं देते। यह भी इसका एक बड़ा दोष है।

(ग) **शून्य उपकल्पना (Null Hypothesis):** इसमें यह मानकर चलते हैं कि दो चर जिनमें सम्बन्ध ज्ञात करने जा रहे हैं उनमें कोई अन्तर नहीं है नल (Null) जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है 'शून्य'। अतः इस परिकल्पना को शून्य उपकल्पना भी कहते हैं। उदाहरणार्थ, (अ) वर्ग 'अ' और वर्ग 'ब' की बुद्धिलब्धि में कोई अन्तर नहीं है, (ब) एक बड़े समूह के पुरुषों की औसत बुद्धिलब्धि तथा एक बड़े समूह की स्त्रियों की औसत बुद्धिलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है, (स) शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापक के समायोजन में अन्तर नहीं होता।

इस प्रकार की शून्य उपकल्पना को एक और रूप में कह सकते हैं— स्थान 'अ' के निवासियों की औसत बुद्धिलब्धि 105 है। इसे भी शून्य उपकल्पना कहते हैं। इसका वर्णन हेज ने किया है। इसका कहना है कि परीक्षण करने में जो निष्कर्ष प्राप्त होता है, उसे हम स्वीकार कहते हैं। यह 105 हो सकता है, इससे अधिक या कम भी हो सकता है।

शून्य उपकल्पना को नकारात्मक उपकल्पना इस अर्थ में मानते हैं कि इसमें यह मानकर चलते हैं कि दो चरों में कोई सम्बन्ध नहीं है अथवा दो समूहों में क विशेष चर के आधार परकोई अन्तर नहीं है। इस उपकल्पना में कोई धनात्मक कथन नहीं करते।

इस प्रकार की उपकल्पना की सबसे पहली विशेषता इसका निर्देशरहित होना है। परीक्षण में सरलता होती है, अनुसन्धानकर्त्ता को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं होना पड़ता। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि इसमें द्वि-पुच्छीय परख का प्रयोग करते हैं अर्थात् दो सम्भावनाओं पर समास द ष्टि रहती है। इसी कारण इसे अच्छी मानते हैं तथा अधिकांश व्यक्ति इसी का प्रयोग करते हैं।

समय के अनुसार उपकल्पना की स्थिति को निम्नलिखित चार्ट द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

1. प्राक्कलन (Prediction)	→ उपकल्पना का निर्माण	→ सार्थक वस्तु स्थिति	→ आँकड़ों का संग्रह
2. उत्तराक्कलन (Postdiction)	→ सार्थक वस्तु स्थिति	→ उपकल्पना का निर्माण	→ आँकड़ों का संग्रह
3. वर्णन या व्याख्या (Description or Explanation)	→ सार्थक वस्तु स्थिति	→ आँकड़ों का संग्रह	→ उपकल्पना का निर्माण

स्थिति 1: इस स्थिति में पहले कोई प्राक्कलन करते हुए उसके आधार पर उपकल्पनाओं का

निर्माण करते हैं, फिर उसके उपरान्त सार्थक वस्तुस्थिति अथवा उस जनसंख्या अथवा स्रोत को ज्ञात करते हैं। अन्त में आँकड़ों का संग्रह कर किसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। उदाहरणके लिए, बुद्धि और शैक्षिक उपलब्धि में उच्च सम्बन्ध होता है। इस प्राक्कलन के पश्चात् उपकल्पनाओं का निर्माण करें। तत्पश्चात् सार्थक वस्तुस्थिति को ज्ञात करने के लिए विभिन्न बुद्धिलब्धि के छात्रों को लेंगे, उन पर परख का प्रयोग करके आँकड़े एकत्र करेंगे और उसका विश्लेषण कर निष्कर्ष प्राक्कलन को सिद्ध अथवा असिद्ध करेगा।

स्थिति 2: इसमें ऐतिहासिक घटनाओं का अध्ययन करते हैं। घटना पहले हो चुकी हैं वर्तमान आंकड़ों के आधार पर उपकल्पना का निर्माण करते हैं तथा आंकड़े एकत्र कर उन्हें जाँचते हैं। उदाहरणार्थ, ताजमहल किसने बनवाया? वर्तमान ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर इसकी व्याख्या कर उपकल्पना की जाँच की जा सकती है। जिसे टाइफाइड हो चुका है, उसकी क्या स्थिति होती है, इसके आधार पर किसी व्यक्ति के विषय में यह कह सकते हैं कि उसे टाइफाइड था।

स्थिति 3: यह वर्णनात्मक अनुसन्धानों में होती है। जो स्थिति है, उसका अध्ययन करती है, उसके आधार पर आंकड़े एकत्र करते हैं, उसकी परीक्षा करते हैं और अन्त में कुछ उपकल्पनाओं का निर्माण करते हैं।

गुडे एवं हट्ट ने 'मेचड्स इन सोशियस रिसर्च': उपकल्पनाओं के तीन महत्त्वपूर्ण प्रकारों का उल्लेख किया है, जो सामाजिक विज्ञानों में अधिक प्रतिष्ठित है, वे है—

1. आनुभविक एकरूपता से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ
2. जटिल-आदर्श प्रारूप से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ, एवं
3. विश्लेषणात्मक चरों से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ

1. **आनुभविक एकरूपता से सम्बन्धित उपकल्पनाएं (Hypothesis Related to Empirical Uniformities):** सर्वप्रथम वे उपकल्पनाएँ आती है, जो अनुभवात्मक समरूपता के अस्तित्व की विवेचना करती है। इस स्तर की उपकल्पनाएं सामान्यतया सामन्य ज्ञान पर आधारित कथनों की वैज्ञानिक परीक्षा करती हैं अर्थात् इस प्रकार उपकल्पनाओं के द्वारा हम ऐसी समस्याओं का अध्ययन कर सकते हैं, जिनके बारे में सामान्यतया सामान्य ज्ञान पर आधारित कथनों की वैज्ञानिक परीक्षा करती है अर्थात् इस प्रकार की उपकल्पनाओं के द्वारा हम ऐसी समस्याओं का अध्ययन कर सकते हैं, जिनके बारे में सामान्य जानकारी पहले से ही उपलब्ध है। उदाहरण के लिए, जैसे किसी उद्योग के श्रमिकों की जातीय प ष्ठभूमि की विवेचना अथवा किसी नगर के उद्योगपतियों के बारे में याअस्प श्यता के बारे में अध्ययन। इसी प्रकार किन्हीं विशिष्ट समूहों के व्यवहारों का अध्ययन भी किया जा सकता है, जैसे किसी विशिष्ट कॉलेज के नवीन छात्रों के व्यवहार का अध्ययन कि वे पुराने छात्रों के व्यवहार से भिन्न है या नहीं।

   कुछ लोगों का विश्वास है कि इस प्रकार के अध्ययनों से किसी प्रकार की उपकल्पना का प्रयोग नहीं होता है क्योंकि मात्र कुछ नये तथ्यों को एकत्रित किया जाता है, जबकि वस्तुतः इस प्रकार के अध्ययन में सामान्य जानकारी वाले कथन उपकल्पना का कार्य करते हैं तथा किए गए सर्वेक्षण या तो उस जानकारी की पुष्टि करते हैं या उनका खण्डन करते हैं। इस उपकल्पना के विरुद्ध सबसे बड़ा तर्क यह दिया जाता है कि इस प्रकार की उपकल्पना की कोई उपयोगिता नहीं है, क्योंकि जिसे सब लोग जानते हैं, उसे बताने में कोई नवीनता

नहीं है, तथापि यहाँ इतना कहना पर्याप्त होता है कि प्रत्येक सामान्य जानकारी वैज्ञानिक जानकारी नहीं होती है, क्योंकि वैज्ञानिक जानकारी केवल व्यवस्थित रूप में वैज्ञानिक पद्धति द्वारा की प्राप्त की जा सकती है। सामान्य जानकारी में प्रायः अन्धविश्वास एवं शंकाएँ भी सम्मिलित रहती हैं। इस प्रकार उपकल्पना का कार्य तीन स्तरों पर होता है –

प्रथम, यह मूल्य प्रदान निर्णयों की प थक् करती है, दूसरा, पदों की व्याख्या करती है एवं तीसरा, उसकी प्रामाणिकता की जाँच करती है।

सामान्यतः जब किसी तथ्य के बारे में वैज्ञानिक अध्ययन के बाद उपलब्ध जानकारी पर यह कहा जाता है कि इसका पहले से ज्ञान था, जबकि वस्तुतः सच्चाई यह है कि बिना उस अध्ययन के उस प्रकार की पूर्वघोषणा करना किसी के लिए भी सम्भव नहीं होता, अतः वस्तुतः जिसके बारे में यह पद होता है, उसे सभी जानते है। यह मात्र प्रमाणिकता सिद्ध होने के बाद ही माना जाता है। इस प्रकार उपकल्पना की सरलतम रूप आनुभविक सामान्यीकरण प्राप्त करना है।

2. **जटिल आदर्श प्रारूप से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ (Hypothesis Related to Complex Ideal Types):** गुडे एवं हट्ट के अनुसार दूसरे प्रकार की उपकल्पनाएँ जटिल आदर्श प्रारूप से सम्बन्ध रखती हैं। इन उपकल्पनाओं का उद्देश्य का प्रचलित तार्किक एवं अनुभवात्मक एकरूपताओं के सम्बन्धों का परीक्षण करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार की उपकल्पनाएँ विभिन्न कारकों में तार्किक अन्तसम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से बनाई जाती हैं। ऐसी उपकल्पना की परीक्षा के लिए सर्वप्रथम तथ्यों को तर्कपूर्ण मानकर 'सामान्यीकरण' (Generalization) निकाल लिया जाता है। बाद में उसी आधार पर अन्य तथ्यों एवं घटनाओं की परीक्षा करने और उक्त आधार के सार्थक सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है।

   संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि उपकल्पना के इस प्रकार में एक सामान्य मान्यता अथवा निष्कर्ष को पूर्वाधार मानकर अन्य तथ्यों की तर्कपूर्ण रूप से परीक्षा की जाती है। गुडे एवं हट्ट ने स्वयं लिखा है कि "यथार्थ में अधिक जटिल अनुसन्धान के क्षेत्र में पुनः शोध करने के लिए उपकरणों एवं समस्याओं का निर्माण करना इस प्रकार की उपकल्पना का महत्त्वपूर्ण कार्य है।"

   ई. डब्ल्यू. बर्गेस (E. W. Burgess) ने इस प्रकार की उपकल्पनाओं का प्रयोग 'नगरीय समाजशास्त्र' में शहरों के जीवन की व्याख्याओं के सम्बन्ध में किया था। उनकी एक उपकल्पना थी कि "केन्द्रीभूत गोलाकर नगर-विकास की प्रव त्ति के लक्षण होते हैं।" इस स्तर पर उपकल्पना मात्र सामान्य आनुभविक एकरूपताओं के अनुसन्धान से आगे बढ़कर समाज के सन्दर्भ में जटिल निर्देश को जन्म देती है। इस प्रकार की उपकल्पनाओं का प्रयोग सामान्यतः जटिल क्षेत्रों के अनुसन्धान के क्षेत्रों को प्रस्तुत करता है।

3. **विश्लेषणत्मक चरों से सम्बन्धित उपकल्पनाएँ (Hypothesis Ralated to Analytical Variables):** जहाँ प्रथम प्रकार की उपकल्पनाओं का सम्बन्ध 'आनुभविक एकरूपता' से होता है; तथा द्वितीय प्रकार की उपकल्पनायें 'आदर्श प्रारूपों' को बताती हैं वहीं त तीय प्रकार की उपकल्पाओं में विश्लेषणात्मक परिवर्तनों के अध्ययन के लिए एक प्रकार के लक्षणों से दूसरे प्रकार के लक्षणों में परिवर्तनों के मध्य सह-सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। इस प्रकार की उपकल्पनायें न केवल अन्य प्रकार की उपकल्पनाओं की तुलना में पर्याप्त आपूर्त

हैं, अपितु यह सूत्रीकरण का सर्वाधिक परिष्कृत तथा लचीला स्वरूप है। उपकल्पना के इस स्तर पर चरों की संख्या मात्र सिद्धान्त की सीमित कर सकता है तथा सिद्धान्त स्वयं विकास करता है, अतः निरन्तर नवीन अनुसन्धान के अवसर उपस्थित होते रहते हैं।

इस प्रकार की उपकल्पनाओं का प्रयोग सामान्यतः प्रयोगात्मक अनुसन्धानों में किया जाता है। आधुनिक सामाजिक अनुसन्धानों में इस प्रकार की उपकल्पनाओं का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। उदाहरणार्थ, निर्धनता, बाल-अपराध, छात्र असन्तोष आदि के लिए अनेक कारक उतरदायी हैं। इसमें अर्न्तसम्बन्धों की स्थापना का तार्किक आधार महत्त्वपूर्ण होता है।

उपयोगी (श्रेष्ठ) उपकल्पना की विशेषताएँ

(Characteristics of Workable or Usable or Good Hypothesis)

यों तो 'प्राक्कल्पनाओं का सपना' हम सभी को आता है - कोई तो परीक्षा पास करने के सम्बन्ध में प्राक्कल्पना करता है कोई रातों-रात धनी बन जाने के सम्बन्ध में प्राक्कल्पना करता है, कोई प्रेम में विजय पाने के लिए यह मान लेता है कि 'प्रेम और युद्ध में कुछ भी अनुचित नहीं है' कोई पिता अपने 'बिगड़े शहजादों' को सही रास्ते में लाने के लिए 'बाल मनोविज्ञान' की पुस्तक की खरीदकर कुछ 'अच्छी' प्राक्कल्पनाओं का निर्माण करता है— पर दुर्भाग्यवश इन्हें व्यवहारिक स्तर पर लाने या उन्हें प्रयोग में लाने योग्य बनाने और उनकी सत्यता की जांच करने का प्रयत्न बहुत कम लोग ही करते हैं। सपनों की भाँति ही ये प्राक्कल्पनाएँ रात को आती और दिन को चली जाती है—'बेरहमों की तरह'। ऐसा इसलिए होता है कि प्राक्कल्पनाएँ उपयोगी हों, इसके लिए यह आवश्यक है कि उनमें कुछ उल्लेखनीय गुण या विशेषताएँ हों। वैज्ञानिक प्रयोग (use) के योग्य प्राक्कल्पनाओं की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(क) **स्पष्टता (Clarity):** प्राक्कल्पनाओं का अवधारणात्मक रूप में स्पष्ट (Conceptually Clear) होना परमावश्यक है। स्मरण रहे कि किसी भी स्तर पर अस्पष्टता वैज्ञानिक पद्ध के प्रतिकूल है और चूँकि प्राक्कल्पनाओं का निर्माण उसी वैज्ञानिक पद्धति का प्रथम चरण है। अतः प्राक्कल्पनाओं में भी अस्पष्टता होना वैज्ञानिक भावना के विरुद्ध है। प्राक्कल्पनाओं की स्पष्टता में सर्वश्री मूड तथा हॉट (Goode and Hatt) के अनुसार दो बातें सम्मिलित हैं'— एक तो यह कि प्राक्कल्पना में निहित अवधारणाओं को स्पष्ट रूप में परिभाषित किया जाए ताकि किसी भी प्रकार की अस्पष्टता आगे चलकर अध्ययन-कार्य में बाधा की स ष्टि न कर सके, और दूसरी यह कि ये परिभाषाएँ ऐसी स्पष्ट भाषा में लिखी जाएँ कि अन्य लोग भी सामान्यतः उसका सही अर्थ समझ सकें।

(ख) **अनुभवाश्रित सन्दर्भ (Empirical Referents):** इस विशेषता का तात्पर्य यह है कि वही प्राक्कल्पना वैज्ञानिक अनुसन्धान में प्रयुक्त की जा सकती है जिसमें कि आदर्शात्मक निर्णय (value judgement) का पुट नहीं है। इसका अर्थ यह है कि वैज्ञानिक को अपनी प्राक्कल्पना में किसी आदर्श को प्रस्तुत करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, अपितु उसका सम्बन्ध ऐसे विचार या ऐसी अवधारणा से होना चाहिए जिसकी सत्यता की परीक्षा वास्तविक प्रयोग अथवा वास्तविक तथ्यों के आधार पर की जा सके। 'स्त्रियाँ स्वभावतः ही चंचल होती है', 'सभी विद्यार्थियों को अनुशासित जीवन व्यतीत करना है', 'आज संयुक्त परिवार अनावश्यक है', आदि प्राककल्पनाएँ आदर्शात्मक हैं और इसलिए वैज्ञानिक अध्ययन का आधार नहीं बन सकतीं।

(ग) **विशिष्टता (Specificity):** प्राक्कल्पना अगर अत्यन्त सामान्य (General) है तो उससे यथार्थ निष्कर्ष तक पहुंचना सम्भव नहीं होता है क्योंकि किसी विषय के सभी पक्षों का वैज्ञानिक अध्ययन हम एक ही समय पर नहीं कर सकते। अतः यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि प्राक्कल्पना अध्ययन-विषय के किसी विशेष पहलू से सम्बद्ध हो। साथ ही, अगर उसमें विशिष्टता का गुण नहीं हुआ तो उसकी सत्यता की जाँच करना भी कठिन हो जाता है और जो प्राक्कल्पना जाँच से परे है। वह वैज्ञानिक के लिए निरर्थक भी है। अक्सर ऐसा होता है कि प्राक्कल्पना को अधिकाधिक आकर्षक व प्रभावशाली बनाने के लिए उसे ऐसे विराट व सामान्य तौर पर (in general terms) व्यक्त किया जाता है कि वह स्वयं वैज्ञानिक की पहुंच के बाहर हो जाती है। अतः प्राक्कल्पना में विशिष्टता का होना आवश्यक है जिससे कि एक सुनिश्चित वैज्ञानिक सीमा के अन्तर्गत रहते हुए सत्य की खोज सम्भव हो।

(घ) **उपलब्ध प्रविधियों से सम्बद्ध (Related to Available Techniques):** प्राक्कल्पना का निर्माण इस बात को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए कि उसकी सत्यता की जाँच उपलब्ध प्रविधियों के द्वारा सम्भव हो। वास्तव में, जैसा कि सर्वश्री गूड एवं हॉट (Goode and Hatt) का कथन है, "सिद्धान्त और पद्धति एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। जो सिद्धान्तकार यह नहीं जानता है कि उसकी प्राक्कल्पना की जाँच के लिए कौन-कौन सी प्रविधियाँ उपलब्ध हैं, वह उपयोगी प्रश्नों के निर्माण में असफल रहता है।" अतः प्राक्कल्पनाएँ ऐसी होनी चाहिएँ तो कि प्रचलित प्रविधियों की पहुंच के भीतर हों। पर इस नियम का तात्पर्य यह नहीं है कि प्राक्कल्पनाओं का निर्माण उपलब्ध प्रविधियों द्वारा सीमित है। आधुनिक समय में समस्याएँ इतनी जटिल हैं कि उनसे सम्बद्ध जटिल प्राक्कल्पनाओं का निर्माण केवल प्रविधियों को ध्यान में रखकर बनाना सम्भव नहीं। उपरोक्त नियम का तात्पर्य तो केवल इतना ही है कि प्राक्कल्पना इस प्रकार की हो कि वह अनुसन्धान का एक सामयिक आधार भी बन सकती है या नहीं, इसकी परीक्षा उपलब्ध प्रविधियों द्वारा की जा सके।

(ङ) **सिद्धान्त समूह से सम्बद्ध (Related to Body of Theory):** संबंधी गूड और हॉ (Goode and Hatt) ने लिखा है कि इस नियम की अवहेलना अक्सर सामाजिक अनुसन्धान के आरम्भिक विद्यार्थी कर जाते हैं। उनके चुनाव मे इस बाबत की सम्भावना अधिक होती है कि वे इस प्रकार के अध्ययन-विषय (Subject-Matter) को चुन लें जो कि 'रुचिकर' (Interesting) या आकर्षक हों। ऐसा करते समय वे इस बात का ध्यान नहीं रखते हैं कि उनका वह शोध-कार्य वास्तव में सामाजिक संबंधों से सम्बद्ध किन्हीं विद्यमान सिद्धान्तों को गलत प्रमाणित करने या उन्हें सही प्रमाणित करने अथवा उनकी प ष्टि करने में सहायक होगा भी या नहीं। पर एक विज्ञान सभी प्रगतिशील बन सकता है जबकि विद्यमान तथ्य व सिद्धान्त-समूह पर सुप्रतिष्ठित हो। उस अवस्था में उसका विकास हो नहीं सकता यदि प्रत्येक अध्ययन एक प थक् सर्वेक्षण हो। अतः प्राक्कल्पना ऐसी होनी चाहिए जो सम्बद्ध क्षेत्र में किसी पूर्वस्थापित सिद्धान्त के क्रम में हो क्योंकि असम्बद्ध प्राक्कल्पनाओं की परीक्षा विस्त त सिद्धान्तों के सन्दर्भ में नहीं की जा सकती। भौतिक विज्ञानों में शोध-कार्य पर्याप्त उन्नत स्तर तक पहुंचने का कारण यह है। कि विभिन्न अनुसन्धानकर्त्ता पूर्व सिद्धान्तों से सम्बद्ध संक्षिप्त, स्पष्ट तथा विशिष्ट प्राक्कल्पनाओं का निर्माण करके छोटी-छोटी सम्बद्ध समस्याओं पर खोज करते रहते हैं।

उपकल्पना के निर्माण में कठिनाईयाँ
(Difficulties in the Formulation of a Hypothesis)

उपकल्पना का निर्माण अत्यन्त सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। लेकिन अनेक बार अत्यन्त सावधानीपूर्वक उपकल्पनाओं का निर्माण करने के बाद भी कुछ कठिनाईयाँ उपस्थिति हो जाती है। इन कठिनाइयों के कारण अनेक बार अनुसन्धानकर्त्ता अपना धैर्य खोने लगता है। गुडे एवं हट्ट ने उपकल्पना निर्माण में आने वाली तीन प्रमुख कठिनाइयों का उल्लेख किया। वे हैं–

1. स्पष्ट सैद्धान्तिक सन्दर्भ का अभाव (Absence of a Clear Theoretical Framework)।
2. उपलब्ध सैद्धान्तिक सन्दर्भ को तार्किक रूप से उपयोग में जलाने लाने का अभाव (Lack of Ability to Utilise that Theoretical Framework Logically)।
3. उपलब्ध अनुसन्धान प्रविधियों के साथ पर्याप्त जानकारी का अभाव (Failure to be Acquainted with Available Research Techniques).

लेकिन यहाँ हम उपकल्पना निर्माण में आने वाली कुछ सामान्य कठिनाइयों का उल्लेख करेंगे।

1. **सैद्धान्तिक सन्दर्भ की अनुपस्थिति (Lack of Theoretical Framwork):** किसी विचार के उत्पन्न होने के पश्चात् उस पर वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा अनुसन्धान करते हेतु जब उपकल्पना का निर्माण किया जाता है तो सर्वप्रथम कठिनाई यह उपस्थित होती है कि पूर्व-स्थिति के स्पष्टीकरण के लिए सैद्धान्तिक सन्दर्भ (ढाँचा) उपलब्ध नहीं हो पाता है। अतः ऐसी स्थिति में एक कार्यकारी उपकल्पना का निर्माण कठिन हो जाता है।

2. **सैद्धान्तिक सन्दर्भ के आवश्यक ज्ञान का अभाव (Lack of Knowledge of Theoretical Framework):** अनेक बार सैद्धान्तिक सन्दर्भ तो उपस्थित होता है, मगर अनुसन्धानकर्त्ता को अपने विषय एवं उपकल्पना से सम्बन्धित सैद्धान्तिक सन्दर्भ का स्पष्ट ज्ञान नहीं होता, तथा उसके अभाव में वह सफलतापूर्वक उपकल्पना का निर्माण नहीं कर सकता। सैद्धान्तिक सन्दर्भ का स्पष्ट ज्ञान अनुसन्धानकर्त्ता की प्रथम आवश्यकता है।

3. **सैद्धान्तिक सन्दर्भ के तर्कपूर्ण प्रयोग का अभाव (Lack of Logical use of Theoretical Framework):** सैद्धान्तिक सन्दर्भ की पूर्ण उपस्थिति एवं उसके बारे में पर्याप्त ज्ञान होने के बाद भी उपकल्पना निर्माण में एक कठिनाई यह आती है कि उसमें सैद्धान्तिक सन्दर्भ के तर्कपूर्ण (Logical) एवं कुशल (Efficient) प्रयोग की योग्यता भी होनी चाहिए। इसके अभाव में उपयोगी उपकल्पना का निर्माण लगभग असम्भव ही है।

4. **अध्ययन प्रविधियों की विविधता (Varying Study Techniques):** आधुनिक समय में अनेक नवीन आविष्कारों, मशीनों एवं यन्त्रों आदि का प्रचलन बढ़ जाने से नवीनतम अध्ययन-प्रविधियों के आ जाने से इन अध्ययन-प्रविधियों में इतनी विविधता आ गई है कि एक अनुसन्धानकर्त्ता के लिए सर्वाधिक उपयुक्त पद्धति का चयन करना अत्यन्त दुष्कर हो गया है। वर्तमान में एक ही अध्ययन अनेक प्रविधियों से किया जा सकता है। अतः उपर्युक्त प्रविधि का चयन बहुत कठिन होता है।

निदर्शन
(Sampling)

सामाजिक विज्ञानों में निदर्शन पद्धति का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। निदर्शन की प्रक्रिया (सम्पूर्ण

(Whole) या समग्र (Universe) में से उसके एक ऐसे अंश का चुनाव, जिसके आधार पर समग्र के बारे में परिणाम निकाले जाते हैं) का विकास जन-शताब्दियों में ही हुआ है। मिल्ड्रेड पार्टिन के मत में 1900 के पूर्व में निदर्शन के उपयोग के लिखित प्रमाण बहुत कम संख्या में उपलब्ध होते हैं। 1920 के उपरान्त ही निदर्शन का प्रयोग आरम्भ हुआ माना जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका की जनगणना ब्यूरो ने इसका सर्वप्रथम प्रयोग 1940 में किया है।

ए.एल. बाऊले ने लन्दन में विभिन्न समूहों में से कुछ परिवारों का चयन करके उस अध्ययन के आधार पर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए वे बहुत बड़ी मात्र में उस स्थान की सम्पूर्ण जनसंख्या की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते थे। बाद में आगे चलकर चार्ल्स बूथ एक राउन्ट्री ने उसी समुदाय का व्यापक अध्ययन कर जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए वे बहुत कुछ बाऊले के निष्कर्षों के समान थे, अतः सामाजिक विज्ञानों में बाऊले द्वारा प्रयुक्त निदर्शन प्रणाली की उपयोगिता इस बात को लेकर स्थापित हो गई कि निदर्शन के द्वारा न केवल बहुत अधिक धन व समय की बचत की जा सकती है, बल्कि अध्ययन के निष्कर्षों में विश्वसनीयता व उपयोगिता में भी कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, अतः शनैः शनैः निदर्शन पद्धति समस्त विज्ञानों में अत्यन्त लोकप्रिय होती गई। ए. वुल्फ ने लिखा है कि "विज्ञान एवं दैनिक जीवन के अन्तर्गत वास्तविक प्रयोग में हम उस बात का विश्वास करते हं जिसे शुद्ध निदर्शनों का सिद्धान्त माना जा सकता है।"

हम अपने सामान्य दैनिक जीवन में निदर्शन का प्रयोग अनेकों बार करते हैं। उदाहरणार्थ, हम बाजार से राशन लेते समय, राशन की पूरी बोरी को उठाकर नहीं देखते वरन् एक मुट्ठी भर राशन का निरीक्षण कर यह पता लगा लेते हैं कि राशन की गुणवता कैसी है। ग हिणी खाना बनाते समय पूरे खाने को नहीं अपितु पूरे खाने में से एक चम्मच चखकर यह अनुमान लगा लेती है कि खाना कैसा पका है। फल खरीदते समय भी हम पूरे फल को नहीं खाते वरन् पूरे ढेर में से एक फल को खाकर यह जान लेते हैं कि फल मीठा है अथवा नहीं। उपरोक्त सभी क्रियाओं में हमने निदर्शन पद्धति का प्रयोग किया है।

अनुसन्धान कार्य में भी यही बात लागू होती है। अनुसन्धान में अधिकतर परिस्थितियाँ ऐसी आती हैं जिनमें हम केवल निदर्शन के आधार पर विश्वसनीय निष्कर्ष निकाल सकते हैं। बशर्ते कि निदर्शन का चयन वैज्ञानिक ढंग से किया गया हो। अधिकतर अनुसन्धान परिस्थितयों में निष्कर्ष निकलने के लिए केवल निदर्शन को लेना ही पर्याप्त नहीं होता किन्तु समष्टि के समस्त सदस्यों का अध्ययन करना अनावश्यक होता है। सम्पूर्ण समष्टि का अध्ययन करना केवल समय का अपव्यय है, क्योंकि निदर्शन के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष समष्टि के समस्त सदस्यों के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों से भिन्न नहीं होते। जब हम एक चम्मच चावलों के आधार पर यह पता लगा सकते हैं कि चावल पके हैं या नहीं, तो बर्तन के सब चावल को देखना न तो आवश्यक ही है न सम्भव ही। साथ ही सब चावलों को यदि हम देख भी लें तो शायद हम उसी निष्कर्ष पर पहुंचेगे जिस निष्कर्ष पर एक चम्मच चावलों को देखकर पहुंचे हैं।

अनुसन्धान कार्य में कुछ परिस्थितियां अवश्य ऐसी हो सकती हैं जिसमें हमें सम्पूर्ण समग्र का अध्ययन करना पड़ता है। केवल निदर्शन से काम नहीं चलता। उदाहरणार्थ, हमें यदि यह पता लगाना हो कि भारत में इस समय साक्षरता (Literacy) की क्या स्थिति है तो हमें सम्पूर्ण गणना करनी होगी केवल निदर्शन लेकर काम नहीं चलेगा। किन्तु अधिकतर परिस्थितियों में हम निदर्शन के द्वारा निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

निदर्शन की प्रक्रिया अथवा समग्र या समष्टि से उसके ऐसे अंश का चुनाव, जिसके आधार पर

सम्पूर्ण समग्र का समष्टि के विषय में परिणाम निकाले जाने हैं, अत्यधिक प्राचीनकाल से अनुसंधान कार्यरीति के एक वैद्य एवं शीघ्रता के साथ कार्य करने के ढंग के रूप के प्रयोग में लाया जाता रहा है। आधुनिक निदर्शन कार्यरीति के इतिहास का पूर्ण वर्णन प्रस्तुत करते हुए स्टीफन ने यह बतलाया है कि "नियमित जनगणनाओं की स्वीकृति के पूर्व सदैव निदर्शन किए जाते रहे हैं।" जानबूझ कर निदर्शन के लिए बनाई गई योजनाओं के लिखित प्रमाण सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में सन् 1900 से पूर्व बहुत कम संख्या में उपलब्ध हैं। **ए.एल. बाउले** द्वारा लंदन में घरों को दैव निदर्शन प्राप्त करने के लिए बनाई गई योजना में सर्वप्रथम प्रतिदर्शन के लिए अपनाई गई अधिक कठोर कसौटियाँ द ष्टिगोचर होती हैं।

निदर्शन-पद्धति का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning & Definition)

निदर्शन पद्धति का अर्थ जानने से पूर्व आवश्यक है कि हम निदर्शन का अर्थ जान लें।

मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि समग्र में से चुने गए ऐसे "कुछ" को जोकि समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करता है निदर्शन कहते हैं। इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि निदर्शन किसी भी चीज या समूह का सम्पूर्ण भाग या समस्त इकाइयाँ नहीं होती हैं अपितु उस समग्र का एक छोटा भाग या केवल कुछ इकाइयाँ ही होती हैं, पर समग्र का कोई भी कुछ इकाई निदर्शन नहीं है जब तक कि ये कुछ इकाइयाँ समग्र की आधारभूत विशेषताओं का उचित प्रतिनिधित्व न करें। इस अर्थ में समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करने वाली कुछ इकाइयों को निदर्शन कहा जाता है। सर्वश्री गूड एवं हॉ (Goode and Hatt) ने लिखा है, "एक निदर्शन जैसा कि नाम से स्पष्ट है किसी विशाल सम्पूर्ण का छोटा प्रतिनिधि है।

श्रीमती यंग के अनुसार, "एक सांख्यिकीय निदर्शन उस सम्पूर्ण समूह अथवा योग का एक अति लघु चित्र है जिसमें से कि निदर्शन लिया गया है।"

श्री फ्रैंक याटन (Frank Yaton) के शब्दों में, "निदर्शन शब्द का प्रयोग केवल किसी समग्र चीज की इकाइयों के एक सेट या भाग के लिए किया जाना चाहिए। जिसे इस विश्वास के साथ चुना गया है कि वह समग्र का प्रतिनिधित्व करेगा।"

उपरोक्त विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि निदर्शन-पद्धति अनुसन्धान की वह पद्धति है जिसमें अनुसन्धान विषय के अन्तर्गत सम्मिलित सम्पूर्ण जनसंख्या या इकाईयों में से सावधानीपूर्वक कुछ ऐसी इकाइयों को चुन लेता है जो कि सम्पूर्ण की आधारभूत विशेषताओं का उचित प्रतिनिधित्व कर सकें।

श्री वाई॰डी॰ केसकर (V.D. Keskar) के अनुसार, "निदर्शनात्मक अनुसन्धान में हम समग्र समूह के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करते हैं यद्यपि संकलित तथ्य जिसके आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं समग्र के केवल एक भाग से सम्बन्धित होता है।"

श्री बोगार्डस (Bogardus) के शब्दों में, "निदर्शन-प्रविधि एक पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार इकाइयों के एक समूह में से एक निश्चित प्रतिशत का चुनाव है।"

श्री फेयरचाइल्ड (Fairchild) ने अपनी **डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी** में में मिलड्रेड पार्टन के शब्दों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "एक निश्चित संख्या में व्यक्तियों, मामलों या निरीक्षणों को एक समग्र विशेष में से निकालने की प्रक्रिया या पद्धति अथवा अध्ययन के हेतु एक समग्र समूह में से एक भाग को चुनना निदर्शन पद्धति कहलाती है।"

जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है निदर्शन-प्रविधि का केवल वैज्ञानिक अनुसन्धान में ही नहीं बल्कि रोज के व्यावहारिक जीवन में भी प्रयोग किया जाता है। श्री टिप्पेट (Tippett) ने ठीक ही लिखा है कि "बड़े समूह में से एक छोटा भाग लेने की विधि सामान्यतया भली प्रकार समझी और विस्त त रूप में काम में लाई जाती है। ग हस्वामिनी दुकान पर पनीर खरीदने से पहले उसका एक टुकड़ा नमूने के रूप में लेगी और एक रुई धुनने वाला व्यक्ति केवल रुई के टुकड़े को देखकर ही उस रुई की पूरी गाँठ को खरीद लेगा।" इस प्रविधि की लोकप्रियता के कारणों की विवेचना हम इसी अध्याय में आगे चलकर करेंगे। उससे पहले यहाँ निदर्शन के आधार को समझ लेना आवश्यक होगा।

निदर्शन के आधार

(Bases of Sampling)

निदर्शन पद्धति का अर्थ जान लेने के पश्चात हमारे मन में यह प्रश्न उठता है कि सम्पूर्ण जनसंख्या में से केवल कुछ इकाइयों को चुनकर उसी को सम्पूर्ण का प्रतिनिधि किस प्रकार मान लिया जाए। इस के पक्ष में हम निम्नलिखित तर्क दे सकते हैं:-

1. **सम्पूर्ण जनसंख्या की एकरूपता (Homoegeneity of Universe):** श्री लुण्डबर्ग (Lundberg) ने लिखा है कि यदि तथ्यों में अत्यधिक एकरूपता पाई जाती है अर्थात् सम्पूर्ण तथ्यों की विभिन्न इकाईयों में अन्तर बहुत कम है तो सम्पूर्ण में से कुछ या कोई इकाई समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करेगी। इसलिए यदि हमारा अध्ययन-विषय इस प्रकार का है कि उसकी विभिन्न इकाईयों को चुनेंगे वे प्रतिनिधित्वपूर्ण होंगी और हमारा निदर्शन यथार्थ होगा। भौतिक चीजों में इस प्रकार की समानता बहुत-कुछ उत्पादन विधि में समानता होने के कारण देखने को मिलती है। उदाहरणार्थ, कपड़े का एक छोटा-टुकड़ा एक मिल में उत्पादित उस प्रकार के समस्त कपड़े का एक छोटा-टुकड़ा एक मिल में उत्पादित उस प्रकार के समस्त कपड़ों का उचित प्रतिनिधित्व कर सकता है अथवा घर में पकी हुई सब्जी की एक प्लेट सम्पूर्ण सब्जी की उत्तमता या अधमता का परिचायक हो सकती है। परन्तु सामाजिक घटनाओं काअध्ययन-विषयों में इस प्रकार की समानताओं की आशा नहीं की जा सकती। श्री स्टीफॉन (Stephan) ने लिखा है कि आधुनिक बड़े समाजों में विभिन्न प्रजाति, राष्ट्र, धर्म, आर्थिक स्थिति, पेशा, प्रथा-परम्परा, मनोव त्तियों तथा रुचियों के लोग इतना अधिक घुले-मिले रहते हैं कि उनमें समानता का दर्शन नहीं होता है। इसके विपरीत जीवन के प्रत्येक पक्ष में विविधताओं का ही बोलबाला होता है और एक-दूसरे को अलग करना कठिन होता है। इस प्रकार के स्पष्ट विभाजनों के प्रभाव से ऐसे निदर्शन का चुनकर जटिल हो जाता है जो कि समुदाय में विद्यमान समस्त विविधिताओं का प्रतिनिधित्व कर सके। अतः निदर्शन के चुनाव में हमें अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए ताकि इन विविधताआं में अन्तर्निहित एकरूपता को ढूँढ़ा जा सके और हमारा निदर्शन प्रतिनिधित्व हो। निदर्शन-प्रविधि इस मान्यता पर आधारित है कि विविधताओं के बीच समानताओं को भी सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में खोजा जा सकता है।

2. **प्रतिनिधि चुनाव की सम्भावना (Possibility of Representative Selection)**— निदर्शन-प्रविधि में यह स्वीकार किया जाता है कि सम्पूर्ण में से कुछ इकाइयों को इस प्रकार चुना जा सकता है कि वे सम्पूर्ण का प्रतिनिधित्व कर सकें। पर इसके लिए कुछ नियमों का पालन आवश्यक है। उदाहणार्थ, किसी विशाल समूह से केवल एक या दो इकाइयों के चुन लेने

से ही उस समूह के बारे में हमारा निष्कर्ष प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं होगा। निदर्शनों की संख्या समूह की विशालता के अनुसार होनी चाहिए। उसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि किसी विशेष गुण या गुण-समूह के आधार पर सम्पूर्ण समूह को कछ निश्चित वर्गों में विभाजित कर लिया जाए और प्रत्येक वर्ग की कुछ इकाइयों को चुन लिया जाए तो इस प्रकार चुनी हुई सभी इकाइयों के लिए समग्र समूह की आधारभूत विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करना सम्भव होगा।

3. **लगभग सही होना (Approximate Accuracy):** कोई भी निदर्शन चाहे वह कितनी ही सावधानी से क्यों न चुना गया हो, सम्पूर्ण का शतप्रतिशत प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। इसलिए निदर्शन में परिपूर्ण परिशुद्धता लाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि निदर्शन यथासंभव प्रतिनिधित्वपूर्ण हो। यह यथासम्भव प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन वास्तविक स्थिति का एक लगभग चित्र होगा और हमारा निष्कर्ष भी लगभग ठीक होगा। सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में हमें इस लगभग निष्कर्ष से ही सन्तुष्ट रहना पड़ता है क्योंकि व्यवहारतः शतप्रतिशत सही निष्कर्ष सम्भव नहीं है।

उदाहरणार्थ, यदि किसी कॉलेज के 200 विद्यार्थियों का अध्ययन निदर्शन-प्रविधि द्वारा किया गया और पता चला कि 7 प्रतिशत विद्यार्थी क्लास से भाग जाने के आदी हैं, जबकि उस कॉलेज के समस्त विद्यार्थियों की जांच करके यदि यह पता चले कि यह प्रतिशत 6.4 अथवा 7.3 है तो हमारे निष्कर्षों पर कोई बहुत बड़ा प्रभाव नहीं पड़ता है और इस प्रकार थोड़े-बहुत अन्तर के लिए प्रत्येक समाज-वैज्ञानिक को प्रस्तुत रहते भी निदर्शन-प्रविधि को अपनाना चाहिए।

निदर्शन की अनिवार्य अवधारणाएँ
(Essential Concepts of Sampling)

निदर्शन के बारे में विस्त त अध्ययन से पूर्व यह अधिक उचित होगा कि निदर्शन से सम्बन्धित कुछ प्रमुख अवधारणाओं की विवेचना करें जो कि निम्नांकित हैं—

1. **इकाई** (Unit)
2. **समग्र या समष्टि** (Universe)
3. **निदर्शन इकाई** (Sampling Unit)
4. **निदर्शन संरचना** (Sampling Frame)
5. **स्तर** (Strata)
6. **साधन-सूची** (Source List)

1. इकाई

एक प्रारम्भिक इकाई अथवा केवल एक इकाई तत्त्व अथवा तत्त्वों का एक ऐसा समूह है जिस पर पर्यवेक्षण किए जा सकते हैं अथवा जिससे एक सुपरिभाषित सांख्यिकीय कार्यरीति के अनुसार अपेक्षित साँख्यिकीय सूचना प्राप्त की जा सकती है। इकाईयों के उदाहरण व्यक्ति, परिवार, फार्म, कारखाने इत्यादि। एक सूचना प्रदान करने वाली इकाई वह इकाई वह इकाई है जो वास्तव में आवश्यक साँख्यिकीय सूचना प्रदान करती है अथवा जिससे सूचना सरलतापूर्वक प्राप्त की जा सकती है। सूचना प्रदान करने वाली यह इकाई एक अकेली प्रारम्भिक इकाई अथवा अनेक प्रारम्भिक इकाईयों का समूह हो सकती है। उदाहरण के लिए, परिवार का

मुखिया। एक विश्लेषण की इकाई वह इकाई है जिसका प्रयोग सारणीकरण के स्तर पर किया जाता है। यह ध्यान रहे कि सूचना प्रदान करने वाली इकाई तथा विश्लेषण की इकाई भिन्न-भिन्न हो सकती है। उदाहरण के लिए, सूचना प्रदान करने वाली इकाई के रूप में परिवार का मूखिया हो सकता है तथा विश्लेषण की इकाई के रूप में परिवार अथवा परिवार का कोई व्यक्ति हो सकता है।

राजनीतिक समग्र की इकाइयाँ अवधारणाओं के द्वारा निर्मित होती हैं तथा अमूर्त होती हैं। उन्हें केवल कतिपय चिन्हों, प्रतीकों या संकेतकों द्वारा ही पहचाना जाता है। जैसे, भ्रष्टाचार, राष्ट्रवादी, गाँधीवाद, आदि को विशेष संकेतकों अथवा व्यवहार के आधार पर ही जाना जा सकता है। **पार्टन** (Parten) ने लिखा है कि "सर्वेक्षक यह विचार सम्बन्धी भूल कर बैठते हैं कि मनुष्यों के समग्र का अध्ययन करते समय केवल व्यक्ति (Individual) ही उनके समग्र की इकाई बन सकते हैं। वास्तव में बहुत कम शोध-अध्ययनों में व्यक्ति को अध्ययन की इकाई बनाया जाता है।" राजनीतिक शोध में व्यक्ति के मतदाता दलीय सदस्यता, राजनेता, अनुयायी आदि पक्ष शोध-समग्र की इकाई बनते हैं। समग्र की अनेक इकाइयाँ हो सकती हैं जैसे–

1. **भौगोलिक इकाइयाँ (Geographical Units):** राज्य, जिला, ग्राम, नगर, वार्ड, गली, तहसील आदि।
2. **राजनीतिक इकाइयाँ (Political Units):** राजनीतिक दल, राज्य, जिला परिषद्, पंचायत समिति, पंचायत, दबाव समूह, विधानसभा, संसदीय समितियाँ, राष्ट्र, राष्ट्रीयता-समूह, राजनीतिक अभिजन, विरोध पक्ष, मतदाता वर्ग आदि।
3. **प्रशासनिक इकाइयाँ (Administrative Units):** विभाग, कर्मचारी संघ निगम, अधीनस्थ कार्यालय, नौकरशाह, प्रशासनिक निर्णय, प्रशासनिक कार्यविधि, स्वविवेकीय क्षेत्र, भर्ती आयोग, प्रशासनिक अधिकरण, सचिवालय आदि।
4. **सामाजिक इकाइयाँ (Social Units):** परिवार, जाति, क्लब, चर्च, संस्कृति, धर्म, सामाजीकरण आदि।
5. **आर्थिक इकाइयाँ (Economic Units):** बजट, कर, आय, राष्ट्रीय, अथवा व्यक्तिगत आय, उत्पादन विनिमय, बैंक, मन्दी, उद्योग आदि।
6. **व्यक्ति सम्बन्धी इकाइयाँ (Individual Units):** सम्पूर्ण व्यक्ति, पुरुष, स्त्री, बालक, युवा, हिन्दु, मुस्लिम, ग्रामीण, शहरी, नागरिक, तस्कर, व्यापारी, मजदूरी आदि।

निदर्शन की इकाई कोई भी क्यों न हो वह स्पष्ट, सुनिश्चित एवं भ्रमरहित होनी चाहिए। वह प्रमाणिक तथा विषय के अनुकूल होनी चाहिए। सबसे बढ़कर वह अवलोकनीय, सम्पर्क योग्य अथवा उपयोगी होनी चाहिए।

2. समग्र या समष्टि

(Universe)

समग्र या समष्टि उस पूरे समूह को जिसके विषय में हम ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं कहा जाता है। **एफ.एम. कर्लिजर** ने लिखा है, 'समग्र' शब्द का अर्थ व्यक्तियों, घटनाओं अथवा वस्तुओं के सुपरिभाषित वर्ग के सदस्यों से है। जहोदा ने लिखा है कि, "समग्र उन सभी व्यक्तियों का योग है जो विशिष्टता के एक समान स्तर को बताते हैं। "**एम.एन.मूर्ति** ने

'**सैम्पलिंग थ्योरी एण्ड मैथ्ड्स**' में कहा है कि, "काल के एक विशिष्ट बिन्दु अथवा अवधि पर एक दिए हुए क्षेत्र में एक विशिष्ट प्रकार की सभी इकाइयों के संग्रह को समग्र कहा जाता है।"

'समग्र' शब्द का प्रयोग, समय के विभिन्न बिन्दुओं का एक विशिष्ट क्षेत्र में एक इकाई अथवा इकाइयों के समूह से सम्बन्धित पर्यवेक्षणों के संग्रह के लिए भी किया जाता है।

इस समग्र तथा उसकी इकाईयों को चुनना वैज्ञानिक शोध की द ष्टि से बहुत महत्व रखता है। शोध-कर्त्ता जितनी अधिक स्पष्टता से अपने समग्र को समझेगा तथा उसकी इकाइयों को सावधानीपूर्वक चुनेगा, उतनी ही अधिक मात्रा में, उसका शोध सफल तथा दूसरों द्वारा सत्यापन-योग्य माना जाएगा। वस्तुतः शोधक 'सम्पूर्ण' समूह का अध्ययन न करके उसके किसी 'पक्ष' या 'सारभाग' का अध्ययन करता है। उसे यह बता देना चाहिए कि वह किस पक्ष या सारभाग का अध्ययन न करे उसके किसी 'पक्ष' या 'सारभाग का अध्ययन कर रहा है। इस स्पष्टीकरण की द ष्टि की द ष्टि से समग्र या जनसंख्या के दो प्रकार होते हैं—

1. **विशिष्ट, विशेष या कार्यकर समग्र** (Specific Univrse); तथा 2. **सामान्य समग्र** (General Universe)।

विशेष या कार्यभार समग्र वह विशिष्ट मूर्त तथा स्पष्ट व्यवस्था होती है जिसमें से शोधक अपने सूचनादाताओं का चयन करता है। इस व्यवस्था को साँख्यिकी में जनसंख्या या समग्र कहा जाता है। शोधकर्ता प्रायः इस समग्र की सीमाओं तक ही सीमित रहकर कार्य करते हैं। किन्तु उसकी इच्छा यह होता है कि उसके निष्कर्ष उस विशेष व्यवस्था या समूह पर ही लागू न रहकर अन्य सभी समान व्यवस्थाओं एवं समूहों पर लागू हों। उसके सामान्यीकरण उस समूह से सम्बद्ध होते हुए भी स्थान और समय से आबद्ध न रहें। इन समस्त समूहों या व्यवस्थाओं के अमूर्त समग्र को जिस पर शोघक अपने निष्कर्ष लागू करना चाहता है, 'सामान्य समग्र' कहा जाता है। जैसे, यदि किसी ने राजसव मण्डल, राजस्थान का अध्ययन किया है तो वह यह चाहता है कि उसके निष्कर्षो को सभी राजस्व मण्डलों पर लागू कर दिया जाए। **सेल्जनिक तथा गोल्डनर** ने भी ऐसा ही किया है।

शोधकर्ता अपने शोध-निष्कर्षो को अपने समकालीन विशेष समग्रों पर ही लागू करके सन्तुष्ट नहीं होता, अपितु यह भी चाहता है कि उन्हें अन्य संस्कृतियों वाले देशों के समग्रों पर भी लागू किया जाए। ये सभी शोधक विभिन्न समग्रों में से अपने समग्र को 'प्रतिनिधित्वपूर्ण' मानकर अध्ययन नहीं करते, किन्तु यह चाहते हैं कि उनके समग्र सम्बन्धी निष्कर्ष सभी समग्रों की 'व्याख्या' (Explain) कर सके। इसे 'एक महत्त्वाकाँक्षी सैद्धान्तिक कूद' कहा जा सकता है, जिसके प्रतिनिधित्वपूर्ण होने की कोई व्यवस्था नहीं की जाती। अपने विशिष्ट समग्र से सामान्य समग्र तक उछाल मारने के अनेक कारक होते हैं। (1) विभिन्न समग्रों के मध्य मौलिक एकरूपता मान बैठना (2) उनकी व्यापक सैद्धान्ति अवधारणाएँ, सभी इसलिए भूल जाते हैं कि सभी इस भूल को दोहराते हैं।

विशिष्ट समग्र का चयन

(Selection of Specific Universe)

निदर्शन शोधक के विशिष्ट समग्र के भीतर होता है। इसलिए विशिष्ट समग्र के विषय में पहले विचार किया जाना चाहिए। व्यवहार में, विशिष्ट समग्र के अध्ययन का आधार बताना

अत्यन्त कठिन कार्य माना जाता है। ऐसा करते समय दो बाधाएँ सामने आती है। प्रथम, विशिष्ट समग्र शोधक की सैद्धान्तिक मान्यताओं को बताता है, तथा द्वितीय, समग्र के स्थायित्व या बने रहने के काम का पता लग जाता है, जो हो सकता है कि सही न हो। विभिन्न शोधकर्ता एक ही अध्ययन-विषय से सम्बन्धित समग्र, जैसे—समुदाय के प्रमुख निर्णायकों के विषय में अपने भिन्न-भिन्न परिप्रेक्ष्यों के कारण अलग-अलग निष्कर्ष निकालते हैं। 'बुद्धिजीवियों (Intellectuals) 'बेरोजगार' (Unemployed) आदि विषयक सामग्री के बारे में एकमत होना सम्भव नहीं है। विभिन्न संस्कृतियों वाले देशों में ऐसे विवादास्पद समग्र लेकर शोध करना और भी अधिक कठिन होता है। 'गाँव' (Village) सभी देशों में एक से नहीं होते। सभी देशों के शहरी औद्योगिक क्षेत्र भी समान नहीं है। जिन कारणों से विशिष्ट समग्रों में भिन्नता आ जाती है उनमें से तार्किक एवं सैद्धान्तिक कारण प्रमुख होते हैं। शोधकर्ता को किसी सिद्धान्त के प्रति निष्ठा तथा वैसा ही शोध-अभिकल्प होने के कारण समग्र भिन्न हो जाता है। जो शोधकर्ता नए सिद्धान्तों या सामान्यीकरणों का विकास करना चाहते हैं, उनके समग्र उन शोधकों से भिन्न हो जाते हैं जो विद्यामन प्रकल्पनाओं तथा सिद्धान्तों का परीक्षण या प्रमाणीकरण करना चाहते हैं।

समग्रों के चयन के अनेक आधार होते हैं— उनमें से कुछ प्रमुखतः निम्नांकित हैं—

1. **नए सिद्धान्त या सामान्यीकरण की खोज—** ऐसा करने के लिए शोधक ऐसा समग्र चुनता है जिससे नए तथ्य, सामान्यीकरण आदि ज्ञात हो सकें। वह किसी संघ, दल या समूह का लगातार अध्ययन कर सकता है।

2. **विद्यमान प्रकल्पनाओं या सिद्धान्तों का परीक्षण—** इसके अन्तर्गत शोधकर्ता वर्तमान सामान्यीकरण या सिद्धान्त को प्रमाणित करना चाहता है। जैसे, शोधक भारत में गिरते हुए अनुशासन के लिए बढ़ते हुए विद्यार्थी-राजनेता सम्बन्धों को प्रमाणित करने के लिए राजनीति-प्रेरित विद्यार्थी एवं उनसे सम्बन्धित नेताओं के समग्र को ले सकता है।

3. **प्रकल्पना या सिद्धान्त का अप्रमाणीकरण —** इसमें विद्यमान प्रकल्पना या सिद्धान्त को असिद्ध करने के लिए समग्र चुना जाता है। लिप्सेट ने मिचैल के 'अल्पतन्त्र की लौह-विधि' (Iron Law of Oligarchy) को असत्यापित करने के लिए एक संघ का अध्ययन किया है।

4. **प्रकल्पना या सिद्धान्त का पुनर्परीक्षण—** कुछ शोधक अपने पहले के निष्कर्षों या निर्वचनों का पुनर्परीक्षण करने के लिए पुष्टिकारक सामग्री लेते हैं। ये स्वयं या दूसरे के अनुसन्धान कार्यों का प्रतिवलन करते हैं, अर्थात् दुबारा शोध करके सत्य की परख करते हैं। **लेविस ने रैडफील्ड** द्वारा किए गए एक गाँव के अध्ययन का प्रतिवतन किया था। **हॉथोर्न प्रयोग (Howthorn Experiment)** का भी इसी प्रकार पुर्नपरीक्षण किया जा चुका है। ऐसा करके पूर्ववर्ती शोधकर्ताओं के पूर्वाग्रहों का पता लगाया जा सकता है। लेकिन समाज, समुदाय आदि स्थैतिक नहीं होते, अतएव प्रतिवलन अनेक समस्याओं को उत्पन्न कर देता है। राजनीति में तो परिवर्तन बहुत ही तीव्र गति से हो सकते हैं। अतः प्रतिवलन और भी अधिक सीमित हो जाती है।

5. **सामान्य प्रकार (General Type) की खोज —** ऐसे समग्र को शोधकर्ता इसलिए चुनता है कि वह असामान्य या विपथगामी नहीं है। ऐसे समग्र का चयन करने से पूर्व शोधक को विस्त त अध्ययन करना पड़ता है।

6. **प्रयोगात्मक अभिकल्प में प्रयोग** — ऐसा प्रयोग कृत्रिम या प्राकृतिक हो सकता है। इसमें शोधकर्ता यह आशा करता है कि उस समग्र में प्रयोग करना सम्भव हो सकेगा।

7. **सामाजिक कारक** — इस शीर्षक के अन्तर्गत समग्र को चयन करने में सामाजिक कारकों को शामिल किया गया है, जैसे आधार-सामग्री की सुविधाजनक प्राप्ति, समय, धन तथा मानव शक्ति की सीमा, सुगमता तथा व्यवहारिक लाभ। व्यवहारिक लाभ में शोध कराने वालों का आदेश, प्रसन्नता, उपाधि की प्राप्ति आदि बातें विचाराधीन रहती हैं। कभी-कभी आकस्मिक घटना या दैवयोग भी कारण बन जाता है। **जेम्स वेस्ट की प्लेनविल गाँव** के पास मोटरकार खराब हो गई और उसे वहां कुछ दिन ठहरना पड़ा। उसने शोध के लिए उसी गांव को समग्र बना लिया।

8. **अन्य कारण** — सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एवं राजनीतिक दबाव भी विशेष समग्र को चुनने के लिए विवश करते हैं। समाज की विभिन्नताएँ और परिवर्तनशीलता के साथ-साथ शोध-दल का संगठन भी विशेष निदर्शन के चयन का आधार वन जाता है।

   समग्रों के चयन के उपर्युक्त आधारों के अध्ययन से पता चलता है कि उसके चयन के अनेक विज्ञानेत्तर कारण होते हैं। इन आधारों का समग्रों, निदर्शनों, प्रविधियों आदि सभी पर प्रभाव पड़ता है।

3. निदर्शन इकाई
(Sampling Unit)

ऐसी प्रारम्भिक इकाइयाँ अथवा इन इकाइयों के समूह जो स्पष्ट रूप से पारिभाषित, पहचाने जाने योग्य एवं पर्यवेक्षणीय होने के अतिरिक्त निदर्शन की द ष्टि से सुविधाजनक होते हैं, निदर्शन इकाइयाँ कहलाती है। उदाहरणार्थ, एक पारिवारिक बजट के अध्ययन में प्रायः परिवार को अत्यधिक सुविधाजनक मानते हुए निदर्शन इकाई के रूप में स्वीकार किया जाता है।

4. निदर्शन ढाँचा
(Sampling Frame)

समग्र की सभी निदर्शन इकाइयों का एक ऐसा ढाँचा आवश्यक होता है जो उनकी समुचित परिचयात्मक विशेषताओं को प्रदान कर सके और इस प्रकार के ढाँचे को निदर्शन ढाँचा कहा जाता है।

निदर्शन ढाँचों को दो प्रमुख समूहों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) निदर्शन इकाईयों की सूची, तथा

(2) क्षेत्रीय इकाईयों की सीमाओं को निदर्शन करने वाले मानचित्र। सूची-ढाँचे के अन्तर्गत इकाइयों के पहचाने जाने के लिए उपयुक्त सूचना सहित निदर्शन इकाइयों की एक सूची पायी जाती है। प्रायः इस ढाँचे के अन्तर्गत निदर्शन इकाईयों से सम्बन्धित अतिरिक्त सूचना भी पाई जाती है। क्षेत्रीय अथवा मानचित्रीय ढाँचे के अन्तर्गत निदर्शन इकाईयों अथवा इनके समूहों की जो प्रायः क्षेत्रीय इकाइयों के रूप में पाई जाती है, भौगोलिक सीमाएँ प्रदर्शित की गई होती हैं, जिन्हें स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है।

5. स्तर
(Strata)

किसी समग्र या समष्टि के कई भाग किए जा सकते हैं। प्रत्येक भाग को स्तर कहते हैं। स्तर विभिन्न आधारों पर बन सकते हैं। जैसे किसी स्कूल के विद्यार्थियों को स्तरों में बांटने का आधार हो सकता है पास होना। पास होने वाले विद्यार्थियों का एक स्तर होगा और फेल होने वाले विद्यार्थियों का दूसरा। इसी प्रकार किसी ग्राम की समष्टि (जनसंख्या) को विभिन्न आधारों पर स्तरों में बाँटा जा सकता है, लिंग के आधार पर पुरुषों और स्त्रियों के स्तर, धर्म के आधार पर हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों आदि के स्तर, शिक्षा के आधार पर निरक्षर, माध्यमिक शिक्षा प्राप्त और उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के स्तर आदि।

6. साधन-सूची
(Source-List)

इकाइयों के सम्बन्ध में साधन-सूची (Source-List) को उपलब्ध किया जाता है। इसकी सहायता से समग्र की इकाइयों को जाना जाता है। जैसे, टेलीफोन वाले व्यक्तियों में राजनीतिक जागरुकता का अध्ययन करने के लिए टेलीफोन डाइरेक्टरी साधन-सूची मानी जाएगी। मतदाताओं को अध्ययन करने के लिए निर्वाचक सूची साधन-सूची बन जाएगी। किन्तु, अनेक समस्याओं का अध्ययन करने के लिए कोई भी साधन-सूची उपलब्ध नहीं होती, या अधुरी उपलब्ध होती है। ऐसी अवस्था में स्वयं शोधकर्ता को साधन-सूची तैयार करनी पड़ती है। कभी-कभी उसे तैयार करना भी बड़ा कठिन होता है। जैसे; राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के राजनीति में भाग लेने वाले सदस्यों की सूची को तैयार करना कठिन कार्य है। इसी तरह राजनीतिक दलों को चन्दा देने वाले पूंजीपतियों के नाम जानना अत्यन्त कठिन होगा। कुछ भी हो, वैज्ञानिक शोध के लिए वह आवश्यक है साधन-सूची में समस्त इकाइयाँ शामिल कर ली जाएँ। कोई भी इकाई न छूटे। राजनीतिक शोध में हो सकता है कि छूटी हुई इकाइयाँ बहुत अधिक महत्वपूर्ण हो। साधन-सूची अवतन तथा ताजी होनी चाहिए। विद्यार्थियों की दो वर्ष पुरानी सूची वर्तमान विद्यार्थी-संघों का अध्ययन करने के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती। सूची में सूचनाएँ पूरी होनी चाहिए ताकि आवश्यकता पड़ने पर उनके आधार पर वर्गीकरण किया जा सके तथा निदर्शन में विभिन्न विशेषताओं वाले वर्गो को शामिल किया जा सके। साधन-सूची में कोई भी नाम एक से अधिक बार नहीं आना चाहिए। साधन-सूची अध्ययन-विषय की या समग्र अथवा निदर्शन की इकाइयों के अनुकूल होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि हमें व्यापारिक संस्थाओं के नाम चाहिए तो टेलीफोन डाइरेक्टरी अथवा निर्वाचक सूची को साधन-सूची नहीं बनाया जा सकता। साधन-सूची उपलब्ध होने योग्य हो तो शोध का कार्य सुगम हो जाता है। काई बार सूची होते हुए भी शोधक को मिल नहीं सकती, जैसे, आयकर विभाग के पास आयकरदाताओं की सूची अथवा पुलिस के पास सन्देहात्मक चरित्र के लोगों की या गुण्डों की सूची। किसी निदर्शन को तैयार करने से पूर्व साधन-सूची आवश्यक रूप से बनानी पड़ती है।

उत्तम या प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन की आवश्यक विशेषताएँ
(Esstianl Characteristics of a Good or Representative Sample)

निदर्शन जितना पक्षपात रहित होगा, अध्ययन विषय से सम्बन्धित निष्कर्ष उतने ही महत्वपूर्ण होंगे। इस सम्बन्ध में पी॰वी॰ यंग ने लिखा है कि "निदर्शन का आकार ही उसके प्रतिनिधि होने की

गारण्टी नहीं होता है, समुचित रूप से चुना गया अपेक्षाकृत छोटे आकार का निदर्शन दोषपूर्ण रूप से चुने गए बड़े आकार के निदर्शन से अधिक विश्वसनीय होता है।" निदर्शन का उत्तम होना अध्ययन की सफलता के लिए आवश्यक है। निदर्शन की मुख्य-मुख्य विशेषताओं का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है।

1. **निदर्शन को समग्र का प्रतिनिधि होना चाहिए (A Sample should be Representative):** निदर्शन के लिए सारे समग्र का प्रतिनिधि होना उसका सर्वप्रथम आवश्यक लक्षण है। निदर्शन का चुनाव विभिन्न ढंग से किया जा सकता है फिर भी हर अवस्था में प्रधान उद्देश्य प्रतिनिधिपूर्ण निदर्शन का चुनाव करना है। प्रतिनिधि निदर्शन दो प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है :– (i) समग्र की इकाइयों में एकरूपता लाकर, (ii) निदर्शन के चुनाव की उपयुक्त प्रणाली अपनाकर। लुण्डवर्ग ने लिखा है कि कोई निदर्शन प्रतिनिधि तभी हो सकता है जबकि अध्ययन से सम्बन्धित इकाईयों में एकरूपता हो तथा निदर्शन की प्रणाली तटस्थ रूप से उपयोग में लाई गई हो।

2. **पर्याप्त आकार का होना चाहिए (Adequate Size of Sample):** समुचित प्रणाली द्वारा चुने गए निदर्शन की थोड़ी मात्रा भी बड़ी मात्रा के निदर्शनों की अपेक्षा अधिक सही एवं विश्वसनीय परिणाम प्रदान कर सकती है। इस सम्बन्ध में पी.वी. यंग ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा है कि, "निदर्शन का आकार इसकी प्रतिनिधित्वता की कोई आवश्यक सीमा नहीं है, सापेक्षिक रूप से उचित प्रकार से चुने गए छोटे निदर्शन अनुपयुक्त तरीके से चुने गए बड़े निदर्शन की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होते हैं।" फिरर भी निदर्शन का एक समुचित मात्रा में होना आवश्यक है।

3. **सभी प्रकार के पक्षपात से स्वतन्त्र होना चाहिए (Free from all Prejudice):** निदर्शन के लिए यह आवश्यक है कि किसी भी इकाई का चुनाव व्यक्तिगत इच्छा के आधार पर न किया जाए। अक्सर ऐसा देखा गया है कि निदर्शन का चुनाव करते समय हम समग्र जनसंख्या में से कुछ उल्लेखनीय व आकर्षक इकाइयों को जो कि हमारे आदर्श के अनुरूप हैं चुन लेते हैं। परन्तु इस प्रकार चुने गए निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो सकते क्योंकि अपने पक्षपात के कारण हो सकता है कि हम कुछ महत्वपूर्ण इकाइयों को न चुनें और कुछ महत्वहीन इकाइयों को केवल इसलिए चुन लें कि वे हमारी पसंद के अनुकूल हैं। दोनों ही स्थिति में हमारा निदर्शन वास्तविक स्थिति के साथ हमारा परिचय करवाने में सफल नहीं हो सकता। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि निदर्शन सभी प्रकार के पक्षपात से स्वतन्त्र हो। कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि अध्ययनकर्ता जानबूझ कर पक्षपात को महत्व देता है। उदाहरण के लिए यदि भेजी गई प्रश्नावली भर कर वापस नहीं आई या आई भी हैं तो सभी प्रश्नों के उत्तर नहीं दिए गए हैं। ऐसी स्थिति में अध्ययनकर्ता अपनी इच्छानुसार उन कमियों को पूरा करने की कोशिश करता है।

4. **अध्ययन विषय के अनुरूप (Conformity with Subject of Study):** निदर्शन का अध्ययन विषय के अनुरूप होना बहुत अधिक आवश्यक है। इस अनुकूलता के आधार पर ही निदर्शन की विश्वसनीयता की नाम की जा सकती है। उदारहणार्थ यदि अध्ययन का उद्देश्य एक विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों में अनुपस्थित रहने की आदत के कारणे जानना है तो हमें अपने निदर्शन में उन्हीं विद्यार्थियों को शामिल करना होगा जो कि क्लास से अनुपस्थित रहने के आदी हैं।

5. **सामान्य ज्ञान एवं तर्क का उपयोग (Use of Common Knowledge and Logically**

Sound): सामाजिक अनुसन्धान के क्षेत्र में अनुसंधानकर्त्ता निदर्शन आदि के नियमों का प्रयोग करता है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं हे कि उसे सामान्य ज्ञान एवं तर्क का आश्रय लेना छोड़ देना चाहिए। बिना सामान्य ज्ञान एवं तर्क के कोई भी अनुसंधानकर्त्ता अपने क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता है। इसीलिए निदर्शनों को सही रूप देने के लिए सामान्य ज्ञान एवं तर्क का भी आश्रय लेना अधिक उपुयक्त होगा। निदर्शन की प्रविधियाँ चाहे कितनी भी विकसित हों, लेकिन तर्क एवं सामान्य ज्ञान का उपयोग किए बिना अनुसंधानकर्त्ता एक अच्छा निदर्शन प्राप्त नहीं कर सकता है।

6. **व्यवहारिक अनुभवों पर आधारित** (Based on Practical Experience): निदर्शन केवल तर्क पर ही आधारित नहीं होता बल्कि इसमें अनुसंधानकर्ता के व्यावहारिक अनुभवों का समावेश होना आवश्यक है। अधिकतर ऐसा अनुभव किया गया कि निदर्शन के चयन में कुछ ऐसी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनका समाधान अनुभवों की मदद से ही किया जाता है। ये अनुभव अध्ययन-विषय की प्रकृति के सम्बन्ध में एक अन्तर्दृष्टि को पनपाने में सहायक होता है और यह अन्तर्दृष्टि प्रतिनिधिपूर्ण निदर्शनों के चुनावों में अत्यन्त मदद करती है। कोई भी व्यक्ति एक विषय पर तब तक अध्ययन नहीं कर सकता है जब तक कि उस विषय से सम्बन्धित उसे कुछ व्यवहारिक ज्ञान न हो। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि निदर्शन में व्यवहारिक ज्ञान का होना आवश्यक है।

निदर्शन-प्रविधि के लाभ
(Advantages of Sampling Technique)

निदर्शन-प्रविधि की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है क्योंकि आधुनिक विशाल व जटिल समुदायों के अध्ययन में जनगणना-पद्धति (Census Method) अत्यन्त असुविधाजनक है और उसमें धन तथा समय दोनों ही बहुत लगते हैं। इसके विपरीत निदर्शन-प्रविधि के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. **समय की बचत** (Saving of Time): निदर्शन-प्रविधि का तात्पर्य ही यह है कि हम सम्पूर्ण जनसंख्या की सभी इकाइयों का अध्ययन न करके उनमें से केवल कुछ प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों का ही अध्ययन करते हैं। अतः स्वाभाविक रूप से अध्ययन में कम समय लगता है। समय की बचत तो प्रत्येक अनुसन्धान का ही एक गुण बन जाता है, पर कुछ सामाजिक सर्वेक्षण विशेष करके इस प्रकार के होते हैं जिनमें समय का कारक विशेष महत्व का होता है। उदाहरणार्थ, निर्वाचन के पहले किसी प्रतियोगी की जीत अथवा हार का पूर्वानुमान करने के लिए यदि कोई अध्ययन किया जा रहा है तो यह आवश्यक है कि अध्ययन का कार्य निर्वाचन आरम्भ होने से कहीं पहले समाप्त हो जाए। यदि ऐसा न हुआ तो उसकी कोई उपयोगिता ही नहीं रह जाएगी। ऐसे अध्ययनों में निदर्शन-प्रविधि अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होती है।

2. **धन की बचत** (Saving of Money): समय की बचत का परिणाम धन की बचत भी होता है जब कम संख्या में इकाइयों का अध्ययन करना पड़ता है तो स्टेशनरी, फाइल आदि खरीदने, कार्यकर्ताओं के वेतन, यात्रा-'व्यय आदि पर कम खर्चा करना पड़ता है। व्यक्तिगत आधार पर आयोजित अनेक अनुसन्धान -कार्यो को धन के अभाव के कारण बीच में ही रोक देना पड़ता है। निदर्शन-प्रणाली में यह जोखिम न्यूनतम होता है। कम-से-कम खर्च करके अधिक से अधिक विश्वसनीय तथ्यों को एकत्रित करना केवल निदर्शन-प्रविधि के द्वारा ही सम्भव है।

3. **अधिक गहन अध्ययन की सम्भावना** (**Possibility of more Intense Study**)**:** जनगणना-पद्धति में अनुसन्धानकर्त्ता का ध्यान असंख्य इकाइयों में बिखर जाता है और इसीलिए उनका गहन अध्ययन सम्भव नहीं होता, केवल मोटी-मोटी बातों का पता लगाना ही सम्भव होता है। इसके विपरीत निदर्शन-प्रविधि में इकाइयों की संख्या पर्याप्त कम होती है। इसलिए अधिक समय तक तथा अधिक सूक्ष्म रूप से उनका अध्ययन तथा विवेचन किया जा सकता है। आधुनिक सामाजिक घटनाएँ अधिक जटिल होती हैं अतः उन्हें समझने के लिए उनका सूक्ष्म अध्ययन ही एक मात्र तरीका होता है। निदर्शन-प्रविधि इसी आवश्यकता की पूर्ति करती है। क्योंकि इकाइयों की संख्या कम होने के कारण गहन अध्ययन सम्भव होता है।

4. **निष्कर्षों की परिशुद्धता** (**Accuracy of Results**)**:** निदर्शन-प्रविधि के अन्तर्गत अनुसन्धानकर्ता का ध्यान कुछ निश्चित इकाइयों पर केन्द्रित होने के कारण वह उनके सम्बन्ध में गहन अध्ययन करके अधिक यथार्थ निष्कर्षों को निकाल सकता है। यदि निदर्शनों का चुनाव ठीक से किया गया तो उसके आधार पर होने वाल अध्ययनों के निष्कर्ष जनगणना-पद्धति की सहायता से किए गए अध्ययनों के निष्कर्षों से कहीं अधिक यथार्थ होते हैं। अमरीका की **फारचून** पत्रिका ने एक बार प्रेसीडेण्ट के चुनाव में विभिन्न प्रत्याशियों के जीतने की सम्भावना ज्ञात करने के लिए निदर्शन-प्रविधि की सहायता से सर्वेक्षण करके जो निष्कर्ष निकाला था उसकी यथार्थता आज भी लोगों को आश्चर्य में डालती है।

5. **प्रशासनिक सुविधा** (**Administrative Convenience**)**:** निदर्शन-प्रविधि से अनुसन्धान-कार्य को संगठित करने में भी पर्याप्त सुविधा होती है। यह सुविधा दो कारणो से हमें प्राप्त होती है— एक तो यह है कि निदर्शन-प्रविधि के अन्तर्गत इकाइयों की संख्या कम होती है और इसीलिए हमें कम संख्या में कार्यकर्त्ताओं को नियुक्त करना पड़ता है और इनकी संख्या कम होने से इनको काम में लगाने और इनके ऊपर निगरानी रखने में काफी आसानी होती है। दूसरी बात यह है कि निदर्शन-प्रविधि में हमें अल्प-संख्यक लोगों से सूचना एकत्रित करनी पड़ती है और इसलिए सूचना एकत्रित करने से सम्बन्धित परेशानी का सम्पूर्ण भार (Total Burden) कम हो जाता है। सूचनादाताओं की अपनी सुविधा के अनुसार उनकी सूचना एकत्रित करना कठिन काम है, पर सौ सूचनादाताओं से सूचना एकत्रित करने में परेशानी की जो मात्रा होगी वह निःसन्देह ही निदर्शन-प्रविधि के अन्तर्गत केवल 10 सूचनादाताओं से कहीं अधिक होगी।

6. **अन्य लाभ** (**Other Advantage**)**:** कभी-कभी सामाजिक अनुसन्धान में जनगणना-पद्धति का प्रयोग इसलिए भी नहीं हो पाता कि अध्ययन का क्षेत्र बहुत विस्त त है और भौगोलिक द ष्टि से लोग इतने अधिक बिखरे हुए हैं कि प्रत्येक व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित नहीं किया जा सकता; ऐसी दशा में केवल निदर्शन-प्रविधि ही एक मात्र उपाय रह जाता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि जिनके बारे में हमें अध्ययन करना है उनमें से सबका पता हमें मालूम नहीं हो पाता है जैसे किसी वस्तु के उपभोक्ताओं के नाम व पता। ऐसी स्थिति में निदर्शन-प्रविधि के द्वारा ही अध्ययन किया जा सकता है।

निदर्शन-प्रविधि के दोष अथवा सीमाएं

(Demerits or Limitations of Sampling Technique)

यह सच है कि निदर्शन-प्रविधि के कई गुण व लाभ हैं, पर साथ ही यह प्रविधि पूर्णतया दोषरहित

भी नहीं है। क्योंकि इसकी अपनी कुछ सीमाएँ हैं जिनको कि हम निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं–

1. **पक्षपात तथा पूर्व-ग्रह की सम्भावना (Possibility of Prejudice and Bias):** निदर्शन-प्रविधि का सबसे बड़ा दोष यह है कि निदर्शन का चुनाव पक्षपात व पूर्वाग्रह रहित नहीं हो पाता है। निदर्शनों का चुनाव करते समय किसी-न-किसी रूप में इन दोनों तथ्यों का प्रवेश हो ही जाता है। जिनके फलस्वरूप चुने हुए निदर्शन पूर्णतया प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो पाते हैं या उनका अध्ययन करने से सम्पूर्ण जनसंख्या की आधारभूत विशेषताओं का पता ठीक-ठीक नहीं चल पाता है और हमारा निष्कर्ष भ्रमपूर्ण हो जाता है।

2. **प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन के चुना में कठिनाई (Difficulty in Selecting Representative Samples):** निदर्शन-प्रविधि का दूसरा दोष यह है कि प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शनों को चुनना स्वयं ही कठिन कार्य है। निदर्शन का प्रतिनिधित्वपूर्ण होना या न होना अनेक बातों पर निर्भर है और ये सभी बातें अनुसन्धानकर्ता के अनुकूल हों– यह बहुत कम देखा जाता है। इस सम्बन्ध में सबसे बड़ी कठिनाई तो इसलिए होती है कि सामाजिक इकाईयों में भिन्नता और विविधता बहुत अधिक होती है और ये भिन्नताएँ व विविधताएँ जितनी अधिक होंगी प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चुनाव उतना ही कठिन हो जाता है। निदर्शन का प्रतिनिधित्वपूर्ण होना या न होना निदर्शन-चुनाव की पद्धति पर भी निर्भर करता है। यदि उपयुक्त प्रविधि को चुनने में कोई भी गलती हुई तो निदर्शन भी प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो पाता है।

3. **विशेष ज्ञान की आवश्यकता (Special Knowledge Needed):** ऊपरी तौर पर 'निदर्शन' शब्द अत्यन्त सरल प्रतीत होता है, पर सामाजिक घटनाओं में निदर्शनों का चुनाव उतना ही कठिन होता है और इसकाम के लिए विशेष ज्ञान, सूझ-बूझ, अनुभव तथा अनत्दर्ष्टि की आवश्यकता होती है और ये सभी गुण प्रत्येक अनुसन्धानकर्ता में समान रूप मं हों ऐसी कम ही होती है। इसीलिए केवल विशेष योग्य तथा अनुभवशील अनुसन्धानकर्त्ता ही प्रविधि को पूर्ण सफलता के साथ काम में ला सकते हैं।

4. **निदर्शन पर कायम रहने में कठिनाई (Difficulty in Sticking to Samples):** प्रायः यह देखा जाता है कि निदर्शन प्रविधि के अन्तर्गत कम इकाइयों के आधार पर निष्कर्ष निकालने में अनुसन्धानकर्त्ता को कठिनाई होती है। निदर्शन प्रविधि की यह माँग है कि जिन इकाइयों को निदर्शन के रूप में चुना गया है केवल उन्हीं का अध्ययन किया जाए। पर व्यवहारतः यह सकता है कि इन चुनी हुई इकाइयों से भौगोलिक दूरी, पर्दा प्रथा, अति उच्च सामाजिक या राजनैतिक स्थिति आदि के कारण सूचना प्राप्त करने के लिए सम्पर्क स्थापित करना कठिन हो जाता है। फलतः चुनी हुई इकाइयों पर द ढ़ता से टिके रहना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में जिन लोगों से सम्पर्क स्थापित नहीं हो पाता है उन्हें या तो अनुसन्धानकर्त्ता अपने अध्ययन से निकाल देता है या उनके स्थान पर और किसी को चुन लेता है जो कि हो सकता है कि प्रतिनिधित्वपूर्ण न हो। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि निदर्शन के रूप में चुने हुए कई लोग सूचना देने से जान-बूझकर इनकार कर देते हैं। उस अवस्था में भी मूल निदर्शन पर कायम रहना कठिन हो जाता है।

5. **निदर्शन-प्रविधि की असम्भवता (Impossibility of Sampling Technique):** जिस प्रकार कुछ विषयों का अध्ययन जनगणना-पद्धति की सहायता से करना असम्भव हो जाता है, उसी प्रकार कुछ विषयों के अध्ययन में निदर्शन-प्रविधि बेकार सिद्ध होती है। यदि अध्ययन

का विषय बहुत छोटा है तो उसकी प्रत्येक इकाई अत्यन्त महत्वपूर्ण हो सकती है और उस अवस्था में सभी इकाइयों का अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। उसी प्रकार सम्पूर्ण अध्ययन-विषय की इकाइयों में अत्यधिक भिन्नता है, तो भी निदर्शन-प्रविधि के द्वारा अध्ययन से यथार्थ निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। ऐसी दशाओं में जनगणना-पद्धति का ही प्रयोग करना पड़ता है।

मोटे तौर पर हम यह कह सकते हैं कि यदि अध्ययन-क्षेत्र अधिक विशाल है, अनुसन्धानकर्त्ताओं की कमी है, समय का अभाव है, धन की कमी है और औसत निष्कर्ष से भी हमारा काम चल सकता है तो निदर्शन-प्रविधि ही सर्वाधिक उपयुक्त पद्धति होती है। उपयुक्त सीमाओं या दोषों के होने पर भी निदर्शन-प्रविधि के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन के चुनाव के चरण या प्रक्रिया
(Procedure for Selecting Representating Sample)

यद्यपि निदर्शन-चुनाव के तरीके या प्रविधियाँ कई प्रकार की हैं फिर भी निदर्शन-चुनाव की सम्पूर्ण प्रक्रिया के कुछ प्रमुख चरण ऐसे होते हैं जो कि प्रत्येक प्रणाली में समान होते है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि सैम्पल-चुनाव के कुछ आधारभूत सिद्धान्त ऐसे हैं जिनका उपयोग एक क्रम से सभी पद्धतियों में समान रूप से किया जाता है। निदर्शन के चुनाव की प्रक्रिया के ये प्रमुख चरण निम्न-लिखित हैं –

1. **समग्र को निश्चित करना** (Determination of Universe): निदर्शनों का चुनाव करने से पूर्व सबसे पले अनुसन्धानकर्त्ता की उन समग्र इकाइयों का निर्धारण करना पड़ता है जिनमें किसे उसे कुछ इकाइयों की निदर्शन के रूप में चुनना है। यदि ये इकाइयाँ किसी समुदाय में रहने वाली जनसंख्या है तो उसका निर्धारण सरलता से हो सकता है क्योंकि प्रत्येक समुदाय के निवासी एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में ही निवास करते हैं। जैसे अभी हमें किसी शहर के निवासियों की आर्थिक दशा का अध्ययन करना है तो हम उस नगर की समग्र जनसंख्या को जान सकते हैं और उसी आधार पर यह निर्धारित कर सकते हैं कि हमें किस प्रकार से निदर्शन चुनने हैं। परन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि यह समग्र जनसंख्या न होकर कोई गुण, क्रिया अथवा घटना होती है और उस अवस्था में समग्र का निर्धारण करना कुछ कठिन हो जाता है क्योंकि इनके बहुत जल्दी घटने-बढ़ने की सम्भावना हो सकती है। अतः हम यह कह सकते हैं कि समग्र का निर्धारण उसके प्रकारों (Kinds) पर निर्भ्र करता है। ये प्रकार निम्नलिखित होते हैं –

   (अ) **निश्चित समग्रः** जब समग्र के अन्तर्गत आने वाली सभी इकाइयों को पूर्णतया निश्चित किया जा सकता है तो उसे समग्र इकाई कहते हैं जैसे किसी नगर, मुहल्ले व गाँव में रहने वाले निवासी अथवा किसी स्कूल व कॉलेज में पढ़ने वाले विद्यार्थी।

   (ब) **अनिश्चित समग्रः** जब समग्र की इकाइयों को ठीक-ठीक से निश्चित नहीं किया जा सकता तो उसे अनिश्चित समग्र कहते हैं। यह अनिश्चिता समग्र की इकाइयों में परिवर्तनशीलता के कारण या अज्ञात होने के कारण उत्पन्न हो सकती है जैसे स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या प्रतिवर्ष बदलने के कारण अनिश्चित है उसी प्रकार बिनाका टूथ पेस्ट को इस्तेमाल करने वाले सभी लोगों का पता लगना कठिन होने के कारण वह भी अनिश्चित है।

(स) **वास्तविक समग्रः** जब समग्र की वास्तविक संख्या ज्ञात हो तो उसे वास्तविक समग्र कहते हैं जैसे एक कॉलेज में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या।

(द) **काल्पनिक समग्रः** जब समग्र की वास्तविक संख्या मालूम नहीं है और उसे केवल अनुमान के आधार पर मालूम कर लिया जाता हो उसे काल्पनिक समग्र कहते हैं। उदाहरणार्थ किसी नगर की जनसंख्या जानने के पश्चात् विभिन्न आयु के लोगों का अनुमान लगाना काल्पनिक समग्र का ही उदाहरण है।

2. **निदर्शन की इकाई का निर्धारण (Determination of Sampling Unit):** समग्र को निश्चित करने के पश्चात् निदर्शन-चुनाव की दिशा में दूसरा चरण निदर्शन की इकाइयों का निर्धारण है। इसका तात्पर्य यह है कि निदर्शन चुनने से पहले हमें यह निश्चित करना होता है कि हमें किन-किन चीजों से निदर्शन की इकाइयों को चुनना है। यदि हम किसी मानव-समूह के बारे में अध्ययन कर रहे हैं तो यह जरूरी नहीं है कि केवल कुछ व्यक्ति ही हमारी निदर्शन की इकाइ बन सकते हैं। व्यक्तियों के अतिरिक्त जिन मूहल्लों में वे रहते हैं, जिन पेशों को वह अपनाए हुए हैं, जिस परिवार के वे सदस्य हैं या जिस प्रकार के वे मकानों में रहते हैं, इनमें से प्रत्येक की कुछ-कुछ इकाइयाँ निदर्शन की इकाईयाँ हो सकती हैं और व्यावहारिक रूप में होती भी हैं। श्री पार्टन (Parten) ने उचित ही लिखा है कि "सर्वेक्षणकर्त्ताओं को प्रायः यह भ्रम हो जाता है कि जब तक वे मनुष्य के सम्बन्ध में अध्ययन कर रहे हैं तब तब केवल व्यक्ति ही उनके निदर्शन की इकाई हो सकता है। परन्तु वास्तव में बहुत थोड़े अनुसन्धान व्यक्ति को इकाई मानकर किए गए हैं।" अतः स्पष्ट है कि मनुष्य के अलावा भी निदर्शन के अन्य प्रकार की इकाइयाँ हो सकती हैं – जैसे भौगोलिक इकाई (एक राज्य, जिला, नगर, वार्ड, क्षेत्र आदि), भवन सम्बन्धी इकाई (घर, कोठी, बंगला, क्वाटर, फ्लैट (Flat) आदि), सामाजिक समूह की इकाई (परिवार, स्कूल, क्लब, चर्च आदि)। इकाई का प्रकार कुछ भी हो इनका निर्धारण करते समय यह देख लेना जरूरी है कि इनमें निम्नलिखित लक्षण हैं या नहीं। एक आदर्श निदर्शन की इकाई के निम्मिलिखित गुण या लक्षण होते हैं –

(अ) इकाई स्पष्ट, भ्रमरहित तथा सुनिश्चित होनी चाहिए। उदाहराणार्थ एक धूर्त व्यक्ति उत्तम इकाई नहीं है क्योंकि धूर्तता की धारणा अलग-अलग व्यक्तियों के लिए अलग-अलग हो सकती है।

(ब) दूसरी बात यह है कि इकाई अध्ययन-विषय के अनुकूल होनी चाहिए; उदाहरणार्थ यदि संयुक्त परिवार का अध्ययन किया जा रहा है तो परिवार सबसे उपयुक्त इकाई होगा।

(स) इकाई प्रामाणिक होनी चाहिए क्योंकि ऐसी इकाइयों के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न होने की सम्भावना न्यूनतम होती है, पर यदि बिल्कुल नई इकाई का प्रयोग किया जा रहा है तो उसके अर्थ का स्पष्टीकरण कर देना चाहिए ताकि पाठक-वर्थ दुविधा में न पड़े।

(द) इकाई ऐसी होनी चाहिए, जिसके साथ सम्पर्क स्थापित करना सुविधाजनक हो।

3. **इकाइयों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के साधन-सूची को उपलब्ध करना (To make available the Sources List):** निदर्शन-चुनाव की दिशा में तीसरा चरण उस साधन-सूची को प्राप्त करना है जिसकी सहायता से समग्र की इकाइयों के बारे में हमें जानकारी हासिल हो सकती है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते

हैं कि वह सूची जिसमें समग्र की समस्त इकाइयों के बारे में सूचना रहती है उसे साधन-सूची कहते हैं और इसके बिना निदर्शन का चुनाव नहीं किया जा सकता है। कुछ साधन-सूची तो तैयार करी-करायी मिलती है और कुछ को अनुसन्धानकर्ता के द्वारा स्वयं तैयार करना पड़ता है। उदाहरणार्थ अपने घर पर टेलीफोन रखने वाले सभी लोगों की सूची, नाम, पता आदि में 'टेलीफोन डाइरेक्टरी' से मिल सकता है, उसी प्रकार कार के मालिकों, मकान-मालिकों, आय-कर देने वाले लोगों की सूची और उनका विवरण हमें विभिन्न विभागीय दफ्तरों से तैयार प्राप्त हो सकता है। परन्तु किसी क्षेत्र में रहने वाली किसी विशेष जाति के सदस्यों की कोई तैयार सूची शायद ही हमें मिल सके इसलिए उसे तैयार करना पड़ता है। प्रायः सूची बहुत विस्त त होती है तथा अनुसन्धानकर्त्ता को अपनी निदर्शन-प्रविधि के अनुसार सम्बन्धित इकाइयों को उनमें से छाँटना पड़ता है। यह साधन-सूची तभी वास्तव में उपयोगी सिद्ध हो सकती है जबकि उनमें निम्नलिखित गुण हों –

(क) सूची सम्पूर्ण होनी चाहिए जिससे कि समग्र की इकाइयों का विवरण हमें उससे प्राप्त हो सके।

(ख) यह सूची पुरानी नहीं होनी चाहिए। जिससे कि उससे यथासम्भव हाल ही (Lastest) सूचनाएं प्राप्त हो सकें।

(ग) सूची में इकाइयों के सम्बन्ध में पूर्ण सूचना होनी चाहिए ताकि उन इकाइयों का वर्गीकरण विभिन्न वर्गों में किया जा सके।

(घ) सूची में एक ही नाम बार-बार नहीं आना चाहिए। उदाहरण के लिए यदि कॉलेज के क्रियाकलापों में भाग लेने वाले विद्यार्थियों की सूची बनाई जाए तो एक ही विद्यार्थी का नाम कॉलेज में होने वाले कई क्रियाकलापों के साथ बार-बार आ सकता है – ऐसा न होने देना चाहिए।

(ङ) सूची निदर्शन की इकाई के अनुकूल होनी चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि परिवार को इकाई माना गया है तो व्यक्तिगत नामों की सूची बेकार रहेगी।

(च) सूची विश्वसनीय होनी चाहिए अर्थात् इसे ऐसे विभाग या संस्था से प्राप्त करना चाहिए जिस पर विश्वास किया जा सके। उदाहरणार्थ, टेलीफोन डायरेक्टरी एक विश्वसनीय सूची है।

(छ) सूची ऐसी होनी चाहिए कि वास्तव में अनुसन्धानकर्त्ता को वह उपलब्ध हो सके। उदाहरणार्थ, पुलिस विभाग के पास शहर के गुण्डों या सन्देहजनक चरित्र के लोगों की सूची रहती है, कि अनुसन्धानकर्त्ता की वह सूची देखने के लिए न दी जाए। उस बैंक में रुपये जमा करने वालों (Depositors) की सूची मिलना भी बहुत कठिन होता है यद्यपि उनकी सूची बैंक वाले स्वयं रखते हैं। अतः ऐसी सूची से अनुसन्धानकर्त्ता की कोई भलाई नहीं हो सकती। सफल निदर्शन-चुनाव के लिए इन गुणों के सम्बन्ध में भी सचेत रहना आवश्यक होता है।

4. **निदर्शन के आधार का निर्धारण (Determination of the size of Sample):** साधन-सूची की निर्माण हो जाने के पश्चात् चौथे चरण में अनुसन्धानकर्त्ता को निदर्शन का आकार निश्चित कर लेना पड़ता है। निदर्शन का आकार कितना बड़ा या छोटा होगा इस सम्बन्ध में कोई द ढ़ नियम नहीं है। उसका आकार बड़ा हो अथवा छोटा, वह विश्वनीय और प्रामाणिक हो, इसी बात का ध्यान रखा जाता है। निदर्शन के आकार का निर्धारण करते समय इस

बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसमें अध्ययन-विषय की सभी आधारभूत विशेषताओं का समावेश हो जाए। निदर्शन का आकार समग्र (Universe) की प्रकृति, अनुसन्धान की प्रकृति, इकाइयों की प्रकृति, सध्ययन-पद्धति व प्रविधियाँ, निदर्शन-पद्धति, उपलब्ध साधन आदि बातों को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

5. **निदर्शन-पद्धति का चुनाव** **(Selection of Sample Method):** निदर्शन का आकर निर्धारित हो जाने के बाद निदर्शन पद्धति का चुनाव प्रक्रिया का पाँचवा चरण है। इस स्तर तक पहुँचते-पहुँचते समग्र (universe) की प्रकृति, निदर्शन की इकाइयों की प्रकृति, साधन-सूची की उपलब्धता तथा निदर्शन का आकार यह सब स्पष्ट हो जाता है। उसी के आधार पर अनुसन्धानकर्त्ता को यह निश्चित करना पड़ता है कि निदर्शन की कौन-सी पद्धति सबसे उपयुक्त रहेगी। यह चुनाव बहुत ही सावधानी से करना पड़ता है ताकि निदर्शन सही अर्थ में प्रतिनिधित्वपूर्ण (Representative) हो।

6. **निदर्शन का चुनाव** **(Selection of Sample):** निदर्शन का चुनाव निदर्शन-प्रक्रिया का अन्तिम चरण है। जब निदर्शन-पद्धति का चुनाव कर लिया जाता है तो उसी पद्धति की सहायता से आवश्यक निदर्शनों को भी चुन लिया जाता है। वास्तव में उपयुक्त पद्धति की सहायता से विश्वसनीय, प्रामाणिक तथा प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन का चुनाव ही सम्पूर्ण निदर्शन-प्रक्रिया का वास्तविक उद्देश्य है क्योंकि इस पर सम्पूर्ण अध्ययन के निष्कर्षों की यथार्थता बहुत कुछ निर्भर करती है।

निदर्शन के प्रकार
(Types of Sampling):

समग्र में निदर्शन का चुनाव करने की कई पद्धतियाँ हैं जिन्हें हम निदर्शन के प्रकार कहते हैं। ये पद्धतियाँ या प्रकार अध्ययन के उद्देश्य की आवश्यकता, आँकड़ों की प्रकृति, अध्ययन के उद्देश्य आदि पर निर्भर करती हैं तथा अध्ययनकर्त्ता इन पद्धतियों में से किसी का भी चयन करते समय इन्हीं बातों को ध्यान में रखता है। निदर्शन के चुनाव की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं—

(1) द्वेव निदर्शन (Random Sampling)

(2) स्तरीकृत निदर्शन (Stratified Sampling)

(3) उद्देश्यपूर्ण अथवा सविचार निदर्शन (Purposive Sampling)

(4) बहुस्तरीय निदर्शन (Multi Stage Sampling)

(5) गुच्छ निदर्शन (Cluser Sampling)

(6) अभ्यास निदर्शन (Quota Sampling)

(7) व्यवस्थित निदर्शन (Systematic Sampling)

(8) आकस्मिक निदर्शन (Accidental Sampling)

निदर्शन की उपरोक्त सभी पद्धतियों का विस्त त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

1. दैव निदर्शन
(Random Sampling)

दैव अथवा याद इच्छिक निदर्शन एवं प्रायिकता या सम्भावना निदर्शन को एक पर्यावाची के रूप में प्रयोग किया जाता है। निदर्शन समग्र के एक अंश (अथवा निदर्शन) को निकालने

का एक ऐसा ढंग है जो जनसंख्या अथवा समय के प्रत्येक सदस्य को चुनाव को ज्ञात सम्भाविता प्रदान करता है। यहाँ पर 'याद इच्छिक' शब्द चुनाव के एक विशिष्ट ढँग का विशेषण है, निदर्शन का नहीं। यदि निदर्शन इस प्रकार किया जाए कि समग्र के सभी तत्त्वों या इकाइयों को निदर्शन में चुने जाने की सम्भाविता समान हो तो उसे हम दैव याद च्छिक निदर्शन कहते हैं। जैसे यदि हम किसी गोल बर्तन में काँच के 100 कँचे रखें और फिर उनमें से कोई एक कँचा निकालें तो प्रत्येक कँचे के चयन को सम्भाविता 1/100 होगी। इस प्रकार चुने हुए निदर्शन में ना केवल इकाइयों के चयन की सम्भाविताएँ समान होती हैं बल्कि इनमें संयोगों के चयन की सम्भाविता भी बराबर होती है जैसे यदि यह मान लें कि समग्र में पाँच व्यक्ति हैं अ, ब, स, द और ड, इनमें में अनुसन्धानकर्त्ता दो का चयन करना चाहता है। दो का संयोग इस प्रकार का हो सकता है : 1-अ,ब, 2-अ,स, 3-अ,द, 4-अ,ड, 5-ख,स, 6-ख,ग, 7-ख,ड, 8-स,द, 9-स,ड, एवं 10-द,ड। दैव निदर्शन के लिए आवश्यक है कि इस सभी संयोगों को चयन का बराबर-बराबर अवसर दिया जाये।

दैव निदर्शन को भी अनेक विद्वानों का परिभाषित किया है। यह अधिक उपयुक्त होगा कि हम दैव निदर्शन की कुछ परिभाषाओं को देखें : **गुडे एवं हट्ट** ने लिखा है कि "दैव निदर्शन में समग्र की प्रत्येक इकाई के चयन की समान सम्भावना रहती है।"

हार्पर ने लिखा है कि "एक दैव निदर्शन वह निदर्शन है जिसका चयन इस प्रकार हुआ हो कि समग्र की प्रत्येक इकाई को सम्मिलित होने का समान अवसर प्राप्त हुआ हो।"

मिल्टेंड पार्टन के अनुसार दैव निदर्शन के प्रयोग में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए :

(1) समग्र की इकाइयाँ स्पष्ट होनी चाहिए एवं उनकी सूची तैयार की जाय,

(2) इकाइयों का आकार लगभग समान हो,

(3) प्रत्येक इकाई एक-दूसरे से स्वतन्त्र हो,

(4) प्रत्येक इकाई को निदर्शन में चुनाव का समान अवसर मिलना चाहिए,

(5) निदर्शन चयन की विधि स्वतन्त्र होनी चाहिए,

(6) अध्ययनकर्त्ता की प्रत्येक इकाई तक पहुँच सुलभ होनी चाहिए,

(7) चुनी हुई इकाई को न तो छोड़ा जाना चाहिए और न ही उसका प्रति स्थान करना चाहिए।

दैव या याद इच्छिक निदर्शन के अनेक प्रकार हो सकते हैं एवं उनके चुनने की प्रमुख प्रविधियाँ (Techniques) भी अनेक हैं उनमें से कुछ प्रमुख हैं :

(1) लॉटरी विधि (Lottery Method),

(2) कार्ड प्रणाली (Card Method),

(3) रेण्डम अंक प्रणाली (टिप्पेट टेबिल) (Random Number Method),

(4) नियमित अंकन प्रणाली (Regular Interval Method),

(5) अनियमित अंकन प्रणाली (Irregular Interval Method),

(6) ग्रिड प्रणाली (Grid Method)।

1. **लॉटरी विधि (Lottery Method):** सरल दैव निदर्शन के चुनाव की यह विधि बहुत ही सरल है। कई अवसरों पर इसका प्रचलन जनसाधारण में भी देखने को मिलता है। इस

विधि के अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता समग्र की प्रत्येक इकाई के लिए एक-एक कागज की पर्ची तैयार करता है। उस पर उस इकाई का नाम या संकेत लिख दिया जाता है। इस प्रकार बनाई गई पर्चियों के आधार पर कागज की गोलियाँ बना ली जाती हैं और उन्हें एक साथ ठीक से मिला दिया जाता है। ऐसा करने के बाद अनुसन्धानकर्त्ता जिस संख्या में निदर्शन का चुनाव करना चाहता है उतनी गोलियाँ निकाल लेता है और उन पर जिन इकाइयों के नाम या संकेत होते हैं उन्हें निदर्शन मान लिया जाता है। इस विधि का उपयोग करने के लिए एक सावधानी यह रखनी पड़ती है कि सभी गोलियों का आकार बराबर हो।

मान लें हमें 5,000 छात्रों की समष्टि में से **100** का दैव निदर्शन लेना है। हम समष्टि के प्रत्येक सदस्य का नाम कागज की एक पर्ची पर लिख लेंगे। ये पर्चियाँ एक जैसी होनी चाहिए। फिर इन्हें मोड़ कर इनमें से गोलियाँ जैसी बना लेंगे और एक गोल बर्तन में खूब मिला देंगे। फिर इनमें से एक निकाल कर बाकी को खूब मिला देंगे। इस प्रकार एक-एक करके हम **100** पर्चियाँ निकाल लेंगे और इन पर लिखे नामों से हमारा निदर्शन बन जायेगा।

2. **कार्ड प्रणाली (Card Method):** यह प्रणाली लॉटरी प्रणाली से मिलती-जुलती होती है। लॉटरी प्रणाली में कागज की पर्चियों के उपयोग के कारण उसका एक प्रमुख दोष यह है कि ये पर्चियाँ एक-दूसरे से चिपक सकती हैं। अतः कार्ड प्रणाली में पर्चियों की जगह कार्ड (Card) का उपयोग किया जाता है। सबसे पहले एक से आकार, रंग या बनावट के कार्डो या टिकटों पर जनसंख्या समग्र की समस्त इकाइयों के नाम अथवा संख्या या कोई अन्य चिन्ह अंकित कर दिया जाता है। सबको एकत्रित कर गोल तथा बड़े ड्रम में भर कर पचास बार घुमाया जाता है। प्रत्येक पचास बार घुमा कर एक बार एक कार्ड या टिकट निकाल लिया जाता है। जितनी इकाइयों का चुनाव करना होता है, उतने पचास बार घुमाकर कार्ड निकाले जाते हैं। निकाले गये कार्डो वाली इकाइयों का शोधकर्त्ता द्वारा अध्ययन किया जाता है। (क) में शोध-कर्त्ता स्वयं या अन्य कोई आँख बन्द करके तथा (ख) में कोई भी आँख खुली रखकर इकाइयों का चयन करता है। दोनों के मध्य इतना ही अन्तर है।

3. **रेण्डम अंक या टिप्पेट प्रणाली (Random Number of Tippet Method):** सरल दैव निदर्शन के चयन की एक अन्य विधि को रेण्डम प्रणाली या टिप्पेट प्रणाली के नाम से जाना जाता है। इस प्रणाली को प्रो. टिप्पेट (Prof. Tippet) ने (1927) में गणितीय अंकों के आधार पर तैयार किया था। टिप्पेट की तरह ही फिशर एवं वेल्स (1936), केण्डल एवं स्मिथ (1939), रेण्ड कारपोरेशन (1955) राव-मित्रा, एवं मथाई (1966) ने भी निदर्शन सारणियाँ बनायी हैं। लेकिन वर्तनाम समय में टिप्पेट सारणी का प्रयोग अधिक किया जाता है। टिप्पेट ने चार अंकों वाली **1040** संख्याओं की एक सूची बनायी। उन संख्याओं को दैव-निदर्शन का प्रयोग करने के लिए सुनिश्चित कर दिया गया। यह संख्या बिना किसी क्रम के कई प ष्ठों पर लिखी हुई है। शोधकर्त्ता आवश्यकतानुसार, जितनी इकाइयों का अध्ययन करना है उतनी इकाइयों को किसी भी प ष्ठ से लगातार लेता जाता है। उदाहरण के लिए, यदि 100 मजदूरों के समय से 10 मजदूरों की इकाइयों का अध्ययन करना है, तो उन 100 इकाइयों को क्रम से जमा कर टिप्पेट के क्रम से लेंगे। टिप्पेट प्रणाली में संख्याओं के चुनाव के दो प्रमुख ढँग हैं:

(i) **प्रत्यक्ष चुनाव का ढँग** (Direct Selection Method)

(ii) **अवशेष चयन का ढँग** (Remainder Selection Method)।

(i) **प्रत्यक्ष चुनाव का ढँगः** इस ढँग के अन्तर्गत हम किसी विशिष्ट प्रकार के तथा क्रमबद्ध संख्याओं की सारणी से संख्याओं को चुनते हैं और उन संख्याओं को स्वीकार करते हैं जो निदर्शन के आकार से अधिक नहीं होती। उदाहरण के लिए यदि हमें 400 इकाइयों के समय से चुनाव करना चाहते हैं और हमने यह निश्चित कर रखा है कि हम संख्याओं के स्तम्भों के आरम्भ और अन्त में दी गई संख्याओं का ऊर्ध्वरूप से तीन-तीन के समूहों में चुनाव करेंगे क्योंकि 400 में तीन अंक पाए जाते हैं। प्रायोगिक रूप से सम्पूर्ण स्थिति को अग्राङ्कित सारिणी की सहायता से प्रदर्शित किया जा सकता है।

संख्याएँ (Numbers)

42827	29280	70203	51213	78569
41519	73184	84612	26689	30877
38273	52677	33891	23027	33891
48225	48663	85998	02427	85998
56506	22635	27941	58903	56560

इस सारणी से उपरिलिखित क्रम में हम 443, 793, 275, 47, 783, 321, 522, 397, 733, 979 का प्राप्त करते हैं किन्तु हम उन्हीं संख्याओं का निदर्शन के लिए स्वीकार करते हैं जो 400 से अधिक नहीं होती और इस द ष्टि से 275, 47, 321 तथा 397 को हम निदर्शन में सम्मिलित करते हैं और शेष सभी को छोड़ देते हैं। स्पष्ट है कि यहाँ पर हम आरम्भिक रूप से चुनी गई 10 संख्याओं में केवल 4 का उपयोग करने में समर्थ हुए हैं अर्थात् हमारे समय, प्रयास एवं धन का पर्याप्त व्यय बेकार में ही हुआ है। इस बर्बादी पर काबू पान के लिए ही अवशेष वाले ढंग को प्रयोग में लाया जाता है।

(iii) **अवशेष वाला ढंगः** मान लीजिए कि उस समय में 150 इकाइयाँ हैं जिससे हम अपने निदर्शन का चुनाव करना चाहते हैं। ऐसी स्थिति हमें निम्न कार्य रीति का पालन करना पड़ेगा।

1. एकाएक हम संख्याओं को सारिणी के चाहे किसी भी स्तम्भ अथवा पंक्तियों से आरम्भ करें, हमें तीन अंकों वाले समूहों के रूप में संख्याओं का चुनाव करना होगा।
2. हमें यह ज्ञात करना पड़ेगा कि तीन अंकों वाली संख्याओं में 150 (समय में इकाइयों की संख्या) का अधिकतम गुणन क्या है? यहाँ स्पष्ट है कि 150 का अधिकतम गुणन 900 से कम है।
3. तीन-तीन के समूहों के रूप में चुनी गई विभिन्न संख्याओं में से हमें केवल उन्हीं को स्वीकार करना होगा जो 900 से कम हों।
4. स्वीकार की गई 150 से अधिक संख्याओं को 150 से विभाजित कर इनके अवशेष को ज्ञात करना होगा तथा इसे ही अन्तिम रूप से निदर्शन में स्वीकार करना होगा।

उदाहरण के लिए, यदि उपयुक्त सारणी के आधार पर 443, 793, 275, 47, 783, 321, 522, 397, 733 तथा 979 को प्राप्त करते हैं तो हमें 979 को इसलिए छोड़ देना होगा क्योंकि यह 900 से अधिक है तथा 47 को अन्तिम चुनाव के लिए स्वीकार कर लेना होगा। अन्य सभी अर्थात् 443, 793, 275, 783, 321, 522, 397 तथा 733 को 150 से विभाजित कर अवशेष ज्ञात करने होंगे जो क्रमशः 143, 193, 125, 183, 21, 72, 97 तथा 133 होंगे। ये भी संख्याएँ अन्तिम रूप से निदर्शन में सम्मिलित की जाएँगी।

यह ध्यान रखने योग्य बात है कि जहाँ भी संख्याओं का प्रयोग किया जाए वहाँ स्रोत का नाम, प ष्ठ संख्या, स्तम्भ, संख्या, पक्ति संख्या और आरम्भिक संख्या का अवश्य उल्लेख किया जाए।

4. **नियमित अंकन प्रणाली** **(Regular Internal Method):** नियमित अंकन प्रणाली सरल दैव निदर्शन की एक महत्त्वपूर्ण विधि मानी जाये या नहीं इस सम्बन्ध में दो विपरीत धारणाएँ हैं किन्तु इस विवाद की चर्चा करने के पहले यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि नियमित अकन प्रणाली क्या है? इस पद्धति के द्वारा अनुसन्धानकर्त्ता जब निदर्शन का चुनाव करता है तब सबसे पहले वह वर्गान्तर की गणना करता है। इसके लिए निम्न सूत्र को काम में लिया जाता है -

$$\text{वर्गान्तर} = \frac{\text{समग्र का आकार}}{\text{निदर्शन का आकार}}$$

इस प्रकार वर्गान्तर की गणना करने के पश्चात् आरम्भिक बिन्दु का चुनाव किया जाता है और उसके लिए अनुसंधानकर्त्ता पहली संख्या तथा वर्गान्तर के बीच की किसी एक संख्या का चुनाव लॉटरी या रेण्डम अंक विधि से करता है। इस आरम्भिक संख्या का चयन करने के बाद वह उसमें वर्गान्तर जोड़ता है। जो संख्या प्राप्त होती है उसमें पूनः वर्गान्तर जोड़ा जाता है और इसी प्रक्रिया को समग्र की अन्तिम संख्या तक जारी रखता जाता है। इस प्रकार जो विभिन्न संख्यायें प्राप्त होती है उन पर समग्र की सूची में जिन इकाइयों के नाम होते हैं उन्हें निदर्शन में सम्मिलित कर लिया जाता है। एक उदाहरण से इस विधि को स्पष्ट किया जाता सकता है।

यदि हमें 10,000 के समग्र में से 500 व्यक्तियों का चयन इस विधि से करता है तो हम सर्वप्रथम इन 10,000 व्यक्तियों की सूची करेंगे। इसके बाद वर्गान्तर की गणना करेंगे जो कि इस उदाहरण के सन्दर्भ में 20 होगी हैं इस वर्गान्तर की गणना के बाद पहली संख्या व 20 के बीच किसी एक संख्या का चुनाव लॉटरी द्वारा करेगे। उदाहरण के लिए हम यह मान लेते हैं कि वह संख्या 4 है। इस संख्या (4) को आरम्भिक बिन्दु कहा जायेगा। इसमे वर्गान्तर जोड़ने पर 24 की संख्या बनती है और इस प्रकार 4, 24, 44, 64, 84.... की संख्या हमें प्राप्त होती है। समग्र की सूची में इन अंकों पर जिन व्यकितयों के नाम होंगे उन्हें निदर्शन में सम्मिलित कर लिया जायेगा।

5. **अनियमित अंकन प्रणाली** **(Irregular Interval Method):** इसमें भी समय या जनसंख्या को समस्त इकाइयों की एक सूची बनायी जाती है। उस सूची में प्रथम और अन्तिम अंक को छोड़कर शेष इकाइयों की क्रमसंख्या पर शोधकर्त्ता निशान लगाता चलता है। ये निशान उतनी ही इकाइयों पर लगाए जाते हैं, इस कारण इसमें पक्षपात का समावेश हो जाता है।

6. **ग्रिड प्रणाली** (Grid Method): यह क्षेत्र या भौगोलिक आधार पर निदर्शन निर्माण की प्रणाली है। इसमें किसी विशाल भौगोलिक क्षेत्र का जहाँ से निदर्शन लेना है, नक्सा या मानचित्र लिया जाता है। उस मानचित्र पर सेल्यूयॉयड की पारदर्शक ग्रिड प्लेट रख दी जाती है। इस प्लेट में वर्गाकार चौकोर खाने कटे हुए तथा उन पर नम्बर लिखे हुए होते हैं। यह पहले ही निश्चित कर लिया जाता है कि किस आधार पर किन-किन नम्बरों वाली इकाइयो को अध्ययन का विषय बनाया है। इस नम्बरों को निर्णय आकस्मिक ढंग से किया जाता है। मानचित्र के जिन हिस्सों पर निर्धारित नम्बरों के वर्गाकार खाने आते हैं, उनकी चिह्नित करके अध्ययन के लिए चुन लिया जाता है। इसे क्षेत्र निदर्शन भी कहते हैं किन्तु वह थोड़ा-सा भिन्न प्रकृति का होता है।

दैव निदर्शन के लाभ
(Advantages of Random Sampling)

इसके निम्नलिखित लाभ हैं :

1. दैव निदर्शन का प्रयोग किए जाने की स्थिति मे समग्र की विशेषताओं अथवा इसके आबंटन का पूर्व ज्ञान आवश्यक नहीं है।
2. अनुसन्धानकर्त्ता अपने परिणामों की यथार्थता का मूल्यॉंकन सरलतापूर्वक कर सकता है क्योंकि निदर्शन त्रुटियाँ संयोग के नियमों का पालन करती हैं।
3. दैव निदर्शन की इकाइयाँ एक समग्र की परिवर्तनशीलता को अधिक अच्छे ढंग से स्पष्ट कर सकती हैं अपेक्षाकृत उस स्थिति की जिसमें समान संख्या में इकाइयो का चुनाव स्वेच्छापूर्वक किया गया हो।
4. जैसे-जैसे दैव निदर्शन का आकार बढ़ाया जाता है वैसे-वैसे निदर्शन की प्रतिनिधित्वपूर्णता भी बढ़ती जाती है, तथा उस सीमा का निर्धारण सम्भाविता के नियमों के आधार पर किया जा सकता है जिस सीमा तक इसके ऊपर समग्र के एक सही के रूप में विश्वास कर सकते हैं।

इससे कुछ प्रमुख हानियाँ निम्नलिखित हैं :

1. पहले से ही समग्र के सूचीबद्ध रूप में उपलब्ध होने की आवश्यकता के पाए जाने के कारण दैव निदर्शन का प्रयोग करने के मार्ग में आने वाली कठिनाई।
2. निदर्शन के चुनाव के पूर्व प्रत्येक इकाई के लिए संख्याओं के निर्धारण कार्य में होने वाले समय, प्रयासों एवं धन का अतिरिक्त व्यय।
3. असन्तोषजनक अथवा भ्रामक निदर्शन प्राप्त होने की सम्भावना। स्टीफन ने ठीक ही लिखा है-"यह दैव निदर्शन में असन्तोषपूर्ण चुनाव के शिकार को यह आश्वासन दिलाने में कि लम्बी अवधि के दौरान चुनाव का दैव ढंग एक दिशा में उतनी ही त्रुटियाँ प्रदान करेगा जितनी कि दूसरी दिशा में, बहुत कम सहायता एवं आराम प्रदान करता है।"
4. समान साँख्यिकीय विश्वसनीयता की प्राप्ति के लिए आवश्यक निदर्शन का आकार प्रायः स्तरीयकृत निदर्शन की तुलना में दैव निदर्शन में अधिक होता हे।
5. क्षेत्र अध्ययनों के अन्तर्गत चुनी गई इकाइयों के विस्त त क्षेत्र में फैले होने के कारण समय, प्रयास एवं धन का व्यय अधिक होता है।

2. स्तरीकृत निदर्शन
(Stratified Sampling)

स्तरीकृत दैव निदर्शन वस्तुतः दैव निदर्शन पद्धति का ही विकसित रूप है। स्तरीकृत निदर्शन के अन्तर्गत सरल दैव निदर्शन पद्धति के द्वारा ही निदर्शन का चयन किया जाता है। अनेक बार सामाजिक अनुसन्धान का उद्देश्य विभिन्न वर्गों के बीच तुलनात्मक अध्ययन करना पड़ता है अथवा ऐसी स्थिति में जबकि अध्ययनकर्ता अध्ययन से पूर्व यह तय कर लेता है कि निदर्शन में समग्र में पाये जाने वाले समस्त वर्गों का उचित प्रतिनिधित्व हो तब स्तरीकृत निदर्शन का उपयोग किया जाता है। ये दोनों ही उद्देश्य सरल दैव निदर्शन के द्वारा ही पूरे किए जा सकते हैं और किए जाते भी हैं किन्तु उसके प्रतिनिधि होने का पता तभी लग जाता है जब विभिन्न वर्गों में से कोई एक वर्ग अपेक्षाकृत बहुत छोटा है तो सरल दैव निदर्शन के द्वारा लिए गए निदर्शन में उस वर्ग का उतना प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता कि उसका दूसरे वर्गों से तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके। ऐसी स्थिति मे भी स्तरीकृत दैव निदर्शन एक उपयोगी पद्धति सिद्ध होती है।

स्तरीकृत निदर्शन में हम सबसे पहले समग्र को विभिन्न स्तरों में बाँट लेते हैं और फिर प्रत्येक स्तर में से स्वतन्त्र निदर्शन ले लेते हैं। यह महत्त्वपूर्ण है कि परिभाषा इस प्रकार दी जाए कि प्रत्येक तत्त्व (सदस्य) एक ओर केवल एक ही स्तर में आयें फिर प्रत्येक स्तर में से दैव या व्यवस्थित निदर्शन ले लेते हैं। स्वीकृत निदर्शन का यह सबसे सरल और सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाला ढंग है। यह हो सकता है कि सब स्तरों में से एक ही अनुपात में निदेर्शन का अनुपात बराबर नहीं है।

स्तरीकृत निदर्शन को अग्रांकित सारणी की सहायता के सोदाहरण समझाया जा सकता है।

एक विश्वविद्यालय के विभिन्न संकायों के स्तरीकृत निदर्शन

विवरण	स्तर संख्या तथा नाम			
	कला संकाय 1	विधि संकाय संकाय 2	वाणिज्य संकाय 3	विज्ञान 4
प्रत्येक स्तर में इकाइयों की संख्या	8000	6000	4000	2000
विभिन्न संकायों में इकाइयों का अनुपात निदर्शन के विभिन्न स्तरों में	.4	.3	.2	.1
उन विद्यार्थियों का अनुपात जो प्रश्न का सकारत्मक उत्तर देते हैं	.35	.30	.15	.20
प्रत्येक स्तर के निदर्शन अनुपात की अनुमानित मानक त्रुटि	.02	.02	.03	.03

इस प्रकार स्तरीकृत निदर्शन के दो बड़े प्रकार किए जा सकते हैं :

(क) **समानुपतिक स्तरीकृत निदर्शन** **(Proportionate Stratified Sampling):** समानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन प्रत्येक निदर्शन की इकाइयाँ उसी अनुपात में ली जाती है जिस अनुपात

में वे समग्र के अन्तर्गत होती हैं, यदि विभिन्न स्तरों में भिन्न-भिन्न संख्या में इकाइयाँ पाई जाती हैं जो प्रत्येक स्तर के लिए समानुपातिकता की प्राप्ति प्रत्येक स्तर में से इकाइयों की एक स्थिर अनुपात में चुनते हैं समानुपातिक निदर्शन अनुसन्धानकर्त्ता को इस विषय मे निश्चित होने की सामर्थ्य प्रदान करता है कि वह प्रत्येक स्तर से सही अनुपात में इकाइयों का चुनाव कर रहा है।

समानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन के विषय में निम्न तथ्य उल्लेखनीय हैं :

(1) समानुपातिक निदर्शन सूक्ष्मता की सीमा को बढ़ा देता है क्योंकि प्रत्येक स्तर का निदर्शन के अन्तर्गत समानुपातिक प्रतिनिधित्व होता है।

(2) इसका प्रयोग करने पर गैर-समानुपातिक निदर्शन की तुलना में प्रायः अधिक बचत होती है।

(3) इसका प्रयोग सापेक्षतया सरल है और इसलिए प्रायः प्रयोग में लाया जाना चाहिए।

(4) इकाइयों के चुनाव की तुलना में गुच्छो का निदर्शन की इकाइयों के रूप में चुनाव अधिक लाभदायक होता है।

(5) स्तरीकरण के लिए उपयुक्त चरों के निर्धारण एवं चनाव पर अधिक समय को व्यय नहीं किया जाता।

(6) स्तरों की संख्या जितनी ही अधिक होती है, त्रुटि की सम्भावना उतनी ही कम होती है।

उदाहरण के लिए यदि, हम यह मानलें कि इसे समग्र में कुल एक हजार व्यक्ति हैं। इसमें से 600 हिन्दू, 300 मूसलमान और 100 ईसाई हैं। अब यदि हमे 100 व्यक्तियों का निदर्शन चुनना है तो उसमें दैव निदर्शन से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि इसमें 60 हिन्दू, 30 मुसलमान एवं 10 ईसाइयों का चयन होगा। अतः यदि हम यह चाहते हैं कि विभिन्न धर्मों के लोग अपने ठीक अनुपात में निदर्शन में आयें तो हमें प्रत्येक स्तर का दसवां भाग (1/10) ले लेना चाहिए, दूसरे शब्दों में हमें हिन्दुओं में से 6, मुसलमानों में से 3 एवं ईसाइयों में से 1 का प्रतिचयन कर लेना चाहिए। इसे ही समानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन कहा जाता है। कभी-कभी यह ठीक समझ में नहीं आता कि स्तरीकरण किस आधार पर करना चाहिए। जैसे सरकारी कर्मचारियों के स्तर कई आधारो पर बनाये जा सकते हैं-पद, वरीयता, आयु, धर्म आदि। इसमें से वही आधार लिया जा सकता है जो कि समष्टि सूची में स्पष्ट हो। जैसे यदि हमें लोगों की जाति मालूम न हो तो हम इस आधार पर स्तरण नहीं कर सकते। यथासम्भव स्तरीकरण का आधार अध्ययन के विषय से सम्बन्धित होता है। यदि हम सोचते हैं कि सरकारी कर्मचारियों का मनोबल उसके वर्ग (या पद) से सम्बन्धित है तब हम इस आधार पर स्तरण करते हैं। यदि हम यह सोचते हैं कि मनोबल आयु के सम्बन्धित है (जैसे यदि बड़ी आयु के लोगों का मनोबल छोटी आयु के लोगों की अपेक्षा कम या अधिक होने की सम्भावना है) तो हम आयु के आधार पर स्तरीकरण करेंगे। तब हम यह कर सकते हैं कि कर्मचारियों को दो स्तरो में बाँट लें-20 से 40 की आयु वाले और 40 से 60 की आयु वाले और फिर उनके अनुपात के अनुसार निदर्शन ले लें।

(ख) **असमानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन (Disproportionate Sampling):** कभी-कभी असमानुपातिक

स्तरीकृत निदर्शन का चयन करना पड़ता है। जहोदा के अनुसार असमानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन के कई कारण हो सकते हैं। कई परिस्थितियों में जिन स्तरों में कम संख्या होती है, उनसे अधिक इकाइयों का चुनाव किया जाता है जैसे कि विभिन्न स्तरों मे तुलना सम्भव हो। कभी-कभी एक स्तर मे किसी विशेषता के आधार पर अधिक विभिन्नताएँ पाई जाती हैं और दूसरे स्तर में अधिक समानता होती है। ऐसी स्थिति में पहले स्तर में से अधिक इकाइयों की आवश्यकता होगी और दूसरे स्तर में तुलनात्मक रूप में कई इकाइयों का चयन करना पड़ेगा। यदि अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि स्त्रियों की तुलना में पुरुषों के विचारों और मनोव त्तियों में अधिक विभिन्नता है तो निदर्शन में पुरुषों की संख्या अधिक होनी चाहिए जिससे कि इन विभिन्नताओं का अध्ययन किया जा सके।

इसके अन्य कारण भी हो सकते हैं। कभी-कभी एक स्तर में से अधिक इकाइयों का चुनाव किया जाता है। क्योंकि उस स्तर को उपभागों में विभाजित करना होता है और विभिन्न उपभागों की तुलना करनी होगी क्योंकि इकाइयों की संख्या सीमित होगी। जहोदा के अनुसार विभिन्न स्तरों में से इकाइयों का चुनाव अध्ययन के उद्देश्य पर निर्भर करना चाहिये।

इस प्रकार असमानुपातिक स्तरीकृत निदर्शन में इसके अन्तर्गत प्रायः प्रत्येक स्तर में समान संख्या में इकाइयों को चुना जाता है तथा इस बात की कुछ परवाह नहीं कि जाती कि विभिन्न स्तर समग्र का किस सीमा तक प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। प्रत्येक स्तर से चुनी गई इकाइयों की संख्या योजना में पूर्व-निश्चित इकाइयों की संख्या के समान रखी जाती है। इस प्रकार के निदर्शन को कभी-कभी नियन्त्रित निदर्शन भी कहा जाता है। इसके प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं :

1. निदर्शन के आकार की द ष्टि से सभी समान रूप से विश्वसनीय होते हैं। प्रत्येक स्तर के समान संख्या में इकाइयों का चुनाव किए जाने के कारण विभिन्न स्तरों की तुलना सम्भव हो जाती है।

2. निदर्शन के इस प्रकार से बचत बहुत अधिक होती है क्योंकि इसके उत्तरदाता एक-दूसरे से भौगोलिक सामीप्य की स्थिति में होते हैं।

   असमानुपातिक निदर्शन उस स्थिति में काम में लिया जाता है जबकि उपसमग्रों का निमार्ण करने पर अनुसंधानकर्त्ता को यह लगे कि किसी एक उप-समग्र का आकार दूसरे उप-समग्रों की तुलना में बहुत छोटा है। इस स्थिति में यदि समानुपातिक निदर्शन का चुनाव किया जायेगा तो उस छोटे उप-समग्र में से जो निदर्शन आयेगा वह नगण्य होगा तथा तुलना के लिए सही आधार प्रस्तुत नही कर पायेगा। ऐसी स्थिति में अनुसंधानकर्त्ता उस छोटे उप-समग्र में से अपेक्षाकृत अधिक अनुपात में इकाइयो का चयन करता है और बड़े उप-समग्र का अनुपात थोड़ा-सा कम कर देता है। इस कारण इसे असमानुपातिक की संख्या दी जाती है। ऐसा करना वस्तुतः विशेष परिस्थितियों में आवश्यक हो जाता है। क्योंकि इसके बिना सही रूप से तुलना नहीं की जा सकती। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को एक उदाहरण के रूप में निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है। किसी एक सामाजिक अनुसंन्धान मे अनुसन्धानकर्त्ता को विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का अध्ययन करना है जिनकी कुल संख्या 10,000 है। अनुसंधानकर्त्ता अपने अध्ययन में मुख्य रूप में प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी तथा त तीय श्रेणी प्राप्त विद्यार्थियो की परस्पर तुलना करना चाहता है। ऐसा करने के लिए वह निदर्शन के चयन में स्तरीकृत पद्धति को काम में लेना चाहता है। इसके लिये यह करना होगा कि वह

> सबसे पहले उन 10,000 में से प्रत्येक विद्यार्थी की श्रेणी ज्ञात करे और इस एक समग्र को तीन समग्रों में विभाजित करे। यदि प्रथम श्रेणी में 200 विद्यार्थी हैं, द्वितीय श्रेणी में 5,000 विद्यार्थी हैं तथा त तीय श्रेणी में 4,800 विद्यार्थी हैं और अनुसन्धानकर्त्ता को कुल मिलाकर 500 विद्यार्थियों का निदर्शन लेना है तो वह समानुपातिक निदर्शन के अनुसार प्रथम श्रेणी के दस, द्वितीय श्रेणी के 250 तथा त तीय श्रेणी के 240 विद्यार्थियों का चयन करेगा। ऐसा करने में मुख्य कठिनाई यह है कि जहाँ द्वितीय व त तीय श्रेणी में विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक है वहाँ प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियों की संख्या निदर्शन के द ष्टिकोण से बहुत ही कम है। ऐसी स्थिति में कोई अर्थपूर्ण तुलना नहीं की जा सकती। तब अनुसंधानकर्त्ता के लिये उपयुक्त यह होगा कि वह असमानुपातिक निदर्शन के नियम को काम में ले अर्थात् वह प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियों का, प्राप्त अनुपात के अधिक संख्या में चयन करे और द्वितीय व त तीय श्रेणी के विद्यार्थियों के चयन की संख्या को थोड़ा-थोड़ा कम कर ले।

इस प्रकार स्तरीकृत निदर्शन ही सामाजिक अनुसंधान में निदर्शन के चयन की अत्यन्त उपयुक्त पद्धति है लेकिन समान्यतः समग्र को स्तरों में स्तरीकृत करने के लिए चरों का चुनाव करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखा जाता है :

1. **उपलब्ध सूचना की प्रकृतिः** यह आवश्यक है कि स्तरों के विषय में सूचना उपयुक्त, उचित, पूर्ण एवं सम्पूर्ण जनसंख्या पर लागू होने योग्य तथा अनुसन्धानकर्त्ता को सरलतापूर्वक प्राप्त होने योग्य होनी चाहिए। अनेक चरों के साथ नियन्त्रक के रूप में प्रयोग में नहीं लाया जाना चाहिए क्योंकि चरों की संख्या जितनी अधिक होती है स्तरीकरण में उतनी ही कठिनाई हाती है।
2. **चरों का अनुसंधान से उद्देश्यों की प्राप्ति से सम्बन्ध।**
3. **सम्पूर्ण निदर्शन में स्तरों का आकारः** सभी स्तरों का आकार इतना बड़ा होना चाहिए कि क्षेत्र में जाकर इसे तथा इसको निर्माणकारी इकाइयों का पता सरलतापूर्वक लगाया जा सके।
4. **स्तरों की आन्तरिक समताः** समग्र की प्रत्येक निदर्शन इकाई को निर्मित किये गये स्तरों में से एक (और केवल एक) में ही निदर्शन के चुनाव के पूर्व रखा जाता है ताकि सभी स्तरों में पाई जाने वाली इकाइयों का योग समग्र की इकाइयों के समान हो। एक विशिष्ट स्तर में निर्धारित की गई इकाइयो में से ही इस स्तर विशेष के लिए एक निदर्शन का चुनाव किया जाता है तथा प्रत्येक निदर्शन के आगणनों को अलग-अलग निकाला जाता है। प्रत्येक स्तर के लिए अलग-अलग निकाले गये इन आगणनों को सामूहिक रूप से एकत्रित करते हुए सम्पूर्ण समग्र के लिए आगणनों को निकाला जाता है।

स्तरीकृत निदर्शन के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं
(Advantages and Disadvantages of Stratified Sampling)

स्तरीकृत निदर्शन के प्रमुख निम्नलिखित है :

1. क्योंकि समग्र को पहले स्तरीकृत करने के बाद ही उनके प्रत्येक स्तर से स्तरीकृत निदर्श निकाला जाता है इसलिए समग्र के किसी भी महत्वपूर्ण समूह के पूर्णरूपेण बाहर रह जाने की सम्भावना कम हो जाती है।

2. अधिक समरूपता वाले समग्र से केवल कुछ इकाइयों को ही निदर्श में सम्मिलित करने पर अधिक सूक्ष्म परिणामों की प्राप्ति की जा सकती है। जिसके परिणामस्वरूप अन्तः आँकड़ों के संग्रह एवं संसाधन पर लगने वाली लागत कम हो जाती है।

3. यदि स्तरों का निर्माण करने तथा प्रत्येक स्तर के छोटे का निर्धारण करने के पश्चात् साक्षात्कारकर्त्ताओं से इकाइयों को चुनने को कहा जाय तो वे अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों को चुन सकते हैं, अपेक्षाकृत उस स्थिति के जिसमें उनके पूर्णरूपेण अपना निर्णय लेते हुए इकाइयों के चुनाव करने को कहा जाए। इसका कारण यह है कि जब साक्षात्कारकर्त्ता के चुनाव की सीमा कुछ ऐसे समूहों तक सीमित हो जाती है जिनमें विषमता कम होती है तो उनके द्वारा किया चुनाव स्वतः अधिक प्रतिनिधित्वूपर्ण होता है।

4. ऐसे निदर्श जो स्वतः चुने गये होते हैं जैसे कि डाक प्रश्नावली से प्राप्त होने वाले प्रतिदान, वे कम पूर्वाग्रहपूर्ण होते हैं किन्तु स्तरीकरण का आश्रय लेते हुए निदर्श का चुनाव करने पर पूर्वाग्रह कही कम होता है। इस सम्बन्ध में स्टीफन के विचार उल्लेखनीय है :

   "इस बात का प्रावधान करने पर कि निदर्शन का एक निश्चित अनुपात प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र अथवा आय समूह से होगा, स्तरीकरण स्वतः निदर्शन द्वारा खोये गये व्यक्तियों को उसी स्तर के व्यक्तियों द्वारा पुनर्स्थापित कर देता है और इस प्रकार आँशिक रूप से वह पूर्वाग्रह कम हो जाता है जो उस समय उत्पन्न हो सकता है जबकि व्यक्तियों को पूनर्स्थापन सम्भव न हो। न्यून प्रतिपादन की दर वाले स्तरों में व्यक्तियों को डाक द्वारा भेजी गई प्रश्नावली की संख्या को न्यून दरों की क्षतिपूर्ति करने के लिए बढ़ाया जा सकता है ताकि प्रत्येक स्तर से प्राप्त किये गये प्रयोग प्रतिदानों की संख्या स्तर के आकार के समानुपाती हो सके। स्तरीकरण की व्यवस्था के अन्तर्गत एक ऐसे वर्गीकरण का समावेश सम्भव हो सकता है जो अधिक क्षति के दरों वाले व्यक्तियों को कम क्षति की दरों वाले व्यक्तियों से प्रभावपूर्ण ढंग से अलग कर सकता है जिसमें क्षति के कारण पूर्वागह के एक बड़े हिस्से को नियन्त्रित किया जा सकता है।"

5. दैव निदर्शनों की तुलना में स्तरीकृत निदर्श भौगोलिक द ष्टिकोण से अधिक सीमित क्षेत्र में केन्द्रित किये जा सकते हैं और इसके परिणामस्वरूप समग्र, प्रयास एवं धन के व्यय में पर्याप्त बचत सम्भव हो सकती है।

   क्राक्सटन तथा काउडेन ने इस प्रणाली को अन्य प्रणालियों की तुलना मे अधिक अच्छा बताया है। विभिन्न वर्गों का विभाजन वर्गों का विभाजन यदि सतर्कता से किया गया है तो थोड़ी इकाइयों का चयन करने पर भी सम्पूर्ण समूह का प्रतिनिधित्व हो जाता है जबकि दैव निदर्शन में प्रतिनिधित्व हो जाता है जबकि दैव निदर्शन में प्रतिनिधित्व का गुण तभी आ सकेगा जब इकाइयों की संख्या पर्याप्त हो। क्षेत्रीय द ष्टि से वर्गीकरण करने पर इकाइयों से सम्पर्क असानी से स्थापित किया जा सकता है। इससे धन व समय की भी बचत होती है।

   स्तरीकृत निदर्शन के प्रमुख हानियाँ निम्नलिखित हैं :

   (1) स्तरीकरण के लिए महत्त्वपूर्ण चरों का प्रयोग किए जाने के लिए यह आवश्यक है कि निदर्शन का कार्य आरम्भ करने के पूर्व ही अनुसन्धानकर्त्ता अपने समग्र से सम्बन्धित विभिन्न चरो एवं इनके सापेक्ष महत्त्व की पर्याप्त जानकारी हो।

   (2) यदि स्तरीकरण के दौरान विभिन्न स्तरों के लिए निदर्शों का निर्धारित किया गया

आकार समानुपातिक नहीं होता है तो भारण की समस्या हमारे समाने आती है जिसके अन्तर्गत हम विभिन्न स्तरों से प्राप्त किए गए परिणामों को इन स्तरों से निदर्श में सम्मिलित की गई इकाइयों की संख्या के अनुसार भार निर्धारित करते हैं और भारण के लिए समग्र के प्रत्येक स्तर में सापेक्ष बारम्बारता का ज्ञान आवश्यक होता है।

भारण के दौरान कुछ विशेष प्रकार की समस्याएँ हमारे समाने आती है। जैसे की पहले भार प्रदान किए बिना विभिन्न स्तरों से आँकड़ों का एकत्रित किया जाना तथा इन आँकड़ों के आधार पर आगणनो का निकाला जाना, भारित तथा गैर-भारित आँकडों को अलग-अलग रखा जाना, आवश्यकतानुसार भारों में परिवर्तन किया जाना, जबकि हम इनमें अतिरित्त सूचना का समावेश करना चाहते हैं अथवा दो खानों में दी गई सूचना को एक साथ प्रदर्शित करना चाहते हैं।

(3) विशेष विवरणों की द ष्टि के उपयुक्त इकाइयों का पता लगाने में क्षेत्रीय कार्य के दौरान पर्याप्त कठिनाई का अनुभव करना पड़ता है। जब तक इकाइयों का चुनाव दैव रूप से अथवा प्रत्येक इकाई की सूची रखने वाले सम्पूर्ण समग्र से न किया जाए तब तक निदर्श सम्मिलित की गई इकाइयों का पता लगाने में पर्याप्त समय लगता है जिसके परिणामस्वरूप अनुसन्धान कार्य पर लगने वाली लागत भी बढ़ जाती है।

(4) प्रत्येक स्तर से सरल दैव निदर्शन की आवश्यकता के कारण प्रायोगिक कठिनाइयाँ बढ़ जाती है।

(5) जब समानुपातों की गणना करनी होती है तो स्तरीकृत निदर्शन की सहायता से प्राप्त होते हैं।

(6) प्रत्येक स्तर से आगणन किए जाने के परिणामस्वरूप क्रमबद्ध त्रुटि की सम्भावना बढ़ जाती है।

(7) अध्ययन किए जाने वाले सभी चरों के सम्बन्ध में उपयुक्त परिणाम नहीं प्राप्त किए जा सकते।

3. उद्देश्यपूर्ण या सविचार निदर्शन (Purposive Sampling)

जब अनुसन्धानकर्ता किसी विशेष उद्देश्य को सामने रखकर जान-बुझकर समग्र में कुछ इकाइयों का चुनाव करता है तो उसे उद्देश्यपूर्ण या सविचार निदर्शन करते हैं। इस प्रकार के निदर्शन के चुनाव का मुख्य आधार यही है कि इसमे अनुसन्धानकर्त्ता समग्र (Universe) की इकाइयों के लक्षणों से पूर्वपरिचित होकर सविस्तार पूर्वक निदर्शनो का चुनाव करता है। चुनाव का आधार अध्ययन का उद्देश्य होता है और उद्देश्यों को सामने रखते हुए उसी के अनुरूप अनुसन्धानकर्त्ता सम्पूर्ण क्षेत्र से सर्वाधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों का चुनाव करता है। इस प्रकार अध्ययन के उद्देश्यों को अपना मार्गदर्शन मानते हुए उद्देश्य की पूर्ति के उपयुक्त निदर्शनों का विचारपूर्वक चुनाव करने के कारण ही इसे उद्देश्यपूर्ण अथवा सविचार निदर्शन करते हैं।

श्री एडोल्फ जेन्सन (Adolph Jenson) ने लिखा है, "सविचार निदर्शन से अर्थ है इकाइयों के समूहों की एक संख्या को इस प्रकार चुनना कि चुने हुए समूह मिलकर उन विशेषताओं के सम्बन्ध में यथासम्भव वही औसत अथवा अनुपात प्रदान करें जो कि समग्र में हैं और जिनकी सांख्यिकीय जानकारी पहले से ही है।"

सविचार निदर्शन के लक्षण (Characteristics of Purposive Sampling)

(1) अनुसन्धानकर्त्ता समग्र (Universe) की समस्त इकाइयों की विशेषता से परिचित हो ताकि उसे पहले से ही यह ज्ञान हो कि कौन सी इकाई के क्या गुण हैं और उसी आधार पर कौनसी इकाई के क्या गुण हैं और उसी आधार पर कौनसी इकाइयों को चुनने से अध्ययन के उद्देश्यों की प्राप्ति सरल हो सकेगी।

(2) सविचार निदर्शन मे निदर्शनो का चुनाव किसी विशिष्ट उद्देश्य को सामने रखकर ही किया जाता है। बहुधा सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस प्रकार के निदर्शन का लक्ष्य होता है।

(3) इस प्रणाली में चूँकि अनुसन्धानकर्त्ता अपनी इच्छानुकूल निदर्शनों का चुनाव करता है, इसलिये पक्षपात की सम्भावना भी अधिक होती है।

उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के गुण (Merits of Purposive Sampling): उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के निम्नलिखित गुणों का उल्लेख हम कर सकते हैं।

(क) यह कम खर्चीली है क्योंकि इनमें निदर्शन का आकार बहुत बड़ा नहीं होता है। इसकी मान्यता यह है कि यदि निदर्शनों का चुनाव पक्षपाता रहित होकर किया जाये तो अपेक्षाकृत छोटा निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण हो सकता है।

(ख) यह उन अनुसन्धानों मे अत्यन्त उपयोगी होती है जिनमें समग्र की कुछ इकाइयाँ विशेष रूप में महत्वपूर्ण होती हैं और इसीलिए उनका चुना जाना आवश्यक होता है। इस आवश्यकता की पूर्ति दैव निदर्शन से नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ, यदि रुहेलखण्ड डिविजन की शिक्षा संस्थाओं का अध्ययन करना है तो बरेली कॉलेज को निदर्शन में सम्मिलित करना आवश्यक है। पर यदि हम दैव निदर्शन-प्रणाली को अपना रहे हैं तो निदर्शन के चुनाव में बरेली कॉलिज का नाम आ भी सकता है और छुट भी सकता है। ऐसी दशा में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन-प्रणाली ही उपयोगी सिद्ध होती है।

उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के दोष (Demerits of Purposive Sampling): उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के गुणों की अपेक्षा दोषों की ओर ही विद्वानो ने हमारा ध्यान अधिक आकर्षित किया है। श्री पार्टन (Parten) ने लिखा है, "एक वर्ग के रूप में सांख्यिकी शास्त्रियों को उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के पक्ष में कुछ भी कहना नहीं है।"

प्रो. नेमैन (Neyman) ने तो इसको 'निरर्थक' बताया है। प्रो. स्नेडेकोर (Sendecor) ने इसके निम्नलिखित तीन दोषों का उल्लेख किया है :

(अ) उद्देश्यपूर्ण निदर्शन में यह आवश्यक है कि अनुसन्धानकर्त्ता को पहले से ही समग्र (Universe) का पूर्ण ज्ञान हो ताकि वह समझ सके कि किन इकाइयों को चुनने से अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव होगी। पर पहले से ही इस प्रकार का पूर्ण ज्ञान सम्भव नहीं होता।

(ब) इसमें अनुसन्धानकर्त्ता किसी भी इकाई को निदर्शन के रूप में चुनने के लिये स्वतन्त्र होता है और इस सम्बन्ध में उस पर कोई नियन्त्रण न होने के कारण पक्षपात तथा मिथ्या-झुकाव पूर्वग्रह (Bias) के प्रवेश की पूर्ण सम्भावना इसमें है।

(स) निदर्शन सम्बन्धी अशुद्धता का अनुमान जिन मान्यताओं पर किया जाता है उनमें से एक भी उद्देश्यपूर्ण निदर्शन में नहीं पाई जाती।

4. बहुतस्तरीय निदर्शन (Multistage Sampling)

किसी भी अनुसन्धान में जब अनुसन्धानकर्ता अध्ययन के लिए सरल दैव निदर्शन या स्तरीकृत दैव निदर्शन विधि का उपयोग करता है तब उसके सामने निम्नलिखित कठिनाइयाँ मुख्य तौर पर आती हैं:

(1) सर्वप्रथम यह आवश्यक होता है कि उसके पास समग्र की पूरी सूची पहले से ही मौजूद हो। स्तरीकृत दैव निदर्शन मे ंतो यह भी जरूरी होता है कि जिस लक्षण के आधार पर हम समग्र का विभाजन कर रहे हैं समग्र की सभी इकाइयों के बारे में उस लक्षण से सम्बन्धित जानकारी पहले से ही हमारे पास हो अन्यथा उनका विभाजन समूहों में वर्गीकरण नहीं किया जा सकेगा। सामाजिक अनुसन्धान में कभी-कभी ऐसे भी अवसर आते हैं जब जिन इकाइयों के बारे में हम अध्ययन करना चाहते हैं उनका सम्बन्धित समग्र की पूरी सूची उपलब्ध नहीं होती। ऐसी स्थिति में यदि हम पहले समग्र की सूची का निर्माण न करें और उसके लिए संगणना का कार्य, जो कि अपने आप में बहुत अधिक समय लेने वाला होता है, न करें तब इन दोनों में से किसी भी पद्धति का उपयोग नहीं किया जा सकता। सूची निर्माण का कार्य तब और अधि ाक कठिन हो जाता है जब हमारा अध्ययन क्षेत्र बहुत अधिक विस्त त हो। इसे एक सरल उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। यदि अनुसन्धानकर्ता घर में काम आने वाली नौकरानियों के बारे में कोई अध्ययन संचालित करना चाहे और उसके लिए सरल दैव निदर्शन या स्तरीकृत दैव निदर्शन लेना चाहे तो उसके लिए यह जरूरी होगा कि ऐसी नौकरानियों की एक सूची उसके पास हो। ऐसी सूची सामान्यतया उपलब्ध नहीं होती है। ऐसे में अनुसन्धानकर्ता के सामने एक ही विकल्प रहेगा कि प्रत्येक घर में जाकर यह पता लगाए कि उनके यहाँ कौन नौकरानी काम करती है और इस प्रकार नौकरानियों के समग्र की पूरी सूची तैयार करे। निश्चित रूप से यह कार्य अधिक समय लेगा जो कि अनुसन्धानकर्ता के पास नहीं होता है।

(2) जब कभी अनुसन्धानकर्ता सरल दैव निदर्शन या स्तरीकृत दैव निदर्शन का उपयोग करता है तो उसके सम्मुख एक कठिनाई यह आती है कि यदि अध्ययन क्षेत्र अधि ाक बड़ा हो तो चुनी गई इकाइयों की भौतिक दूरी अधिक होती है ऐसी स्थिति में किसी एक इकाई के न मिलने पर या उससे कार्य पूरा करने के बाद दूसरी इकाई से सम्पर्क स्थापित करने के लिए या तो अनुसन्धानकर्ता के पास यातायात के द्रुतगामी साधन सुलभ हों अथवा उसे काफी समय इधर से उधर जाने में व्यय करना पड़ेगा। ऐसी सुविधा प्रायः सामान्य अनुसन्धानकर्ता के पास नहीं होती है। इसी कारण वह ऐसा प्रयास करता है कि अध्ययन के लिए चुनी गई इकाइयों को एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित रखा जाए। इन दोनों ही स्थितियों में बहुस्तरीय निदर्शन एक उपयुक्त विकल्प है।

बहुस्तरीय निदर्शन में अनुसन्धानकर्ता सबसे पहले अध्ययन क्षेत्र को भौगोलिक आधार पर छोटे-छोटे क्षेत्रों में विभाजित करता है। ये क्षेत्र कितने होंगे तथा इनका आधार

क्या होगा, ये अध्ययन क्षेत्र के विस्तार और स्वरूप पर निर्भर करता है। यदि अनुसन्ध ानकर्ता को उदयपुर क्षेत्र में इस प्रकार के निदर्शन का चयन करना है तो वह उदयपुर शहर को नगरपालिका के उनतालीस बार्डों में विभाजित कर सकता है। इसी प्रकार विभाजन का कोई दूसरा आधार भी लिया जा सकता है। अध्ययन क्षेत्र को छोटे-छोटे भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित करने के बाद अनुसन्धानकर्ता उनमें से कुछ वार्डों का चयन रैण्डम विधि जैसे लॉटरी या दूसरी विधि के द्वारा करता है, जैसे यदि उसने अध्ययन क्षेत्र को 39 भागों में विभाजित किया है तो वह पहले 1 से 39 तक लॉटरी डाल देगा उसमें से 3 -4 या जिस भी संख्या में वह चाहे क्षेत्रों का चयन अपने अध ययन के लिए कर लेगा। उदाहरण के तौर पर लॉटरी निकालने पर 2, 7, 26 या 37 कार्ड निकले। उस स्थिति में अनुसन्धानकर्ता निदर्शन का चुनाव पूरे शहर की इकाइयों में से नहीं करेगा वरन् उसे उन्हीं क्षेत्रों तक सीमित रखेगा। उन क्षेत्रों का चयन करने के बाद अनुसन्धानकर्ता इन क्षेत्रों की इकाइयों की सूची प्राप्त करेगा। यदि सूचनी उपलब्ध नहीं है तो वह संगणना के द्वारा अध्ययन से सम्बन्धित इकाइयों की सूची का निर्माण करेगा। इस प्रकार तैयार की गई सूची में यदि इकाइयों की कुल संख्या इतनी हो कि उन सभी का उपलब्धन साधनों के द्वारा अध्ययन हो सकता हो तब तो वह उन सभी इकाइयों के तथ्यों का संकलन करेगा। इसके विपरीत यदि उसे ऐसा लगे कि इकाइयों की संख्या बहुत अधिक है तो इस प्रकार बनाई गई सूची में से वह सरल दैव निदर्शन के द्वारा इकाइयों का चयन करेगा। चूँकि इस पूरी प्रक्रिया में अनुसन्धानकर्ता एक से अधिक स्तरों पर निदर्शन पद्धति का उपयोग करता है तो इस कारण उसे बहुस्तरीय निदर्शन कहा जाता है।

5. गुच्छ निदर्शन

(Cluster Sampling)

यदि हम किसी समष्टि की बहुत से समूहों में बाँट लें और फिर इनमें से केवल कुछ समूहों का निदर्श लेकर उनके तत्वों का अध्ययन करें तो इसे गुच्छ निदर्शन कहते हैं। जैसे यदि किसी राज्य में 200 चुनाव क्षेत्र हों और हम इनमें से 10 का निदर्श ले लें और इसके मतदाताओं का अध्ययन करें तो यह गुच्छ निदर्शन होगा। इस प्रकार से सारे राज्य में नहीं घूमना पड़ेगा। अपने निदर्श में आए चुनाव क्षेत्रों के आधार पर हम सारे राज्य के विषय में आकलन कर सकेंगे। सामाजिक सर्वेक्षणों में इस प्रणाली का उपयोग मुख्यतया आधार-सामग्री-संग्रह के लिए यात्रा के व्यय को बचाने के उद्देश्य से होता है।

गुच्छों के निर्माण के विषय में निम्न तथ्य उल्लेखनीय हैं:

1. इकाइयों के एक संग्रह को गुच्छ के नाम से सम्बोधित किया जाए अथवा नहीं इस बात का निर्धारण विशिष्ट परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कहीं गुच्छ एक जनपद (जिला) के रूप में हो सकता है तथा कहीं यह एक मकान के रूप में हो सकता है।

2. गुच्छ आवश्यक रूप से एक प्राकृतिक संकलन नहीं होते। उदाहरण के लिए क्षेत्र निदर्शन के दौरान मानचित्र पर जाली रखते हुए कृत्रिम गुच्छों का निर्माण किया जाता है किन्तु प्रायः गुच्छ निदर्शन के दौरान समग्र के प्राकृतिक समूहों में प्रयोग किया जाता है।

3. किसी एक ही निदर्शन प्ररचना के अन्तर्गत गुच्छों के अनेक प्रकारों का प्रयोग किया जा सकता है उदाहरण के लिए राज्य के अन्तर्गत जिलों, जिलों के अन्तर्गत तहसीलों,

तहसीलों के अन्तर्गत ब्लाकों, ब्लाकों के अन्तर्गत गाँवों तथा गाँवों के अन्तर्गत परिवारों का प्रयोग गुच्छों के रूप में किया जा सकता है।

4. गुच्छ जितने बड़े होंगे, निदर्शन की लागत उतनी ही कम होगी। गुच्छ निदर्शन में यदि हम केवल एक बार निदर्शन करें तो उसे एक पद निदर्शन कहते हैं और यदि एक से अधिक बार करें तो उसे बहु-पद निदर्शन कहते हैं। जैसे यदि हमें किसी राज्य के मतदाताओं का अध्ययन करना हो और हम 10 चुनाव क्षेत्रों का दैव निदर्शन लेकर इन 10 चुनाव-क्षेत्रों के सभी मतदाताओं का अध्ययन करें तो यह एक पद निदर्शन होगा क्योंकि हमने केवल एक ही बार निदर्शन लिया है। किन्तु यदि हम (1) चुनाव-क्षेत्रों का दैव निदर्श ले लें, और फिर निदर्श में आए चुनाव-क्षेत्र में से, (2) गाँवों का दैव निदर्श ले लें, और फिर निदर्श में आए प्रत्येक गाँव में से (3) मतदाताओं का दैव निदर्श ले लें तो यह त्रि-पद निदर्शन होगा। यहाँ हमने तीन बार निदर्शन लिया है। प्रत्येक बार प्रायिकता निदर्शन होना चाहिए फिर चाहे वह दैव हो या व्यवस्थित।

गुच्छ निदर्शन में यह प्रयत्न किया जाता है कि गुच्छे यथासम्भव छोटे हों जिससे आने-जाने में व्यय कम हो। साथ ही यह भी प्रयत्न रहता है कि प्रत्येक गुच्छे के अन्दर अधिक से अधिक विषमता हो। जैसे विधान-सभा चुनाव-क्षेत्र, लोकसभा वाले क्षेत्रों से छोटे होंगे। मतदाताओं के साथ साक्षात्कार के लिए शोधकर्ता को अधिक यात्रा न करनी पड़े, इस द ष्टिकोण से विधान-सभा चुनाव-क्षेत्र अधिक उपयुक्त होंगे। किन्तु दूसरी आवश्यक बात यह है कि प्रत्येक गुच्छे के अन्दर अधिक से अधिक विषमता हो। यहाँ प्रत्येक चुनाव-क्षेत्र गाँवों का गुच्छा है। यदि विधान-सभा के चुनाव-क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के गाँव न आते हों तो लोक-सभा के चुनाव-क्षेत्रों का निदर्शन लेना अधिक उपयुक्त होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि निदर्शन के इन अवसरों में किस सीमा तक विरोध हो सकता है। यथासम्भव दोनों उद्देश्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है। जैसे यदि हमें लगे कि विधान-सभा के चुनाव-क्षेत्रों में सभी प्रकार के गाँव आ जाते हैं तो इनका प्रतिदर्श ले लेना ठीक होगा क्योंकि ये छोटे भी हैं और विषम भी। गुच्छ प्रतिचयन दैव निदर्शन से बहुधा सस्ता पड़ता है। उदाहरणार्थ, यदि हम सारे भारत में 2,000 मतदाताओं का निदर्श लेना चाहें और दैव निदर्श लें, तो सम्भव है, अकेले मध्यप्रदेश में 150 मतदाताओं से साक्षात्कार के लिए हमें सारे राज्य में घूमना पड़े। इसके विपरीत गुच्छ निदर्शन में हो सकता है कि हमें केवल इसके पाँच जिलों में जाना पड़े। यदि बहु-पद निदर्शन लिया जाए तो पूरे-पूरे जिलों में भी नहीं घूमना पड़ेगा, कुछ गाँवों में जाने से ही काम चल जाएगा।

गुच्छ निदर्शन के प्रमुख लाभ

1. विस्त त भौगोलिक क्षेत्र में फैले हुए समग्र का अध्ययन गुच्छ निदर्शन की सहायता से अधिक बचतपूर्ण ढंग से किया जा सकता है।
2. जहाँ समग्र के उप-समूहों के विषय से आगणन प्राप्त करना हो। उदाहरण के लिए गुच्छ निदर्शन का प्रयोग करते हुए अध्ययन करने पर प्रत्येक मकान में रहने वाले व्यक्तियों की औसत संख्या भी ज्ञात हो जाती है।
3. कुछ परिस्थितियों में गुच्छों का प्रयोग बार-बार किया जा सकता है जैसे कि पैनल अध्ययनों के अन्तर्गत जिसमें हम एक निश्चित अवधि में समग्र में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करना चाहते हैं।

4. निदर्शन ढाँचे के उपलब्ध न होने पर स्वयं सूची बनाने की आवश्यकता का अनुभव होता है और हमारी इस आवश्यकता की पूर्ति गुच्छ निदर्शन द्वारा सम्भव बनाई जाती है।
5. गुच्छ निदर्शन की कुशलता को बढ़ाने के लिए निम्न प्रकार के उपायों को अपनाया जा सकता है:
   (i) गुच्छों का स्तरीकरण,
   (ii) गुच्छों के आकार का कम किया जाना,
   (iii) उप-निदर्शन।

6. अभ्यंश निदर्शन
(Quota Sampling)

अभ्यंश निदर्शन या कोटा निदर्शन में यह प्रयास किया जाता है कि विभिन्न तत्व जिस अनुपात में समग्र में पाये जाते हैं उसी अनुपात में निदर्शन में भी आ जाए, किन्तु इकाइयों का चयन आकस्मिक ही होता है। दूसरे शब्दों में, अभ्यंश निदर्शन आकस्मिक निदर्शन का ही सुधारा हुआ रूप है। इसमें समग्र के मुख्य स्तरों का ध्यान रखा जाता है एवं यह प्रयास किया जाता है कि प्रत्येक स्तर का प्रतिनिधित्व निदर्शन में होगा यदि प्रत्येक स्तर का सदस्य अपने सही अनुपात में निदर्शन में न भी आ सके तो कम से कम यह होना चाहिए कि प्रत्येक स्तर के विषय में अनुमान लगाया जा सके।

इस पद्धति को भी वैज्ञानिक द ष्टिकोण से भी अधिक उपयुक्त नहीं माना जाता एवं इसके अन्तर्गत भी उत्तरदाताओं का चुनाव अनुसन्धानकर्ता स्वेच्छा से ही करता है। अभ्यंश निदर्शन का उपयोग करते समय अनुसन्धानकर्ता यह ध्यान में रखता है कि अध्ययन के द ष्टिकोण से किन-किन लक्षणों के आधार पर विभिन्न वर्गों में से इकाइयों का चुनाव करना अधिक उपयुक्त होगा। ऐसा करने के उपरान्त यह निश्चित कर दिया जाता है कि प्रत्येक वर्ग में से कितने उत्तरदाताओं से आँकड़ों को एकत्रित करना है इस संख्या को ही अभ्यंश या कोटा कहा जाता है। प्रत्येक वर्ग में से चयन की जाने वाली इकाइयों की संख्या तय करने के उपरान्त अनुसन्धानकर्ता इस बारे में पूर्णतः स्वतन्त्र होता है कि, 'वह इन वर्गों में किन इकाइयों का चयन अपने अध्ययन में करे। अपनी सुविधा के अनुसार या आकस्मिक विधि से इकाइयों को लेते हुए तथ्यों का संकलन करता है। यदि यह मान लें, हमें किसी विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की राजनीतिक जानकारी का अध्ययन करना है। हम सोचते हैं कि पुरुष विद्यार्थियों की जानकारी स्त्री विद्यार्थियों से अधिक है। इसलिए यदि दोनों अपने सही अनुपात में निदर्शन में आये तभी निदर्शन के माध्य से समग्र के माध्य का सही अनुमान लग सकेगा। इसके विपरीत यदि पुरुष अपने अनुपात से अधिक आ गयीं तो निदर्श का माध्य घट जाएगा। इसलिए हम यह प्रयत्न करते हैं कि निदर्श में उनका अनुपात लगभग वही हो जो समग्र में है। अब यदि हमें ज्ञात है कि कुछ विद्यार्थियों में पुरुषों की संख्या स्त्रियों से दुगुनी है तो हम साक्षात्कर्ता को यह निर्देश देते हैं कि उसे 90 विद्यार्थियों के साथ साक्षात्कार करना होता था। किन्तु अभ्यंश निदर्शन में उसे कोई सूची नहीं दी जाती। उसे जो भी विद्यार्थी मिलते जाते हैं उनसे वह साक्षात्कार करता जाता है, यहाँ तक कि उनकी संख्या निर्देश के अनुसार काफी हो जाए और उनमें पुरुषों और स्त्रियों का निर्दिष्ट अनुपात हो जाए। इस प्रकार इतने विद्यार्थी हमें मिल जाते हैं कि हम पुरुषों और स्त्रियों की अलग-अलग जानकारी का अनुमान लगा सकें, और साथ ही दोनों को मिलाकर कुल विद्यार्थियों की जानकारी का भी।

अभ्यंश निदर्शन के पक्ष में कई तर्क दिए जाते हैं। एक तो यह कि इसमें खर्च कम आता है क्योंकि पहले से चुने हुए उत्तरदाताओं को नहीं ढूँढना पड़ता। दूसरे इसके प्रबन्ध में आसानी होती है। प्रायिकता निदर्शन की कठिनाइयाँ नहीं उठानी पड़ती। साक्षात्कार के लिए बार-बार प्रयत्न नहीं करना पड़ता। तीसरे इसे शीघ्रतापूर्वक किया जा सकता है। इंग्लैंड में रेडियो के कार्यक्रमों के विषय में लोगों के मत जानने के लिए इसे प्रयुक्त किया गया है। इस प्रकार के सर्वेक्षण में प्रतिदिन 3,000 से अधिक लोगों से पिछले दिन के कार्यक्रमों के विषय में पूछा जाता है। यदि दूसरे ही दिन न पूछा जाए तो यह सम्भावना रहती है कि लोग इनमे विषय में भूल जाएँ। अभ्यंश निदर्शन से ही इतनी जल्दी इतने लोगों का निदर्शन और साक्षात्कार हो सकता है। चौथे, नियत मात्रात्मक निदर्शन के लिए समग्र सूची की आवश्यकता नहीं होती।

इन लाभों के होते हुए भी अभ्यंश निदर्शन आकस्मिक निदर्शन का एक सुधरा हुआ रूप ही है। यह पाया गया है कि साक्षात्कर्ता अपने मित्रों से अधिक साक्षात्कार करते हैं। मित्र बहुत-सी बातों (जैसे विचार, रुचि, आदि) में एक जैसे होते हैं और हो सकता है उनमें और दूसरे लोगों में काफी भेद हो। निदर्शन में अपने सही अनुपात से अधिक होने से उससे लगाए गए अनुमान पर काफी प्रभाव पड़ सकता है। इसी प्रकार साक्षात्कर्ता बहुधा यह प्रयत्न करता है कि मेले, तमाशे, आदि में जाकर बहुत-से लोगों से आसानी से साक्षात्कार कर लें। किन्तु यहाँ भी यह सम्भावना रहती है कि मेले-तमाशे में जाने वाले लोग न जाने वाले लोगों से काफी भिन्न हों। यदि साक्षात्कर्ता घरों पर जाता है तो वह भवन और लोगों के कपड़ों के रूप आदि से प्रभावित होकर कुछ को चुनाव में अधिमान दे सकता है। बहुधा पाया गया है कि नियत मात्रात्मक निदर्शन में अमीर, उच्चवर्गीय लोग अपने अनुपात से अधिक आ सकते हैं।

इन सब कठिनाइयों का निराकरण प्रायिकता निदर्शन द्वारा ही हो सकता है। किन्तु यदि शोधकर्ता को इन खतरों का ध्यान रहे तो अभ्यंश निदर्शन में भी वह इनके निराकरण के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील हो सकता है।

7. व्यवस्थित निदर्शन
(Systematic Sampling)

निदर्शन का एक और सरल ढंग है व्यवस्थित निदर्शन। इसमें दैव संख्याओं का उपयोग करने के स्थान पर समष्टि सूची में से नियमित अन्तराल के बाद सदस्यों को चुन लेते हैं। जैसे यदि 1,500 की समष्टि में से हमें 100 का निदर्श लेना हो तो हम समष्टि की सूची में से प्रत्येक पन्द्रहवें सदस्य को चुन लेते हैं। 1,500 को 100 से भाग देकर यह 15 का अन्तराल हमें मिल जाता है। यह आवश्यक है कि पहले तत्व का चयन दैव हो। पहली संख्या चुनने के लिए हम लॉटरी की पद्धति या दैव संख्याओं की तालिका का उपयोग कर सकते हैं। मान लें हमें पहली दैव संख्या 10 मिलती है। तब हमारे निदर्श में आने वाली संख्याएँ होंगी 10, 25, 40, 55, 70, 85 आदि। सूची के अन्त तक जाने पर हमें 100 संख्याएँ मिल जाएँगी। इन संख्याओं वाले सदस्य हमारे व्यवस्थित निदर्शन में माने जाएँगे।

व्यवस्थित निदर्शन का उपयोग सामाजिक शोध में बहुधा होता है। यदि समष्टि की सूची अत्यन्त लम्बी हो या हमें बड़ा निदर्श लेना हो तो व्यवस्थित निदर्शन से अधिक सरल होता है। उदाहरणार्थ, मान लें हमें किसी चुनाव क्षेत्र के 50,000 मतदाताओं में से 1,000 का निदर्श

लेना है। दैव संख्याओं द्वारा निदर्शन के लिए हमें पहले सारे मतदाताओं के आगे 1, 2, 3 आदि 50,000 तक संख्याएँ लिखनी होंगी, फिर उनमें से निदर्श में आई संख्याओं वाले सदस्यों को ढूँढ-ढूँढ कर निदर्शन हो सकेगा। इसके स्थान पर व्यवस्थित निदर्शन में हम एक दैव प्रारम्भ (जैसे ऊपर उदाहरण में दसवाँ व्यक्ति) से लेकर प्रत्येक पचासवें व्यक्ति को अपने निदर्श में रखते जाएँगे।

8. आकस्मिक निदर्शन (Accidental Sampling)

आकस्मिक निदर्शन, निदर्शन का वह प्रकार है जो प्रर्णरूप से मनमाने ढंग से किया जाता है अर्थात् यह पद्धति पूर्णतः अवैज्ञानिक है। यहाँ अनुसन्धानकर्त्ता अपनी इच्छानुसार निदर्शन सूची से आवश्यक संख्या में इकाइयों का चुनाव करता है। निदर्शन की इस प्ररचना में समय, धन एवं प्रयासों के व्यय में बचत तो अवश्य होती है किन्तु इसमें पूर्वाग्रह अधिक तथा सूक्ष्मता कम पाई जाती है। जहोदा ने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है कि यह एक ऐसी पद्धति है जिसमें तथ्यों का संकलन करने से पूर्व अनुसन्धानकर्ता इकाइयों का चयन नहीं करता है चरन् वह तथ्यों के संकलन के क्षेत्र के साथ अध्ययन क्षेत्र में पहुँच जाता है। अध्ययन क्षेत्र में अध्ययन विषय से सम्बन्धित जो भी इकाई उसे मिले वह उससे तथ्यों को प्राप्त करने का प्रयास कर लेता है। अन्यथा वह इस इकाई को छोड़कर दूसरी इकाई से तथ्यों का संकलन, करता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि आकस्मिक रूप से जो भी उत्तरदाता मिले और तथ्य प्रस्तुत करने की तैयार हो वह उसे अध्ययन का अंग बना लेता है तथा शेष की छोड़ता जाता है। इस प्रक्रिया को तब तक जारी रखता है जब तक कि एक पूर्ण निश्चित संख्या में उत्तरदाताओं से तथ्या प्राप्त नहीं हो जाते।

चूंकि इस पद्धति में उत्तरदाता का चयन पूर्ण रूप से अनुसन्धानकर्ता पर निर्भर करता है और इसमें भी वह केवल तथ्य प्रस्तुत करने को तैयार इकाइयों को ही सम्मिलित करता है अतः यह पद्धति विश्वसनीय प्रतिनिधि व वैज्ञानिक नहीं मानी जा सकती है। इसका अभिप्राय यह है कि जिन अध्ययनों के आधार पर साधारणीकरण, उपकल्पना का परीक्षण या वैज्ञानिक सिद्धान्तों का विकास या निर्माण करना हो उनमें वह पद्धति काम मे ली जा सकती है।

निदर्शन की प्रमुख समस्याएँ एवं उनके निदान (Main Problems of Sampling and their Solutions)

निदर्शन की अनेक समस्यायें अनुसंधान कार्य की सम्पादित करते समय उपस्थित होती हैं। उसमें से कुछ प्रमुख समस्याओं को निम्नांकित बिंदुओं में रखकर समझा जा सकता है :

1. **आकार की समस्या (Prblem of Size):** निदर्शन प्ररणाली में महत्तवपूर्ण समस्या निदर्शन के आकार की होती है। आकार का छोटे या बड़े होने का प्रत्यक्ष सम्बन्ध समय, धन, शुद्धता की मात्रा तथा संगठन से है। बड़े-बड़े निदर्शनों का संगठन कठिन होने के कारण के अध्ययन के उपयुक्त नहीं रहते। गुडे तथा हट्ट के शब्दों में, "एक निदर्शन को केवल प्रतिनिधिपूर्णा होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उसमें पर्याप्तता भी होनी चाहिए। एक निदर्शन उस समय पर्याप्त होता है जिसका आकार उसके लक्षणों की स्थिरता में विश्वास स्थापित करने के लिए पर्याप्त हो।"

   निदर्शन का आकार छोटा होना चाहिए अथवा बड़ा, यह निर्धारित करना बहुत कठिन कार्य है। छोटे आकार के पूर्ण प्रतिनिधित्व न होने की त्रुटि रहती है तथा बड़े आकार में भी

कई कठिनाइयाँ जैसे श्रम, पैसा व समय इत्यादि की हैं। निदर्शन को निर्धारित करमें में निम्नांकित तत्त्वों का प्रमुख प्रभाव पड़ता है —

(i) **समग्र की प्रकृति** (Nature of Universe): सजातीय इकाइयों वाले समग्र में थोड़े से निदर्शन से भी प्रतिनिधित्व पर्याप्त हो सकता है। विभिन्न इकाइयों वाले समग्र में बड़ा निदर्शन उपयुक्त रहता है।

(ii) **अध्ययन की प्रकृति** (Nature of Study): अध्ययन की प्रकृति के आधार पर ही निदर्शन का आकार निर्धारित करना होता है। अतः यदि इकाइयों के गहन अध्ययन की आवश्यकता अधिक समय के लिए न हो तो छोटे निदर्शन को अपनाना उपयुक्त होगा। यदि अध्ययन विस्त त हो तो निदर्शन बड़ा चुनना होगा।

(iii) **वर्गों की संख्या** (Number of Class): यदि समग्र में विभिन्न प्रकार के वर्गों का समावेश है, उनमें काफी विविधताएँ हैं तो स्वाभाविक रूप से ही निदर्शन का आकार बड़ा करना पड़ेगा। परन्तु यदि वर्गों की संख्या कम है और साथ में भी एकरूपता है तो छोटा निदर्शन उपयुक्त हो सकता है।

(iv) **उपलब्ध साधन व स्रोत** (Available Means and Sources): अनुसन्धानकर्ता के पास समय, धन, कार्यकर्ताओं, आवागमन के साधन व अन्य सामग्री पर्याप्त है तो बड़े निदर्शन का चुनाव किया जा सकता है लेकिन इसके विपरीत जितने साधन स्रोत कम होंगे, उस निदर्शन का आकार उसी अनुपात में छोटा होगा।

(v) **निदर्शन पद्धति** (Sampling Method): यदि दैव निदर्शन प्रणाजी का प्रयोग करना है तो निदर्शन का आकार बड़ा होना चाहिए जिससे अधिक संख्या में विभिन्न गुणों वाली इकाइयों के चुनाव का अवसर प्राप्त हो सके। सविचार या वर्गीय निदर्शन में कम इकाइयों का चुनाव भी पर्याप्त प्रतिनिधित्व कर सकता है।

(vi) **परिशुद्धता की मात्रा** (Degree of Accuracy): यद्यपि छोटे आकार के निदर्शन भी काफी विश्वसनीय तथा प्रतिनिधत्वपूर्ण हो सकते हैं, तथापि सामान्यतः बड़े निदर्शनों में परिशुद्धता की मात्रा अधिक होती है।

(vii) **चयनित इकाइयों की प्रकृति** (Nature of Selected Units): निदर्शन का आकार इकाइयों की प्रकृति पर बहुत कुछ निर्भर करता है। यदि इकाइयाँ अधिक हुई हैं तो उनसे सम्पर्क स्थापित करने में कठिनाई के अलावा समय व धन भी अधिक खर्च होते हैं। ऐसी स्थिति में यदि निदर्शन का आकार छोटा हो तो उत्तम रहेगा, इससे विपरीत अवस्था में निदर्शन का आकार बड़ा लेना चाहिए।

(viii) **अध्ययन के उपकरण** (Techniques of Study): यदि प्रत्येक के घर जाकर अनुसुचियाँ तैयार करनी हैं तो छोटा निदर्शन उपयुक्त रहेगा और यदि डाक द्वारा की प्रश्नावलियाँ भेजनी हैं तो बड़ा निदर्शन भी उपयुक्त होगा। प्रश्नों की संख्या, आकार तथा उनकी प्रकृति पर भी निदर्शन का आकार निर्भर करता है। यदि प्रश्न छोटे, संख्या में कम व सरल हैं तो बड़ा निदर्शक उपयुक्त रहता है अन्यथा छोटे निदर्शन अपनाना चाहिए।

उपयुक्त कारकों के अध्ययन से पता चलता है कि निदर्शन के आकार के सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम व सिद्धान्त नहीं है बल्कि परिस्थितियाँ ही उसके आकार को निर्धारित करती हैं। सभी प्रभावशाली कारकों के सम्बन्ध में सावधानी बरती

जानी चाहिए। पार्टेन के मतानुसार, "आवश्यक खर्चे से बचने के लिए निदर्शन की काफी छोटा और असहनीय अशुद्धि से बचने के लिए उसे पर्याप्त बड़ा होना चाहिए।"

2. **अभिनति का पक्षपातपूर्ण निदर्शन की समस्या** **(Prblem of Biseness in Sampling):** निदर्शन के चुनाव पर पक्षपात का प्रभाव पड़ने से निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो सकता, ऐसे निदर्शन को अभिनति या पक्षपातपूर्ण निदर्शन की संज्ञा दी जाती है। निदर्शन में अभिनति निम्नलिखित कारणों से उत्पन्न हो सकती है :

   (i) **आकार छोटा होने से** **(The size of Being Small):** निदर्शन का आकार छोटा होने के कारण बहुत-सी इकाइयों को चुने जाने का अवसर नहीं मिलता है। ऐसी अनेक महत्त्वपूर्ण इकाइयाँ हो सकती हैं जिन्हें सम्मिलित नहीं किया गया है, ऐसी स्थिति में निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो पाता।

   (ii) **उद्देश्यपूर्ण निदर्शन** **(Purposive Sampling):** सविचार या उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रणाली में अनुसन्धानकर्ता को निदर्शनों के चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। फलतः पक्षपात का प्रवेश सरल हो जाता है। दूसरी स्थिति यह भी है कि अनुसन्धानकर्ता जिन इकाइयों से सम्पर्क स्थापित करने में कठिनाई महसूस करता है, उनको छोड़ देता और वह केवल उन्हीं को निदर्शन में स्थान देता है जो कठिन व सुविधाजनक ने हों परन्तु ऐसी स्थिति में भी निदर्शन निष्पक्ष नहीं हो पाता है।

   (iii) **दोषपूर्ण वर्गीकरण** **(Defective Classification):** वर्गीय निदर्शन विधि के अन्तर्गत दोषपूर्ण वर्गीकरण निदर्शन को अभिनति या पक्षपातपूर्ण बना देता है। यदि वर्ग अस्पष्ट व असमान होगे तो निदर्शन पक्षपातपूर्ण हो जाएगा। इसी प्रकार यदि वर्ग में असमान संख्या में इकाइयाँ हैं और उन्हें निदर्शन में समान रूप में भारयुक्त भी हो जायेगा। इकाइयों को गलत वर्ग में रखने से चुनाव भी अनुचित रूप से होता है।

   (iv) **अपूर्ण स्रोत सूची** **(Incomplete Source List):** यदि साधन सूची अधूरी, पूरानी या अनुपयुक्त है तो स्वभावतः निदर्शन की चुनाव अनुसंधान कर्ता की इच्छानुसार होगा। इससे निदर्शन अभिनतिपूर्ण हो जाता है।

   (v) **कार्यकर्ताओ द्वारा चयन** **(Selection by workers):** जब इकाइयों के चयन की अनुमति कार्यकर्ताओं को दी जाती है उनकी लापरवाही के कारण चयन में पक्षपात प्रवेश कर जाता है। यदि इकाइयों में एकरूपता पाई जाती है तो इसकी सम्भावना कम रहती है अन्यथा निदर्शन अभिनतिपूर्ण होगा क्योंकि इकाइयों का चुनाव कार्यकर्ताओं ने अपनी इच्छानुसार किया है।

   (vi) **सुविधानुसार निदर्शन** **(Sampling by convenience):** इसके अन्तर्गत अनुसन्धानकर्ता को पूर्ण छूट रहती है कि वह सुविधानुसार निदर्शनों का चुनाव कर सकता है, ऐसी स्थिति में निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं हो पाता और उसमें पक्षपात का प्रवेश होना स्वाभाविक हो जाता है।

   (vii) **दोषपूर्ण दैव निदर्शन** **(Defective Random Sampling):** यद्यपि इस पद्धति के अन्तर्गत प्रत्येक इकाई को चुने जाने के समान अवसर प्राप्त होते हैं, लेकिन त्रुटिपूर्ण ढंग से इस पद्धति को प्रयोग में लाने से 'मिथ्या-झुकाव' का प्रवेश अनजाने में ही हो जाता है। यदि गोलियों को बनाने में असावधानी बरती गई तो गोलियाँ छोटी-बड़ी हो सकती हैं, क्योंकि बड़ी गोली हाथ में जल्दी आती है। इसी प्रकार पर्चियों को अच्छी तरह

हिलाकर या घुमाकर नहीं मिलाया गया तो ऊपर की पर्ची आ सकती है तो सबका प्रतिनिधित्व नहीं करती है।

3. **विश्वसनीयता-परीक्षण की समस्या** (Problem of Testing Reliability): यदि निदर्शन में किसी तरह पूर्वाग्रह या मिथ्या-झुकाव जाने की शंका हो तो उसक परीक्षण किया जा सकता है। इसके तीन तरीके हैं –

   (i) समानान्तर निदर्शन,

   (ii) समग्र से तुलना, तथा

   (iii) निदर्शन का निदर्शन।

   (i) **समानान्तर निदर्शन** (Parallel Sampling): इसका अर्थ यह है कि उसी समग्र से उसी आकार का किन्तु किसी दूसरी प्रणाली से निदर्शन ले लिया जाये तथा उसकी मूल निदर्शन से तुलना की जाये। यह तुलना साँख्यिकीय रीतियों से की जाती है। यदि इसमें बहुत अधिक अन्तर आ जाता है तो मूल निदर्शन को दोषयुक्त मानकर रद्द कर देना चाहिए।

   (ii) **समग्र से तुलना** (Comparision from Universe): कई बार स्वयं शोधकर्त्ता को समग्र के बारे में बहुत कुछ मालूम होता है। वह अपने पूर्व-ज्ञान या अनुभव के आधार पर निदर्शन की तुलना करके अपना निर्णय दे सकता है। पर्याप्त समानता होने पर उसे "कार्यकर" निदर्शन माना जा सकता है।

   (iii) **निदर्शन का निदर्शन** (Sampling from Sampling): इसमें मूल निदर्शन में से कुछ इकाइयों का चयन दैव-निदर्शन से कर लिया जाता है। इस निदर्शन को समग्र से लिये हुए मूल निदर्शन के साथ तुलना की जाती है। मूल निदर्शन से उप-निदर्शन की तुलना करके देख लिया जाता है कि वह कहाँ तक विश्वसनीय है।

4. **सामाजिक-राजनीतिक मानकों के अध्ययन की समस्या** (Problem of Studing Socio-political Norms): अनेक राजनीतिक विषयों एवं समस्याओं की तरह निदर्शन-पद्धति से सामाजिक एवं राजनीतिक मानकों का भी अध्ययन नहीं किया जा सकता। जिन इकाइयों को निदर्शन में शामिल किया जाता है वे अपने संकुचित क्षेत्र, व्यवहार एवं कार्य को ही समझती हैं। समस्त संगठन या व्यवस्था के उद्देश्यों, लक्ष्यों या नैतिक मानकों के विषय में उनका ज्ञान बहुत सीमित होता है। यही बात बड़े समूहों, नौकरशाही संगठनों आदि पर भी लागू होती है। पीटर ब्लाउ, डाल्टन गोल्डनर आदि ने संगठनों का अध्ययन करने में सम्भावना निदर्शनों का प्रयोग नहीं किया है। इसका एक कारण, सोबर्ज एवं नैट के अनुसार यह हो सकता है कि वे सभी संगठन प्रायः अलोकतन्त्रात्मक ढंग से गठित होते तथा काम करते हैं। विभिन्न स्तर पर ज्ञान, अधिकार, दायित्व आदि असमान ढंग से बिखरे होते हैं। केवल शीर्षस्थ व्यक्ति या नेता ही संगठनों को समग्र द ष्टिकोण से देख पाते हैं। अन्य लोगों के लिए निष्पक्ष होकर तथा मानकीय द ष्टि से समग्र संगठन को देखना कठिन होता है। यह कार्य केवल महत्त्वपूर्ण एवं केन्द्रीय व्यक्तियों को सूचनादाता बनाकर ही किया जा सकता है। ऐसे महत्वपूर्ण व्यक्तियों का पता निदर्शन से नहीं लगाया जा सकता है। सम्भवतः इस कार्य में उस क्षेत्र के अनुभवी, प्रतिष्ठित तथा निष्पक्ष लोगों के एक निर्णायक-मण्डल से सहायता ली जा सकती है, यद्यपि ये लोग भी यथास्थितिवादी होंगे तथा परिवर्तन से दूर रहना चाहेंगे।

ऐसी समस्याओं की समाधान अन्य प्रविधियों की अपनाकर किया जाना चाहिए। पूर्व अध्यायों

में शोध-प्रक्रिया के अन्तर्गत सामान्य प्रविधियों का विवेचन किया गया था। उन्हें अपेक्षाकृत सीमित क्षेत्र में लागू करने के लिए निदर्शन-प्रणाली को अपनाया जाता है। किन्तु राजनीतिक के तथ्य इतने समरूप, सरल, मूर्त अथवा बोधगम्य नहीं हैं कि इन पद्धतियों एवं प्रविधियों मात्र से ही समझ लिये जाएँ। अनेक राजनीतिक तथ्यों, इकाइयों आदि का गहन अध्ययन करना आवश्यक होता है।

उपर्युक्त दशाओं में यह आवश्यक हो जाता है कि कुछ विशेष प्रयत्नों के द्वारा निदर्शन की विश्वसनीयता की जाँच अवश्य की जाए। इसके लिए विभिन्न विद्वानों ने अनेक उपायों का उल्लेख किया है जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण उपायों को निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है :

(i) **समानान्तर निदर्शन (Parallel Sampling):** प्राप्त निदर्शन कहाँ तक विश्वसनीय है, उसकी परीक्षा करने के लिए एक समानान्तर उप-निदर्शन को प्राप्त करना अक्सर बहुत उपयोगी होता है। यदि समानान्तर निदर्शन के अन्तर्गत आने वाली इकाइयों की विशेषताएँ मुख्य निदर्शन से सम्बन्धित इकाइयों की विशेषताओं से मिलती-जुलती होती हैं तो निदर्शन को विश्वसनीय माना जा सकता है।

(ii) **समग्र से तुलना (Comparision from Universe):** समग्र को विभिन्न इकाइयों की सूची बनाते समय अध्ययनकर्ता समग्र की अनेक विशेषताओं को ज्ञात कर लेना है। उदाहरण के लिए, समग्र में स्त्री-पुरुषों का अनुपात व्यावसायिक स्वरूप जाति विभाजन तथा परिवार का स्वरूप आदि इसी प्रकार की कुछ प्रमुख विशेषतायें हैं। किसी भी विधि से प्राप्त निदर्शन से सम्बन्धित इकाइयाँ यदि अवलोकन पर आधारित विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करती हैं तो निदर्शन को विश्वसनीय माना जा सकता है।

(iii) **परिणामों की तुलना (Comparision of Results):** अध्ययन से सम्बन्धित विषय यदि इस प्रकार का है कि उसके किसी अन्य पक्ष का अध्ययन पहले भी किया जा चुका हो तो उसके परिणामों की वर्तमान निदर्शन से प्राप्त परिणामों से तुलना करने पर भी यह ज्ञात किया जा सकता है कि निदर्शन किस सीमा तक विश्वसनीय है। यह विधि यद्यपि अधिक उपयोगी नहीं होती लेकिन तो भी कुछ विशेष परिस्थितियों में इसका उपयोग अवश्य किया जा सकता है।

(iv) **महत्त्व की परीक्षण (Test of Significance):** निदर्शन की विश्वसनीयता की जाँच करने के लिये एक तरीका सबसे कम वैज्ञानिक होते हुए भी व्यावहारिक जीवन में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। निदर्शन के उपयोग द्वारा प्राप्त सूचनाओं का जब प्रथम स्तर पर प्रमापीकरण किया जाता है, उस समय अध्ययनकर्ता तनिक सी अर्न्तद ष्टि द्वारा यह ज्ञात कर सकता है कि प्राप्त सूचनायें किस सीमा तक उपयोगी हैं। इस प्रकार यदि प्राप्त सूचनायें अवलोकन के आधार पर भी सही प्रतीत होती हैं तो निदर्शन की विश्वसनीयता स्पष्ट हो जाती है।

निदर्शन के चयन तथा इसके प्रयोग में चाहे किसी भी प्रविधि का उपयोग किया जाय, अध्ययनकर्ता ने वैयक्तिक गुणों के बिना निदर्शन को न तो विश्वसनीय बनाया जा सकता है और न ही इसके द्वारा यथार्थ सूचनाओं को प्राप्त किया जा सकता है। अनुसंधानकर्ता की बौद्धिक ईमानदारी, अध्ययन-विषय का समुचित ज्ञान; समग्र की जानकारी तथा प्रविधियों के उपयोग के प्रति वैज्ञानिक द ष्टिकोण आदि वे विशेषतायें हैं जिनके आधार पर ही निदर्शन को सामाजिक सर्वेक्षण तथा अनुसंधान की एक महत्त्वपूर्ण विधि से रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

UNIT - III

अध्याय - 6
आँकड़ों का संकलन
(Data Collection)

किसी भी शोध कार्य की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि अनुसन्धानकर्त्ता ने अपनी विषयवस्तु के सम्बन्ध में कितनी वास्तविक एवं विश्वसनीय सूचनाओं एवं तथ्यों को एकत्रित किया हैं यह सफलता बहुत कुछ सूचना प्राप्त करने के स्रोतों की विश्वसनीयता पर भी निर्भर करती है। ये सूचनाएँ एवं तथ्य कई प्रकार के हो सकते हैं। शोधकर्त्ता को सूचनाओं के स्रोत तथा उनके प्रकार की भली प्रकार जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। किस स्रोत से किस प्रकार की सूचना उसे प्राप्त हो सकती है, इस बात की स्पष्ट जानकारी न होने पर अनुसन्धानकर्त्ता केवल इधर-उधर भटकता ही रहेगा और उसका काफी समय तथा श्रम व्यर्थ चला जाएगा। इसके साथ ही शोधकर्त्ता को आँकड़ों के स्रोतों की विश्वसनीयता का ज्ञान भी होना चाहिए। अतः शोधकर्त्ता को सूचना या तथ्यों के प्रकार और स्रोतों के बारे में पूरी जानकारी होना अति आवश्यक है।

आँकड़ों के संकलन का महत्व
(Importance of Data Collection):

शोध कार्य के आँकड़ों के संकलन का महत्व निम्नांकित बिन्दुओं से समझा जा सकता है।

(1) **अनुसन्धान का आधार** (Base of Research)**:** किसी भी सामाजिक अनुसन्धान का वास्तविक प्रारम्भ आँकड़ों के संकलन से ही आरम्भ होता है। संकलित सामग्री या आँकड़ों का वर्गीकरण और व्याख्या करने से ही महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किए जा सकते हैं। जब कहीं भी किन्हीं तथ्यों की परीक्षा अथवा पुर्नपरीक्षा करने की आवश्यकता महसूस की जाती है, तो पुनः नये आँकड़ों को संकलित करना आवश्यक हो जाता है। इसका तात्पर्य है कि कार्य प्रारम्भ करने से लेकर अन्त तक प्रत्येक स्तर पर किसी न किसी रूप में सामग्री या आँकड़ों की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है और इन्हीं आँकड़ों के द्वारा विषय से सम्बन्धित प्रव त्तियों को ज्ञात किया जाता है।

(2) **कार्य-कारण सम्बन्ध की खोज** (Discovery of Cause and Effect)**:** सामाजिक अनुसन्धान के अन्तर्गत-संकलन की एक महत्त्वपूर्ण उपयोगिता यह है कि संकलित तथ्यों या आँकड़ों के द्वारा ही किसी समस्या अथवा घटना के कारणों और परिणामों को ज्ञात किया जा सकता है। यह एक निश्चित तथ्य है कि प्रत्येक समस्या अथवा घटना का कोई न कोई कारण अवश्य होता है जिसे अनुसन्धानकर्त्ता एकत्रित आँकड़ों की सहायता से ही समझ सकता है।

(3) **यथार्थ का बोध** (Perception of Reality)**:** आँकड़ों के संकलन के लिए अनुसन्धानकर्त्ता

को अध्ययन-समूह अथवा समुदाय के सामान्य जन-जीवन में प्रवेश करना पड़ता है। अतएव यह जीवन की साधारण तथा विशेष दशाओं में उनके स्वाभाविक अथवा वास्तविक रूप से परिचित हो जाता है। उसे आँकड़ों के संकलन के दौरान ही समुदाय के जीवन का सही बोध होने लगता है।

(4) **समस्या के निदान में सहायक** (Helpful in Problem Solving): संकलित आँकड़े केवल विभिन्न घटनाओं के बीच कार्य-कारण के सम्बन्ध को स्पष्ट करने में ही सहायक नहीं होते बल्कि इसके आधार पर समस्याओं का समाधान करना भी सम्भव हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि आँकड़ों के संकलन द्वारा यह ज्ञात हो जाये कि छात्र-असन्तोष का मुख्य कारण 'शिक्षा प्रणाली के दोष' और 'शिक्षा के प्रति नियोजनकर्त्ताओं की उदासीनता' है तो सरलता से उन तरीकों को ढूँढा जा सकता है जिनके द्वारा इस समस्या का समाधान हो सकता हैं इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी समस्या के वास्तविक कारण की खोज कर लेने से उसके समाधान का सबसे महत्त्वपूर्ण आधार भी ज्ञात किया जा सकता है।

(5) **तुलनात्मक अध्ययनों में सहायक** (Helpful in Comparative Studies): संकलन द्वारा विभिन्न घटनाओं तथा अनेक तथ्यों की जानकारी हो जाने पर उनमें परस्पर तुलना भी की जा सकती है। एक ही समय की अनेक परिस्थितियों के अन्तर्गत भी विभिन्न तथ्यों की तुलना की जा सकती है अथवा समयानुसार एक ही समूह की दशाओं में भी तुलना करना सम्भव हो सकता है।

(6) **परिवर्तन के अध्ययन में सहायक** (Helpful in the Study of Change): एक ही क्षेत्र में समय-समय पर तथा एक ही समय पर विभिन्न क्षेत्रों में आँकड़ों का संकलन करने से सामयिक परिवर्तनों एवं उनकी प्रकृति का ज्ञान हो जाता है। उदाहरणार्थ, अनेक समाजों से परिवार-संरचना में भिन्नता तथा विभिन्न पीढ़ियों में भारतीय संयुक्त परिवार में परिवर्तन, आँकड़ों के संकलन मात्र से ही ज्ञात होने लगते हैं।

(7) **प्रशासन में महत्त्व** (Importance in Administration): अनेक आँकड़ों की जानकारी, जो सर्वप्रथम संकलन के ही दौरान प्राप्त होती है, विभिन्न सामाजिक, विशेषकर विघटनकारी, समस्याओं को दूर करने में सरकारी प्रशासन को सहायक सिद्ध होती है। अधिकाँशतः, सरकारी स्तर पर, पुलिस, न्यायालयों, जेलों, अस्पतालों, विद्यालयों तथा स्वास्थ्य और स्थानीय प्रशासन विभागों द्वारा ये सूचनाएँ संकलित की जाती हैं।

(8) **नियोजन में आवश्यक** (Essential in Planning): देश का सम्पूर्ण कार्यक्रम प्रारम्भिक छानबीन, सर्वेक्षणों द्वारा प्रस्तुत प्राथमिक सूचनाओं पर आधारित होता है। राष्ट्रीय योजना आयोग स्वयं ही किसी भी परियोजना को लागू करने से पूर्व, सम्बन्धित समस्या के विषय में अनेक आँकड़ों या सूचनाओं द्वारा जानकारी प्राप्त कर लेने में रुचि रखता है और तदनुसार ही विकास कार्यों की रूपरेखा बनाता है।

डॉ. सुरेन्द्र सिंह ने आँकड़ों के संग्रह के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण विचारणीय बातों का उल्लेख किया है। आँकड़ों को उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण बनाने की दिशा में इन बातों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में आँकड़े तभी उपयोगी हो सकते हैं जब हम निम्नांकित बातों का ध्यान रखें-

1. आँकड़ों को उचित एवं संक्षिप्त होना चाहिए।

2. आँकड़े विश्वसनीय होने चाहिए।
3. आँकड़ों को अर्थपूर्ण एवं उपयुक्त होना चाहिए।
4. इस बात का प्रयास किया जाना चाहिए कि वस्तु स्थिति तथा पर्यवेक्षित अथवा परिमापित स्थिति के बीच अन्तर कम से कम हो। इस प्रकार के अन्तर के अनेक स्रोत हैं और इन सभी स्रोतों पर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए।
5. आँकड़ा-संग्रह की योजना लचीली होनी चाहिए तथा इसके अन्तर्गत अनदेखी परिस्थितियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए समुचित परिवर्तन करने की गुंजाइश होनी चाहिए।
6. आँकड़ा-संग्रह की योजना को स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल होना चाहिए।
7. योजना अधिक विस्त त, जटिल एवं महत्त्वाकांक्षी न होकर सूक्ष्म, सरल एवं प्रायोगिक होनी चाहिए।
8. सम्भावित परिणामों की आशा पहले से ही कर ली जानी चाहिए और आँकड़ा-संग्रह योजना का निर्माण इसी द ष्टि से किया जाना चाहिए।
9. धन, कर्मचारियों एवं समय सम्बन्धी सीमाओं को ध्यान में रखते हुए ही योजना का निर्माण किया जाना चाहिए।
10. प्रयासों की पुनराव त्ति तथा अन्य अनावश्यक बर्बादी को यथासम्भव नियन्त्रित किया जाना चाहिए।
11. सूचना एकत्रित करने का समय उत्तरदाताओं के लिए सुविधाजनक होना चाहिए।
12. आँकड़ा-संग्रह की कार्य-रीति का पूर्व-परीक्षण किया जाना चाहिए, ताकि त्रुटियों के विभिन्न स्रोतों एवं प्रायोगिकता की समस्याओं का पता चल सके और इन्हें दूर किया जा सके।
13. सौहार्द्र पूर्ण जनसम्बन्धों की स्थापना करने की दशा में सभी सम्भव प्रयास किए जाने चाहिए क्योंकि इसके कारण अध्ययन की लागत कम हो सकती है और अधिक अच्छे प्रतिदान प्राप्त हो सकते हैं।
14. अनुसन्धान उपकरण प्रायोगिक, स्पष्ट, आवश्यक निर्देशों से युक्त तथा आकर्षक होने चाहिए।
15. यदि उत्तरदाताओं द्वारा प्रदान की जाने वाली सूचना की प्रकृति ऐसी है कि इससे किसी भी स्तर पर किसी भी प्रकार से उन्हें क्षति पहुँच सकती हो तो अनामता की दिशा में प्रयास किए जाने चाहिए किन्तु अनामता की सबसे बड़ी कमी यह है कि बाद में पुनः अध्ययन की आवश्यकता पड़ी तो ऐसा करना असम्भव होता।
16. अनुसन्धान उपकरणों के अन्तर्गत प्रयोग में लाये जाने वाले शब्द एवं वाक्यांश सरलतापूर्वक बोधगम्य किन्तु राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डों एवं अनुशंसयों के अनुकूल होने चाहिए।
17. उत्तरदाताओं को सूचना प्रदान करने तथा साक्षात्कारकर्त्ताओं एवं पर्यवेक्षकों की सूचना एकत्रित करने के सम्बन्ध में स्पष्ट एवं विस्त त निर्देश प्रदान किए जाने चाहिए।
18. संसाधन क्षमता को बढ़ाने के लिए रूपरेखा इस प्रकार निर्धारित की जानी चाहिए कि इसके अन्तर्गत संकेतीकरण एवं छिद्रण की समुचित व्यवस्था हो।

19. आँकड़ों के प्रभावपूर्ण संग्रह के लिए सम्बन्धित कर्मचारियों के समुचित चुनाव एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। उनके कार्य के गुणात्मक एवं परिमाणात्मक नियन्त्रण की समुचित व्यवस्था भी आवश्यक है।
20. कर्मचारियों को अपने परिचय-पत्र साथ ले जाने चाहिए।
21. संग्रहीत सूचना को प्रतिवेदन के अन्तर्गत इस प्रकार प्रयोग में लाया जाना चाहिए कि उत्तरदाताओं का परिचय प्राप्त न हो सके।

आँकड़ों या सूचना के स्वरूप अथवा प्रकार (Forms or Types of Data or Informations):

आँकड़ों के सामान्य विवेचना के बाद अब हम आँकड़ों के स्वरूप अथवा प्रकार की विवेचना करेंगे। किसी भी अनुसन्धान के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि आँकड़ों के कितने स्वरूप हैं अथवा वे कितने प्रकार हैं एवं कैसे हैं? अनुसन्धानकर्त्ता को अपने अनुसन्धान कार्य का प्रारम्भ करने से पहले इस बात की पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए कि वह किस प्रकार के आँकड़ों का प्रयोग अपने अनुसन्धान के दौरान करने। सामान्यतः आँकड़ों के दो प्रकारों का उल्लेख दो आधारों पर किया जाता है -

(1) प्रकृति के आधार पर (On the Basis of Nasture).
(2) मौलिकता के आधार पर (On the Basis of Originality).

प्रकृति के आधार पर आँकड़ों को पुनः दो भागों में विभाजित किया जाता है -

(1) गणनात्मक आँकड़े (Quantitative Datas).
(2) गुणात्मक आँकड़े (Qualitative Datas).

(1) **गणनात्मक आँकड़े** सामान्यतः उन्हें कहा जाता है जिसमें तथ्य की प्रकृति संख्यात्मक होती है, और जो गणना के योग्य हों, जैसे - 1, 2, 10000, 1274 आदि।

(2) **गुणात्मक आँकड़े** उन्हें कहा जाता है जो विश्लेषणात्मक एवं गुण सम्बन्धी पक्ष से सम्बन्धित हों। यह तथ्य किसी विशेषता को स्पष्ट करता है।

मौलिकता के आधार पर भी आँकड़ों को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया जाता है। आँकड़ों के प्रकारों या स्वरूपों का यह विभाजन सामाजिक विज्ञानों से अधिक मान्य है -

(1) प्राथमिक आँकड़े (Primary Datas),
(2) द्वितीयक आँकड़े (Secondary Datas).

प्राथमिक तथ्य या सूचनाएँ (Primary Data of Information):

प्राथमिक तथ्य वे मौलिक सूचनाएँ या आँकड़े होते हैं जो कि एक अनुसन्धानकर्त्ता वास्तविक अध्ययन-स्थल (Field) में जाकर विषय या समस्या से सम्बन्धित जीवित व्यक्तियों से साक्षात्कार (Interview) करके अथवा अनुसूची या/और प्रश्नावली की सहायता से एकत्रित करता है अथवा प्रत्यक्ष निरीक्षण के द्वारा प्राप्त करता है। प्राथमिक तथ्य प्राथमिक इस अर्थ में होते हैं कि उन्हें अनुसन्धानकर्त्ता अपने अध्ययन-उपकरणों की सहायता से प्रथम बार एकत्रित करता है अथवा

निरीक्षण करता है। इस अर्थ में हम कह सकते हैं कि प्राथमिक तथ्यों को एकत्रित करने के दो प्रमुख स्रोत (Source) हो सकते हैं - **एक** तो जीवित व्यक्तियों से और **दूसरा** प्रत्यक्ष निरीक्षण के द्वारा। **प्रथम स्रोत** के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं जो कि अध्ययन विषय या समस्या के सम्बन्ध में ज्ञान रखते हैं अथवा दीर्घ समय से उसके घनिष्ठ सम्पर्क में हैं। श्री पामर (Palmer) के अनुसार ऐसे व्यक्ति न केवल एक विषय की विद्यमान अवस्थाओं को बताने की योग्यता रखते हैं अपितु एक सामाजिक प्रक्रिया में अन्तर्निहित महत्वपूर्ण चरण व निरीक्षण योग्य झुकावों (trends) के सम्बन्ध में भी संकेत कर सकते हैं। यदि इन व्यक्तियों के चुनाव में सावधानी बरती जाए और विभिन्न पेशों व व्यापारी में लगे व्यक्तियों, उस क्षेत्र के पुराने निवासियों, सामुदायिक नेताओं आदि से सूचनाएँ एकत्रित की जाएँ तो वे अध्ययन-कार्य के महत्वपूर्ण अंग बन सकते हैं।

प्राथमिक तथ्यों का **दूसरा स्रोत** प्रत्यक्ष निरीक्षण है। इस प्रकार के निरीक्षणों के द्वारा एक समुदाय या समूह के जीवन सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों को एकत्रित किया जा सकता है यदि निरीक्षण के दौरान अनुसन्धानकर्त्ता ने पक्षपात या मिथ्या-झुकाव (Bias) का कोई चश्मा न पहन रखा हो। व्यक्ति के व्यवहार सम्बन्धी तथ्यों को एकत्रित करने के लिए प्रत्यक्ष निरीक्षण एक अति उत्तम स्रोत है। सहभागी निरीक्षण के द्वारा तो सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित अति आन्तरिक व गुप्त बातों को भी जाना जा सकता है। इस स्रोतों के विषय में हम आगे विस्तारपूर्वक विवेचना करेंगे।

द्वितीयक तथ्य
(Secondary Data):

द्वितीयक तथ्य वे सूचनाएँ और/अथवा आँकड़े हैं जो अनुसन्धानकर्त्ता को प्रकाशित व अप्रकाशित प्रलेखों (Ducuments), रिपोर्ट, सांख्यिकी (Statistics), पाण्डुलिपि, पत्र-डायरी आदि से प्राप्त होते हैं। द्वितीयक तथ्यों की उल्लेखनीय विशेषता यह होती है कि ये तथ्य, सूचनाएँ या आँकड़े स्वयं अनुसन्धानकर्त्ता अपने कार्य में उपयोग करने के लिए एकत्रित कर लेता है। द्वितीयक तथ्यों के भी दो प्रमुख स्रोत होते हैं - एक तो व्यक्तिगत प्रलेख (Personal Documents) जैसे आत्मकथा, डायरी, पत्र आदि और दूसरा सार्वजनिक प्रलेख (Public Documents) जैसे रिकार्ड, पुस्तकें, जनगणना रिपोर्ट विशिष्ट कमेटियों की रिपोर्ट, समाचारपत्र व पत्रिकाओं में प्रकाशित सूचनाएँ आदि। श्री लुण्डबर्ग (Lundberg) के शिलालेख, स्तूप विभिन्न खुदाइयों से प्राप्त अस्थिपिंजर, भौतिक वस्तु आदि ऐतिहासिक स्रोत से प्राप्त तथ्य या सूचनाएँ भी द्वितीयक तथ्यों के अन्तर्गत आते हैं। इन समस्त स्रोतों का स्पष्टीकरण निम्नलिखित विवेचना से स्वतः ही हो सकेगा।

प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों में अन्तर
(Difference Between Primary & Secondary Data)

प्राथमिक और द्वितीयक की प्रकृति के विवेचन से स्पष्ट होता है कि इनके बीच कुछ मौलिक भिन्नताएँ हैं। इन भिन्नताओं को संक्षेप में निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है।

1. प्राथमिक आँकड़े एक कच्चे माल की तरह हैं जिसके आधार पर अध्ययन को एक स्वरूप दिया जा सकता है। दूसरी ओर द्वितीयक आँकड़े एक तैयार माल के समान हैं, जिसका उपयोग तो किया जा सकता है लेकिन आवश्यकतानुसार उसमं परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

2. प्राथमिक आँकड़े मौलिक आँकड़े हैं। इसका कारण यह है कि अध्ययनकर्त्ता द्वारा इसका

संकलन स्वयं करने के कारण उसकी प्रामाणिकता में संदेह नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत द्वितीयक आँकड़ों में मौलिकता का अभाव इस कारण होता है कि इसका पहले से ही विश्लेषण और निर्वचन किया जा चुका होता है। किसी विशेष तथ्य की जिस रूप में विवेचना की गयी होती है, अध्ययनकर्त्ता को उनका प्रयोग उसी अर्थ में करना पड़ता है।

3. प्राथमिक आँकड़ों के संकलन में अधिक समय, धन और श्रम की आवश्यकता होती है जबकि द्वितीयक सामग्री को सीमित साधनों के द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि द्वितीयक सामग्री तुलनात्मक रूप से मितव्ययी होती है।
4. प्राथमिक आँकड़ों के संकलन के लिए जिन अध्ययन प्रविधियों का उपयोग करना आवश्यक होता है, उन प्रविधियों के द्वारा द्वितीयक सामग्री एकत्रित नहीं की जा सकती।
5. प्राथमिक आँकड़ों में द्वितीयक आँकड़ों की तुलना में सत्यापान का गुण अधिक होता है। इसका कारण यह है कि यदि एक बार संकलित किये गये प्राथमिक आँकड़े अध्ययन के दौरान दोषपूर्ण दिखायी देते हैं तो क्षेत्र में जाकर उसका पुनः संकलन किया जा सकता है। द्वितीयक आँकड़े जिस रूप में हैं, उनका उसी रूप में उपयोग करना आवश्यक होता है।
6. प्राथमिक और द्वितीयक आँकड़े का मुख्य अन्तर समय-कारक से सम्बन्धित है। इसका तात्पर्य है कि कोई विशेष तथ्य एक समय में एक व्यक्ति के लिए प्राथमिक हो सकता है, जबकि कुछ समय के बाद वही तथ्य दूसरे अध्ययनकर्त्ता के लिए द्वितीयक बन जाता है। उदाहरण के लिए, सन् 1981 में जनगणना सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त आँकड़े भारत के रजिस्ट्रार जनरल के लिए प्राथमिक आँकड़ों के रूप में होंगे जबकि अन्य अध्ययनकर्त्ताओं के लिए यही आँकड़े कुछ समय पश्चात् द्वितीयक आँकड़े बन जायेंगे।

सूचना या आँकड़ों के स्रोत
(Sources of Information Data):

आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए अनेक अलग-अलग स्रोतों का प्रयोग किया जाता है। आँकड़े एकत्रित करने के लिए साधन को आँकड़ों के संकलन का स्रोत माना जाता है। सामान्यतः यह अनुसन्धानकर्त्ता पर निर्भर है कि वह किन-किन स्रोतों से अपनी समस्या से सम्बन्धित सामग्री का संकलन करे। अनुसन्धान की आवश्यकता एवं अनुसन्धान के उद्देश्यों पर भी यह निर्भर करता है कि कौन से स्रोत आँकड़ों के संकलन के लिए आवश्यक है? आँकड़ों के संकलन के स्रोत जितने अधिक विश्वसनीय एवं सुलभ होंगे, सामग्री के संकलन में उतनी ही अधिक सफलता मिलेगी।

मुख्यतः आँकड़ों के संकलन के दो प्रमुख स्रोत माने जाते हैंः

1. क्षेत्रीय स्रोत (Field Sources),
2. प्रलेखीय या दस्तावेजी स्रोत (Document Sources).

1. **क्षेत्रीय स्रोतः** इसके अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता को अपने अध्ययन-क्षेत्र में कार्य करना पड़ता है और उसी दौरान अवलोकन, प्रश्नावली, प्रश्न-अनुसूची एवं साक्षात्कार आदि प्रविधियों के माध्यम से अपने अध्ययन-विषय से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित करना होता है। इसके अन्तर्गत जीवित व्यक्ति सम्मिलित होते हैं जिन्हें लम्बी अवधि के दौरान सामाजिक परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तनों के विषय में पर्याप्त ज्ञान होता है एवं जिनका सामाजिक परिस्थितियों से घनिष्ट सम्पर्क रह चुका होता है। ये व्यक्ति न केवल वर्तमान परिस्थितियों का यथार्थ

विवरण प्रस्तुत करने में समर्थ होते हैं वरन् ये अवलोकन योग्य प्रव त्तियों एवं महत्त्वपूर्ण घटनाओं का समुचित वर्णन प्रस्तुत करने की भी क्षमता रखते हैं। पी.वी. यंग ने क्षेत्रीय स्रोत की इकाइयों-व्यक्तियों को वैयक्तिक स्रोत या प्रत्यक्ष स्रोत के नाम से व्यक्त किया है।

2. **प्रलेखीय या दस्तावेजी स्रोतः** आँकड़ों के संग्रह में प्रलेखीय या दस्तावेजी स्रोत वे हैं जो प्रकाशित एवं अप्रकाशित दस्तावेजों का प्रतिवेदनों, सांख्यिकी, हस्तलेखों, पत्रों, रपटों, दैनन्दिनियों इत्यादि के रूप में उपलब्ध होते हैं। प्रलेखीय स्रोतों का विभाजन प्राथमिक एवं द्वितीयक की श्रेणियों में भी किया जाता है। प्राथमिक प्रलेखीय स्रोत वे हैं जो प्रथम बार एकत्रित किये गये आँकड़ों को प्रदान करते हैं तथा जिनके संकलन एवं प्रचारण का उत्तरदायित्व उसी व्यक्ति के अधिकार में होता है जिसने इन्हें मौलिक रूप से एकत्रित किया था। द्वितीयक प्रलेखीय स्रोत वे हैं जो हमें मौलिक स्रोतों से संकलन किये गये आँकड़ों को प्रदान करते जिनके प्रचारण के लिए अधिकार रखने वाला व्यक्ति पहली बार आँकड़ों के संग्रह को नियन्त्रित करने वाले व्यक्ति से भिन्न होता है।

श्रीमती पी.वी. यंग के अनुसार भी "सामान्यतः स्रोतों को क्षेत्रीय एवं प्रलेखीय स्रोतों में विभाजित किया जा सकता है।" **जार्ज लुण्डबर्ग** ने आँकड़ों के दो प्रमुख स्रोतों का उल्लेख किया है जो निम्नांकित हैं :

1. **ऐतिहासिक स्रोत** (Historical Sources): इनमें प्रलेख, शिलालेख, खुदाई से प्राप्त वस्तुएँ एवं भूतत्वीय स्तर इत्यादि सम्मिलित हैं।
2. **क्षेत्रीय स्रोत** (Field Sources): इसमें जीवित व्यक्तियों से प्राप्त सूचनायें एवं क्रियाशील व्यवहारों का प्रत्यक्ष अवलोकन शामिल है।

प्रोफेसर बेगले (Prof. Begley) के अनुसार दो प्रमुख स्रोत ये हैं :

1. **प्राथमिक स्रोत** (Primary Sources): इनके अन्तर्गत समस्या से सम्बन्धित व्यक्ति व प्रत्यक्ष निरीक्षण आते हैं।
2. **द्वितीयक स्रोत** (Secondary Sources): इनके अन्तर्गत सरकारी व गैर-सरकारी, संस्थाओं या अप्रकाशित प्रलेखों आदि को सम्मिलित किया जाता है।

यदि हम उपर्युक्त आँकड़ों के स्रोतों को अच्छी प्रकार वैज्ञानिक रूप से विभाजित करें तो केवल तीन ही ऐसे तरीके हैं जिनसे हम सामाजिक अन्वेषण के लिए आँकड़ों को संकलित कर सकते हैं। यहाँ यह याद रहे कि सामाजिक अन्वेषण का मुख्य विषय मानव या मानव समूह है। इसलिए मानव को हम अपनी सुविधा या आवश्यकता के अनुसार नियन्त्रित नहीं कर सकते हैं। इसलिए हमें उसके बारे में सूचना केवल तीन प्रकार से ही प्राप्त हो सकती है -

(1) हम उससे सीधे प्रश्न करें, बातचीत करें और विभिन्न समस्याओं व विषयों पर उसकी प्रतिक्रियायें जानें।

(2) हम व्यक्ति समूह या संगठन के आचार-व्यवहारों का निरीक्षण करें और उन आचार-व्यवहारों से जो प्रभाव पड़ रहा है उसका अवलोकन कर उसका आँकड़ों के रूप में संकलन करें।

(3) हम अन्वेषण कार्य के समय उस दस्तावेज या आँकड़ों का जो किसी अन्य कार्य या लक्ष्य के लिए एकत्रित किये गये थे, उपयोग अपने अन्वेषण कार्य की आवश्यकता अनुसार करें।

इस प्रकार उपर्युक्त तीनों बातों का ध्यान में रखकर मौटे तौर पर आँकड़ों के दो प्रमुख स्रोत हमें दिखाई देते हैं जो निम्नाकित हैः

1. **प्राथमिक स्रोत** (Primary Sources)
2. **द्वितीयक स्रोत** (Secondary Sources)

इन दोनों स्रोतों को मोटे तौर पर दिये गये चार्ट द्वारा समझा जा सकता है।

यहाँ हम दोनों स्रोतों की विस्तार से विवेचना करेंगे -

प्राथमिक स्रोत
(Primary Sources)

प्राथमिक स्रोत सामान्यतः उन्हें कहा जाता है कि जिनसे अध्ययनकर्त्ता प्रथम बन तथ्यों अथवा विभिन्न जानकारी को संकलित करता है। इन्हें ही सामान्यतः क्षेत्रीय स्रोत भी कह दिया जाता है। प्राथमिक स्रोत मुख्यतः प्राथमिक आँकड़ों के एकत्रीकरण की विधि है। **पी.वी. यंग** ने लिखा है "प्राथमिक सामग्री का तात्पर्य उन सभी मौलिक सूचनाओं अथवा आँकड़ों से है जिन्हें स्वयं अनुसन्धानकर्त्ता प्राथमिक स्रोतों द्वारा प्राप्त करता है।" यही कारण है कि प्राथमिक सामग्री को हम आधार सामग्री प्रथम स्तरीय सामग्री तथा क्षेत्रीय सामग्री आदि नामों से भी सम्बोधित करते हैं। प्राथमिक स्रोत को परिभाषित करते हुए **पी.एच. मान** (P.H. Mann) ने **'मैथड्य ऑफ सोशियोलॉजिकल एन्क्वायरी'** में लिखा है कि "प्राथमिक स्रोत हमें प्रथम- स्तर पर संकलन की गयी सामग्री प्रदान करते हैं, अर्थात् जिन लोगों ने उन्हें एकत्रित किया है उनके द्वारा प्रस्तुत की गयी सामग्री का मौलिक स्वरूप है।" हमारे दैनिक जीवन की सामान्य घटनाएँ, सम्बन्धित व्यक्ति, उनके द्वारा बताये गये विवरण इत्यादि तथा उनसे इन सूचनाओं को प्राप्त करने हेतु विभिन्न विधियों के अन्तर्गत आयोजित कार्यक्रम, प्राथमिक स्रोतों में सम्मिलित किये जाते हैं।

आर. ई. चढ्ढाक ने 'प्रिंसिपल्स एण्ड मैथड्स ऑफ स्टेटिस्टिक्स' में लिखा है कि प्राथमिक स्रोत वे होते हैं जो प्रथम बार एकत्रित किये गये आँकड़ों को प्रदान करते हैं तथा जिनके संकलन एवं प्रचारण का उत्तरदायित्व उसी व्यक्ति के अधिकार में होता है जिसने इसे मौलिक रूप से एकत्रित किया है।"

इस प्रकार प्राथमिक तथ्य सामग्री या स्रोत यह है जिसे शोधकर्त्ता अपने विशिष्ट उद्देश्य से अन्वेषण समस्या के समाधान के आगे प्राथमिक रूप से संकलित करता है।

प्राथमिक स्रोतों के प्रकार (Types of Primary Sources) प्राथमिक स्रोत सामान्यतः दो प्रकार के हो सकते हैं -

1. **प्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत** (Direct Primary Sources),
2. **अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत** (Indirect Primary Sources).

1. प्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत के अन्तर्गत या तो अध्ययनकर्त्ता और सामाजिक घटना दोनों एक-दूसरे के सामने उपस्थित होते हैं, या अध्ययनकर्त्ता तथा सूचनादाता आमने-सामने की स्थिति में होते हैं।

2. अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत के अन्तर्गत यद्यपि सूचनाएँ तो प्रथम स्तर पर ही संकलित होती हैं तथापि अध्ययनकर्त्ता एवं सूचनादाता भौतिक रूप से एक-दूसरे के आमने-सामने की स्थिति में नहीं होते।

आँकड़ों के स्रोत

- **प्राथमिक या क्षेत्रीय स्रोत** (Primary or Field Sources)
  - **प्रत्यक्ष स्रोत** (Direct Sources)
    - **अवलोकन** (Observation)
    - **मौखिक छानबीन** (Oral Inquiry)
      - **प्रश्न अनुसूचियां** (Question-Schedules)
      - **साक्षात्कार** (Interview)
  - **अप्रत्यक्ष स्रोत** (Indirect Sources)
    1. **प्रश्नावली** (Questionnaire)
    2. **मतपत्र** (Opinion Letter)
    3. **रेडियो** (Radio)
- **द्वितीयक या प्रलेखीय स्रोत** (Secondary or Document Sources)
  - **व्यक्तिगत प्रलेख** (Personal Documents)
    1. **जीवन इतिहास** (Life History)
    2. **डायरिया** (Diaries)
    3. **पत्र** (Letters)
    4. **संस्मरण** (Memories)
  - **सार्वजनिक प्रलेख** (Public Documents)
    - **प्रकाशित** (Published)
      - **विभिन्न प्रतिवेदन** (Other Reports)
        1. **अन्तर्राष्ट्रीय संगठन**
        2. **आयोग, परिषदें तथा समितियाँ**
        3. **शोध-संस्थान, इत्यादि**
      - **अन्य स्रोत** (Other Sources)
        1. **सरकारी गजेटियर,**
        2. **पुस्तकें, संदर्भ सूचियाँ,**
        3. **आँकड़ों के बुलेटिन**
        4. **समाचार-पत्र**
        5. **पत्रिकाएँ**
    - **अप्रकाशित** (Unpublished)
      1. **सरकारी रिकार्ड**
      2. **दुर्लभ हस्तलेख**
      3. **शोध प्रतिवेदन**

यहाँ हम इन दोनों प्रकार के स्रोतों की विस्तार से विवेचना करेंगे -

1. **प्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोतः** प्रत्यक्ष स्रोत सामान्यतः वे होते हैं जिनमें अनुसन्धानकर्त्ता या तो मूर्त घटनाओं को स्वयं अपने सम्मुख घटित होते हुए देखते हैं अथवा अध्ययनकर्त्ता एवं सूचनादाता की आमने-सामने की स्थिति होती है। अनुसन्धानकर्त्ता स्वयं घटनास्थल पर जाकर अपने अध्ययन विषय से सम्बन्धित जानकारी को अवलोकित एवं एकत्रित करता है। पी.एच. मान के अनुसार, "सामाजिक अन्तःक्रिया के अध्ययनकर्त्ता के लिए देखना और सुनना, दो प्रमुख कार्य हैं।"

प्रत्येक प्राथमिक स्रोत को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1. अवलोकन (Observation),
2. साक्षात्कार या मौखिक छानबीन (Interview or Oral Inquiry).

1. **अवलोकनः** इसमें आँखों का प्रत्यक्ष प्रयोग किया जाता है तथा अध्ययनकर्त्ता स्वयं ही घटनास्थल पर उपस्थित रहता है। यह घटनाओं अवथा कार्यक्रमों में किसी सीमा तक स्वयं भाग भी ले सकता है, अथवा केवल एक दर्शक मात्र के रूप में भी बना रह सकता है। यह अवलोकन तीन प्रकार का होता है -

    (अ) **सहभागी अवलोकन (Participant Observation):** इसमें अध्ययनकर्त्ता स्वयं उस घटना में सम्मिलित होकर पूर्णतया भाग लेता है तथा उस स्थिति में अपने अन्य साथियों जैसा ही आचरण एवं व्यवहार करता है, वहाँ वह अन्य भागीदारों के ही समान होता है।

    (ब) **अर्द्ध-सहभागी अवलोकन (Quasi-Participant Observation):** इसमें अवलोकनकर्त्ता पूर्णतया भागीदार न बनकर, आवश्यकतानुसार कुछ सीमा तक स्वयं भी सम्मिलित हो जाता है तथा कुछ दशाओं में वह अपने को प थक् रखता है ताकि वह अन्य व्यक्तियों के व्यवहार को समझ सके।

    (स) **असहभागी अवलोकन (Non-Participant Observation):** इसमें सर्वेक्षणकर्त्ता घटनाओं अथवा कार्यक्रमों में स्वयं किसी भी स्तर पर अथवा किसी भी सीमा तक सम्मिलित नहीं होता है, बल्कि उसकी केवल एक परिचित अथवा अज्ञात दर्शक की ही स्थिति बनी रहती है।

2. **साक्षात्कार एवं मौखिक छानबीनः** ऐसी प्रघटनाओं के अध्ययन में जहाँ अवलोकन पद्धति भी उपयुक्त नहीं होती है वहाँ ऐसी समस्याओं के प्रति प्राथमिक सूचनाएँ एकत्रित करने के लिए अनुसन्धानकर्त्ता एवं उत्तरदाता के आमने-सामने के सम्बन्धों पर आधारित विधि द्वारा बातचीत करके जानकारी एकत्रित की जाती है एवं अनेक प्रकार के आँकड़ों का एकत्रीकरण होता है। यह सूचना सामान्यतः साक्षात्कार एवं अनुसूची दो विधियों से प्राप्त की जाती है।

    (क) **साक्षात्कार (Interview):** यह प्राथमिक सूचना प्राप्त करने का प्रमुख स्रोत है। इसके अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता स्वयं स्थानीय लोगों से सम्पर्क स्थापित करके बातचीत द्वारा सम्बन्धित तथ्यों को प्राप्त करता है। चूँकि स्थानीय लोगों का स्थानीय समस्याओं से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है तथा समस्या से सम्बन्धित अन्य स्रोतों का भी ज्ञान होता है, अतः उनसे निजी स्तर पर वार्तालाप द्वारा विश्वसनीय व लाभप्रद सामग्री प्राप्त की जा सकती है। यदि किसी ऐतिहासिक स्थल के बारे में जानकारी प्राप्त करनी हो

तो अनुसन्धानकर्त्ता बुजुर्गों, स्थानीय-जानकारों, सम्बन्धित पुजारियों, व भोपों या मठाधीशों से साक्षात्कार द्वारा प्रथम स्तर की जानकारी प्राप्त कर सकता है। हाँ, अनुसन्धानकर्त्ता को यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि यदि व्यक्ति साक्षात्कार स्वीकार करने से इंकार करता है तो उस पर इस सम्बन्ध में दबाव नहीं डालना चाहिए क्योंकि वह बिना दिलचस्पी के परेशान होकर विश्वसनीय व संगतपूर्ण जानकारी नहीं देगा। अतः स्थान, परिस्थितियाँ, समुदाय के लोगों की प्रकृति इत्यादि को ध्यान में रखते हुए ही उसे इस पद्धति को अपनाना चाहिए।

(ख) **प्रश्न अनुसूचियाँ** (Interview Schedules): अनुसूची में प्रश्न तथा खाली सारणियाँ दी हुई होती हैं। अनुसन्धानकर्त्ता स्वयं सूचनादाताओं के पास जाकर उनसे प्रश्न पूछकर उत्तर एवं अनुसूचियों में भर देता है। अनुसूची का उद्देश्य सूचनादाताओं से उत्तर पाकर, अनुसन्धान में वैषयिकता लाना है। यह पद्धति बड़ी ही लाभप्रद व उपयोगी है। इसमें प्रश्नों को तोड़-मरोड़कर नहीं पूछा जा सकता। प्रश्नों का क्रम एकसा रहता है। प्रश्नों के लिखित रूप में होने के कारण अनुसन्धानकर्त्ता को आवश्यक रूप से इन्हें याद नहीं करना पड़ता है, अन्यथा वह कुछ प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करना भूल भी सकता है। साक्षात्कार की विधि बड़ी जटिल-सी लगती है। उत्तरदाता प्रत्यक्ष रूप में पूछे गये प्रश्नों का जवाब देने से इन्कार कर सकता है या वह मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित हो जाता है। इस प्रकार के दोष अनुसूची पद्धति में नहीं पाए जाते हैं। अनुसूचियों से प्राप्त सूचना निष्पक्ष होने के कारण बड़ी उपयोगी रहती है। वह स्रोत तभी लाभप्रद सिद्ध हो सकता है जब अध्ययन क्षेत्र बहुत विस्त त न हो। इस स्रोत द्वारा अनुसन्धानकर्त्ताओं ने बड़ी महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की है। यह स्रोत काफी लोकप्रिय होता जा रहा है। इसके द्वारा अशिक्षित लोगों से भी सूचना प्राप्त करने में कठिनाई नहीं रहती है, कुछ स्थानीय भाषा के कारण थोड़ी कठिनाई अवश्य आ सकती है जिसका निवारण वहाँ के स्थानीय पढ़े-लिखे लोगों के द्वारा किया जा सकता है।

2. **अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोतः** प्राथमिक अप्रत्यक्ष स्रोत मुख्यतः वे होते हैं जिनमें सूचनाएँ तो प्राथमिक स्तर पर प्राथमिक रूप से ही प्राप्त की जाती हैं लेकिन इसमें अध्ययनकर्त्ता का सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित नहीं हो पाता। अप्रत्यक्ष स्रोतों में प्रमुखतः प्रश्नावलियाँ, दूरभाष, साक्षात्कार, पैनल पद्धति, रेडियो अपील, आदि सम्मिलित होती हैं। मेलड्रिड पार्टिन ने अप्रत्यक्ष स्रोत के अन्तर्गत तीन प्रमुख साधनों का उल्लेख किया है -

1. रेडियो अपील (Radio Appeal),
2. दूरभाष साक्षात्कार (Telephone Interview),
3. दलीय पद्धति (Panel Technique),

यहाँ हम प्रमुख अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोतों की विवेचना करेंगे।

(क) **प्रश्नावली** (Questionnaire): अनुसन्धानकर्त्ता विषय से सम्बन्धित जानकारी प्रश्नावली द्वारा सरलतापूर्वक प्राप्त कर सकता है। जब अनुसन्धान का क्षेत्र व्यापक होता है अथवा सूचनादाता दूर-दूर बिखरे होते हैं, ऐसी स्थिति में प्रश्नों की एक सूची डाक द्वारा उनके पास पहुँचा दी जाती है। सूचनादाता उस प्रश्नावली को भरकर अभीष्ट जानकारी अनुसन्धानकर्त्ता को देता है। यह विधि उन अनुसन्धानों में तो और भी लाभदायक है, जहाँ सूचना को बार-बार प्राप्त करना होता है। प्रश्नावली द्वारा प्राप्त

सूचना में डाक-खर्च व पहले की गई छपाई के अतिरिक्त कोई अधिक व्यय नहीं होता है। यह स्रोत तभी लाभप्रद हो सकता है जबकि उत्तरदाता पढ़े-लिखे हों व उनमें सहयोग की भावना हो, अन्यथा प्रश्नों के जवाब उनसे न तो दिए जा सकते हैं और न समय पर प्रश्नों के उत्तर ही मिल पाते हैं। इसका प्रयोग गम्भीर व महत्त्वपूर्ण अनुसन्धानों में नहीं किया जाता है क्योंकि प्रश्नावलियों द्वारा सूचना भ्रमपूर्ण व असत्य हो सकती है। हमारे देश में यह स्रोत अधिक प्रामाणिक सिद्ध नहीं हो पाया है।

(ख) **दूरभाष साक्षात्कार** (Telephone Interview): सूचना संकलन का यह नवीन अप्रत्यक्ष स्रोत व्यक्तिगत साक्षात्कार के विपरीत तथा प्रकृति में उससे पर्याप्त रूप से भिन्न है। इन साक्षात्कारों को अधिकाँशतः व्यापारिक विज्ञापनों के विषय में, उपभोक्ताओं से उनकी विचारधारा सम्बन्धी सूचनाएँ एकत्रित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। इनमें अध्ययनकर्त्ता केवल दूरभाष के ही माध्यम से अपने सूचनादाताओं से सम्पर्क स्थापित करता है। यह स्रोत क्षेत्रीय भ्रमण तथा व्यक्तिगत स्तर पर विभिन्न व्यक्तियों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करने की अपेक्षा अधिक सरल माना जाता है। यह विधि रेडियो अपील से इस प्रकार भिन्न है कि इसमें रेडियो पर प्रसारित कार्यक्रमों के श्रोताओं से दूरभाष या पत्र-व्यवहार द्वारा सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं।

(ग) **दलीय पद्धति** (Panel Technique): किसी सर्वेक्षण के लिए विशाल समूह से कम सम्पर्क स्थापित कर पाने के दोष को दूर करने के लिए आजकल इने-गिने सूचनादाताओं के विशेष दल स्थापित कर दिए जाते हैं, इनमें सम्मिलित किए व्यक्ति सामान्य सूचनादाताओं के प्रतिनिधि के रूप में माने जा सकते हैं जो विशेष प्रकृति की जनता की विचारधारा, मनोव त्ति अथवा रुचि इत्यादि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करते हैं। ये सूचनादाता उस समूह में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अध्ययनकर्त्ता समय-समय पर उनसे ही अनेक बार सम्पर्क स्थापित करके समूह की सामान्य प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है। उपभोक्ता समूह से प्रायः डायरी लेख रखने को कहा जाता है। प्रायः स्त्रियों तथा बालकों के दल बनाए जाते हैं क्योंकि वे नवीन प्रचलित वस्तुओं के विषयों में अपनी विचारधाराओं से अधिक सन्तोषजनक रीति से सूचित कर सकते हैं। यह पद्धति व्यक्तिगत सम्पर्क की अपेक्षा दलीय सम्पर्क पर अधिक बल देती है। इसे शीघ्र घटित होने वाली परिवर्तन प्रव त्तियों को समझने तथा समूह की समय-समय पर होने वाली प्रतिक्रिया को समझने हेतु प्रयोग किया जाता है।

(घ) **रेडियो अपील** (Radio Appeal): सूचना प्रसारण का एक अच्छा साधन रेडियो है। इसके द्वारा कई प्रकार के कार्यक्रम समय-समय पर प्रसारित किए जाते हैं जो श्रोताओं एवं दिलचस्पी लेने वाले विभिन्न व्यवसाय के लोगों को आकर्षित करते हैं। इससे रेडियो श्रोता अध्ययनकर्त्ता को सम्बन्धित जानकारी दे सकते हैं। परन्तु यह स्रोत विश्वसनीय नहीं है क्योंकि श्रोता जो अपनी राय पत्रों द्वारा भेजते हैं, उनमें कई अनर्गल बातें होती हैं।

प्राथमिक स्रोतों के गुण (Merits of Primary Sources): प्राथमिक स्रोत अनेक द ष्टिकोणों से सामाजिक अनुसन्धान एवं सर्वेक्षण के क्षेत्र में अत्यधिक उपयोगी माने जाते हैं। वे निम्नांकित कारण हैं जिनके होने से प्राथमिक स्रोत अधिक उपयुक्त माने जाते हैं :

1. **विश्वसनीयता** (Realiability): प्राथमिक स्रोतों में अधिकाँश आँकड़े निकट सम्बन्ध स्थापित

करके प्राप्त किए जाते हैं, वे काफी विश्वसनीय होते हैं। अनुसन्धानकर्त्ता को स्वयं पर भी विश्वास होता है कि उसने जो जानकारी प्राप्त की है वह अपने स्वाभाविक रूप में है न कि किसी दबाव के फलस्वरूप प्राप्त की हुई। बहुत नजदीक से किए हुए अध्ययन में असत्य की गुंजाइश नहीं के बराबर रहती है।

2. **स्वाभाविकता** (Naturalness): इन स्रोतों के अन्तर्गत, अनुसन्धानकर्त्ता उत्तरदाताओं से घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित कर सकता है अतः जो जानकारी लोगों से उसे व्यक्तिगत सम्पर्क से प्राप्त होगी, उसमें कृत्रिमता का समावेश नहीं होगा। उदाहरण के लिए, जब अनुसन्धानकर्त्ता सहयोगी निरीक्षणकर्त्ता के रूप में समुदाय के कार्यक्रमों में भाग लेकर जो सामग्री प्राप्त करता है वह निष्पक्ष होगी क्योंकि समुदाय के लोग स्वाभाविक रूप में अपने कार्यक्रमों को प्रस्तुत करते हैं।

3. **वैषयिकता** (Subjectivity): प्राथमिक स्रोतों में वैषयिकता का पाया जाना एक बड़ा गुण है। इसके अन्तर्गत सूचना प्राप्त करने की जो पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं, वे भी वैषयिकता लाने में सहायक हैं। उदाहरण के लिए, अनुसूची पद्धति द्वारा अनुसन्धानकर्त्ता लिखित प्रश्नों के उत्तर उत्तरदाता से प्राप्त करता है। इसमें ऐसी कोई बात नहीं है कि उत्तरदाता पक्षपातपूर्ण होकर उनका उत्तर देना उचित समझे। सिर्फ सावधानी यह बरतनी पड़ती है कि प्रश्न अस्पष्ट, टेढ़े-मेढ़े व भ्रामक नहीं होने चाहिए।

4. **कम खर्चीला** (Less Expensive): इस स्रोत से सामग्री प्राप्त करने में अधिक व्यय नहीं होता। अनुसूचियों के द्वारा दूर-दूर स्थानों पर निवास करने वाले लोगों से सम्पर्क स्थापित कर सामग्री को प्राप्त कर सकता है। जब बार-बार सूचना को प्राप्त करना होता है तो प्रश्नावली-पद्धति श्रेष्ठ होती है। इसमें अनुसन्धानकर्त्ता को घटना स्थल पर जाने या व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता नहीं होती है तथा इससे समय की भी बचत होती है।

प्राथमिक स्रोतों के दोष
(Demerits of Primary Sources)

इस प्रविधि के कुछ दोष भी हैं जो कि निम्न प्रकार से हैं -

1. इसमें सूचनादाताओं से सही सूचनायें प्राप्त हो रही हैं इसकी कोई गारन्टी नहीं है।
2. अनुसन्धानकर्त्ता को यह पता नहीं चल पाता है कि उसके सूचनादाता कहाँ-कहाँ फैले हुए हैं।
3. पत्र द्वारा सूचना भेजने से उत्तरदाता कभी-कभी गलत व अनावश्यक बातें भी लिखकर भेज देते हैं।
4. प्राथमिक स्रोतों के उपयोग में सदैव ही वैयक्तिक पक्षपात की सम्भावना बनी रहती है।
5. इसमें वस्तुनिष्ठता का अभाव हो जाता है।
6. प्राथमिक स्रोत अध्ययनकर्त्ता को केवल वर्तमान तथ्यों और घटनाओं की ही जानकारी प्रदान करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अध्ययनकर्त्ता अतीत की घटनाओं की अधिक जानकारी प्राप्त नहीं कर पाता व उसका अध्ययन इन घटनाओं के विश्लेषण का लाभ नहीं उठा पाता।
7. सामग्री संकलन के लिए प्राथमिक स्रोतों का सफलतापूर्वक उपयोग केवल तभी किया जा

सकता है जब अध्ययनकर्त्ता समुचित रूप से प्रशिक्षित हों और अध्ययन कार्य के लिए पूरी तरह से कुशल हों।

द्वितीयक या प्रलेखीय स्रोत
(Secondary or Documentary Sources)

द्वितीयक या प्रलेखीय स्रोत वे होते हैं जो कि प्रकाशित या अप्रकाशित समस्त लिखित सामग्री का प्रतिनिधित्व करते हैं और जिसके माध्यम से अनुसन्धानकर्त्ता को अपने विषय से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएँ, आँकड़े आदि प्राप्त हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, जनगणना-रिपोर्ट से हमें देश की जनसंख्या आदि विषयों के सम्बन्ध में जो गणनात्मक (Quantitative) तथा वैषयिक आँकड़े व सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं, उन्हें एकत्रित करना किसी भी व्यक्तिगत या सामूहिक अनुसन्धानकर्त्ता के लिए सम्भव नहीं है। उसी प्रकार एक विषय से सम्बन्धित एक व्यक्ति के पत्रों तथा डायरी से उस व्यक्ति के आन्तरिक जीवन, मनोभाव तथा अन्य अनेक बातों का जिस रूप में हमें पता लगता है वह अन्य किसी भी प्राथमिक स्रोत से हमें कदापि नहीं मिल सकता। साथ ही द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त सूचनाएँ अध्ययन-विषय के सम्बन्ध में अनेक ऐसी प्राथमिक व गहन जानकारी को प्रस्तुत करती हैं तथा उस विषय की एक ऐसी ऐतिहासिक प ष्ठभूमि का निर्माण करती हैं कि उसे जाने बिना नवीन शोधकार्य को सफलतापूर्वक उसके लक्ष्य तक पहुँचाना अत्यधिक कठिन होता है। इसीलिए श्री लुण्डबर्ग (Lundberg) का सुझाव है कि प्रस्ताविक अनुसन्धान को आरम्भ करने से पूर्व उससे सम्बन्धित समस्त प्रलेखीय स्रोतों का सदैव सावधानीपूर्वक सर्वेक्षण कर लेना चाहिए। एक ही कार्य को दोबारा करने की गलती करने, अध्ययन-पद्धति के सम्बन्ध में सुझाव प्राप्त करने, त्रुटियों से बचने, कठिनाइयों से अवगत होने आदि के लिए यह काम महत्वपूर्ण है। साथ ही, यदि हम अपने परिणामों की तुलना अन्य अनुसन्धानकर्त्ताओं के परिणामों के साथ करना चाहते हैं तो भी हमें प्रलेखीय स्रोतों के माध्यम से उनके द्वारा अपनाई गई पद्धतियों से परिचित होना आवश्यक होगा।

द्वितीयक या प्रलेखीय स्रोतों के अन्तर्गत विद्वानों द्वारा लिखित ग्रन्थ, सर्वेक्षण रिपोर्ट, संस्मरण, यात्रा-वर्णन, पत्र, डायरी, ऐतिहासिक प्रलेख, सरकारी आँकड़े तथा रिकार्ड, अन्य अप्रकाशित रिकार्ड आदि सम्मिलित हैं। इन सभी स्रोतों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - **प्रथम** व्यक्तिगत प्रलेखीय स्रोत तथा **दूसरा** सार्वजनिक प्रलेखीय स्रोत। इन दोनों की विस्तार में विवेचना कर लेना उचित होगा।

1. व्यक्तिगत प्रलेख
(Personal Documents)

व्यक्तिगत प्रलेखों में वह समस्त लिखित सामग्री सम्मिलित है जो कि एक व्यक्ति के द्वारा स्वयं अपने विषय में अथवा सामाजिक घटनाओं के विषय में उसके अपने द ष्टिकोण से लिखी गई हो। यह जरूरी नहीं है कि उन्हें लिखते समय लिखने वाले का द ष्टिकोण वैज्ञानिक हो अथवा सामाजिक शोध या अनुसन्धान सम्बन्धी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही उसे उसने लिखा हो। अधिकांशतया ऐसा नहीं होता है और इन व्यक्तिगत प्रलेखों में लेखक के अपने द ष्टिकोण, मनोभाव, विचार व आदर्श ही मूर्त होते हैं। फिर भी यदि उसके द्वारा लेखक के अपने मनोभाव या आन्तरिक जीवन अथवा किसी सामाजिक संस्था या घटना के वर्णन पर प्रकाश पड़ता है तो वह स्वतः ही अपितु उस समाज या सामाजिक

जीवन व प्रक्रियाओं का भी स्पष्टीकरण होता है जिसका कि लेखक भी एक अंग है। श्री आलपोर्ट (Allport) के अनुसार व्यक्तिगत प्रलेखों को लिखने के 13 सम्भावित कारण होते हैं जो कि इस प्रकार हैं -

(1) अपने किसी कार्य के औचित्य को सिद्ध करने के लिए, (2) अपने दोषों की स्वीकृति के लिए, (3) घटनाओं के क्रमबद्ध वर्णन की इच्छा को चरितार्थ करने के लिए, (4) साहित्यिकता का आनन्द लेने के लिए अर्थात् व्यक्तिगत अनुभवों को साहित्यिक रूप देने के लिए, (5) व्यक्तिगत प्रलेखों में अनुसन्धान के लिए, (6) मानसिक तनाव से छुटकारा पाने के लिए, (7) धन प्राप्ति के लिए, (8) किसी सौंपे हुए कार्य की पूर्ति के लिए (कभी-कभी इस प्रकार के प्रलेख दूसरों की आज्ञानुसार लिखे जाते हैं), (9) चिकित्सा सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत करने के लिए जैसे मानसिक चिकित्सा के लिए पिछली घटनाओं तथा अनुभवों का वर्णन, (10) अपनी योग्यताओं को प्रदर्शित करने के लिए, (11) किसी सिद्धान्त या 'वाद' (ism) को लोकप्रिय बनाने के लिए, (12) जनसेवा तथा कल्याण के लिए और (13) अमरत्व प्राप्त करने के लिए।

व्यक्तिगत प्रलेखों को मोटे तौर पर निम्नलिखित चार प्रकारों में बाँटा जा सकता है :

1. **जीवन-इतिहास (Life History):** प्रोफेसर मैज (Madge) के विचारानुसार वास्तविक अर्थ में जीवन इतिहास का अभिप्रायः विस्त त आत्मकथा से है। सामान्य अर्थ में इसका प्रयोग पर्याप्त ढीले-ढाले तौर पर होता है और किसी भी जीवन सम्बन्धी सामग्री के लिए 'जीवन-इतिहास' वाक्यांश का प्रयोग कर लिया जाता है। कुछ भी हो, जीवनी अथवा आत्मकथाएँ प्रायः प्रख्यात व्यक्तियों अथवा महापुरुषों के द्वारा लिखी जाती हैं या तैयारी की जाती हैं। कुछ भी हो, इन आत्मकथाओं से केवल लेखक के व्यक्तिगत जीवन की ही नहीं बल्कि उसके समाज तथा समूह के जीवन से सम्बन्धित अनेक घटनाओं तथा परिस्थितियों की झाँकी देखने को मिलती है। सबसे उल्लेखनीय बात तो यह है कि इन जीवनियों में ऐसी अनेक आन्तरिक या गुप्त बातों का भी उल्लेख रहता है जिसे कि हम अन्य किसी भी रूप में जान नहीं सकते हैं। उदाहरणार्थ, श्री चर्चिल की जीवनी द्वितीय महायुद्ध की एक ज्वलन्त झाँकी है, महात्मा गांधी तथा जवाहरलाल नेहरू की आत्मकथाएँ वास्तव में भारत में स्वतन्त्रता संग्राम की आत्मकथाएँ, भारतीय संस्कृति, समस्या के दर्शन की आत्मकथाएँ हैं। इनका अध्ययन करने पर तत्कालीन भारतवर्ष की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों व घटनाओं के सम्बन्ध में असंख्य महत्वपूर्ण सूचनाएँ व तथ्य प्राप्त होते हैं।

   जीवन-इतिहास तीन प्रकार के होते हैं - (i) स्वतःलिखित आत्मकथा (Spontaneous Autobiography) वह आत्मचरित है जो कि एक व्यक्ति स्वतः अपनी इच्छा से अपने जीवन की घटनाओं का रिकार्ड रखने के लिए लिखता है। अनेक दिन बाद भी पुरानी बातों को याद करके दुःख-सुख को अनुभव करने और आत्म-विश्लेषण करने के लिए ही इस प्रकार की जीवनी लिखी जाती है और इसीलिए यह अधिकतर निष्पक्ष होती है। (ii) **ऐच्छिक आत्मकथा** (Voluntered Self-record) वे आत्मकथाएँ हैं जो कि किसी प्रकाशक या अन्य व्यक्ति के कहने से एक व्यक्ति ऐच्छिक तौर पर लिखता है। (iii) **संकलित जीवन-इतिहास** (Compiled Life History) वे जीवनियाँ हैं जो कि किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा लिखी जाती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि मूल व्यक्ति स्वयं

अपनी जीवन-कथा नहीं लिखता है बल्कि उसके द्वारा विभिन्न अवसरों पर दिया गया व्याख्यान, लिखित रचनाएँ, साक्षात्कार के समय कही गई बातें, पत्र आदि के माध्यम से प्राप्त सामग्री को संकलित करके कोई दूसरा व्यक्ति उसकी जीवनी को तैयार करता है।

जीवन-इतिहास चाहे वह किसी प्रकार का भी क्यों न हो सामाजिक शोध या अनुसन्धान में उसका अत्यधिक महत्व होता है। इसका कारण यह है कि जीवनियों में व्यक्तिगत जीवन सम्बन्धी नीरस घटनाओं का ही वर्णन नहीं होता अपितु उनके माध्यम से अनेक महत्वपूर्ण सामाजिक घटनाओं, संस्थाओं तथा सामाजिक प्रक्रियाओं का भी पता चलता है। इतना ही नहीं, अपनी आत्मकथा लिखने वाला व्यक्ति तत्कालीन अनेक सामाजिक समस्याओं का अति रोचक व महत्वपूर्ण वर्णन करने के साथ-साथ अनेक रचनात्मक व व्यावहारिक सुझावों को भी प्रस्तुत करता है। तत्कालीन सामाजिक घटनाओं, समस्याओं तथा प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में लेखक के व्यक्तिगत मनोभाव व द ष्टिकोण के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का एक अति उत्तम साधन आत्मकथाएँ होती हैं जिनका कि मनोवैज्ञानिक द ष्टिकोण से अत्यधिक महत्व होता है। जीवनियाँ इतिहास की अपेक्षा सरल, रोचक तथा स्पष्ट होती हैं।

उपरोक्त महत्व होते हुए भी जीवनियों की अपनी कुछ सीमाएँ व दोष भी होते हैं। आत्मकथाओं में प्रायः लेखक केवल अपने व्यक्तित्व को ही बढ़ा चढ़ाकर प्रस्तुत नहीं करते अपितु विभिन्न सामाजिक घटनाओं को भी अपने ढंग से पर्याप्त रंग चढ़ाकर प्रस्तुत करते हैं। जब वे इस सम्बन्ध में सचेत रहते हैं कि उनकी जीवन-कथा प्रकाशित होगी तो वे स्वभावतः ही ऐसे तथ्यों को छुपा जाते हैं जो कि उनके व्यक्तित्व को जनता की निगाह में गिरा देने वाले होते हैं। उसी प्रकार सामाजिक व राजनैतिक नेता अपनी आत्मकथा में अपनी ही पार्टी के या समूह में व्याप्त भ्रष्टाचारों को बहुत कम महत्व देते हैं और पार्टी के सिद्धान्तों को सर्वोत्तम प्रमाणित करने के लिए गलत तथ्यों को भी प्रस्तुत करने में संकोच नहीं करते। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि अपने व्यक्तित्व तथा पार्टी के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए ही आत्मकथा लिखी गई है। ऐसा भी होता है कि प्रशासक धन कमाने के लिए जीवन की रोचक तथा आकर्षक घटनाओं को ही अत्यधिक महत्व देता है या लेखक स्वयं केवल ऐसी घटनाओं को ही जीवनी में सम्मिलित करता है जो कि उसके द ष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं। ऐसी दशाओं में वास्तविकताओं से परिचित होने के सौभाग्य से हम वंचित ही रह जाते हैं।

2. **डायरी (Diary):** बहुत से लोगों को डायरी लिखने का शौक होता है जिसमें कि वे प्रतिदिन या विभिन्न अवसरों पर अपनी जीवन सम्बन्धी घटनाओं को तथा उनके प्रति अपनी भावनाओं तथा प्रतिक्रियाओं को लिखते हैं। इन डायरियों में न केवल वह अपने जीवन के सम्बन्ध में लिखता है बल्कि उनके विषय में भी लिखता है जिनके कि सम्पर्क में वह रहता है या केवल कुछ समय के लिए ही सम्पर्क में आने का अवसर उसे प्राप्त होता है। डायरी उसकी अपनी चीज होती है इसलिए वह अत्यन्त गोपनीय बातों को भी उसमें सच्चाई के साथ लिपिबद्ध कर देता है। एक घटना या व्यक्ति के सम्बन्ध में वह जो कुछ दिल से अनुभव करता है उसी की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति उसकी डायरी में मिलती है। इसीलिए अत्यन्त गोपनीय तथा अति आन्तरिक तथ्यों, विचारों तथा

भावनाओं को जानने का डायरी से बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। क्रमबद्ध रूप में लिखी हुई डायरी जीवन - इतिहास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा विश्वसनीय आधार है।

सामाजिक शोध या अनुसन्धान के क्षेत्र में डायरियों का अपना महत्व है। इसका कारण यह है कि डायरियाँ आत्मकथाओं की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होती हैं क्योंकि बहुधा डायरियों को प्रकाशित करने के उद्देश्य से नहीं लिखा जाता है। इसीलिए अत्यन्त गोपनीय विषयों को भी सच्चाई से लिख लिया जाता है क्योंकि लेखक को जनता के जान लेने का भय नहीं होता है। दूसरों की निगाहों में गिरने का भय न रहने के कारण घटनाओं के वर्णन में किसी भी प्रकार का तोड़-मोड़ करने अथवा अपने विचारों को आकर्षक बनाने का मिथ्या प्रयत्न लेखक नहीं करता है। कभी-कभी तो डायरियाँ इसलिए भी लिखी जाती हैं कि बहुत-सी भावनाएँ व विचार, जिन्हें हम दूसरों के सामने कहने में संकोच करते हैं, डायरी में लिखकर अपने मन का भार हल्का कर लेते हैं। इसीलिए डायरियाँ व्यक्ति के जीवन सम्बन्धी अनेक रहस्यों को उद्‌घाटित करती हैं और अनेक घटनाओं के सम्बन्ध में विश्वसनीय तथ्यों को प्रस्तुत करके शोधकार्य में सहायक सिद्ध होती हैं।

उपरोक्त महत्व के होते हुए भी डायरियों की अपनी **कुछ सीमाएँ अथवा दोष** भी होते हैं। इनका पहला दोष यह है कि वे जीवन के नाटकीय तथा संघर्षात्मक अंशों को बढ़ा-चढ़ाकर प्रकट करती हैं जबकि जीवन के शान्तिपूर्ण व स्वाभाविक पक्षों को उनमें स्थान नहीं मिलता है। **दूसरी** बात यह है कि डायरियों को रोज थोड़ा-थोड़ा करके लिखा जाता है इसलिए उसमें क्रमबद्धता का अभाव होता है। एक घटना को दूसरी घटना से जोड़ना अथवा दो विभिन्न समयों में घटित होने वाली एक ही प्रकार की घटना की तुलनात्मक विशेषता को दर्शाना डायरी में उल्लेखित विवरणों के आधार पर अत्यन्त कठिन होता है। डायरियों का **तीसरा दोष** यह है कि इनमें घटनाओं का संकेत मात्र मिलता है क्योंकि डायरी स्वयं अपने लिए लिखी जाती है और इसीलिए घटनाओं को विस्तार में समझाने की आवश्यकता नहीं समझी जाती है। अतः उसको समझने के लिए अनुसन्धानकर्त्ता को अपने अनुमानों पर निर्भर रहना पड़ता है। **चौथी** कमी यह है कि डायरी के अनेक लेखक डायरी में कल्पना व साहित्यिक भाषा की सहायता लेते हैं जिससे कि घटनाओं की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। डायरियों की **पाँचवीं** कमी यह होती है कि डायरियाँ प्रायः लगातार नहीं लिखी जाती हैं, कुछ समय तक लिखने के पश्चात् बन्द कर दिया जाता है या बीच-बीच में लिखा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि घटनाओं के वर्णन में क्रमबद्धता नष्ट हो जाती है। इन दोषों के होते हुए भी इतना मानना ही पड़ेगा कि डायरियों के माध्यम से हमें व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित अनेक आन्तरिक तथा गोपनीय तथ्य व सूचनाएँ प्राप्त हो सकती हैं। इस स्रोत द्वारा प्राप्त सूचनाएँ अन्य प्रलेखों की अपेक्षा कहीं अधिक विश्वसनीय होती हैं।

3. **पत्र (Letters):** पत्र व्यक्तिगत होते हैं और इसीलिए इनके माध्यम से हमें एक व्यक्ति के आन्तरिक विचारों, भावनाओं तथा द ष्टिकोणों का पता चलता है। अपने पत्रों में लेखक प्रायः अकपट रूप में अपने विचारों को प्रस्तुत करता है इसीलिए उसमें व्यक्त उसके कथन पर्याप्त विश्वसनीय होते हैं। तलाक, पारिवारिक तनाव, प्रेम, मित्रता,

वैवाहिक सम्बन्ध, यौन जीवन (Sex Life) आदि महत्वपूर्ण कोमल सामाजिक सम्बन्धों की वास्तविकताओं पर पत्र पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

पर पत्रों की अपनी कुछ सीमाएँ व दोष भी होते हैं और उनमें से **सर्वप्रथम** यह कि व्यक्तिगत (Personal) पत्रों को प्राप्त करना बहुत कठिन होता है। अपने आन्तरिक जीवन से सम्बन्धित पत्रों को, विशेषकर उन पत्रों को जिनमें कि वैवाहिक जीवन व यौन जीवन का विवरण होता है, लोग नष्ट कर डालते हैं अथवा रहते हुए भी उन्हें देने से इन्कार कर देते हैं। पत्रों का **दूसरा** दोष यह है कि उनमें घटनाओं का विस्त त विवरण नहीं मिलता है, उसके लिए कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। **तीसरा** दोष यह है कि घटना की क्रमबद्धता को एक पक्ष के पत्रों से मालूम नहीं किया जा सकता। इसके लिए पत्र और उनके उत्तर दोनों का ही होना आवश्यक है जो कि प्रायः मिल नहीं पाता है। पत्रों का **चौथा** व अन्तिम दोष यह है कि पत्रों में व्यक्त विचार या वर्णन केवल तभी विश्वसनीय होता है जब कि पत्र पाने और पत्र लिखने वाले का पारस्परिक सम्बन्ध आन्तरिक व घनिष्ठ हो। यदि ऐसा नहीं है तो पत्रों में बनावटीपन व औपचारिकता आ ही जाती है।

4. **संस्मरण (Memoirs):** मनुष्यों के द्वारा यात्राओं, जीवन-घटनाओं अथवा महत्वपूर्ण परिस्थितियों के विषय में लिखे गए संस्मरण भी सामाजिक अनुसन्धान में महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करते हैं। प्राचीनकाल में इस प्रकार के यात्रा-वर्णनों तथा संस्मरणों ने महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री प्रदान करके तत्कालीन सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवस्थाओं का विवरण प्रस्तुत करने में अत्यधिक सहायता की है। सर्वश्री मेगास्थनीज़, ह्यूनसाँग, फाहियान, इब्नबतूता के वर्णन अब भी भारतीय इतिहास की अमूल्य निधि हैं। इनके वर्णनों से उस समय के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक जीवन के सम्बन्ध में हमें जो जानकारी प्राप्त होती है वह वास्तव में महत्वपूर्ण है।

परन्तु संस्मरण की अपनी कुछ ऐसी **सीमाएँ व दोष** हैं जिनके कारण सामाजिक अनुसन्धानकर्त्ता को इनसे अधिक लाभ नहीं होता है। उन दोषों में सबसे उल्लेखनीय दोष यह है कि इन संस्मरणों में लेखक के व्यक्तिगत विचारों तथा कल्पनाओं का इतना अधिक पुट होता है कि वह वास्तविक घटनाओं का उचित प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता है। इन संस्मरणों को लिखने वाले प्रायः अधिक रोचक, रोमांचकार व आकर्षक घटनाओं को ही अपने विवरण के लिए चुन लेते हैं और साथ ही उसमें अपना रंग चढ़ाकर उन्हें प्रस्तुत करते हैं।

व्यक्तिगत प्रलेखों का महत्व (Importance of Personal Documents): उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि सामाजिक अनुसन्धान व शोधकार्य में व्यक्तिगत प्रलेखों का अपना महत्व है। व्यक्तिगत जीवन व घटनाओं के सम्बन्ध में ही नहीं अपितु सामाजिक प्रक्रियाओं को भी समझने में इनकी सहायता अत्यावश्यक है। इन प्रलेखों द्वारा विचारों तथा मनोव त्तियों का जितना स्पष्टीकरण सम्भव होता है उतना अन्य किसी साधन के द्वारा नहीं। व्यक्तिगत मनोभाव व द ष्टिकोणों को ठीक से जान लेने से सामाजिक अनुसन्धान में घटनाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में अत्यन्त सहायता मिलती है। व्यक्तिगत प्रलेखों का एक और उल्लेखनीय महत्व यह है कि इनसे प्राप्त सूचनाएँ व तथ्य तुलनात्मक रूप में अधिक विश्वसनीय होते हैं, विशेषकर उन अवस्थाओं में

जब कि लेखक का उद्देश्य अपने लेखों को प्रकाशित करना नहीं होता है। वास्तविक तथ्यों का ज्ञान उनके मूलरूप में व्यक्तिगत प्रलेखों द्वारा हमें जितनी सरलता से प्राप्त हो जाता है, उतना और किसी स्रोत से नहीं हो पाता।

व्यक्तिगत प्रलेखों की सीमाएँ (Limitations of Pesonal Documents): उपरोक्त महत्व के होते हुए भी व्यक्तिगत प्रलेख दोषरहित नहीं होते हैं। इनकी भी अपनी कुछ सीमाएँ होती हैं जिन्हें कि हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं -

(1) व्यक्तिगत प्रलेखों के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय कठिनाई यह है कि इन्हें सरलता से प्राप्त नहीं किया जा सकता। व्यक्तिगत प्रलेख निजी जीवन (Personal Life) से सम्बन्धित होने के कारण उसमें ऐसी अनेक गोपनीय सूचनाएँ होती हैं जिन्हें कि लेखक दूसरों को देने में हिचकिचाते हैं क्योंकि उन्हें यह डर रहता है कि शायद उससे वे दूसरों की निगाहों में गिर जाएँगे।

(2) इस सम्बन्ध में एक और दोष या सीमा का भी उल्लेख किया जा सकता है और वह यह है कि व्यक्तिगत प्रलेखों में जो कुछ लिखा है वह सच है अथवा नहीं इस बात की जाँच करना कठिन होता है क्योंकि ये सभी पिछली घटनाएँ होती हैं और साथ ही लेखक के आन्तरिक जीवन से सम्बन्धित भी। इनमें वर्णित तथ्य बहुधा केवल प्रकाशन या प्रदर्शन के लिए नहीं होते हैं। इसके अतिरिक्त इस लिखित सामग्री में जो साहित्यिक, काल्पनिक व आदर्शात्मक पुट रहता है उसके कारण भी तथ्य की यथार्थता घट जाती है।

(3) व्यक्तिगत प्रलेखों से प्राप्त तथ्य या सूचनाएँ प्रायः विकृत भी हो जाती हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि कोई लेखक इन प्रलेखों को प्रस्तुत करते समय पक्षपात की भावना व मिथ्या-झुकाव (Bias) से अपने को पूर्णतया विमुक्त नहीं रख पाता है। वह अपने आदर्श, सिद्धान्त, मूल्य या 'वाद' (ism) को ही सर्वोत्तम मान बैठने की गलती करता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि व्यक्तिगत प्रलेखों में वैज्ञानिक अलगाव (Scientific Detachment) का नितान्त अभाव होता है। श्री गोट्सचाक (Gottschalk) के मतानुसार यदि हम इस सम्बन्ध में निःसन्देह हो जाएँ कि -

(अ) घटना के वर्णन में लेखक का कोई व्यक्तिगत स्वार्थ निहित नहीं है,

(ब) घटना को किसी भी रूप में विकृत करने से उसका हित होने के बजाय अहित होने की सम्भावना है,

(स) लेखक यह जानता है कि जिस घटना का वह वर्णन कर रहा है उसकी वास्तविकताओं को इतने लोग जानते हैं कि यदि उसने घटना को तनिक भी विकृत किया तो उसका भण्डाफोड़ हो जाएगा और

(द) लेखक ऐसा कुछ वर्णन कर रहा है जो कि सामान्य स्थिति में उसके लिए सम्भव नहीं है तो हम व्यक्तिगत प्रलेखों में वर्णित सूचनाओं व तथ्यों को विश्वसनीय मान सकते हैं।

(4) व्यक्तिगत प्रलेखों की और उल्लेखनीय सीमा यह है कि इनसे प्राप्त सूचनाएँ सम्बन्धित समाज या समुदाय का उचित प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती हैं क्योंकि इनका आधार मौलिक रूप में व्यक्तिगत ही होता है। ये सूचनाएँ व्यक्तिगत जीवन

व घटनाओं की, न कि सामाजिक या सामुदायिक जीवन व घटनाओं की, झाँकी प्रस्तुत करती हैं और इसीलिए सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकालने में इन्हें कहाँ तक उपयोग किया जा सकता है यह गम्भीरतापूर्वक सोचने का विषय है।

2. सार्वजनिक प्रलेख (Public Documents)

तथ्य या सूचना प्राप्त करने का जो प्रलेखीय स्रोत (Documentary Source) है उसका दूसरा प्रकार/भेद सार्वजनिक प्रलेख है। सार्वजनिक प्रलेख वास्तव में वे रिकार्ड होते हैं जिन्हें कि कोई सरकारी या गैर-सरकारी संस्था तैयार करती है। ये दो प्रकार के होते हैं - एक तो अप्रकाशित सार्वजनिक प्रलेख जैसे विभिन्न कम्पनियों, सरकारी विभागों तथा अन्य संस्थाओं द्वारा तैयार रिकार्ड जो कि आम जनता के लिए नहीं होता है और प्राय उन्हें गोपनीय (Confidential) रखा जाता है। दूसरे, प्रकाशित सार्वजनिक रिकार्ड जैसे किसी कमेटी द्वारा सार्वजनिक हित से सम्बन्धित किसी विषय के सम्बन्ध में तैयार की गई रिपोर्ट जो कि हर आम-खास के लिए उपलब्ध हो सकती है। इन दोनों प्रकार के प्रलेखों को निम्नलिखित उपभागों में विभाजित किया जा सकता है :

1. **रिकार्ड (Record):** विभिन्न सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं को अपने प्रतिदिन के कामकाज के लिए अथवा प्रशासकीय (Administrative) आवश्यकताओं को पूर्ति के हेतु अनेक आँकड़ों तथा सूचनाओं का रिकार्ड रखना पड़ता है। इसके अध्ययन से अनेक सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। उदाहरणार्थ, प्रोबेशन दफ्तर (Probation Office) में प्रोबेशन पर छोड़े गए अपराधियों का जो रिकार्ड रहता है उससे इन अपराधियों के सम्बन्ध में अनेक उल्लेखनीय व महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त हो सकती हैं जो कि उनके विषय में किसी भी शोधकार्य का आधार बन सकती हैं। इस प्रकार के रिकार्डों के अतिरिक्त दस्तावेज, बहीखाता, सभाओं, समितियों व कान्फ्रेंसों की रिपोर्ट, लोकसभा तथा अन्य समितियों की कार्यवाही के रिकार्ड भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं और सामाजिक अनुसन्धानकार्य में पर्याप्त सहायक सिद्ध होते हैं क्योंकि इनसे प्राप्त सूचनाएँ विश्वसनीय होती हैं। पर कठिनाई यह होती है कि ये रिकार्ड प्रायः मिल नहीं पाते हैं।

2. **प्रकाशित आँकड़े (Published Statistics):** सरकार तथा गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा अनेक प्रकार के आँकड़े संकलित तथा प्रकाशित किए जाते हैं। भारत सरकार के सूचना मंत्रलय द्वारा प्रतिवर्ष प्रकाशित 'भारत 2002, 2004,' आदि में अनेक महत्वपूर्ण आँकड़ों का संकलन देखने को मिलता है। इसी प्रकार विभिन्न Chamber of Commerce आदि अपने-अपने क्षेत्र से सम्बन्धित आँकड़ों को प्रकाशित करते रहते हैं। प्रतिवर्ष प्रकाशित होने वाले Year Books में भी विविध विषयों पर आँकड़ों का उत्तम संकलन देखने को मिलता है।

3. **पत्र-पत्रिकाओं की रिपोर्ट (Report of the Newspapers etc.):** समाचार पत्र व पत्रिकाओं में समय-समय पर सामाजिक जीवन व घटनाओं से सम्बन्धित अनेक प्रकार की रिपोर्ट तथा सूचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं जिनका उपयोग आवश्यकतानुसार सामाजिक

शोधकार्य में किया जा सकता है। पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकीय लेख जनमत के झुकाव को जानने का एक अति उत्तम साधन है।

4. **अन्य सामग्री (Other Materials):** अन्य बहुत-से प्रकाशित प्रलेख भी तत्कालीन सामाजिक जीवन तथा घटनाओं को समझने में पर्याप्त सहायक सिद्ध होते हैं। उदाहरणार्थ कहानी, उपन्यास, ग्राम्य गीत, चित्र आदि की सहायता से हम जनजीवन सम्बन्धी अनेक वास्तविकताओं को जान सकते हैं क्योंकि इन सबके रचियता किसी न किसी सामाजिक घटना या समस्या को अपने प्रलेख का आधार बनाते हैं।

द्वितीयक या प्रलेखीय स्रोतों का उपयोग
(Utilization of Secondary or Documentary Sources)

द्वितीयक या प्रलेखीय स्रोतों से प्राप्त तथ्यों (Data) या सूचनाओं को बिना समझे-बूझे काम में लाना अत्यन्त घातक सिद्ध हो सकता है। अतः इन स्रोतों से उपलब्ध तथ्यों को उपयोग में लाने से पूर्व उनकी विश्वसनीयता (Realiability) के सम्बन्ध में निःसन्देह हो लेना आवश्यक है। सरकारी विभागों द्वारा प्रकाशित आँकड़े भी काल्पनिक हो सकते हैं। लेखक ने एक विभागीय अधिकारी को यह कहते हुए सुना है कि "पिछले कुछ वर्षो के आँकड़ों के आधार पर ही वर्तमान आँकड़ों को, बिना वास्तविक सूचनाओं को प्राप्त किए, प्रस्तुत करना कोई कठिन काम नहीं है क्योंकि वे आँकड़े गलत हैं यह प्रमाणित करने के लिए कम-से-कम एक साल का समय चाहिए और उस दौरान आँकड़ों में और आगे परिवर्तन हो चुके होते हैं।" अतः इन स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं या आँकड़ों की हर सम्भावित उपायों से पुर्नपरीक्षा कर लेना आवश्यक होता है। इस पुर्नपरीक्षा का एक उपाय तथ्यों का आलोचनात्मक विवेचन है। प्रो. चैपिन (Chapin) ने समालोचना के सिद्धान्तों को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है :

1. सर्वप्रथम प्रलेखों (Documents) की उनके बाह्य या वैषयिक विशेषताओं के सन्दर्भ में समालोचना करनी चाहिए -
   (अ) लेखक की आलोचनात्मक परीक्षा होनी चाहिए।
   (ब) स्रोतों का आलोचनात्मक वर्गीकरण कर लेना चाहिए।
   (स) अनुसन्धानकर्त्ता को अतिछिद्रान्वेषण से बचना चाहिए, नहीं तो वह उसी भर का हो जाएगा और सूचनाओं को अपने लक्ष्य तक पहुँचने के साधन के रूप में उपयोग नहीं कर पाएगा।

2. इसके पश्चात् प्रलेखों की उनकी आन्तरिक या व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) विशेषताओं के सन्दर्भ में समालोचना करनी चाहिये। इस प्रकार की आलोचना अधिक महत्वपूर्ण है। वह विश्लेषणात्मक समालोचना है।
   (क) एक कथन (Statement) से लेखक का क्या तात्पर्य है? उस कथन का साहित्यिक अर्थ नहीं, वास्तविक अर्थ क्या है?
   (ख) क्या वह कथन सत्यनिष्ठा के साथ (in good faith) कहा गया है?
      (i) क्या पाठक को धोखा देने में लेखक का कोई स्वार्थ था?
      (ii) क्या असत्य कहने के सम्बन्ध में लेखक पर दबाव डाला गया?
      (iii) क्या असत्य कहने के सम्बन्ध में लेखक सहानुभूति अथवा विरोधभाव द्वारा प्रभावित था?

(iv) क्या झूठे-अभिमान (Vanity) ने लेखक को प्रभावित किया?

(v) क्या वह जनमत द्वारा प्रभावित था?

(vi) क्या सत्य को विकृत करने का कोई साहित्यिक या नाटकीय (Dramatic) इरादे का कोई प्रमाण है?

(ग) क्या कथन यथार्थ (Accurate) अथवा ठीक है? या और भी विशिष्ट रूप में -

(i) क्या अपने मानसिक दोष या अस्वाभाविकता के कारण लेखक एक तुच्छ निरीक्षक (Poor Observer) था?

(ii) क्या समय तथा स्थान के विषय में लेखक की स्थिति खराब होने के कारण वह ठीक से निरीक्षण न कर सका?

(iii) क्या वह लापरवाह या उदासीन था?

(iv) क्या तथ्य इस प्रकार का था कि उसका प्रत्यक्ष निरीक्षण सम्भव न था?

(v) क्या लेखक एक मूक-दर्शक या एक प्रशिक्षित निरीक्षक (Trained Observer) था?

(घ) जब यह प्रतीत हो कि लेखक कोई मूल निरीक्षक नहीं था, तब उसके सूचना के स्रोतों की सत्यता व यथार्थता की जाँच कर लेना आवश्यक है।

3. विशिष्ट तथ्यों की जाँच तुलनात्मक विधि द्वारा कर लेनी चाहिए जो कि सहमति और असहमति (Contradictions) दोनों को ही ध्यान में रखता है और हर सम्भावित आधारों पर निष्कर्ष निकालता है।

उपरोक्त आधारों पर परीक्षणात्मक जाँच (Test Checking) कर लेने से द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं व आँकड़ों की विश्वसनीयता के सम्बन्ध में निश्चित हुआ जा सकता है और अनुसन्धान-कार्य में अधिकाधिक परिशुद्धता व यथार्थता पनपने की सम्भावना रहती है।

जनगणना का महत्व
(Importance of Census)

भारत जैसे देशों में जहाँ की सांख्यिकीय सामग्री को प्राप्त करने के स्रोत या साधन सीमित व दोषपूर्ण हैं वहाँ जनगणना के महत्व को शायद ही कम किया जा सकता है। जनगणना के द्वारा सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन के अनेक महत्वपूर्ण पक्षों के विषय में विश्वसनीय आँकड़े व सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं। जनगणना की रिपोर्ट का अध्ययन करने पर हमें अपने देश के परिवार के आकार, गाँव व शहर में जनसंख्या का वितरण, स्त्री-पुरुष का अनुपात, विभिन्न भाषा बोलने वालों की संख्या, विभिन्न धर्मों के समर्थकों की संख्या, विभिन्न पेशों में लगी हुई श्रमशक्ति, शिक्षा का स्तर, आयु का वितरण, जन्म तथा म त्युदर, वैवाहिक स्थिति, जनसंख्या की व द्धि की दर, औसत आयु आदि के विषय में बहुत-कुछ यथार्थ जानकारी प्राप्त हो सकती है। परोक्ष रूप में जनगणना से हमें विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याओं का भी आभास होता है। इन सब द ष्टिकोणों से जनगणना का अत्यधिक महत्त्व है और इसीलिए यह कहा गया है कि **जनगणना नियोजना विकास की कुंजी है।**

अध्याय - 7
निरीक्षण या अवलोकन
(Observation)

निरीक्षण या अवलोकन
(Observation)

निरीक्षण-प्रविधि सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्धित अनुसन्धान-कार्यों के सन्दर्भ में कोई नवीन प्रविधि नहीं है। सामाजिक विज्ञानों की बात तो और है, प्राकृतिक विज्ञानों में तो इस प्रविधि का सम्भवतः शुरू से ही प्रयोग होता आया है प्रो. गुड एवं हॉट ने उचित ही लिखा है कि "विज्ञान निरीक्षण से प्रारम्भ होता है, और फिर सत्यापन के लिए अन्तिम रूप से निरीक्षण पर ही लौटकर आना पड़ता है।" प्रो. गुड एवं हॉट का उपरोक्त कथन उचित ही है। वास्तव में कोई भी वैज्ञानिक किसी भी घटना या अवस्था को उस समय तक स्वीकार नहीं करता, जब तक कि वह स्वयं उसका अपनी इन्द्रियों से निरीक्षण (Observation) न कर ले।

सामाजिक विज्ञानों के बारे में भी यही तथ्य सत्य है। कोई भी सामाजिक अनुसन्धान-कार्य तब तक अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर पाता, जब तक कि उनमें निरीक्षण-प्रविधि का प्रयोग न किया गया हो। इसी निरीक्षण-प्रविधि का, समाज-वैज्ञानिक द्वारा, अपने ही साथी एवं स्वजातीय मनुष्यों तथा संस्थाओं के निरीक्षण हेतु प्रयोग किया जाता है। समाजशास्त्र के पिता श्री अगस्त कॉम्टे (Auguste Comte) जब समाजशास्त्र की रूपरेखा बना रहे थे, तब उन्होंने यह अनुभव किया कि यदि समाजशास्त्र को वैज्ञानिक आधारों को विषय बनाना है तो निरीक्षण-प्रविधि द्वारा उसकी विषय-वस्तु का अध्ययन होना चाहिए। उन्होंने प्रत्यक्ष निरीक्षण (Direct Observation) द्वारा सामाजिक घटनाओं के अध्ययन पर बल दिया। तभी से निरीक्षण-प्रविधि समाजशास्त्र की महत्त्वपूर्ण-प्रविधि बन गई सम्भवतः इससे पूर्व भी सामाजिक विज्ञानों में इस प्रविधि का प्रयोग होता आया है। प्रो. मोजर ने इसीलिए इसको वैज्ञानिक अनुसन्धान की 'शास्त्रीय पद्धति' (Classical Method) कहा है।

अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning & Definition)

निरीक्षण शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द 'Observation' का पर्यायवाची है, जिसका अर्थ होता है 'देखना', 'अवलोकन करना' या 'निरीक्षण करना'। किन्तु सामाजिक अनुसन्धान की एक व्यवस्थित पद्धति के रूप में निरीक्षण का अपना एक प थक् ही अर्थ है। यदि संक्षेप में कहा जाए तो निरीक्षण का अर्थ है 'कार्य-कारण अथवा पारस्परिक सम्बन्ध को जानने के लिए स्वाभाविक रूप से घटित होने वाली घटनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण'।

डा. पी. वी. यंग के अनुसार, "निरीक्षण को नेत्रों द्वारा सामूहिक व्यवहार एवं जटिल सामाजिक संस्थाओं के साथ-ही-साथ सम्पूर्णता की रचना करने वाली प थक् इकाइयो के अध्ययन की विचारपूर्ण पद्धति के रूप मे प्रयुक्त किया जा सकता है"। प्रो. सी. ए. मोजर ने निरीक्षण के बारे मे कहा है कि 'ठोस अर्थ में निरीक्षण में कानों तथा वाणी की अपेक्षा आँखों के प्रयोग की स्वतन्त्रता है।" **ऑक्सफोर्डै कान्साइज शब्द-कोष** में निरीक्षण की परिभाषा इस प्रकार दी गई है, "घटनाएँ कार्य-कारण अथवा पारस्परिक सम्बन्धों के सम्बन्ध, जिस रूप में वे उपस्थित होती हैं, का यथार्थ निरीक्षण एवं वर्णन है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि निरीक्षण-प्रविधि प्राथमिक सामग्री (Primary Data) के संग्रहण की प्रत्यक्ष प्रविधि है। निरीक्षण का तात्पर्य उस प्रविधि से है जिसमें नेत्रों द्वारा नवीन अथवा प्राथमिक तथ्यों का विचार-पूर्वक संकलन किया जाता हो, साथ ही इस प्रविधि में अनुसन्धानकर्त्ता अध्ययन के अन्तर्गत आए समूह के दैनिक जीवन मे भाग लेते हुए अथवा उससे दूर बैठकर उनके सामाजिक एवं व्यक्तिगत व्यवहारों का अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा निरीक्षण करता है।

अवलोकन प्रणाली की विशेषताएँ
(Characteristies of Observation Method)

विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई अवलोकन प्रणाली की परिभाषाओं के आधार पर इस प्रणाली की कुछ विशेषताएँ बताई जा सकती है जो निम्नलिखित हैं :

1. **प्राथमिक सामग्री (Primary Data):** अवलोकन प्रणाली का उपयोग की प्राप्ति के लिए किया जाता है। सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में अवलोकन के द्वारा तथ्यों के संकलन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अध्ययनकर्त्ता को समस्त सामग्री प्रत्यक्ष सम्पर्क के द्वारा ही नहीं मिलती है कुछ तथ्य ऐसे भी होते हैं जिनकों अवलोकन के द्वारा नोट किया जाता है।

2. **प्रत्यक्ष अध्ययन (Direct Study):** अवलोकन प्रणाली की एक विशेषता यह है कि इसमें प्रत्यक्ष रूप से अध्ययन किया जाता है। अध्ययकर्ता स्वयं भी अपने अध्ययन क्षेत्र में जाता है, अवलोकन करता है और आँकड़ों का संकलन करता है। यही प्रत्यक्ष अध्ययन प्रणाली हैं।

3. **मानव इन्द्रियों का पूर्ण उपयोग (Full Use of Human Senses):** अवलोकन करने मे मानव इन्द्रियों का प्रयोग प्रधान हैं, यद्यपि अवलोकन करते समय कानों का भी प्रयोग करते हैं, परन्तु इनका उपयोग अपेक्षाकृत कम होता है। इसमें अधिकतर आँखों के प्रयोग पर अधिक महत्त्व दिया जाता है। जो मानव इन्द्रियाँ अवलोकन करती हैं उसी को अध्ययनकर्ता संकलित कर लेता है।

4. **विचारपूर्वक अध्ययन (Deliberate Study):** अवलोकन प्रणाली में सदैव ही विचारपूर्वक अध्ययन किया जाता है। मानव कुछ न कुछ सदैव अपने चारों ओर देखता रहता है, परन्तु वैज्ञानिक द ष्टिर्कोण से इसे अवलोकन नहीं कहा जा सकता है। अवलोकन का तो एक विशेष प्रयोजन होता है। इसीलिए उसका गहन व विचारपूर्वक अध्ययन किया जाता है।

5. **सामूहिक व्यवहार (Collective Behaviour):** अवलोकन प्रणाली की अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस प्रणाली का प्रयोग सामूहिक व्यवहार के अध्ययन के लिए किया जाता है।

6. **सूक्ष्म अध्ययन** (Minute Study): इस पद्धति के द्वारा विषय-वस्तु के बारे मे सुक्ष्म अध्ययन सम्भव है जिससे किसी भी प्रकार की गलती की सम्भावना नहीं रहती है। अध्ययन करते समय इसके अन्तर्गत विषय-वस्तु के किसी भी पक्ष को छोड़ा नहीं जाता है। प्रत्येक द ष्टिकोण से हर प्रकार के परीक्षण की प्रक्रिया सम्भव है।

7. **पारस्परिक सम्बन्ध** (Mutual Relationship): अवलोकन पद्धति के अन्तर्गत पारस्परिक सम्बन्ध है। यही कारण है कि अवलोकन पद्धति का प्रयोग इस द ष्टिकोण से दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही जा रहा है।

8. **कारण-सम्बन्ध का पता लगाना** (To Know about Cause-Effect Relationship): अवलोकन प्रणाली का उद्देश्य विषय-वस्तु से सम्बन्धित घटनाओं एवं तथ्यों का पता लगाना भी है।

सामान्य देखना बनाम वैज्ञानिक अवलोकन
(Seeing Vs. Scientific Observation)

हम अपने आस-पास होने वाली घटनाओं को निरन्तर देखते हैं। सुबह होने पर हम अपनी खड़की से यह देखते हैं कि सूर्य उदय हुआ है या नहीं, कहीं बाहर वर्षा तो नहीं हो रही है। यदि हम मोटर चला रहे होते हैं तो यह ध्यान रखते हैं कि कहीं कोई बालक हमारी गाड़ी से कुचल न जाए, कहीं हमारी गाड़ी टकरा न जाए साथ ही यह ध्यान रखते हैं कि सड़क पर मार्गदर्शक लाल रोशनी है अथवा हरी आदि। इस प्रकार के अनेक ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जो यह प्रकट करते हैं कि निद्रावस्था को छोड़कर आँखें निरन्तर कुछ न कुछ देखने में व्यस्त रहती हैं। आँखों का प्रयोग केवल जीवन की दैनिक क्रिया-कलापों को देखने के लिए ही नहीं किया जाता अपितु देखना वैज्ञानिक शोध की एक आधारभूत विधि है।

यद्यपि हम सभी अपने आस-पास घटित होने वाली घटनाओं को देखते हैं किन्तु अवलोकन इससे भिन्न है। उदाहरण के लिए, हम अपने सामान्य अनुभव के आधार पर यह कहते हैं कि प थ्वी सापेक्षिक रूप में चमटी ह। इस बात की पुष्टि कोई भी व्यक्ति थोड़ा-सा देखकर कर सकता है। किन्तु जैसा कि हमें अपने वैज्ञानिक अनुभवो द्वारा पता है कि वास्तव में जिस प्रकार की प थ्वी को हम देखते हैं, वह चपटी न होकर गोल है। यह एक उदाहरण ही सामान्य देखने तथा वैज्ञानिक देखने के बीच के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। सामान्य देखने के द्वारा हम प्रमाणिक परिणामों को प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकते, अतः देखना हमारे जीवन के बहुत सारे अनुभवों का आधार होते हुए भी वैज्ञानिक रूप से देखने से भिन्न है। इस भिन्नता को परिलक्षित करने के लिए तथा वैज्ञानिक देखने के लिए हम 'अवलोकन' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं।

सैलिज, जहोदा, डेयुटस्च तथा कुक के अनुसार सामान्य देखना एक वैज्ञानिक पद्धति के रूप में अवलोकन का रूप धारण कर लेता है जब उसमे निम्न विशेषताएँ जुड़ जाती है।

(1) जब अवलोकन का एक विशिष्ट उद्देश्य हो।

(2) जब अवलोकन नियोजित तथा सुव्यवस्थित रूप से किया गया हो।

(3) जब अवलोकन की प्रामाणिकता तथा विश्वसनीयता पर आवश्यक नियन्त्रण एवं प्रतिबन्ध लगाया गया हो।

(4) जब अवलोकन के निष्कार्षो को क्रमबद्ध रूप मे लिखा गया हो तथा सामान्य उपकल्पना के साथ उसका सह-सम्बन्ध स्थापित किया गया हो।

पी. वी. यंग ने वैज्ञानिक अवलोकन की निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है :

(1) निश्चित उद्देश्य,

(2) योजना तथा प्रलेखन की व्यवस्था,

(3) वैज्ञानिक परीक्षण तथा नियन्त्रण हेतु उपयोगी।

इन विशेषताओं के अतिरिक्त श्रीमती यंग ने अवलोकन के सम्बन्ध में एक और महत्त्वपूर्ण बात की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि अवलोकनकर्त्ता को अप्रत्याशित तथा आकस्मिक घटनाओं के प्रति भी सतर्क रहना चाहिए तथा उन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उनका विचार है कि "ऐसी अप्रत्याशित घटनाओं का अवलोकन कभी-कभी महत्त्वपूर्ण तथ्यो का प्राप्त करने तथा नवीन उपकल्पनाओं एवं सिद्धान्तों को जन्म देने की शोध प्रक्रिया में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।"

सेलिज, जहोदा एवं कुक तथा पी. वी. यंग के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैज्ञानिक अवलोकन एक विशिष्ट ढंग से किया जाता है, उसकी कुछ विशेषताएँ हैं जो उसे सामान्य देखने की प्रक्रिया से भिन्न करती हैं।

1. अवलोकन का एक उद्देश्य होता है

अवलोकन का अर्थ सामान्य अनुभव प्राप्त करने के लिए केवल मात्र इधर-उधर देखना नहीं होता अपितु वैज्ञानिक अवलोकन सतर्कतापूर्ण, पूर्व-निर्धारित उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाता है। चार्ल्स डारविन ने एक स्थान पर लिखा कि यह कितना अजीब है कि किसी भी व्यक्ति को सभी कुछ नहीं देखना चाहिए, अवलोकन तभी लाभप्रद हो सकता है जब अवलोकन किसी द ष्टि बिन्दु के पक्ष अथवा विपक्ष में किया गया हो। इसी प्रकार के कुछ विचार पी. वी. यंग ने अभिव्यक्त किए हैं। हम बहुत सारी जटिल घटनाओं को देखते रहते हैं किन्तु हमारा देखना तभी अत्यधिक अर्थपूर्ण होता है जब हमारी आँखें किसी अध्ययन के लिए अपनाई गई विचार द ष्टि तथा प्रारम्भिक उपकल्पना के अनुरूप कार्य करती हों। उदाहरण के लिए, यदि हम यह जानना चाहते हैं कि सड़कों पर दुर्घटनाएँ क्यों होती हैं? सड़कों पर दुर्घटनाएँ तंग अथवा टूटी-फूटी सड़कों के कारण नहीं होती जैसाकि समान्य रूप में समझा जाता है अपितु दुर्घटनाएँ वाहनों की तेज रफ्तार के कारण होती हैं। यह उपकल्पना हमारे अवलोकनों का उद्देश्य हो सकती है। इस उद्देश्य के अनुसार अब हम अपना ध्यान वाहनों की रफ्तार तथा उनके परिणामों पर केन्द्रित करते हैं तब हम अपना ध्यान इधर-उधर की बातों जैसे सड़कों पर से गुजरने वाले विभिन्न प्रकार के वाहनों, सड़क की परिपाटियों, सड़क की दिशा, वाहन चालक अथवा उनकी वेश-भूषा, वाहन के यात्री, वाहन का रंग अथवा नम्बर आदि से हटाकर पूर्णतया वाहन की रफ्तार पर केन्द्रित कर देते हैं, ताकि हम अपनी उपकल्पना की परीक्षा कर सकें। उपरोक्त उपकल्पना यदि हमारे परीक्षण द्वारा सिद्ध नहीं होती तब हम दूसरी उपकल्पना का निर्माण करेंगे और उसके अनुरूप ही हम सार्थक घटनाओं का अवलोकन करेंगे।

इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि अवलोकन हेतु निर्धारित लक्ष्य हमारी दिशा का निदर्शन करता है तथा सार्थक तथ्यों पर बल देता है जिस पर हमें अपना ध्यान केन्द्रित करना होता है।

2. अवलोकन में एक व्यवस्था होती है

अवलोकन में एक व्यवस्था होती है। वैज्ञानिक अवलोकन मनमाने ढंग से नहीं किया जाता है, वरन् यह नियोजित ढंग से किया जाता हैं। अवलोकन करने से पूर्व 'किन', 'कब', 'क्यों', 'कैसे', तथा 'कहाँ' प्रश्नों के सम्बन्ध में एक पूर्ण विचार कर लिया जाता है।

3. अवलोकन चयनात्मक होता है

हमारी आँखोंके सामने जो घटनाएँ घटित होती हैं, उसमें से हम देखते समय कुछ चीजों तथा घटनाओं को ही देखते हैं तथा कुछ को अकारण रुचि-अरुचि के आधार पर छोड़ देते हैं किन्तु वैज्ञानिक अवलोकन के सामान्य देखने की भाँति अवलोकन की जाने वाली घटनाओं का चुनाव रुचि-अरुचि के द्वारा नहीं किया जाता, अपितु शोध के उद्देश्य के आधार पर किया जाता है। गुडे तथा हट्ट ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "हम सभी कुछ चीजों को देखते हैं किन्तु कुछ को नहीं देख पाते। हमारी सतर्कता तथा प्राथमिकताएँ हमारे ज्ञान की गहनता तथा विस्तार तथा हमारा लक्ष्य जिसे हम प्राप्त करना चाहते हैं ये सभी हमारे चयनात्मक अवलोकन के रूप का निर्धारण करते हैं। बहुत कम ऐसे छात्र होते हैं जो सामाजिक व्यवहार का अध्ययन सोच समझकर करते हैं। इसे हम एक उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं। यदि हम विद्यार्थियों के एक समुह को कोई कारखाना (Factory) दिखाने ले जाएँ और उन्हें अपने अवलोकन की एक रिपोर्ट लिखने को कहें तो इस रिपोर्ट से यह ज्ञात होगा कि अधिकाँश विद्यार्थियों ने सामाजिक व्यवहार की सूक्ष्मताओं को देखने की अपेक्षा ऐसी क्रियाओं अथवा प्रक्रियाओं को देखने में अधिक रुचि प्रदर्शित की, जो एक समाज विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए महत्त्वहीन थी। जैसे कारखाने में घूमते समय किसी मशीन के चलने के ढंग, उसकी रफ्तार, उससे निकलने की आवाज, प्रदर्शन कक्ष में रखी हुई नारी का मॉडल देखने में उन्होंने अधिक समय गुजारा और सामाजिक व्यवहार की कुछ आवश्यक, बातों को वे नोट करना भूल गए, जैसे कारखाने में शोरगुल-पूर्ण वातावरण में कर्मचारी आपस में किस प्रकार एक-दूसरे से बातचीत करते हैं, करखाने मे मजदूरों का वितरण आयु तथा लिंग के आधार पर किस प्रकार हुआ है, आदि।

संक्षेप में हम स्पष्ट दिखाने वाले व्यवहार के प्रति सजग रहते हैं किन्तु हम में से बहुत कम हमारे आस-पास होने वाली सामाजिक अन्त क्रियाओं की सूक्ष्मता को जान पाते हैं।

4. अवलोकन का प्रलेखन

अवलोकन किये जाने के तुरन्त बाद अथवा जितना शीघ्र हो सके उसका प्रलेखन किया जाता है जिससे अवलोकित घटनाओं के किसी भी पक्ष को भुलाया न जा सके, इसके लिए अनुसूची अथवा अन्य साधनों जैसे कैमरा, टेपरिकार्डर आदि का प्रयोग भी हेतु किया जाता है।

5. प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा अवलोकन

वैज्ञानिक अवलोकन एक तकनीकी प्रक्रिया है अतः इसके लिए एक सामाजिक वैज्ञानिक को अपने आपको प्रशिक्षित करना होगा है। उदाहरण के लिए किसी भी यन्त्र का प्रयोग व्यक्ति सही ढंग से तभी कर सकता है जब उसने उस यन्त्र के प्रयोग का प्रशिक्षण लिया हो।

6. अवलोकन के परिणामों का परीक्षण तथा प्रमाणीकरण

वैज्ञानिक अवलोकन की एक और विशेषता यह है कि व्यवस्थित अवलोकन द्वारा प्राप्त परिणामों का परीक्षण ही नहीं अपितु प्रमाणीकरण भी सम्भव है। यह प्रमाणीकरण अन्य अवलोकनकर्त्ताओं द्वारा प्राप्त परिणामों से अथवा इसी अध्ययन को दुबारा करके किया जा सकता है।

अवलोकन प्रणाली के गुण अथवा महत्त्व (Merits or Importance of Observation Method)

वैज्ञानिक अनुसन्धान के क्षेत्र में मानव द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली यह सर्वप्रथम प्रणाली है इतना ही नहीं ज्ञान की समस्त शाखाओं में इस प्रणाली का व्यापक उपयोग किया जा रहा है। साथ ही सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में भी इसका विस्त त प्रयोग हो रहा है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सामाजिक तथा प्राकृतिक सभी विज्ञानों में अवलोकन प्रणाली का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनुसंधान के हर स्तर पर अवलोकन प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। इस सम्बन्ध में प्रो. गुडे एवं हाट ने लिखा है कि **"विज्ञान अवलोकन से आरम्भ होता है तथा अपनी अन्तिम सत्यापनशीलता के लिए भी इसे अवलोकन पर निर्भर रहना पड़ता है।"**

अवलोकन के गुणों अथवा महत्त्व को निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है :

1. **सत्यापन की सुविधा** (Facility of Verification): इस प्रविधि का एक प्रमुख गुण यह है कि इसके द्वारा प्राप्त सूचनाओं के सत्यापन को भी आसानी से आँका जा सकता है। अध्ययनकर्ता एक ही सामाजिक घटना का कई बार अवलोकन करके उस घटना की सत्यता परख सकता है। इस प्रकार की सुविधा अन्य प्रविधियों में देखने को कम मिलती है।

2. **विश्वसनीयता** (Reliability): अवलोकन प्रणाली एक विश्वसनीय प्रणाली है क्योंकि इसके द्वारा घटनाएँ जिस रूप में घटित होती है, उसका उसी रूप में आलेखन करना सम्भव होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस प्रविधि द्वारा प्राप्त सूचना अन्य पद्धतियों द्वारा प्राप्त हुई सूचना से कहीं अधिक विश्वसनीय होती हैं इस सम्बन्ध में मोजर (Moser) ने लिखा है कि, **"व्यक्तियों से यह पूछने के बजाय कि वे क्या करते हैं। एक अध्ययनकर्त्ता विभिन्न प्रकार की अतिशयोक्तियों, प्रतिष्ठा सम्बन्धी विचारों और स्म ति की त्रुटियों से उत्पन हाने वाले पक्षपात को दूर करने के लिए लोगों के व्यवहारों को स्वयं अधिक अच्छी तरह देख सकता है।"**

3. **सरलता** (Simplicity): अन्य प्रविधियों की तुलना में अवलोकन प्रविधि अधिक सरल है क्योंकि अपनी जिज्ञासा का समाधान करने के लिए मानव सदैव से ही विभिन्न तथ्यों और घटनाओं का अवलोकन करता रहता है। यह विधि इसलिए भी सरल है कि इसके उपयोग के लिए विशेष प्रशिक्षण तथा धन की आवयकता नहीं होती है।

4. **सर्वाधिक प्रचलित प्रविधि** (Most Popular Technology): इसमें कोई संदेह नहीं हे कि अवलोकन प्रविधि सर्वाधिक प्रचलित पद्धति है। प्रायः प्रत्येक प्रकार के विज्ञानो में अनुसंधान कार्यों में इस पद्धति का प्रयोग होता हैं इस रूप में यह और भी अधिक परिमार्जित पद्धति है।

5. **परिकल्पना में सहायक** (Helpful in the formulation of Hypothesis): परिकल्पनाओं के निर्माण में भी अवलोकन पद्धति अत्यधिक सहायक होती है। अध्ययनकर्ता अनेक घटनाओं

का अध्ययन करता रहता है और इस तरह उसका ज्ञान बढ़ता रहता है। इस तरह ज्ञान का बढ़ना परिकल्पनाओं के निर्माण के मुख्य साधन हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि घटनाओं के इन विशाल अनुभवों के आधार पर वह विभिन्न परिकल्पनाओं का निर्माण कर सकता है।

6. **यथार्थता** (Accuracy): इस प्रणाली के द्वारा एकत्रित किये गये तथ्यों मे वास्तविकता की सम्भावना रहती है जो कि अध्ययन विषय के द ष्टिकोण से काफी महत्त्वपूर्ण है।
7. **प्राथमिकता** (Preliminary): अध्ययन वस्तु की जाँच के द ष्टिकोण से यह पद्धति सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योंकि निरीक्षण के द्वारा जो तथ्य एकत्रित किये जाते हैं वे सही होते हैं।

अतः अन्त में यह कहा जा सकता है कि केवल अवलोकन ही एक ऐसी प्रणाली है जो सबसे अधिक उपयुक्त है एवं जिसका उपयोग सभी विज्ञानों में समान रूप से किया जाता है।

अवलोकन प्रणाली के अवगुण या दोष (Demerits of Observations Method):

गुणों के साथ ही इसके कुछ दोष भी हैं। इस सम्बन्ध में डा. पी. वी. यंग ने लिखा है कि, **"वास्तव में सभी घटनाएँ अवलोकन के लिए उपयुक्त भी नहीं होती, सभी घटनाओं के घटित होते समय अवलोकनकर्त्ता वहाँ उपस्थित भी नहीं होता तथा न ही विभिन्न अवलोकन प्रविधियों के द्वारा सभी प्रकार की घटनाओं का अध्ययन किया जा सकता है।"** इस तरह कहा जा सकता है कि अवलोकन प्रविधि स्वयं में अपूर्ण है एवं इसके दाषों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

सामान्यतया लोगों में यह प्रव त्ति पायी जाती है कि जब उनका अवलोकन किया जाता है तो वे अपने व्यवहार में बनावटीपन लाने का प्रयत्न करते हैं और अपने आपकों वास्तविकता से परे करने का प्रयत्न करते हैं। साधारणतया यह स्थिति उस समय तक बनी रहती है जब लोगों को पता चलता है कि उनका अवलोकन किया जा रहा है। इस प्रकार अवलोकन के समय लोग अपने सामान्य व्यवहार में कुछ न कुछ परिवर्तन कर देते हैं। इस तरह अध्ययनकर्त्ता द्वारा सही परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते हैं। अतः अवलोकनकर्त्ता को इस बात की सावधानी बरतनी होगी कि अवलोकन के समय उसके अध्ययन विषय (लोगों को) से अवलोकन का बिल्कुल भी आभास न हो तभी परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

अवलोकनकर्त्ता की अवलोकन क्षमता की मात्रा द्वारा भी अवलोकन की उपयोगिता न्यूनाधिक होती रहती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अध्ययनकर्त्ता किन्ही तथ्यों को बेकार एवं अनुपयोगी समझकर उसके अवलोकन को महत्त्व नहीं देता लेकिन वे वास्तव में समस्या के अध्ययन की द ष्टि से अत्यधिक उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। इस तरह अध्ययनकर्ता के सीमित ज्ञान के कारण सही परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते हैं इस प्रकार की कमी को दूर भी किया जा सकता है। इसके लिए अध्ययनकर्त्ताओं को उनके अध्ययन स्थल के बारे में प्रशिक्षित करना जरूरी है। इस प्रशिक्षण से वे सही बातें प्राप्त कर सकते हैं अन्यथा **"अवलोकन किए जाने वाले समूह को जब यह पता चल जाता है कि उनके क्रिया-कलापो का अध्ययन किया जा रहा है तो वे जान-बुझकर एक विशेष प्रकार से व्यवहार करना आरम्भ कर देते हैं।"** इस सम्बन्ध मे आगे जॉन मैज ने लिखा है कि, **"हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ अत्यधिक विभिन्नतायुक्त त्रुटिपूर्ण और एक विशेष वेग से कार्य करने वाली होती हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की तुलनायें करने के लिए भी वे ज्ञानेन्द्रियाँ मूल रूप से ही दोषपूर्ण होती हैं।**

इन दोषों के अतिरिक्त श्रीमती पी. वी. यंग ने भी अवलोकन प्रणाली की सीमाओं की ओर संकेत किया है। उनके अनुसार अवलोकन प्रणाली के प्रयोग मे निम्नलिखित तीन प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं-

(अ) कुछ घटनायें ऐसी होती हैं जिनका अवलोकन निषिद्ध होता है।

(ब) अवलोकन की जा सकने वाली कुछ घटनायें ऐसी होती हैं जिनसे घटित होने का समय व स्थान पूर्ण निर्धारित न होने के कारण अवलोकन सम्भव नहीं होता हैं, एवं

(स) कुछ घटनाओं की प्रव त्ति ही ऐसी होती है जिनका अवलोकन करना समभव नहीं है। इस प्रकार की घटनाओं की प्रकृत्ति के स्पष्टीकरण के आधार पर श्रीमति यंग ने अवलोकन प्रणाली के सीमित उपयोग की ओर संकेत किया है। अवलोकन की सफलता के लिये सर्वप्रथम अध्ययनकर्त्ता द्वारा यह निर्धारित कर लेना आवश्यक है कि अवलोकन किन व्यक्तियों अथवा तथ्यों का करना है। अवलोकन का कौन-सा दिन सबसे अधिक उपयुक्त हो सकता है साथ ही अवलोकित तथ्यों का आलेखन किस प्रकार किया जायेगा। कोई भी अध्ययकर्त्ता अकेले तथ्यों का तब तक अवलोकन नहीं कर सकता जब तक कि उसे अध्ययन स्थल के लोगों से सहयोग प्राप्त न हो। अवलोकन की सम्पूर्ण प्रक्रिया में अवलोकन निर्देशिका, अवलोकन कार्ड तथा अवलोकन चार्ट के समुचित उपयोग का विशेष महत्त्व होता है।

अवलोकन के प्रकार
(Kinds of observations)

अध्ययन की सुविधा के द ष्टिकोण से अवलोकन को प्रायः निम्नलिखित 6 भागों में विभाजित किया जाता है :

1. अनियन्त्रित अवलोकन या निरीक्षण (Uncontrolled Observations)
2. नियन्त्रित अवलोकन या निरीक्षण (Controlled Observations)
3. सहभागी निरीक्षण या अवलोकन (Participant Observations)
4. असहभागी निरीक्षण या अवलोकन (Non-Participant Observations)
5. अर्द्धसहभागी निरीक्षण या अवलोकन (Quasi-Participant Observations)
6. सामूहिक निरीक्षण या अवलोकन (Mass Observations)

अवलोकन या निरीक्षण के अपरोक्त प्रकारों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है :

1. **अनियन्त्रित अवलोकन या निरीक्षण (Uncontrolled Observation)**

अनियन्त्रित निरीक्षण ऐसे निरीक्षण को कहा जा सकता है जबकि उन लोगों पर जिनका कि हम निरीक्षण कर रहे हैं, निरीक्षण करते समय किसी प्रकार का नियन्त्रण न रहे। दूसरे शब्दों में, जब प्राकृतिक पर्यावरण एवं अवस्था मे किन्हीं क्रियाओं का निरीक्षण किया जाता है, साथ ही क्रियाएँ किसी भी बाह्य शक्तियों द्वारा संचालित एवं प्रभावित नहीं की जाती, तो ऐसे निरीक्षण को अनियन्त्रित निरीक्षण कहा जाएगा।

डा. पी. वी. यंग ने अनियन्त्रित निरीक्षण का अर्थ बताते हुए कहा है, कि "अनियन्त्रित निरीक्षणों में हमें वास्तविक जीवन की परिस्थितियों की सूक्ष्म परीक्षा करनी होती है, जिनमें यथार्थता के यन्त्रों के प्रयोग अथवा निरीक्षण की हुई घटना की शुद्धता की जाँच का कोई

प्रयत्न नहीं किया जाता।" डा. यंग के कथन से स्पष्ट ही है कि अनियन्त्रित निरीक्षण में निरीक्षणकर्त्ता घटनाओं एवं सामाजिक परिस्थितियों का केवल निरीक्षण ही करता है, और समाजिक सम्बन्धों के बारे में ज्ञान का संकलन करता है। निरीक्षणकर्त्ता निरीक्षण की हुई घटना को परखता नहीं है।

वास्तव में सामाजिक अनुसन्धान में यह प्रविधि अर्थात् अनियन्त्रित निरीक्षण अत्यधिक प्रयुक्त होती है। **प्रो. गुड एवं हॉट** ने तो यहाँ तक कहा है कि, "मनुष्य के पास सामाजिक सम्बन्धों के बारे मे जो कुछ भी ज्ञान है, उसका अधिकांश अनियन्त्रित निरीक्षण के द्वारा ही प्राप्त हुआ है, चाहे वह निरीक्षण सहभागी हो, या असहभागी।" स्पष्ट ही है कि अनियन्त्रित निरीक्षण सामाजिक घटनाओं के अध्ययन की एक सुद ढ़ प्रविधि है।

अनियन्त्रित निरीक्षण की उपयोगिता (Importance of Un-controlled Observation): जहाँ तक सामाजिक अनुसन्धान में अनियन्त्रित निरीक्षण की उपयोगित का प्रश्न है प्रायः कोई भी इस तथ्य से मुँह न छिपाएगा कि अधिकतर सामाजिक अनुसन्धान-कार्य इसी प्रकार के निरीक्षण द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं और इसका मुख्य कारण यह है कि सामाजिक घटना की कुछ इस प्रकार की प्रकृति होती है कि नियन्त्रित निरीक्षण सदैव सम्भव नहीं हो पाता। ज्यादातर सामाजिक घटनाओं की वास्तविकता परखने के लिये घटनास्थल पर ही उनका अध्ययन किया जा सकता है। यही मुख्य कारण है कि आज भी अधिकतर सामाजिक सिद्धान्तों का निर्माण इसी अनियन्त्रित निरीक्षण के आधार पर होता है।

अनियन्त्रित निरीक्षण के मुख्य दोष (Main Defect of Un-controlled Observation): उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हो गया होगा कि -

(1) इस प्रकार के निरीक्षण में अनुसन्धानकर्त्ता पर कोई विशेष नियन्त्रण नहीं होता, और इस नियन्त्रण के अभाव में निरीक्षणकर्त्ता कुछ भी भूल या गलती कर सकता है।

(2) चूँकि वह उस समस्या के बारे में सब-कुछ जानता है जिसका कि वह अध्ययन कर रहा है, अतः उसी समस्या का अध्ययन करने पर उसमें भावात्मक विश्वास पैदा हो जाता है, जो कि निष्कर्षो को त्रूटिपूर्ण बना देता है।

(3) इस प्रकार अनियन्त्रित निरीक्षण में निरीक्षणकर्त्ता का व्यक्तिगत पक्षपात अनावश्यक रूप में प्रवेश पा लेता है जिससे कि निष्कर्षों में भी वैज्ञानिकता नहीं आ पाती है। प्रो. बर्नार्ड ने इस सम्बन्ध में उचित ही कहा है कि "आँकड़े इतने वास्तविक एवं संजीव होते हैं और उनके बारे में हमारी भावनाएँ इतनी द ढ़ होती हैं कि कभी-कभी हम अपनी भावनाओं की शक्ति की ही ज्ञान का विस्तार समझने की गलती कर बैठते हैं।"

2. नियन्त्रित (Controlled Observation)

जिस प्रकार सामाजिक विज्ञानों का शनैः-शनैः विकास होता आया है, उसी प्रकार सामाजिक अनुसन्धान-प्रविधियों का भी उत्तरोत्तर विकास होता गया है। नियन्त्रित निरीक्षण भी अनियन्त्रित निरीक्षण के विकसित स्वरूप के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वास्तव में अनियन्त्रित निरीक्षण के अनेक दोषों एवं कमियों के कारण ही इस पद्धति का सूत्र्पात हुआ। इस प्रविधि में अनेक साधनों द्वारा निरीक्षण को नियन्त्रित किया जाता है। इस प्रकार के निरीक्षण की एक मुख्य

विशेषता यह है कि इसमें निरीक्षणकर्त्ता पर तो नियन्त्रण होता ही है, साथ ही साथ निरीक्षण करने वाली समाजिक घटना पर भी नियन्त्रण किया जाता है। इसमें पहले अध्ययन अर्थात् निरीक्षण की सम्पूर्ण योजना तैयार की जाती है-और तब निरीक्षण किया जता है। अनेक साधनों द्वारा सूचनाएँ इकट्ठी होती रहती हैं-और एक प्रकार से निरीक्षणकर्त्ता एक मशीन की भाँति उन साधनों द्वारा स्वचालित होता रहता है। इस प्रकार के अनेकों अध्ययन किए जाते रहे हैं जिनमें कि इस प्रविधि का प्रयोग होता आया है। थाईलैण्ड के सारापी जिले में लोगों के स्वास्थ्य की दशाओं का अध्ययन डी. डी. टी. पाउडर छिड़कने के बाद फिर किया गया था (घटना पर नियन्त्रण)।

इस पद्धति में नियन्त्रण दो प्रकार के कार्य रूप में परिणत किया जाता है।

(अ) **सामाजिक घटना पर नियन्त्रण** **(Control over Social Phenomena):** इस प्रविधि में निरीक्षण करने वाली घटना को नियन्त्रित किया जाता है। इसको हम सामाजिक प्रयोग (Social Experiment) भी कह सकते हैं। जिस प्रकार भौतिक वैज्ञानिक (Physical Scientist) भौतिक दुनिया की परिस्थितियों को प्रयोगशाला की नियन्त्रित अवस्थाओं या दशाओं के अन्तर्गत लाकर अपने अध्ययन-विषय का अध्ययन करता है, उसी प्रकार समाजशास्त्री भी सामाजिक घटनाओं को सामाजिक परिस्थितियो के अन्तर्गत ही नियन्त्रित करने तथा अध्ययन-कार्य को संचालित करने का प्रयत्न करता है, यद्यपि यह कोई आसान कार्य नहीं। इसके लिए सामाजिक वैज्ञानिक को अत्यन्त सूझ-बूझ, कुशलता एवं अनुभव से कार्य लेना पड़ता है। इस प्रविधि के द्वारा किए गए कुछ अध्ययनों में थकान का प्रध्ययन, समय तथा गति का अध्ययन, उत्पादकता का अध्ययन आदि अर्द्ध-सामाजिक विषय विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। समाजशास्त्रीय क्षेत्र में बालकों के व्यवहारों से सम्बन्धित कई अध्ययनों का उल्लेख किया जा सकता है।

(ब) **निरीक्षणकर्त्ता पर नियन्त्रण** **(Control and Observer):** नियन्त्रित निरीक्षण की दूसरी प्रविधि स्वयं निरीक्षणकर्त्ता पर नियन्त्रण हैं इसके अन्तर्गत निरीक्षण के विषय या सामाजिक घटना पर नियन्त्रण न रखकर स्वयं निरीक्षणकर्त्ता को कुछ साधनों द्वारा नियन्त्रित व संचलति किया जाता है। यह मानी हुई बात है कि यदि निरीक्षणकर्त्ता सामाजिक घटनाओं को उनके वास्तविक एवं सत्य रूप में देखना चाहता है और यदि वह यह भी चाहता है कि उसके अध्ययन पर किसी भी प्रकार का निजी पक्षपात या/और कोई व्यक्तिगत प्रभाव की छाया न पड़े तो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह स्वयं अपने लिए कुछ नियन्त्रणों को स्वीकार करे। यह नियन्त्रण कई साधनों के प्रयोग से हो सकता है। जैसे निरीक्षण की विस्त त योजना पहले ही बना लेना, अनुसूची व प्रश्नावली का प्रयोग, विस्त त क्षेत्रीय नॉट्स, मानचित्र का प्रयोग एवं अन्य यन्त्र जैसे डायरी, फोटोग्राफ्स, कैमरा, टेपरिकार्डर, सिनेमा-फिल्म आदि का प्रयोग।

अधिकतर विद्वानों ने इस प्रविधि की मुक्तकंठ से सराहना की है। प्रो. गूड एवं हॉट का मत है कि चूँकि सामाजिक अनुसन्धानकर्त्ता के लिए अनुसन्धान 'विषय पर नियन्त्रण रख सकना अत्यन्त कठिन होता है, अतः कम से कम उसे अपने ऊपर तो नियन्त्रण रखना ही चाहिए।

नियन्त्रित तथा अनियन्त्रित अवलोकन में अन्तर **(Distinction between Controlled and Uncontrolled Obser-vation):** नियन्त्रित एवं अनियन्त्रित अवलोकन प्रणाली में निम्न अन्तर मुख्य रूप से हैं :

नियन्त्रित अवलोकन (Controlled)	**अनियन्त्रित** (Uncontrolled)
1. नियन्त्रित अवलोकन के अन्तर्गत उन घटकों पर नियन्त्रण किया जाता है जिनका कि हमें अध्ययन करना है।	1. इसके विपरीत अनियन्त्रित अवलोकन में अध्ययकर्त्ता का किसी भी प्रकार से नियन्त्रण नहीं होता है।
2. नियन्त्रित अवलोकन बनावटी है।	2. जबकि अनियन्त्रित अवलोकन स्वाभाविक है।
3. नियन्त्रित अवलोकन में स्वयं अध्ययन-कर्त्ता पर भी नियन्त्रण रखा जाता है और उसे कुछ निश्चित ढंग से अव-लोकन कार्य करने का छूट होती हैं।	3. इसके विपरिति अनियन्त्रित अवलोकन में अध्ययनकर्ता पर कोई भी नियन्त्रण नहीं होता है।
4. नियन्त्रित अवलोकन में कुछ साधनों को काम में लाया जाता है। जैसे-अवलोकन-अनुसूची, मानचित्र नोट्स आदि।	4. इसके विपरीत अनियन्त्रित अवलोकन में किसी बनावटी साधन का प्रयोग नहीं किया जाता है।
5. नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकन की सारी योजनायें पहले से ही बना ली जाती हैं।	5. इसके विपरीत अनियन्त्रित अवलोकन में कोई खास योजना बनाने की आवश्यकता नहीं होती हैं।
6. नियन्त्रित अवलोकन चूँकि बनावटी होता है। इस कारण इसमें वास्तविकता का पता लगाना कभी-कभी बड़ा कठिन हो जाता है।	6. इसके विपरीत अनियन्त्रित अवलोकन के द्वारा घटनाओं के गोपनीय पक्ष के बारे में भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है।
7. नियन्त्रित अवलोकन तभी उपयुक्त होता है जब अध्ययन समूह छोटे आकार का होता है।	7. इसके विपरीत अनियन्त्रित अवलोकन के द्वारा विस्त त समूहों का अध्ययन करना सम्भव है।
8. नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता के व्यवहारों पर नियंत्रण होने के कारण वैयक्तिक पक्षपात की सम्भावना बहुत कम हो जाती है।	8. इसके विपरीत अनियंत्रित अवलोकन में अव-लोकनकर्ता पर कोई नियंत्रण न होने के कारण वैयक्तिक पक्षपात की सम्भावना अधिक रहती है।

3. सहभागी अवलोकन

सहभागी अवलोकन शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम लिण्डमैन ने 1924 में अपनी पुस्तक 'सोशियायल डिस्कवरी' में किया। उन्होंने सामाजिक शोध की प्रत्यक्ष विधियों की कुछ आलोचना की है। किसी भी घटना के प्रत्यक्ष (असहभागिक) अवलोकन में जो कमियाँ रह जाती है उन्हें ध्यान मे रखते हुए उन्होंने सहभागी अवलोकन के प्रयोग का सुझाव दिया है।

प्रो. लिण्डमैन सह भागी अवलोकन के पक्ष में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि "सहभागी अवलोकन इस सिद्धान्त पर आधारित है कि किसी भी घटना का विश्लेषण तभी

शुद्ध हो सकता है, जबकि वह बाह्य तथा आन्तरिक द ष्टिकोण से मिलकर बना हो। इस प्रकार उस व्यक्ति का द ष्टिकोण जिसने घटना में भाग लिया तथा जिसकी इच्छाएँ एवं स्वार्थ उसमें किसी न किसी रूप में निहित थे, उस व्यक्ति के द ष्टिकोण से निश्चित ही कहीं अधिक यथार्थ व भिन्न होगा जो सहभागी न होकर केवल ऊपर द ष्टा या विवेचनकर्त्ता के रूप में रहा है।"

सामाजिक शोध में सहभागित अवलोकन के पीछे मुख्यतः यही विचारधारा कार्य करती है।

सहभागी अवलोकन क्या है? सहभागी अवलोकन से हमारा क्या तात्पर्य है? यह एक कठिन प्रश्न है जिसका प्रत्युत्तर कुछ शब्दों में दिया जाना कठिन है। इस प्रविधि का प्रयोग मूल रूप में मानव विज्ञान में आदिवासियों के अध्ययनों से प्रारम्भ हुआ। किसी भी समाज की गहराइयों में पहुँचने तथा व्यवहार एवं प्रतीकों के पीछे छूपे हुए मन्तव्यों को जानने के लिए अध्ययन किये जाने वाले समूह का सदस्य बनना आवश्यक है। अतः साधारण शब्दों में सहभागिता से हमारा तात्पर्य अध्यित समूह की सदस्यता ग्रहण करने से है। जैसा कि फोरेक्स तथा रिचर ने लिखा है कि, "सहभागिक अवलोकन में शोधकर्त्ता अध्ययन किये जाने वाले समूह का सदस्य बन जाता है।" समूह के सदस्य बनने से क्या तात्पर्य है? इस प्रश्न का प्रत्युत्तर पी. बी. यंग ने इन शब्दों में दिया है-"सामान्यतः अनियन्त्रित अवलोकन का प्रयोग करते हुए, एक सहभागित अवलोकनकर्त्ता अध्ययन किए जाने वाले समूह के साथ रहता है अथवा उनके जीवन की गतिविधियों में भाग लेता है।"

डॉ. एम. एच. गोपाल के अनुसार, "सहभागी अवलोकन इस मान्यता पर आधारित है कि किसी घटना की व्याख्या या अर्थ (Interpretation) तभी अधिक विश्वसनीय और विस्त त हो सकता है जब अनुसंधानकर्त्ता परिस्थिति की गहराइयों में पहुँच जाता है।" अर्थात् अनुसंधानकर्त्ता स्वयं सहभागी के रूप में परिस्थितियों की गहराई में पहुँचकर वैषयिक परिणाम (Subjective results) प्राप्त कर सकता है।

पीटर एच. मान के शब्दों में, "सहभागी अवलोकन का अभिप्राय प्रायः ऐसी स्थिति से होता है जिसमें निरीक्षणकर्त्ता अपने अध्ययन समूह के उतने ही निकट होता है जितना कि उसका कोई सदस्य होता है तथा उसकी सामान्य क्रियाओं मे भाग लेता है।"

लुण्डबर्ग और मारग्रेट लॉसिग के मतानुसार, "इस पद्धति के लागू करने में यह अनुभव करना आवश्यक है कि न केवल अध्ययनकर्त्ता ही यह अनुभव करे कि वह सामूहिक जीवन में भाग ले रहा है बल्कि समूह के सदस्य, भी उसके विषय मे ऐसा ही अनुभव करें।"

गुडे तथा हट्ट के अनुसार, "इस कार्य-प्रणाली का प्रयोग उस समय किया जाता है जबकि अनुसंधानकर्त्ता अपने को समूह के सदस्य के रूप में स्वीकृत हो जाने योग्य बना लेता है।"

रेमण्ड फर्थ के शब्दों में, "किसी विशेष संस्कार या उत्सव में लोग किसी सहयोगी की ही कल्पना कर सकते हैं निरीक्षणकर्त्ता की नहीं। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि कोई समूह के बाहर न रह कर उसका ही अंग बनकर रहे।"

पी. वी. यंग के मतानुसार, "सहभागी निरीक्षणकर्त्ता अध्ययन किए जाने वाले समूह के बीच में रहता है अथवा अन्य प्रकार से उसके जीवन में भाग लेता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सहभागी निरीक्षणकर्त्ता

समूह का अंग बनकर रहता है, जिससे वह जीवन के प्रत्येक अंग की गहराई से छानबीन कर सके। वह तटस्थ होकर जीवन के विविच पक्षों का अध्ययन नहीं कर सकता। इसमें यह सावधानी अवश्य रखनी पड़ती है कि वह जिन पक्षों का अवलोकन करता है वह अनुसन्धान की सामग्री के अनुरूप होना चाहिए।

इस बात को मोज़र ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—“निरीक्षणकर्त्ता अध्ययन किये जाने वाले समूह अथवा संगठन के प्रतिदिन के जीवन में बीतने वाली घटनों मे भाग लेता है। वह यह देखता है कि समुदाय में क्या-क्या होता है, वे किसा प्रकार व्यवहार करते हैं तथा वह उनसे यह जानने के लिए बातचीत भी करता है कि घटित घटनाओ के प्रति उनकी क्या प्रतिक्रियाएँ हैं, वे उनका क्या अर्थ लगाते हैं।”

सहभागी अवलोकन की इस व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस विधि में केवल घटनाओं का ही अवलोकन नहीं किया जाता, अपितु घटनाओं की वास्तविकताओं को जानने के लिए समुदाय के सदस्यों से बातचीत की जाती है। इस प्रकार सहभागिक अवलोकन विधि, जन औपचारिक साक्षात्कार तथा अवलोकन दोनों विधियों का एक सम्मिश्रण है।

सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता से यह आशा की जाती है कि वह अध्ययन किए जाने वाले समूह का सदस्य बने। शोधकर्त्ता को समूह का सदस्य बनने के लिए किस प्रकार की भूमिका अपनानी चाहिए इसे हम तीन शीर्षकों के अन्तर्गत समझेंगे :

(अ) **सहभागिता तथा लगाव की मात्राः** सहभागी द ष्टा की परिभाषा देते हुए जॉन मैज ने लिखा है “जहाँ द ष्टा के हृदय की धड़कने समूह के अन्य व्यक्तियों की धड़कनों से मिल जाती है तथा वहाँ किसी दूरस्थ प्रयोगशाला में आए हुए तटस्थ प्रतिनिधि के समान नहीं रह जाता तो समझना चाहिए कि उसने सहभागी द ष्टा कहलाने का अधिकार प्राप्त कर लिया है।“

सहभागी अवलोकन में शोधकर्त्ता को यथार्थ रूप में उद त समुह में इतना ही मिलना चाहिए कि उसे यह ध्यान रहे कि वह अपने उद्देश्य को न भूले अर्थात् उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि वह पहले एक शोधकर्त्ता है और बाद में किसी समूह का सदस्य है।

(ब) **सहभागिता का प्रकट रूपः** सहभागिक द ष्टा को अपनी भूमिका के सम्बन्ध में अध्यित समूह को बताना चाहिए या नहीं। इस सम्बन्ध में समाज वैज्ञानिकों में एक मत्यता नहीं है। कुछ वैज्ञानिक इसके पक्ष में हैं और कुछ इसके विपक्ष में हैं कुछ वैज्ञानिकों ने इन दोनों स्थितियों की कमियों को ध्यान में रखते हुए आँशिक गुप्तता की बात कही है। ऐसी स्थिति में शोधकर्त्ता अपना परिचय तो देता है परन्तु अपने मन्तव्य को नहीं बताता है। इसमें यह लाभ होता है कि वह समूह के व्यवहार को प्रभावित करने से बच जाता है।

(स) **सहभागिक निरीक्षण या अवलोकनकर्त्ता की भूमिकाः** एक सहभागिक अवलोकनकर्त्ता में यह गुण होना चाहिए कि वह ऐसी भूमिका निभाये जिससे वह समुदाय के जीवन का सम्पूर्ण तथा पक्षपातरहित एक चित्र प्राप्त कर सके।

सहभागिक अवलोकन के गुण
(Merits of Participant Observation)

(1) **सहभागिक व्यवहार का अध्ययन:** यदि किसी अध्यित समूह के सदस्य यह नही जानते कि उनके व्यवहार का अवलोकन किया जा रहा है, तब उनके व्यवहार में स्वाभाविकता रहेगी तथा अवलोकनकर्त्ता की स्थिति के अपेक्षाकृत कम प्रभावित होने की सम्भावना बनी रहेगी। एक सामाजिक वैज्ञानिक के रूप में हमारा अन्तिम लक्ष्य किसी भी सामाजिक समूह के प्रतिदिन के स्वाभाविक व्यवहार का अध्ययन करना होता है अतः जितना ही एक अवलोकनकर्त्ता अध्यित समूह के व्यक्तियों में अपने आपकों घूला-मिला लेता है, उतना ही अधिक वह उसके स्वाभाविक व्यवहार के अध्ययन के लिए सक्षम बन जाता है।

(2) **गहन अनुभवों की प्राप्ति:** सहयोगिक अवलोकन में एक अवलोकनकर्त्ता कोई न कोई भूमिका अदा करता है। अवलोकनकर्त्ता की यह स्थिति उसे समूह की गहराइयों में जाने का अवसर प्रदान करती है जो कि एक तटस्थ अवलोकनकर्त्ता के लिए सम्भ्व नहीं होता हैं उसे कभी-कभी अपनी सहभागिक अवलोकनकर्त्ता की भूमिका के कारण वे सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं जो मात्र एक अवलोकनकर्त्ता को प्राप्त नहीं होती। समूह की भावनाओं के साथ तादात्मय स्थापित करने से अवलोकनकर्त्ता किसी जनजातीय-न त्य की थकावट तथा उल्लास अथवा किसी कारखाने में काम करने वाले मजदूरो के प्रति उनके फोरमैन द्वारा किए गए कठोर व्यवहार के सम्बन्ध में स्वयं अनुभव प्राप्त कर सकता है।

(3) **विस्त त सूचनाओं का संकलन:** रेमण्ड फर्थ ने सहभागिक प्रेक्षण के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "किसी भी समूह के सामाजिक तथा आर्थिक सम्बन्धों की संरचना तथा प्रकार्यों की जटिलताओं का अध्ययन करने का यह एकमात्र तरीका है।" चूँकि एक सहभागिक अवलोकनकर्त्ता की समयावधि कई महीनों तक चल सकती है, अतः उसके द्वारा प्राप्त सामग्री एक लम्बे साक्षात्कार द्वारा प्राप्त सूचनाओं से भी अधिक विस्त तता लिये हुए होगी।

अन्य विधियों की अपेक्षा इस विधि से प्राप्त तथ्य अधिक विश्वसनीय होते हैं, क्योंकि घटनाओं के घटित होने के अवसर पर अवलोकनकर्त्ता स्वयं उपस्थित रहता है। इस विधि की एक और अन्य विशेषता यह है कि यह विधि अवलोकनकर्त्ता को समूह की भावनाओं, विचारों तथा व्यवहारों के पीछे छुपे हुए भावो को जानने के लिए आवश्यक सूक्ष्म द ष्टि प्रदान करती है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि अधिकाँश व्यक्ति अपने व्यवहार को एक तटस्थ अवलोकन द्वारा अध्यित किये जाने के प्रति प्रसवित नहीं होते, अपितु वे अवलोकन के लिए कभी स्वीकृति नहीं देते। यह बात विशेषतः अपधारी समूह या उच्च प्रस्थिति वाले समूह के व्यक्तियों के लिए चरितार्थ होती है। एक डाकू गिरोह कभी भी अपने समूह की क्रियाओं का अवलोकन ऐसे व्यक्तियों को करने की अनुमति नहीं देता जो उनके समूह से बाहर का व्यक्ति हो। ऐसी स्थितियों में अवलोकनकर्त्ता के समक्ष एक ही विकल्प रह जाता है कि वह उस समूह का एक सहभागिक अवलोकनकर्त्ता के रूप में सदस्य बनकर अवलोकन या अवलोकन विधि को त्याग दे।

सहभागिक अवलोकन की सीमाएँ (Limitations of Participant Observation): गुडे एव हट्ट ने सहभागिक अवलोकन विधि को शोध कार्य में प्रयोग किए जाने के प्रति यह चेतावनी दी है

कि इस विधि के जहाँ कुछ गुण हैं, वहाँ इसके कुछ स्पष्ट अवगुण भी है। अतः इसका प्रयोग सावधानी से किया जाना चाहिए। यहाँ हम इस विधि के कुछ मुख्य अवगुणों पर विचार करेंगे :

(1) **वस्तुपरकता की कमी:** सहभागिक अवलोकनकर्त्ता अध्यित समूह का सक्रिय सदस्य वन जाता है इस कारण समूह के प्रति अवलोकनकर्त्ता की घनिष्ठता तथा आत्मीयता की प्रव त्ति अत्यधिक विकसित हो जाने से अध्यित समूह के प्रति उसमें लगाव होने की सम्भवाना रहती है। कई बार यह लगाव की भावना उसे समूह की भावनाओं में बह जाने के लिए बाध्य कर देती है और घटनाओं की वास्तविकत्ताओं को जानने तथा उन्हें नोट करने से वंचित कर देती है।

(2) **अनुभवों की सीमा का संकुचनः** एक अत्यधिक संस्तरित समुदाय में इस विधि का प्रयोग अलाभकर सिद्ध हो सकता है क्योंकि अवलोकनकर्त्ता का किसी समुदाय के वर्ग से सहभागिक होने का अवसर उसे समुदाय के दूसरे वर्ग में सहभागिक होने से वंचित कर सकता है। सहभागिक अवलोकनकर्त्ता को समुदाय में कोई एक भूमिका अपनानी होती है। यह भूमिका उस समुदाय में उसके एक विशिष्ट मैत्री समूह का निर्माण करती है अतः जितना अधिक वह अपने मैत्री समूह सम्बन्ध में जान पाता है उतना ही वह मैत्री समूह के बाहर के व्यक्तियो के सम्बन्ध मे अनभिज्ञ हो जाता है। भारतीय गाँवों के अध्ययन के सहभागिक अवलोकनकर्त्ता की यह भूमिका उसे अपने से निम्न अथवा उच्च जातियो के सम्बन्ध में जानने के अवसर के द्वारों को बन्द कर देती है। रायले ने इसे अभिनतिपूर्ण द ष्टि का प्रभाव कहा है। जिसके द्वारा शोधकर्त्ता के द्वारा अपनाई गई भूमिका के कारण उसका द ष्टिकोण अभिनतिपूण्र बन जाता है।

(3) **तथ्यों की प्रामाणिकता में कमी:** इस विधि के प्रयोग द्वारा तथ्यों की समरूपता को बनाए रखना कठिन होता है। विभिन्न विषयों पर प्रत्येक व्यक्ति से घर पर जाकर सूचनाओं को एकत्र करना तथा मनोव त्तियों का परीक्षण करना इस विधि द्वारा सम्भव नहीं हो पाता। सहभागिक तथा असहभागिक दोनों विधियों मे अवलोकन की समस्याएँ ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। जिस सीमा तक एक अवलोकनकर्त्ता सहभागिक बन जाता है, उसके अनुभवों में एक विशिष्टता आ जाती है। उसके इन अनुभवो को किसी अन्य शोधकर्त्ता द्वारा दुहराया जाना कठिन होता है।

(4) **अत्यधिक समय तथा क्षमताओ का नष्ट होना:** इस विधि में कई बार घटनाओं के लिए एक लम्बा इन्तजार करना होता है जिसमें अत्यधिक समय भी लगता है तथा क्षमतओं का व्यय भी होता है। शोधकर्त्ता इच्छानुसार घटनाओं का परीक्षण नही कर सकता है।

(5) **अपरिचितता के लाभ का अभाव:** कभी-कभी हम एक अपरिचितता की भूमिका में जो सूचनाएँ किन्हीं व्यक्तियों के सम्बन्ध में प्राप्त कर लेते हैं वे हमें समूह की क्रियाओं में भाग लेने से प्राप्त नहीं हो पाती। समूह के साथ हमारा पूर्ण एकीकरण हो जाने से हम कभी-कभी कुछ बातों को सामान्य समझकर छोड़ देते हैं जबकि एक अपरिचित व्यक्ति के लिए ऐसी सूचनाएँ भी आकर्षित होती हैं और वह उन्हें नोट करना नहीं भूलता। इसे वाइटे ने अपरिचितता के लाभ का अभाव कहा है।

(6) **सर्वांग द ष्टिकोण:** फारेक्स तथा रिचर ने लिखा है कि जब कभी हम किसी समूह के अत्यन्त आत्मीय सदस्य बन जाते हैं तब घटनाओं को सम्पूर्णता में देखने का हमारा परिप्रेक्ष्य प्रायः

लुप्त हो जाता है। उदाहरणार्थ हम पेड़ों को देखने में कभी-कभी सम्पूर्ण जंगल की वास्तविकता से अनभिज्ञ रह जाते हैं। समूह के एक सदस्य के रूप में हम कुछ सदस्यों के सम्बन्ध में बहुत कुछ जान जाते हैं किन्तु कुछ अन्य सदस्यों के सम्बन्ध में हमारी जानकारी अपूर्ण रह जाती है।

गुडे तथा हट्ट ने लिखा है कि शोध की कई ऐसी स्थितियाँ होती हैं जिनमें एक बाध्य व्यक्ति के लिए हर प्रकार से सहभागिक बनना कठिन होता है। उदाहरणार्थ, एक सह-समाजशास्त्री एक अपराधी गिरोह के अध्ययन करने के लिए अपराधी नहीं बन सकता। इसी प्रकार रेमण्ड फर्थ ने लघु अवधि में किए सहभागिक अवलोकन की निम्न सीमाएँ बताई हैं :

(i) सम्पूर्ण अर्थ के बोध का अभाव।
(ii) अस्थाई दशाओं को सामान्य दशाएँ समझने की भूल।
(iii) अभिनति की समस्या।
(iv) आत्मीय सूचनादाताओं को अधिक महत्त्व देने से उत्पन्न अभिनति।
(v) शोधकर्त्ता की सैद्धान्तिक प ष्ठभूमि से उत्पन्न अभिनति।
(vi) शोधकर्त्ता द्वारा तथ्यों के चयन की प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न अभिनति।

सहभागिक अवलोकन के प्रयोग में आने वाली ये कुछ सीमाएँ हैं, तथा इसके नकारात्मक पहलू हैं। अन्त में हम मोजर तथा कालटेन के शब्दों द्वारा सहभागिक अवलोकन की विवेचना को समाप्त करते हैं।

जैसा कि हमने देखा है कि सहभागिक अवलोकन एक अत्यन्त वैयक्तिक विधि है एक व्यक्ति इसके द्वारा न तो पूर्णतः विश्वसनीय तथा वस्तुपरक चित्र ही प्राप्त कर सकता है और न ही कोई अवलोकनकर्त्ता एक ही घटना के अपने अवलोकन द्वारा परिणाम प्राप्त कर सकता है।

यह कारण है कि इस विधि का प्रयोग अधिकाँशतः अन्वेषणात्मक शोध हेतु उपयोगी अवधारणाओं तथा प्रावकल्पनाओं को विकसित करने के लिए किया जाता है। इस कार्य में सहभागिक अवलोकन विधि ने बहुत योगदान दिया है।

4. असहभागी अवलोकन (Non-Prticipant Observation)

सहभागी अवलोकन विधि की कमजोरीयों को दूर करने में असहभागी अवलोकन विधि सहायता करती है। असहभागी अवलोकन अनियन्त्रित अवलोकन का एक प्रमुख स्वरूप है। इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता समूह या समुदाय का, जिसका कि उसे अध्ययन करना है, अवलोकन एक तटस्थ द ष्टि एवं वैज्ञानिक भावना से करता है। इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता समुदाय या समूह का न तो अस्थाई सदस्य बनता है और न ही उसकी क्रियाओं में भागीदार बनता है, दूर से ही जो कुछ देखता हे उनकी गहराइयों तक पहुँचने का प्रयास करता है। समाजिक जीवन की ऐसी अनेक स्थितियाँ हैं जहाँ सहभागी अवलोकन करना सम्भव नहीं होता। वहाँ पर विधि अत्यधिक उपयुक्त होती है। यही नहीं यह विधि बहुत रायों के अभिनतिपूर्ण द ष्टि के प्रभाव से रहित तथा वाइटे के अपरिचितता के लाभ से युक्त होती है। उदाहरण के लिए, शिशुओं के व्यवहार के अध्ययन में सहभागिक विधि का प्रयोग सम्भव नहीं है। कोई भी शोधकर्त्ता बालकों अथवा शिशुओं के अध्ययन हेतु अल्पकाल

के लिए पुनः शिशु अथवा बालक नहीं बन सकता। इस प्रकार कई स्थितियों मे एक शोधकर्त्ता में पूर्ण का सहभागिक बनना यदि सम्भव नहीं तो कम से कम दुष्कर अवश्य है।

फोरेक्स तथा रिचर ने असहभागिक अवलोकन को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "असहभागिक अवलोकन मे अवलोकनकर्त्ता अपने व्यक्तित्व को बिना घुपाए घटना का अवलोकन करता है। शोधकर्त्ता अध्यित समूह को शोध के उद्देश्य को बता देता है तथा इस आधार पर समूह में प्रवेश करने का प्रयास किया जाता है।"

इस परिभाषा से स्पष्ट है कि अवलोकनकर्त्ता समूह में उपस्थित तो रहता है परन्तु अध्यित समूह की क्रियाओं तथा व्यवहारों मे भाग नहीं लेता तथा वह उनका अवलोकन एक तटस्थ अवलोकनकर्त्ता अर्थात् समूह से एक प थक् व्यक्ति के रूप में करता है।

असहभागिक अवलोकन स्वाभाविक तथा प्रयोगात्मक दोनों स्थितियों में किया जाता है।

(अ) **स्वाभाविक स्थिति में असहभागिक अवलोकनः** इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता किसी भी समूह के व्यवहार का उसकी स्वाभविक स्थिति में अध्ययन करता है। वार्नर तथा लन्ट ने ऐसी बहुत सारी स्थितियों तथा सामाजिक अन्तः क्रियाओं का उल्लेख किया है। जिनका अध्ययन इस प्रविधि द्वारा किया जा सकता है जैसे जन्म, विवाह अथवा म त्यु संस्कारों के अध्ययन के लिए इस विधि का चुनाव किया जा सकता है।

इस विधि में सबसे बड़ी कमी यह है कि अवलोकनकर्त्ता के प्रभाव से अवलोकन प्रभावित हो सकता है जब कभी खेल के मैदान में बालकों के व्यवहार का अध्ययन किया जा रहा हो तब अवलोकनकर्त्ता की उपस्थिति के कारण बालकों के व्यवहार मे परिवर्तन आने की सम्भावना रहती है। कभी-कभी इस स्थिति से बचने के लिए एकतरफा पर्दे अथवा शीशे का प्रयोग किया जाता है। जिससे अध्यित समूह को यह पता न चले कि उनके व्यवहार का अध्ययन किया जा रहा है परन्तु यह प्रयोग केवल सीमित मात्रा में किया जा सकता है।

(ब) **प्रयोगात्मक स्थिति में असहभागिक अवलोकनः** इस प्रकार की विधि में किसी भी समूह का अवलोकन अपेक्षाकृत अस्वाभविक स्थिति में करने का प्रयास किया जाता है अर्थात् अवलोकन किये जाने वाले समूह के लिए एक विशिष्ट परिवेश का निर्माण किया जाता है जैसा बालकों के किसी समूह का एक प्रयोगशाला में उनका अध्ययन।

असहभागिक अवलोकन के प्रयोग द्वारा वे लाभ प्राप्त होते हैं जो विशेषतः सहभागिक अवलोकन की सीमाओ अथवा अवगुणों द्वारा उत्पन्न होते हैं। इस विधि **में घन, समय तथा क्षमता तीनों का व्यय सहभागिक अवलोकन की अपेक्षा कम होता है। साथ ही साथ इस विधि में अवलोकनकर्त्ता का अध्यित समूह से कोई लगाव न होने के कारण अभिनति पक्षपात अथवा व्यक्ति-परकता के अवगुणों से भी बचाव हो जाता है।**

असहभागी अवलोकन के गुण
(Merits of Non-Participant Observation)

असभागी अवलोकन के निम्नलिखित लाभ हैं :

1. **पूर्ण एव सही सूचनाएँ (Complete & Correct Information):** इस प्रणाली के द्वारा पूर्ण एवं सही सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं, जो प्रश्न पूछकर प्राप्त करना असम्भव हैं। उदारण

के लिए यदि स्थानीय नेताओं का प्रभाव मालूम करना हो तो प्रश्न पूछ कर मालूम करना अत्यन्त कठिन कार्य है। स्थानीय नेताओं के प्रभाव को जानने के लिए अध्ययनकर्ता को पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वह ऐसे नेताओं द्वारा प्रभावित लागों की क्रियाओं का अवलोकन करें। वह यह आसानी से अवलोकन कर सकता है कि एक नेता की उपस्थिति में लोग किस प्रकार का व्यवहार करते हैं एवं उसकी अनुपस्थिति में लोगों के व्यवहार में क्या परिवर्तन होता है। इस तरह यह कार्य केवल असहभागी अध्ययन के द्वारा ही सम्भव है।

2. **आदर एवं सहयोग सम्भव (Respect and Cooperation Possible):** जब अध्ययनकर्त्ता किसी भी विशिष्ट समूह में भाग न लेकर निष्पक्ष द ष्टिकोण से अध्ययन करेगा तो उस समुदाय के समस्त समूह के लोगों का उसे आदर एवं सहयोग प्राप्त हो सकेगा। यह बात सहभागिक अवलोकन में नहीं है।

3. **असहभागिक अवलोकन की उपयोगिता (Utility of Non-Participant Observation):** असहभागी अवलोकन पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें अध्ययनकर्त्ता एवं सूचनादाता के बीच आने वाले प्रश्न एवं उत्तरों की भ्रामकता से बचा जा सकता है। इस पद्धति में सूचनादाताओं के प्रश्न समझने अथवा न समझने, उनके तर्कपूर्ण उत्तर प्रदान करने, आदि की कोई सम्भावना नहीं होती क्योंकि अध्ययनकर्त्ता स्थानीय समूह के लागों के जीवन में बिना भाग लिए हुए दूर से ही अवलोकन करता रहता है और जो कुछ मानव इन्द्रियाँ अवलोकन करती हैं उनको वैसा ही लिख देता है। अध्ययनकर्ता का काम केवल दूर से समुदाय के लोगों के सामजिक जीवन का अवलोकन करते रहना है। विभिन्न प्रश्नों को पूछकर सूचनादाताओं से उत्तर प्राप्त होने का इन्तजार नहीं किया जाता है।

4. **वैयक्तिकता की सम्भावना (Objectivity Possible):** असहभागी अवलोकन में वैषयिकता आने की अधिक सम्भावना रहती है क्योंकि इस प्रकार के अवलोकन में अध्ययनकर्ता चूँकि अपने को समूह के कार्यों में आत्मसात् नहीं करता। अतः पक्षपात की भी सम्भावना नहीं रहती।

असहभागी अवलोकन के दोष (Demerits of Non & Participant Observation): असहभागी अवलोकन के भी कुछ दोष हैं जो इस प्रकार से हैं- सबसे प्रथम दोष यह है कि असहभागी अवलोकन में अध्ययनकर्ता कई घटनाओं एवं क्रियाओं का महत्त्व समझने में असफल होता है क्योंकि वह घटनाओं को अपने द ष्टिकोण से देखता है न कि भाग लेने वालों की द ष्टि से। दूसरे पूर्णतः विशुद्ध असहभागी अवलोकन असम्भव भी है।

सहभागी और असहभागी अवलोकन में अन्तर
(Distinction between Participant & Non-Participant Observation)

सहभागी (Participant)	**असहभागी** (Non-Participant)
1. सहभागी अवलोकन में अध्ययनकर्त्ता, अध्ययन स्थल का अभिन्न अंग बन कर घटनाओं का अध्ययन करता है।	1. जबकि असहभागी अवलोकन के अन्तर्गत उसकी भूमिका एक अपरिचित और तटस्थ द ष्टा के रूप में होती है।
2. सहभागी अवलोकन में समुदाय के	2. जबकि असहभागी अवलोकन के द्वारा

जीवन के गहरे स्तर तक पहुंच कर उसका गहन, आन्तरिक एवं सूक्ष्म अध्ययन करना अधिक सम्भव है।	सामुदायिक जीवन के केवल बाह्म पक्षों का ही अध्ययन किया जा है।
3. सहभागी अवलोकन के द्वारा घटनाओं का उनके स्वाभाविक रूप में देखना सम्भव होता है।	3. जबकि असहभागी अवलोकन की स्थिति में समूह के लोग अक्सर अपने व्यवहारों में परिवर्तन उत्पन्न कर लेते हैं।
4. सहभागी अवलोकन के द्वारा एक समूह के गुप्त पक्षों के संबंध में भी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।	4. जबकि असहभागी अवलोकन में अध्ययन एक अजनबी होने के कारण सभी पक्ष उनके लिए गुप्त ही रह जाते हैं।
5. सहभागी अवलोकन में अध्ययनकर्त्ता स्वयं ही विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में बार-बार भाग लेता है।	5. जबकि असहभागी अवलोकन में अध्ययनकर्त्ता कभी-कभी समुदाय मे जाता है जिससे सूचनाओं की शुद्धता की परीक्षा करने का अधिक अवसर उसे नहीं मिलता है।
6. सहभागी अवलोकन के अन्तर्गत अध्ययनकर्त्ता सामुदायिक जीवन में घुल जाता है और वहाँ के लागों को यह जानने नहीं देता है कि उनका अवलोकन किया जा रहा है। इसके परिणामस्वरूप अवलोकन उनके सरल स्वाभविक रूप में सम्भव होता है।	6. जबकि असहभागी अवलोकन में अध्ययनकर्त्ता एक अनजान व्यक्ति होता है और किसी भी अनजान व्यक्ति के सम्मुख कोई भी आदमी अपने सरल स्वाभाविक रूप को प्रकट नहीं करता।
7. सहभागी अवलोकन प्रविधि अत्यधिक खर्चीली है और साथ ही समय भी अधिक लगता है।	7. जबकि अहभागी अवलोकन में कम समय व धन से भी काम चल सकता है।
8. सहभागी अवलोकन केवल तभी सफल हो सकता है जब अध्ययनकर्त्ता अधिक व्यवहार-कुशल व योग्य हो।	8. जबकि असहभागी अवलोकन को सामान्य कुशलता और प्रशिक्षण से भी पूरा किया जा सकता है।
9. सहभागी अवलोकन के अन्तर्गत अध्ययन-कर्त्ता किसी भी दशा में अपने वास्तविक परिचय को छिपाए रखने का प्रयत्न करता है।	9. जबकि असहभागी अवलोकन के अन्तर्गत उन सभी वैज्ञानिक प्रविधियों तथा उपकरणों का प्रयोग करना सम्भव है जो किसी भी अवलोकन को अधिक उपयोगी बना सकते हैं।
10. सहभागी अवलोकन के द्वारा स्वयं अध्ययनकर्त्ता अपने द्वारा एकत्रित तथ्यों का सत्यापन नहीं कर सकता है।	10. जबकि असहभागी अवलोकन के अन्तर्गत अध्ययन के प्रत्येक स्तर पर घटनाओं का सत्यापन करना सम्भव होता है।

5. अर्द्ध-सहभागी अवलोकन (Duasi-Participant Observations):

प्रो. गुडे एवं हाट ने अर्द्ध-सहभागी अवलोकन का सुझाव दिया है जिसमें सहभागिक अवलोकन प्रणाली का भी प्रयोग कर लिया हाता है। उन्होंने बताया है कि पहले अध्ययकर्ता समूह के दैनिक कार्यों में तो सहभागी अवलोकनकर्त्ता रहता है, लेकिन किसी विशेष घटना के अवलोकन के समय वह असहभागिक अवलोकनकर्त्ता बन कर उसमें भाग लेते हुए दूर बैठ कर ही उसका अवलोकन करता है। इस तरह अर्द्ध-सहभागिक अवलोकन एक मिश्रित प्रणाली है जिसमें सहभागी और असहभागी अवलोकन का समन्वित रूप विद्यमान होता है। प्रो. गुडे तथा हाट का विचार हैं कि अनियन्त्रित अवलोकन की इन तीनों प्रणालियों में अर्द्ध-सहभागी अवलोकन सबसे अधिक उपयुक्त है। इसका कारण यह है कि अर्द्ध-सहभागी अवलोकन में सहभागी तथा असहभागी दोनों प्रकार के अवलोकनों का मिश्रण होने के कारण इनके दोषों को काफी सीमा तक दूर किया जा सकता है। इसी प्रकार विलियम ह्वाइट ने भी यह स्पष्ट किया है कि सामाजिक तथ्यों की जटिलता के कारण किसी समूह का पूर्ण सहभागी होकर अध्ययन करना एक अत्यधिक अव्यवहारिक द ष्टिकोण है। किसी एक समूह का सहभागी बन जाने से अध्ययनकर्ता का अन्य समूहों से सम्बन्ध टूट जाता है। वास्तविकता यह है कि अर्द्ध-सहभागी अवलोकन के द्वारा ही उन तथ्यों की वास्तविक जानकारी करना अधिक सम्भव है, जिनका सम्बन्ध एक समूह के सांस्कृतिक जीवन अथवा विशिष्ट व्यवहारों से होता है।

6. सामूहिक अवलोकन (Mass Observation)

नियन्त्रित व अनियन्त्रित निरीक्षण प्रविधि में एक ही समस्या या सामाजिक घटना का निरीक्षण कई अनुसन्धानकर्त्ता द्वारा होता है, जो कि उस सामजिक घटना के विभिन्न पहलुओं के विशेषज्ञ होते हैं। सर्वश्री सिन पाओं यांग के शब्दों में "यह नियन्त्रित व अनियन्त्रित निरीक्षण का सम्मिश्रण होता है। इसमें कई व्यक्ति मिलकर सामग्री एकत्रित करते हैं और बाद में एक केन्द्रीय व्यक्ति द्वारा उन सबकी देन का संकलन एवं उससे निष्कर्ष निकाला जाता है।"

सन् 1944 में जमैका में वहाँ की स्थानीय दशाओं के अध्ययन के लिए इस प्रविधि को प्रयोग में लाया गया था। वहाँ पर प्रत्येक माह समुदायिक जीवन के किसी एक विशेष पहलू के अध्ययन पर ध्यान डाला जाता था। इसके लिए अनुसन्धानकर्त्ताओं को जिलों के आँकड़े संकलित करने के लिया भेजा जाता था। आँकड़े संकलित होने पर केन्द्रीय कार्यालय मे भेजा जाता था, वहाँ स्टाफ की मीटिंग में उन पर विचार होकर फिर उन से निष्कर्ष निकाले जाते थे।

इस प्रकार इस प्रविधि में एक या कुछ निरीक्षणकर्त्ताओं पर बोझ न पड़कर अनेक विशेषज्ञ अनुसन्धानकर्त्ता निरीक्षण का कार्य करते हैं। स्पष्ट है कि ऐसे निरीक्षण कार्य के लिए अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है, यद्यपि इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं कि अनुसन्धान-कार्य बहुत ही उत्तम होता है।

अध्याय - 8
साक्षात्कार
(Interview)

किसी भी विज्ञान का विकास इस बात पर निर्भर होता है कि उसके अनुसन्धान की विधियाँ तथा तथ्य संकलन के साधन कितने विकसित हैं। प्राकृति विज्ञानों में अनुसन्धान की विधियाँ तथा उपकरण अत्यन्त विकसित हो चुके हैं। सामाजिक विज्ञान जैसे समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, लोक-प्रशासन आदि विज्ञान प्राकृतिक विज्ञानों की अपेक्षा इस क्षेत्र में काफी पीछे हैं। गुडे एवं हट्ट ने इसका कारण बताते हुए लिखा है कि "सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन की वस्तु मानव है, मानव स्वयं एक जटिल प्राणी है जिसका स्वभाव निरन्तर बदलता रहता है, अध्ययन वस्तु (Subject Matter) एवं वैज्ञानिक (Scientist) दोनों मानव होने के कारण पक्षपात आदि की सम्भावना रहती है।"

मानव में क्षमता है कि स्वयं के सम्बन्ध में मानव वैज्ञानिक द्वारा की गई भविष्यवाणी को गलत सिद्ध कर सके। इन सीमाओं के होते हुए भी कुछ और ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनकी वजह से सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान में कुछ विशिष्ट तथ्य संकलन की पद्धतियों का प्रयोग करता है। वैज्ञानिक अध्ययन की वस्तु के आमने-सामने के सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। अध्ययन की वस्तु से बात कर सकता है व पत्र-व्यवहार के द्वारा सामग्री एकत्र कर सकता है।

सामाजिक अनुसन्धान में अनेक विधियों का प्रयोग किया जाता है जैसे अवलोकन, अनुसूची, प्रश्नावली, पुस्तकालयीय पद्धति, अनुमाप, समाजमिति, साक्षात्कार इत्यादि।

साक्षात्कार विधि के अनेकों गुणों एवं प्रकारों के कारण इसे सामाजिक अनुसन्धान में एक विशेष स्थान प्राप्त है। इस विधि के द्वारा उन तथ्यों को एकत्र किया जाता है जो अन्य विधियों-अवलोकन, प्रश्नावली एवं अनुसूची से सामान्यतया सम्भव नहीं है। यंग ने इस गुण पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि साक्षात्कार पद्धति के द्वारा व्यक्तियों के आन्तरिक जीवन में प्रवेश करके जानकारी एकत्रित की जाती है। सूचनादाताओं के आन्तरिक जीवन में प्रवेश की सम्भावना के कारण साक्षात्कार पद्धति व्यक्तियों की भावना, आन्तरिक विचारों और मनोव त्तियों का अध्ययन करने के लिए विशेष उपयोगी प्रणाली है।

साक्षात्कारः अर्थ एवं परिभाषा (Interview: Meaning & Defination): साक्षात्कार सामाजिक अनुसंधान में प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री-संग्रह की एक प्रत्यक्ष एवं मौलिक प्रणाली है। इस तरह साक्षात्कार प्रणाली के द्वारा ही सूचनाएँ प्राप्त की जाती हैं इस सम्बन्ध में Sri M. N. Basu का कथन है कि, **"साक्षात्कार को कुछ विषयों को लेकर व्यक्तियों के आमने-सामने का मिलन कहा जा सकता है।"** साक्षात्कार प्रणाली के अन्तर्गत अध्ययनकर्त्ता अपने अध्ययन-वस्तु 'मानव' जिससे सूचना प्राप्त करनी है, आमने-सामने बैठाकर, कुछ प्रश्न पूछकर अध्ययन विषय से सम्बन्धित

सूचनाएँ एकत्रित करने का प्रयत्न करता है। विभिन्न विद्वानों ने साक्षात्कार को भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। Dr. P. V. Young ने लिखा है कि, **"साक्षात्कार एक व्यवस्थित प्रणाली मानी जा सकती है जिसके द्वारा एक व्यक्ति इसके आन्तरिक जीवन में अधिक अथवा कम कल्पनात्मक रूप में प्रवेश करता है जो उसके लिए साधारणतया तुलनात्मक रूप से अपरिचित हैं।"**

Professor Goode & Hatt **के शब्दों मे, "मौलिक रूप में साक्षात्कार सामाजिक आन्तरिक क्रिया की एक प्रक्रिया है।"**

Sri V. M. Palmer ने साक्षात्कार को उचित रूप से परिभाषित करते हुए लिखा है कि, **"साक्षात्कार दो व्यक्तियों में एक सामाजिक स्थिति का निर्माण करता है, जिसमें निहित मनौवैज्ञानिक प्रक्रिया के लिए आवश्यक है कि दोनों व्यक्ति परस्पर प्रत्युत्तर करें, यद्यपि साक्षात्कार के सामाजिक अनुसंधानिक उद्देश्य से सम्बन्धित दोनो पार्टियों में बहुत भिन्न प्रत्युत्तर होते हैं।"**

Hader & Lindman ने साक्षात्कार की मुख्य प्रक्रिया को समझाते हुए लिखा है कि , **"साक्षात्कार के अन्तर्गत दो व्यक्तियों के मध्य सवांद, मौखिक प्रत्युत्तर होते हैं, ये प्रत्युत्तर जब एक कर्म विषयक अर्थ में मौखिक होते हैं तो कई अन्य कारकों द्वारा निर्धारित होते हैं जिसमें से कुछ वैषयिक होते हैं एवं कुछ कर्म विषयक।"**

Hsin Pao Young ने साक्षात्कार को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, **"साक्षात्कार क्षेत्रीय कार्य की ऐसी प्रविधि है, जो कि एक व्यक्ति या व्यक्तियों के व्यवहारकी निगरानी करने, कथनों को अंकित करने व सामाजिक या सामूहिक अन्तः क्रिया के वास्तविक परिणामों का निरीक्षण करने के लिए प्रयोग में ली जाती है।"**

Moser ने साक्षात्कार को परिभाषित करते हुए लिखा है। कि, **"औपचारिक साक्षात्कार, जिसमें कि पूर्व निर्मित प्रश्नों को पूछा जाता है तथा उत्तरों को प्रमाणीकृति स्वरूप में लेखबद्ध किया जाता है, बड़े पैमाने पर सर्वेक्षण में निश्चित रूप से सामान्य है, लेकिन हमें कम औपचारिक स्वरूपों को भी समझना चाहिए जिसमें साक्षात्कारकर्ता प्रश्नों के क्रम को बदलने, उनके अर्थ कि व्यवस्था करने, किसी अतिरिक्त प्रश्न को जोड़ने एवं यहाँ तक कि शब्दावली मे परिर्वतन करने के लिए स्वतन्त्र है।"**

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं, कि साक्षात्कार एक ऐसी व्यवस्थित पद्धति है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी मुख्य उद्देश्य को सामने रख कर परस्पर आमने-सामने होकर संवाद, वार्तालाप एवं उत्तर-प्रयुत्तर करते हैं। साक्षात्कार में दो या अधिक व्यक्ति आमने-सामने मिलते हैं। सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में आधुनिक युग में, साक्षात्कार का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग बढ़ रहा है।

साक्षात्कार पद्धति की विशेषताएँ (Characteristics of Interview Tecnique): उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर साक्षात्कार-प्रविधि की कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किया जा सकता है जो कि इस प्रकार हैं :

1. **दो या दो से अधिक व्यक्ति (Two or more persons)**: साक्षात्कार-प्रविधि की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें दो या दो से अधिक व्यक्तियों का निकटतम सम्पर्क एवं वार्तालाप होता है, और यह एक आवश्यक शर्त भी है।

2. **आमने-सामने के प्राथमिक सम्बन्ध (Face to face realtions):** इस प्रविधि की दूसरी मुख्य विशेषता यह है कि इसमें आमने-सामने के प्राथमिक सम्बन्ध (Primaay Relations) स्थापित किए जाते हैं।

3. **विशिष्ट उद्देश्य (Specific Object):** तीसरी मुख्य विशेषता 'विशिष्ट उद्देश्य' है। अर्थात् दो या दो से अधिक व्यक्तियों के आमने-सामने के सम्बन्ध किसी विशिष्ट उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही स्थापित किए जाते हैं।

4. **सामग्री संकलन (Collection of Data):** साक्षात्कार-प्रविधि का चतुर्थ उद्देश्य जो कि अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, यह है कि इस प्रविधि द्वारा सामाजिक अनुसन्धानों एवं सामाजिक अध्ययन हेतु सामग्री का संकलन किया जाता है।

साक्षात्कार के प्रमुख उद्‌देश्य (Main Objects of Interview): साक्षात्कार-प्रविधि का अर्थ व विशेषता समझने के उपरान्त यह आवश्यक हो जाता है कि उसके उद्देश्यों को समझा जाए। ये उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

1. **प्राक्कल्पनाओं का प्रमुख साधन (Main Source of Hypotheses):** साक्षात्कार का एक उद्देश्य प्राक्कल्पनाओं के निर्माण के लिए अवश्यक सामग्री को एकत्रित करना है। साक्षात्कार करने से अनुसन्धानकर्त्ता को भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की भावनाएँ, विचार, मनोव त्तियों आदि के बारे में जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिलता है। साथ ही, व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में भी बहुमूल्य अनुभव होते हैं। शायद कहने की आवश्यकता नहीं कि सामाजिक क्रियाओं एवं व्यक्तिगत अन्त क्रियाओं के बारे में प्राक्कल्पना निर्माण करने के लिए साक्षात्कार के अतिरिक्त अन्य कोई प्रविधि अधिक सहायक नहीं हो सकती।

2. **प्रत्यक्ष सम्पर्क एवं आमने-सामने के सम्पर्क द्वारा सूचना (Information through direct and face to face contact):** साक्षात्कार का दूसरा प्रमुख उद्देश्य आमने-सामने के सम्पर्क स्थापना द्वारा सूचना का संकलन करना है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि इस प्रविधि में दो या दो से अधिक व्यक्तियों का प्रत्यक्ष अथवा आमने-सामने के सम्पर्क स्थापित किया जाता है। वास्तव में इस प्रकार के प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा व्यक्ति से उसकी अनेक आन्तरिक बातें, भावनाओं, उद्वेगों मनोव त्तियों आदि का भी अध्ययन सम्भव है जो कि सामाजिक अनुसन्धान-कार्यों मे अति महत्पूर्ण है।

3. **निरीक्षण का अवसर पाना (To seek opportunity for observation):** साक्षात्कार का एक अन्य प्रमुख उद्देश्य यह है कि इससे निरीक्षण का एक अच्छा अवसर प्राप्त होता है। यदि कोई व्यक्ति अजनवी-सा आपके घर पर आपके परिवार का निरीक्षण करने पहुँच जाए तो शायद आपकों बुरा महसूस हो। परन्तु साक्षात्कार करने के बहाने अनुसंधानकर्त्ता आपके पास जाता है और साक्षात्कार करने के साथ-साथ आपके घर का वातावरण, पास पड़ोस, घर के सदस्यों का व्यवहार आदि सब-कुछ निरीक्षण कर लेता हैं इस प्रकार साक्षात्कारकर्त्ता का निरीक्षण एवं साक्षात्कार दोनों ही पद्धतियों के लाभ प्राप्त होने का सुन्दर सुअवसर प्राप्त हो जाता है।

4. **आन्तरिक एवं व्यक्तिगत सूचना (Internal and Personal Information):** साक्षात्कार-प्रविधि द्वारा हमें अनेकों व्यक्तिगत एवं आन्तरिक तथ्यों को अध्ययन करने में भी सहायता प्राप्त होती है। अनेक गुणात्मक तथ्य जैसे व्यक्तिगत विचार, भावनाएँ, लोकविश्वास, व्यकितगत

उद्वेग, मनोव त्तियाँ और प्रव त्तियाँ, जो कि मानव के आन्तरिक जगत् में विद्यमान रहते हैं, साक्षात्कार प्रविधि द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं।

साक्षात्कार के प्रकार (Types of Interview): अनेक विद्वानों ने साक्षात्कार को विभिन्न आधारों पर अलग-अलग वर्गीकृत किया है। यहाँ हम सामाजिक विद्वानों के द्वारा सामान्यतयः जो वर्गीकरण किया जाता है उसका उल्लेख कर रहे हैं :

साक्षात्कारों को अनेक प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। यदि हम साक्षात्कार को कुछ आधारों पर वर्गीकृत करने का प्रयत्न करें तो अधिक उत्तम रहेगा। यह वर्गीकरण निम्नलिखित आधारों पर प्रस्तुत किया जा सकता है।

(अ) **कार्यों के आधार पर वर्गीकरण** (Classification According to Functions): कार्यों के आधार पर साक्षात्कार निम्नलिखित तीन प्रकार के होते हैं :

1. **कारक परीक्षक साक्षात्कार** (Diagnostic Interview): कारक परीक्षक साक्षात्कार का उद्देश्य किसी गम्भीर सामाजिक घटना या समस्या के कारकों की खोज करना होता है। इस प्रकार का साक्षात्कार समस्या के कारणों की खोज के लिए किया जाता है।
2. **उपचार साक्षात्कार** (Treatment Interview): जब किसी साक्षात्कार का उद्देश्य किसी सामाजिक समस्या को दूर करने के उपचार से सम्बन्धित सुझावों की खोज करना होता है तो उसे उपचार साक्षात्कार कहा जा सकता है।
3. **शोध सम्बन्धी साक्षात्कार** (Research Interview): शोध सम्बन्धी साक्षात्कार में भी विभिन्न सामाजिक विषयों एवं घटनाओं से सम्बन्धित कारकों की खोज करने का प्रयत्न किया जाता है।

(ब) **औपचारिकता के आधार पर वर्गीकरण** (Classification According to Formality): औपचारिकता के आधार पर साक्षात्कार को निम्नलिखित प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1. **औपचारिक साक्षात्कार** (Formal Interview): औपचारिक साक्षात्कार को नियन्त्रित साक्षात्कार (Structured Interview) भी कहा जा सकता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कार अनुसूची, जो कि पूर्वनिर्मित होती है, में दिए गए प्रश्नों को ही पूछता है और साक्षात्कारदाता द्वारा दिए गए उत्तरों को नोट कर लेता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में प्रमुख बात यह है कि साक्षात्कारकर्त्ता के ऊपर विशेष नियन्त्रण होता है, उसको अनुसूची के अतिरिक्त और प्रश्न पूछने की न तो स्वतन्त्रता होती है और न ही वह अनुसूची की शब्दावली की भाषा आदि में परिवर्तन करने को स्वतन्त्र है। उसे तो एक पूर्व योजना के अन्तर्गत ही कार्य करना पड़ता है। इसीलिए इसको नियोजित साक्षात्कार भी कहा जाता है।

2. **अनौपचारिक साक्षात्कार** (Informal Interview): इस साक्षात्कार को अनियन्त्रित या स्वतन्त्र साक्षात्कार भी कहा जा सकता है इस प्रकार के साक्षात्कार में किसी भी विशेष अनुसूची की सहायता नहीं ली जाती है। साक्षात्कारकर्त्ता, साक्षात्कारदाता से कुछ मुख्य प्रश्न या किसी विषय पर उसके विचार पूछता है और उत्तरदाता एक वर्णन या कहानी के रूप में अपने विचारों का वर्णन करता है। साक्षात्कारकर्त्ता इसी

वर्णन अथवा विवेचन के आधार पर ही निष्कर्ष निकालता है। इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग विशेषकर पूर्वगामी अध्ययनों एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के लिए किया जाता है।

(स) **सूचनादाताओं की संख्या के आधार पर वर्गीकरण (Classification According to Number to Infomants):** प्रत्येक साक्षात्कार में, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, दो या दो से अधिक व्यक्तियों का भाग लेना आवश्यक होता है। अतः सूचनादाताओं की संख्या के आधार पर भी साक्षात्कार को निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है -

1. **व्यक्तिगत साक्षात्कार (Personal Interview):** व्यक्तिगत साक्षात्कार में, जैसा कि नाम से स्पष्ट है, साक्षात्कारकर्त्ता एक समय में एक ही व्यक्ति से साक्षात्कार करता है। श्री सिन पायो यांग के अनुसार "व्यक्तिगत साक्षात्कार एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के साथ मिलाता है।" इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्त्ता, साक्षात्कारदाता से प्रश्न पूछता चला जाता है; साक्षात्कारदाता उसका उत्तर देता चला जाता है। कभी-कभी दोनों ही प्रश्नोत्तर करने लगते हैं।

   प्रायः व्यक्तिगत साक्षात्कार से अनेक **लाभ होने** की सम्भावना रहती है। **प्रथम** तो अन्य पद्धतियों की तुलना में इस पद्धति से कहीं अधिक सत्य सूचनाएँ प्राप्त करने की सम्भावना रहती है, क्योंकि साक्षात्कारकर्त्ता उत्तरदाता के अनेक गलत उत्तरों को उसी समय ठीक कर सकता है। दूसरे, इस प्रकार के साक्षात्कार द्वारा अनुसूची में दिए गए प्रायः सभी प्रश्नों के उत्तर सम्भव होते हैं, क्योंकि साक्षात्कारकर्त्ता स्वयं प्रश्न पूछता है। **इसके अतिरिक्त,** अनुसूची में यदि किसी प्रश्न की भाषा कठिन हो, तो साक्षात्कारकर्त्ता उसे सरल करके समझा भी सकता है। **इतना ही नहीं,** व्यक्तिगत साक्षात्कार से अनेक भावक एवं संवेदनशील प्रश्नों के उत्तर भी प्राप्त होने की सम्भावना होती है क्योंकि साक्षात्कारकर्त्ता उन प्रश्नों को उत्तरदाता के समक्ष अति कोमल रूप में प्रस्तुत करता है।

   उपरोक्त लाभों के साथ-साथ व्यक्तिगत साक्षात्कार की कुछ सीमाएँ भी हैं। प्रथम, व्यक्तिगत साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्त्ता का व्यक्तिगत पक्षपात समाविष्ट हो जाता है। **साथ ही** यह अत्यधिक खर्चीली एवं समय नष्ट करने वाली प्रविधि है। फिर भी व्यक्तिगत साक्षात्कार ही अत्यधिक प्रचलित प्रविधि है।

2. **सामूहिक साक्षात्कार (Group Interview):** व्यक्तिगत साक्षात्कार के विपरीत, सामूहिक साक्षात्कार में एक समय में एक से अधिक व्यक्तियों का साक्षात्कार लिया जाता है। साक्षात्कारकर्त्ता व्यक्तियों के समूह से कुछ प्रश्न बारी-बारी से करता है - समूह के सभी व्यक्ति या कुछ व्यक्ति उसका उत्तर देते हैं। कभी-कभी इसीलिए इसे वाद-विवाद सभा भी कहा जाता है।

   इस प्रविधि के कई लाभ है। **प्रथम** तो यह बड़ी जनसंख्या में सामग्री संकलन का सर्वोत्तम ढंग है। **दूसरे,** इसमें कम कुशलता से भी काम चल सकता है। इसमें कम खर्च और कम समय तो लगता ही है, साथ ही व्यक्तिगत पक्षपात आने की भी सम्भावना बहुत कम रहती है। यद्यपि यह बात अवश्य है कि सामूहिक रूप में प्रश्नोत्तर करने के कारण न तो सभी प्रश्नों के उत्तर सही मिल पाते हैं और न ही विशाल जनसमूह के सभी व्यक्ति प्रश्न समझ पाते हैं।

(द) **अध्ययन-पद्धति के आधार पर वर्गीकरण (Classification According to Methodology):** अध्ययन-पद्धति के आधार पर साक्षात्कार को निम्नलिखित तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है -_

1. **निर्देशित साक्षात्कार (Directive Interview)**

साधारणतया यह साक्षात्कार प्रश्नावली का रूप ले लेता है। सैलटिज, जहोडा, ड्वाइंश और कुक के अनुसार निर्देशित साक्षात्कार बहुत अधिक नियन्त्रित और व्यवस्थित होता है। इसमें प्रश्नों के प्रकार, क्रम और शब्दावली निश्चित होती है। प्रत्येक उत्तरदाता से प्रश्न एक ही क्रम में पूछे जाते हैं। साक्षात्कारकर्त्ता को प्रश्नों का क्रम और शब्दावली बदलने की स्वतन्त्रता नहीं होती है। यही कारण है कि अनेक वैज्ञानिकों ने निर्देशित साक्षात्कार का उल्लेख प्रश्नावली प्रणाली के साथ-साथ किया है। गुडे और हट्ट, यंग, सैलटिज तथा अन्यों के अनुसार इस साक्षात्कार का उपयोग तब किया जाता है जब प्रश्नावलियाँ लौटकर नहीं आती हैं और वैज्ञानिक स्वयं सूचनादाताओं के पास जाता है तथा उनसे आमने-सामने के सम्बन्ध स्थापित करके प्रश्नोत्तरों की प्रक्रिया के द्वारा प्रश्नावलियाँ भरता है।

निर्देशित साक्षात्कार में दो प्रकार के प्रश्नों का उपयोग किया जाता है -

(क) बन्द प्रश्न (Closed Questions) एवं

(ख) खुले प्रश्न (Open Questions).

बन्द प्रश्नों में प्रश्नों से सम्भावित उत्तर, उत्तरदाताओं की सुविधा के लिए प्रश्नों के नीचे दिए होते हैं तथा खुले प्रश्नों को इसलिए पूछा जाता है कि उत्तरदाता स्वतन्त्र होकर प्रश्नों से सम्बन्धित अपनी जानकारी दे। खुले प्रश्नों के नीचे सम्भावित उत्तर नहीं दिए जाते हैं। बन्द प्रश्नों के नीचे उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में हो सकते हैं या क्रमों में सम्भावित उत्तर दिए होते हैं। उत्तरदाता अपनी जानकारी के अनुसार उत्तर के आगे सही (3) का चिह्न लगा देता है। खुले प्रश्न उत्तरदाताओं को अपने विचार व्यक्त करने के लिए पूर्ण छूट देते हैं न कि किसी सीमा में बाँधते हैं। खुले प्रश्न केवल किसी बात से सम्बन्धित प्रश्न उठाते हैं और उत्तरदाता उनसे सम्बन्धित उत्तर देते हैं जो सूचनादाता के अपने द ष्टिकोणों, विचार तथा ज्ञान पर आधारित होते हैं।

2. **अनिर्देशित साक्षात्कार (Non-Directive Interview)**

अधिकतर साक्षात्कारों में साक्षात्कारकर्त्ता को यह स्वतन्त्रता होती है कि वह दिए हुए विषय से सम्बन्धित प्रश्नों को पूछे। लेकिन वह प्रश्न पूछने समय उत्तरदाता के उत्तरों को अपने प्रश्नों द्वारा पक्षपातपूर्ण न होने दे। इसकी उसे हिदायत तथा चेतावनी दी जाती हैं अनिर्देशित साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्त्ता पर पूर्ण नियन्त्रण नहीं होता है। वह पूर्व-निर्देशित, व्यवस्थित तथा संगठित प्रश्न नहीं पूछता है। इसलिए यह साक्षात्कार अव्यवस्थित और अनियन्त्रित साक्षात्कार भी कहलाता है। इस साक्षात्कार में उत्तरदाता को स्वतन्त्रता से और बिना किसी झिझक के अपने विचार व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। इसमें साक्षात्कारकर्त्ता थोड़ी देर में ऐसी बात कहता रहता है या टिप्पणी करता रहता है जिससे कि उत्तरदाता अधिक जानकारी देने के लिए उत्साहित होता रहे। ये टिप्पणियाँ अथवा प्रश्न हो सकते हैं जैसे - आपने मुझे नई जानकारी दी, या आप मुझे और बताइए या क्यों या क्या यह रुचिकर बात नहीं है, इत्यादि।

साक्षात्कारकर्त्ता को ऐसा वातावरण बनाना चाहिए जिससे उत्तरदाता अपने आपको बिना किसी डर या झिझक के व्यक्त कर सके। साक्षत्कारकर्त्ता को किसी प्रकार का सुझाव नहीं देना चाहिए, पक्ष या विपक्ष में भी अपने विचार व्यक्त नहीं करने चाहिए। वैज्ञानिकों ने कहा है कि साक्षात्कारकर्त्ता को उत्तरदाताओं को सोचने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और इसलिए अनिर्देशित साक्षात्कार व्यक्तियों के विचार, द ष्टिकोण और भावना को मालूम करने के लिए तथ्य संकलन की अच्छी प्रणाली है।

निर्देशित और अनिर्देशित साक्षात्कारों के लाभ तथा हानियाँ

इन दोनों साक्षात्कारों के लाभ तथा हानियाँ एक-दूसरे से भिन्न हैं। निर्देशित साक्षात्कार साधारणतया प्रश्नावली व्यवस्थित तथा नियन्त्रित होता है। इसमें दो प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं-बन्द तथा खुले प्रश्न। निर्देशित साक्षात्कार में बन्द प्रश्न तथा अनिर्देशित साक्षात्कार में खुले प्रश्न अधिक पूछे जाते हैं। बन्द और खुले प्रश्नों के अपनी लाभ-हानियाँ एवं सीमाएँ हैं, जो निर्देशित और अनिर्देशित साक्षात्कारों के लाभ और हानियों को भी प्रभावित करती हैं। बन्द प्रश्नों को आसानी से पूछा जा सकता है और इनका विश्लेषण भी कम खर्चीला होता है। खुले प्रश्नों के विश्लेषण, वर्गीकरण, सारणीयन इत्यादि समय, धन और श्रम अधिक चाहता है। बन्द प्रश्न में सम्भावित उत्तर प्रश्न के नीचे दिए होते हैं जो उत्तर दाताओं को प्रश्नों को समझने में भी सहायता देते हैं जबकि खुले प्रश्नों मे इसकी व्यवस्था नहीं होती है। जहाँ निर्देशित साक्षात्कार के लाभ हैं वहाँ इसमें कमियाँ भी हैं। इसमें बन्द प्रश्नों के अधिक उपयोग के कारण उत्तरदाता प्रश्नो के उत्तर देने के लिए बँध जाता है और वह नहीं जानता, या मालूम नहीं, या कह नहीं सकता उत्तर नहीं देता है क्योंकि ये उत्तरों के क्रम में सबसे अन्त में होते हैं उत्तर दाता प्रश्नो से सम्भावित उत्तरों में से कुछ के आगे सही (*3*) को चिहृन लगा देता है।

इसके समानान्तर अनिर्देशित साक्षात्कार में खुले प्रश्न पूछे जाते हैं जिसमें उत्तरदाता से और अधिक पूछने की सम्भावना रहती है जिससे कि वह प्रश्न से सम्बन्धित अपनी जानकारी और विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकता है। अतः बन्द प्रश्न जहाँ पक्षपातपूर्ण उत्तर देने के लिए प्रभावित करते हैं वहाँ खुले प्रश्नों में यह बात नहीं होती है। निर्देशित साक्षात्कारों में प्रश्नों की शब्दावली सभी उत्तरदाताओं के लिए समान होती है और भिन्न-भिन्न उत्तरदाता उनके अर्थ अलग-अलग लगाते हैं जिससे उनके उत्तरों में भी भिन्नता आ जाती है। बन्द प्रश्न कुछ वास्तविकताओं से सम्बन्धित जानकारी एकत्रत करने के लिए अधिक जानकारी होते हैं, जैसे आयु, शिक्षा, व्यवसाय, मकान का किराया इत्यादि। निर्देशित साक्षात्कार अधिक खर्चीली प्रणाली है। पहले प्रश्नावलियाँ भेजी जाती हैं और जब प्रश्नावलियाँ केवल 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत ही लौटकर आती है तब निर्देशित साक्षात्कार का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक सूचनादाता के पास जाना होता है। इसलिए यह प्रणाली अधिक खर्चीली हो जाती है।

अनिर्देशित साक्षात्कार मे एक साक्षात्कार की तुलना दूसरे साक्षात्कार से करना बहुत कठिन है। इस साक्षात्कार के अन्तर्गत (केन्द्रित पुनराव त्ति और गहन) खुले प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है। साक्षात्कारकर्ता प्रश्नों को पूछने, क्रम को बदलने तथा शब्दावली को बदलने के लिए स्वतन्त्र होता है। यह स्वतन्त्रता जहाँ एक ओर अच्छी जानकारी, (विचार, द ष्टिकोण, भावना, विश्वास आदि) प्राप्त करने के लिए है वहाँ इसकी कुछ कमियाँ भी हैं।

अनिर्देशित साक्षात्कार खुले प्रश्नों पर आधारित है इसलिए यह अधिक खर्चीली प्रणाली है।

अनिर्देशित साक्षात्कार अच्छे साक्षात्कारकर्त्ताओं द्वारा ही लिया जा सकता है जो प्रशिक्षित तथा अनुभवी होते हैं अन्यथा इस प्रकार के साक्षात्कार किसी भी उपयोगिता के नहीं होते हैं। इस साक्षात्कार विधि से उपकल्पनाओं की जाँच भी नहीं की जा सकती है। ये साक्षात्कार निर्देशित, व्यवस्थित और नियन्त्रित साक्षात्कारों से कम निपूर्ण विधियाँ हैं।

3. **केन्द्रित साक्षात्कार** **(Focused Interview)**

यह साक्षात्कार मर्टन और उनके साथियों द्वारा प्रयुक्त एवं परिभाषित किया गया है। उन्होंने अपने लेख मे इस पर काफी विचार व्यक्त किए हैं। उनके अनुसार केन्द्रित साक्षात्कारों में साक्षात्कारकर्त्ता का मुख्य कार्य किसी विशेष अनुभव से सम्बन्धित सूचनादाता का ध्यान केन्द्रित करना है, जिसके लिए साक्षात्कारकर्त्ता पहले से विषय से सम्बन्धित प्रश्न और उसके विभिन्न पहलुओं की अच्छी जानकारी प्राप्त कर लेता है। मर्टन और केण्डल ने केन्द्रित साक्षात्कार को अन्य साक्षात्कारों के निम्न लक्षणों के आधार पर अलग किया है :

(1) केन्द्रित साक्षात्कार केवल उन व्यक्तियों से किया जाता है जो किसी विशेष घटना में भाग ले चुके हैं,

(2) यह उन घटनाओं का परिस्थितियों से सम्बन्धित साक्षात्कार होता है। जिनका पहले से अध्ययन किया जा चुका है।

(3) यह साक्षात्कार निर्देशिका के आगे बढ़ता है। साक्षात्कार निर्देशिका में अध्ययन से सम्बन्धित मुख्य-मुख्य पहलुओं और प्रश्नों को निर्धारित कर लिया जाता है और उपकल्पना से सम्बन्धित तथ्य एकत्र किए जाते हैं और

(4) यह साक्षात्कार सूचनादाता के अनुभव पर केन्द्रित होता है जैसे उनके द ष्टिकोण, भावना, प्रतिक्रियाएँ इत्यादि। यंग का कहना है कि केन्द्रित साक्षात्कार अर्द्धनिर्देशित साक्षात्कार है। केन्द्रित साक्षात्कार के द्वारा उन सूचनाओं को एकत्र करना सम्भव है जो कि व्यक्तिगत प्रतिक्रियाएँ, भावनाएँ इत्यादि से पहले ही परिस्थिति से सम्बन्धित पहलुओं का विश्लेषण कर चुका होता है और उसके बाद साक्षात्कार लेने जाता है। यह साक्षात्कार बहुत अधिक सतर्कता, तैयार और कुशलता चाहता है।

4. **पुनराव त्ति-साक्षात्कार** **(Repeated Interview))**

यंग ने इस साक्षात्कार की परिभाषा देते हुए लिखा है कि यह साक्षात्कार विशेष रूप से ऐसे अध्ययनों के लिए लाभकारी है जिसमें हम किसी विशिष्ट सामाजिक या मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के विकास का अध्ययन करना चाहते हैं। जैसे प्रगतिशील क्रिया, कारक, द ष्टिकोण जो किसी निश्चित दिए हुए व्यवहार के प्रतिमान या सामाजिक परिस्थिति का निर्णय करते है। इस साक्षात्कार के द्वारा हम द ष्टिकोण, क्रिया या प्रगतिशील विचारों के विकास का अध्ययन कर सकते हैं। पुनराव त्ति साक्षात्कार समय, धन तथा श्रम के द ष्टिकोण से अधिक खर्चीली प्रणाली है। यह साक्षात्कार केन्द्रिय साक्षात्कार की तरह एक विशिष्ट घटना और विशिष्ट तथ्यो के संकलन के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा एकत्र तथ्यों का सारणीयन कर सकते हैं, माप सकते हैं। इसमें साँख्यिकीय विधियों का भी प्रयोग कर सकते हैं।

5. **गहन साक्षात्कार** **(Depth Interview)**

एफ. कार्फ के अनुसार गहन साक्षात्कार वह है जिसका उद्देश्य अचेतन तथा दूसरे प्रकार की वह सामग्री जो विशेष रूप से व्यक्तित्व की गतिशीलता और संप्रेषण से सम्बन्धित होती

है, को मालूम करना है। गहन साक्षात्कार सामान्यतया एक दीर्ध विधि है जिसका निर्माण स्वतन्त्र रूप से प्रभावित सूचना को व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करना है। इसका उपयोग विशेष उपकरणों के साथ जैसे स्वतन्त्र सम्पर्क तथा अन्य तकनीकी के साथ कर सकते हैं। जब इसका उपयोग बुद्धिमत्तापूर्ण और सतर्कतापूर्ण, विशेष प्रशिक्षण प्राप्त साक्षात्कारकर्त्ता द्वारा किया जाता है। तब गहन साक्षात्कार सामाजिक मनोवैज्ञानिक परिस्थितियो के महत्त्वपूर्ण पहलुओं को स्पष्ट करता है। इसके बिना तुरन्त उत्तर प्राप्त नहीं हो सकते अवलोकित व्यवहार और कहे गए या बताए गए विचार तथा द ष्टिकोणों को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं। यंग का कहना है कि अगर अनुसन्धानकर्त्ता विशेष प्रशिक्षित नहीं है तो उत्तम यही है कि गहन साक्षात्कार का उपयोग नहीं किया जाए।

साक्षात्कार प्रविधि के प्रमुख चरण
(Main Steps of Interview Technique)

साक्षात्कार-प्रविधि संचालित किस प्रकार की जाए, एवं इसका प्रयोग किस प्रकार किया जाए, इस पर काफी चिन्तन-मनन हुआ है; साथ ही इस पर अथाह साहित्य भी लिखा जा चुका है। इस विषय पर लिखने वालों में हरबर्ट और हाईमैन (Herbert and Hyman), बिन्धम, वाल्टर व मूर (Binghom, Walter & Moore), ओल्डफील्ड (Oldfield), वेनलैंड व ग्रौस (Weinland D. & Gross M.U.) आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वास्तव में साक्षात्कार-प्रविधि का प्रयोग भी इतना सरल नहीं है जितना कि प्रायः समझा जाता है। अध्ययन की सुगमता की द ष्टि से साक्षात्कार की प्रक्रिया को सुगमतापूर्वक और नियमानुसार चलाने के लिए उसके कुछ प्रमुख चरण होते हैं। ये प्रमुख चरण निम्नलिखित हो सकते हैं -

(क) साक्षात्कार की तैयारी
(Preparation of Interview)

साक्षात्कार करने से पूर्व (अर्थात् किसी व्यक्ति या समूह, जिसका कि अध्ययन किया जा रहा है, से साक्षात्कार करने से पूर्व) उसकी तैयारी कर लेना अति आवश्यक है, क्योंकि बिना प्राथमिक तैयारियों के साक्षात्कार उचित रूप से संचालित नहीं हो पाता। साक्षात्कार की तैयारी में मुख्य रूप से निम्नलिखित बातें अति आवश्यक होती हैं -

1. **समस्या की पूर्ण जानकारी (Full Knowledge of the Problem):** साक्षात्कार-प्रविधि के प्रथम चरण की पहली मुख्य बात यह है कि साक्षात्कारकर्त्ता को अपने अध्ययन-विषय की पूर्ण जानकारी होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में साक्षात्कारकर्त्ता अथवा अनुसन्धानकर्त्ता को अध्ययन-समस्या के सभी पहलुओं का विस्त त ज्ञान होना चाहिए। उसका मुख्य कारण यह है कि साक्षात्कारकर्त्ता को 'साक्षात्कार-निर्देशिका' एवं अनुसूची का निर्माण करना पड़ता है। इतना ही नहीं, क्षेत्र में उसको साक्षात्कारदाता के अनेक प्रश्नों एवं वाद-विवादों का भी सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में यदि साक्षात्कारकर्त्ता को अपने अध्ययन-विषय का पर्याप्त ज्ञान नहीं है तो वह साक्षात्कारदाता के प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर देने में असमर्थ रहेगा जो कि अनुसन्धान की सफलता के लिए घातक है। अतः सर्वप्रथम साक्षात्कारकर्त्ता को अपने अध्ययन-विषय के बारे में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

2. **साक्षात्कार-निर्देशिका की रचना करना (Construction of Interview Guide):** जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि साक्षात्कार-प्रविधि में साक्षात्कार-निर्देशिका का

अपना प थक् ही महत्व है। इसकी रचना करना एक आवश्यक शर्त है। साक्षात्कार की तैयारी करते समय इसका निर्माण किया जाता है। साक्षात्कार-निर्देशिका एक लिखित प्रलेख होती है जिसमें अध्ययन-समस्या के विभिन्न पहलुओं का क्रमबद्ध रूप में निर्देश दिया होता है। इसमें अनुसूची की भाँति निश्चित प्रश्न नहीं दिए होते हैं, वरन् साक्षात्कार करने की संक्षिप्त रूप में पद्धति, समस्या के विभिन्न पहलू एवं अन्य आवश्यक निर्देश दिए रहते हैं और ये सभी बिन्दुओं (Points) के रूप में दिए रहते हैं - प्रश्नों के रूप में नहीं। इतना ही नहीं, नीचे फुटनोट में समस्या से सम्बन्धित विभिन्न इकाइयों एवं कठिन शब्दों की उचित परिभाषा भी दी हुई होती है ताकि कार्यकर्त्ता उनको सूचनादाताओं को सरलता के साथ समझा सके। यदि हम संक्षेप में यह कहें कि **"साक्षात्कार-निर्देशिका अध्ययन-समस्या की योजना का क्रमबद्ध एवं संक्षिप्त वर्णन है"** तो अनुचित न होगा।

साक्षात्कार-निर्देशिका की उपयोगिता (Utility of Interview Guide): इस बात पर दो मत नहीं हो सकते कि साक्षात्कार-प्रविधि के संदर्भ में साक्षात्कार-निर्देशिका का अत्यधिक महत्व है। इसकी उपयोगिता को निम्नलिखित वर्णन से स्पष्ट किया जा सकता है -

साक्षात्कार-निर्देशिका का **प्रथम** लाभ यह है कि इसकी पूर्व रचना करने से अध्ययन में एकरूपता आ जाती है। यदि अध्ययन समस्या जटिल है तो विशाल जनसमूह का अध्ययन करना होगा और उस अवस्था में साक्षात्कार भी अधिक करने होंगे जिसको कि केवल एक ही व्यक्ति संचालित नहीं कर पाएगा अर्थात् अनेक कार्यकर्त्ताओं के द्वारा साक्षात्कार किए जाएँगे और इस अवस्था में साक्षात्कार-निर्देशिका के द्वारा सभी कार्यकर्त्ताओं के साक्षात्कार में एकरूपता आ सकेगी।

साक्षात्कार-निर्देशिका का **दूसरा** लाभ यह है कि इससे समस्या के सभी पहलुओं का विस्त त अध्ययन सम्भव हो जाता है, क्योंकि साक्षात्कार-निर्देशिका में इन सभी पहलुओं को नोट कर लिया जाता है। अतः कार्यकर्त्ता द्वारा उनके भूल जाने की सम्भावना नहीं रहती।

इसका **तीसरा** लाभ यह है कि साक्षात्कारकर्त्ता को अपनी स्मरणशक्ति पर विशेष दबाव नहीं डालना पड़ता। जब साक्षात्कारकर्त्ता स्वतन्त्र साक्षात्कार कर रहा होता है तो अक्सर वह भावात्मक व तावरण में बह जाता है और उसके लिए मूल विषय से बाहर चले जाने की सम्भावना रहती है। ऐसी स्थिति में साक्षात्कार-निर्देशिका उसको ऐसा करने से रोकती है।

अन्त में, साक्षात्कार-निर्देशिका अ ध्ययन में क्रमबद्धता आने में मदद करती है और साक्षात्कार की सफलता के लिए क्रमबद्धता एक आवश्यक शर्त है। कभी-कभी प्रश्नों में क्रमबद्धता न होने से साक्षात्कारदाता हड़बड़ा उठता है और गलत सूचनाएँ देने लगता है या साक्षात्कार समाप्त कर देता है। ऐसी स्थिति से बचने के लिए साक्षात्कार-निर्देशिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

यह ठीक है कि साक्षात्कार-निर्देशिका साक्षात्कार के संचालन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है, परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि यह पूरे साक्षात्कार को ही संचालित करती है, यद्यपि साक्षात्कार को कुछ आवश्यक निर्देश अवश्य देती है। इसका प्रयोग उसी सीमा तक करना चाहिए कि वार्तालाप में विघ्न न पड़े।

3. **साक्षात्कारदाताओं का चुनाव (Selection of Interviewers):** साक्षात्कार-निर्देशिका तैयार करने के बाद साक्षात्कारदाताओं का चुनाव होता है। साक्षात्कारदाताओं का चुनाव वास्तव में अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इन्हीं पर अध्ययन निर्भर करता है क्योंकि अनेक महत्वपूर्ण सूचनाओं के स्रोत यही साक्षात्कारदाता ही होते हैं। साक्षात्कारदाताओं का चुनाव किसी भी प्रकार की निदर्शन प्रविधि (Sampling Technique) द्वारा किया जा सकता है। यह अध्ययन-समस्या पर निर्भर करता है कि किस प्रकार की निदर्शन-प्रविधि को अपनाया जाए। कभी-कभी साक्षात्कारदाताओं की खोज भी करनी पड़ती है। उदाहरणार्थ, यदि सरकारी अस्पतालों में डॉक्टर व नर्सों की स्थिति का अध्ययन करना है तो अस्पताल-अधिकारियों से डॉक्टर व नर्सों के पते आदि आसानी से प्राप्त किए जा सकते हैं।

4. **साक्षात्कारदाताओं के सम्बन्ध में ज्ञान (To know About the Interviewers):** साक्षात्कारदाताओं के चयन के उपरान्त उनके बारे में थोड़ा ज्ञान भी प्राप्त करना आवश्यक है। अध्ययन अथवा अनुसन्धान की सफलता, सफल साक्षात्कार पर निर्भर करती है क्योंकि यदि साक्षात्कार सफल नहीं होता तो इसका तात्पर्य यह है कि सूचनाएँ भी सही प्राप्त नहीं हुई हैं। इस अवस्था से बचने के लिए यह आवश्यक है कि साक्षात्कारदाताओं के सम्बन्ध में थोड़ा ज्ञान प्राप्त किया जाए। कौन व्यक्ति किस प्रकृति का है, किस विचार का है? उसकी सांस्कृतिक प ष्ठभूमि क्या है? ये सब बातें जान लेने से साक्षात्कार में सफलता की अधिक आशा रहती है।

5. **साक्षात्कार के लिए उचित समय एवं स्थान का निर्धारण (To Determine Proper Time and Place for Interview):** साक्षात्कार की तैयारी के सम्बन्ध में अन्तिम बात जो कम महत्वपूर्ण नहीं है, यह है कि साक्षात्कार के लिए उचित समय एवं स्थान का निर्धारण कर लेना चाहिये। इसमें एक बात, उल्लेखनीय यह है कि समय एवं स्थान का निर्धारण साक्षात्कारदाता की सलाह से ही करना चाहिए उसके लिए साक्षात्कादाता से पत्र, टेलीफोन या व्यक्तिगत रूप से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। साथ ही, प्रथम सम्पर्क स्थापित करते समय परिचय पत्र भी भेजना चाहिए ताकि साक्षात्कारदाता को किसी प्रकार का सन्देह न हो।

   स्थान का चुनाव भी पहले ही होना चाहिए, इस सम्बन्ध में यदि गोपनीयता रहे तो अधिक अच्छा रहेगा। वास्तव में समय एवं स्थान पूर्व निर्धारण से साक्षात्कारकर्त्ता का काफी समय एवं धन बच जाता है। उसे बेकार ही अनेकों बार सूचनादाता के पास नहीं जाना पड़ता।

(ख) साक्षात्कार की संचालन प्रक्रिया
(Piloting Process of Interview)

साक्षात्कार की तैयारी करने के उपरान्त मुख्य साक्षात्कार की ओर अग्रसर होना पड़ता है। इस स्तर पर सूचनादाता और अनुसन्धानकर्त्ता आमने-सामने होता है और उनमें अन्तःक्रियात्मक सम्बन्ध स्थापित होता है। इसलिए **गुड एवं हॉट** (Goode and Hatt) ने लिखा है कि **वास्तव मे मूल रूप से साक्षात्कार सामाजिक अन्तःक्रिया की एक प्रक्रिया है।** इस प्रक्रिया के निम्नलिखित सामाजिक-मनोवैज्ञानिक पहलू हैं -

1. **सम्पर्क की स्थापना (Establishment of Contact):** साक्षात्कार में सामाजिक अन्तःक्रिया

की प्रथम सीढ़ी सम्पर्क की स्थापना है। पूर्वनिर्धारित स्थान एवं समय पर साक्षात्कारकर्त्ता साक्षात्कारदाता से सम्पर्क स्थापित करता है। सबसे प्रथम साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कारदाता से उचित अभिवादन के साथ मिलना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान रखनी आवश्यक है कि साक्षात्कारदाता से मिलने जाते समय साक्षात्कारकर्त्ता को सौम्य एवं गम्भीर पोशाक में होना चाहिए। चेहरा खिला हुआ एवं हँसमुख व्यक्तित्व होना चाहिए। उसे अपने गले में रेशमी रूमाल या आँख पर काला चश्मा या इत्र लगाकर नहीं जाना चाहिए। साक्षात्कारदाता से मिलते ही तुरन्त अपना परिचय-पत्र देना चाहिए। यदि परिचय-पत्र छपा हुआ हो तो और भी अच्छा है क्योंकि इससे साक्षात्कारदाता पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

2. **साक्षात्कार का प्रारम्भ — उद्देश्य का स्पष्टीकरण एवं सहयोग की प्रार्थना (Beginning of Interview – Clarification of Object and Request for Co-operation):** साक्षात्कारदाता से मिलने के उपरान्त अपना परिचय-पत्र देकर अपने उद्देश्य का चतुरता से स्पष्टीकरण कर देना चाहिए कि मैं अमुक संस्था के **अनुसन्धान कार्य में लगा हुआ हूँ अथवा मैं अमुक विषय पर शोध कार्य कर रहा हूँ। यदि** साक्षात्कारदाता यह पूछे कि वह उसके पास ही क्यों आए हैं, तो इसका रहस्य भी अर्थात् जिन निदर्शन-प्रविधि के द्वारा उसका नाम चुना गया, बता देना चाहिए; साथ ही कुछ अन्य व्यक्तियों का नाम भी, जो कि निदर्शन में हों, बता देना चाहिए। इससे साक्षात्कारदाता को आपके सम्बन्ध में पूर्ण विश्वास हो जाएगा जिसका कि साक्षात्कार पर भी अधिक अच्छा असर पड़ेगा।

   उद्देश्य स्पष्ट करने के उपरान्त साक्षात्कारकर्त्ता को उसके सहयोग की प्रार्थना करनी चाहिए। उससे यह कहना चाहिए कि उसका सहयोग अनुसन्धान के लिए कितना आवश्यक है। साथ ही, उससे यह भी कहना चाहिए कि बिना उसके सहयोग के समाज की 'यह' जटिल समस्या हल न हो पाएगी। इसके उपरान्त साक्षात्कारदाता को यह विश्वास दिलाना चाहिए कि उसके द्वारा दी गई सभी सूचनाएँ अत्यन्त गोपनीय रखी जाएगी, क्योंकि उनका उद्देश्य विशुद्ध वैज्ञानिक अनुसन्धान या शोध के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

3. **प्रमुख साक्षात्कार का प्रारम्भ (Beginning of Main Interview):** साक्षात्कार के उद्देश्य को स्पष्ट करने एवं सहयोग की याचना के उपरान्त प्रमुख साक्षात्कार का प्रारम्भ करना चाहिये। इस स्तर पर साक्षात्कारकर्त्ता को पहले प्राथमिक प्रश्न पूछने चाहिएँ, जैसे आपका नाम क्या है क्या आप अपने परिवार के सदस्यों की संख्या बताएंगे, आपकी आयु क्या है, आदि-आदि। इसके पश्चात् अध्ययन-विषय से सम्बन्धित प्रश्न पूछना चाहिए। इसमें से पहले सरल एवं सामान्य प्रश्न पूछना चाहिए। हाँ, बाद में व्यक्तिगत अनुभवों के बारे में पूछा जा सकता है। साथ ही, आरम्भ में साक्षात्कारकर्त्ता को बड़ा ही सतर्क, गम्भीर तथा तटस्थ रहना चाहिए। साक्षात्कारदाता को बोलने का अधिक अवसर देना चाहिए। स्वयं बहुत कम बोलना चाहिए, क्योंकि यदि साक्षात्कारकर्त्ता अधिक बोलता है तो कभी-कभी अनुभवों पर वाद-विवाद भी छिड़ जाता है, साथ ही साक्षात्कारदाता को अधिक कहने का अवसर भी प्राप्त नहीं होता। वास्तव में साक्षात्कारदाता से ही सूचनाएँ प्राप्त करना साक्षात्कार का प्रमुख उद्देश्य होता है। अतः साक्षात्कारकर्त्ता को कम बोलना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक बात यह भी ध्यान रखने की है कि साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कारदाता के पूछने पर भी किसी दशा

में किसी दूसरे व्यक्ति का अनुभव नहीं बताना चाहिए। इससे साक्षात्कारदाता पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

4. **कुछ उत्साहवर्धक वाक्य दोहराना** **(To Repeat Some Encouraging Sentences):** साक्षात्कार लेते समय यह आवश्यक हो जाता है कि साक्षात्कारकर्त्ता कुछ वाक्यों को बार-बार दोहराएं ताकि साक्षात्कारदाता का उत्साह बढ़े और वह साक्षात्कार में अधिक रुचि ले। ये वाक्य इस रूप में हो सकते हैं - "आपकी सूचना ने वास्तव में इस सामाजिक समस्या को हल करने में काफी सहायता की है।" "वाह! यह तो आपने एक नई बात, जो कि अत्यधिक महत्वपूर्ण है, सुनाई है।" "आपकी इस सूचना ने तो मुझे बिल्कुल अंधेरे से प्रकाश में ला दिया।" परन्तु ये वाक्य ऐसे समय पर और इस प्रकार कहने चाहिएं कि साक्षात्कारदाता को यह न लगे कि यह उसकी चापलूसी कर रहा है नहीं तो इसका प्रभाव उल्टा ही पड़ेगा।

5. **क्षोभकर प्रश्नों को करने से बचना** **(To Avoid Irritating Points):** साक्षात्कार लेते समय साक्षात्कारकर्त्ता को ऐसे प्रश्न नहीं पूछने चाहिए जिनसे कि साक्षात्कादाता क्रोधित हो जाए, क्योंकि ऐसा होने से साक्षात्कार तुरन्त ही समाप्त कर देना पड़ेगा और अध्ययन भी अधूरा रह जाएगा। उदाहरण के लिये, किसी चोर से यह कहना कि 'चोरी करना बड़ा गंदा काम है, तुमने चोरी क्यों की - वायदा करो कि अब नहीं करोगे।' ऐसे प्रश्न पर साक्षात्कारदाता का क्रोधित होना स्वाभाविक ही है जो कि सफल साक्षात्कार के लिये हानिकारक सिद्ध होता है।

6. **स्मरण कराना** **(Recall):** कभी-कभी ऐसा समय आता है कि साक्षात्कारदाता अपने अनुभवों का वर्णन करते-करते भावनाओं में डुबकी लगाने लगता है और मुख्य विषय से काफी दूर चला जाता है। ऐसे समय पर साक्षात्कारकर्त्ता का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह सावधानी से उसको मुख्य विषय की याद दिलाए। वह कह सकता है - "हाँ, अभी आप ··· के बारे में कुछ कह रहे थे, कृपया उस बारे में कुछ और कहिए!" "हाँ, तो उसका फिर क्या हुआ - वह तो बड़ी अच्छी घटना सुनाई आपने, क्या इसे फिर से सुनाना पसन्द करेंगे।"

   स्मरण करने में साक्षात्कारकर्त्ता को अत्यधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता है जिससे कि साक्षात्कारदाता को यह महसूस हो कि वास्तव में वह बात अत्यधिक महत्वपूर्ण है। साथ ही, साक्षात्कारदाता को यह अनुभव न होने पाए कि यह उससे कोई भेद की बात उगलवाना चाहता है। अतः यह आवश्यक है कि यदि साक्षात्कारकर्त्ता यह अनुभव करे कि साक्षात्कारदाता अमुक बात बताने का इच्छुक नहीं है, तो उस पर अधिक दबाव डालना उचित न होगा। वास्तव में साक्षात्कारकर्त्ता को हर क्षण सतर्क रहना पड़ता है।

7. **उचित एवं समयानुसार प्रश्न** **(Adequate and Timely Questions):** साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कार लेते समय सदैव ही उचित प्रश्न पूछने चाहिए। उचित प्रश्नों का तात्पर्य यह है कि अत्यधिक व्यक्तिगत प्रश्न नहीं पूछने चाहियें। यदि किसी व्यक्ति से उसकी प्रेमिका के बारे में पूछा जायेगा या किसी व्यक्ति से उसके गुप्त सम्बन्धों में बारे में पूछा जायेगा तो वह इन प्रश्नों का उत्तर देने की अपेक्षा साक्षात्कार बन्द कर देगा।

   उचित प्रश्न पूछने के साथ-साथ प्रश्नों का समयनुसार होना भी अति आवश्यक है। अर्थात् एकाएक एक विषय छोड़कर दूसरे विषय पर प्रश्न नहीं पूछना चाहिए। जैसे

किसी के वैवाहिक जीवन पर प्रश्न पूछते-पूछते उसके राजनैतिक जीवन के बारे में प्रश्न पूछना ठीक नहीं होगा। ऐसा होने पर साक्षात्कारदाता क्रोधित भी हो सकता है।

8. **कुछ अन्य सामान्य बातें (Some Other General Things):** उपरोक्त बातों के अतिरिक्त भी कुछ बातें हैं जिन्हें साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कार लेते समय ध्यान में रखना चाहिए। साक्षात्कारकर्त्ता को प्रश्न ऐसे पूछने चाहिए जो कि जटिल न हों। साथ ही, ऐसे प्रश्न भी नहीं पूछने चाहिए, जिनके कि अति संक्षिप्त उत्तर आने की सम्भावना हो क्योंकि वर्णनात्मक प्रश्नों से अधिक उचित एवं उपयुक्त सूचना प्राप्त होने की सम्भावना रहती है। इतना ही नहीं, साक्षात्कारकर्त्ता को पथ-प्रदर्शन करने वाले प्रश्न, जैसे 'क्या आप सिनेमा देखना पसन्द करते हैं?' नहीं पूछने चाहिए। ऐसी दशा में साक्षात्कारदाता प्रश्न के अनुसार ही 'हाँ' में उत्तर देता है। इससे महत्वपूर्ण बात यह है कि साक्षात्कारकर्त्ता को 'विषय' पर रहने का प्रयास करना चाहिए। विषय से इधर-उधर भटकने से साक्षात्कारदाता का विश्वास भी उठ जाता है और वह भी इधर-उधर बहकने लगता है।

9. **सूचना को नोट करना (Noting of Information):** साक्षात्कार के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात सूचना नोट करने की भी है। जब साक्षात्कार स्वतन्त्र वर्णन के रूप में होता है तो सूचना नोट करना एक और भी जटिल समस्या का रूप धारण कर लेता है क्योंकि बातचीत के समय अधिक लिखते रहने से वार्तालाप का प्रवाह रुक जाता है और साक्षात्कार समाप्त होने का डर रहता है। अतः संकेतलिपि या आशुलिपि (Shorthand) या संकेत-शब्दों का, संक्षिप्त शब्दों (Abbreviations) का प्रयोग किया जा सकता है। टेपरिकार्ड आदि का प्रयोग भी अत्यधिक लाभदायक सिद्ध होता है, परन्तु इससे साक्षात्कारदाता को सन्देह हो जाता है। फिर भी अपनी स्मरणशक्ति पर अत्यधिक विश्वास न करके किसी-न-किसी रूप में कुछ-न-कुछ नोट अवश्य करते रहना चाहिए। हाँ, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि उससे वार्तालाप के प्रवाह में किसी प्रकार का विघ्न न पड़ने पाए, यही कुशल साक्षात्कारकर्त्ता की वास्तविक कसौटी है।

(ग) साक्षात्कार का नियन्त्रण, निर्देशन एवं प्रमाणीकरण (Controlling, Directing and Validating of the Interview)

साक्षात्कार लेते समय साक्षात्कारकर्त्ता का एक अति आवश्यक कर्त्तव्य साक्षात्कार को नियन्त्रित, निर्देशित एवं प्रमाणीकृत भी करना है। कभी-कभी ऐसा होता है कि साक्षात्कारदाता वर्णनात्मक प्रश्न का उत्तर देते-देते भावनाओं में खो जाता है और ऐसी बातें भी सुनाने लगता है जिनका कि जरा भी मतलब अनुसन्धान विषय से न हो। ऐसे समय में साक्षात्कारकर्त्ता को अत्यन्त सावधानी से कार्य करना पड़ता है क्योंकि यदि वह एकदम उसको अपना वर्णन करने के लिए मना करता है तो हो सकता है कि उसके अहम् भाव को चोट लगे और आगे वह साक्षात्कार न करे। इससे सूचनाएँ एवं अध्ययन अधूरा ही रह जाएगा। अतः ऐसे समय यह कहकर अच्छा हाँ, यह बात मैंने भी सुनी थी, वास्तव में अत्यन्त दुःखद है, इस प्रकार की बातों से यदि साक्षात्कारदाता मान जाए तो ठीक है, वरन् उसकी बात को उदारतापूर्वक सुन लेना ही उचित रहेगा - यही साक्षात्कार के नियन्त्रण एवं निर्देशन के सम्बन्ध में आवश्यक बात है। जहाँ तक प्रमाणीकरण का प्रश्न है इसमें निम्नलिखित बातें अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं :

1. साक्षात्कारदाता द्वारा जो सूचना दी गई है कहीं उसमें परस्पर विरोधीपन तो नहीं है, यदि ऐसा है तो उसका कारण जानने का प्रयत्न करना चाहिए।

2. यदि यह आभास हो जाए कि साक्षात्कारदाता साक्षात्कारकर्त्ता को धोखा देने का प्रयत्न कर रहा है और झूठ बोल रहा है तो सदैव साक्षात्कारकर्त्ता को अपने को इस प्रकार दिखावा (Show) करने का प्रयत्न करना चाहिए कि जैसे यह तथ्य उसे पहले से ही मालूम है क्योंकि इससे साक्षात्कारदाता पर प्रतिकूल असर नहीं पड़ेगा। इसके विपरीत यदि साक्षात्कारदाता से कहीं यह कह दिया जाए कि वह झूठ बोल रहा है तो शायद साक्षात्कार तुरन्त समाप्त हो जाएगा। ऐसी स्थिति से सदैव ही बचने का प्रयत्न करना चाहिए।
3. इस स्थिति से बचने का एक उपाय यह भी है कि साक्षात्कारकर्त्ता, साक्षात्कारदाता से क्रास प्रश्नों (Cross Questions) के द्वारा सही सूचना प्राप्त कर सकता है। यद्यपि यह उपाय कठिन है तथापि अत्यधिक वैज्ञानिक है।

(घ) साक्षात्कार की समाप्ति
(Closing of Interview)

जब साक्षात्कारदाता सब कुछ कह चुकता है तथा उसके कहने की गति अति धीमी हो जाती है या वह बीच-बीच में रुकने लगता है तो समझना चाहिए कि अब साक्षात्कार समाप्ति की स्थिति है। कभी-कभी ऐसा होता है कि सारी बात कह चुकने के बाद साक्षात्कारदाता एकाएक भय एवं आत्मग्लानि की भावना से भर जाता है कि व्यर्थ ही उसने अपना गुप्त रहस्य एक अपरिचित व्यक्ति को बता दिया। वास्तव में इस प्रकार की भावना साक्षात्कार की सफलता की परिचायक है; हाँ, इस भावना को यथासम्भव दूर अवश्य कर देना चाहिए।

यदि चल रहे साक्षात्कार के बाद और आगे भी साक्षात्कार करने की आवश्यकता महसूस हो, तब यह साक्षात्कार उस समय बन्द करना चाहिए जबकि किसी महत्वपूर्ण बात पर बातचीत करनी शेष रही हो ताकि आगे के साक्षात्कार में उसी बात से बातचीत शुरू हो सके। प्रायः प्रत्येक स्थिति में साक्षात्कारकर्त्ता को साक्षात्कारदाता की कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए। वह कह सकता है 'आपने हमें सहयोग देकर हमारा अत्यधिक उपकार किया है।' अन्त में उसके द्वारा प्रदान की गई सभी सूचनाओं को गुप्त रखने का आश्वासन दिया जाना चाहिए। तत्पश्चात् 'नमस्कार' कहकर, अथवा 'अच्छा फिर मिलेंगे' कहकर साक्षात्कार की समाप्ति कर देनी चाहिए।

(ङ) रिपोर्ट
(Report)

साक्षात्कार करने के बाद जब साक्षात्कारकर्त्ता घर लौटता है तो उसका सर्वप्रथम कार्य साक्षात्कार की रिपोर्ट को लिखना होता है। यह भी अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य है। किसी भी स्थिति में रिपोर्ट लिखने का कार्य टालना नहीं चाहिये क्योंकि अनुसन्धान के निष्कर्ष इसी रिपोर्ट पर आधारित होते हैं। अतः प्रत्येक दशा में साक्षात्कारकर्त्ता को पहले रिपोर्ट लिखने का कार्य करना नहीं चाहिये। रिपोर्ट लिखते समय साक्षात्कार लेते समय लिये गये संक्षिप्त नोटों की सहायता आवश्यक है। इसके अतिरिक्त साक्षात्कारकर्त्ता को अपनी स्मरणशक्ति पर विश्वास करना पड़ता है। कुछ भी हो, साक्षात्कारकर्त्ता को रिपोर्ट लिखते समय सदैव यह प्रयत्न करना चाहिये कि रिपोर्ट सत्य एवं अत्यधिक पक्षपात रहित हो।

एक अच्छे साक्षात्कारकर्त्ता के कार्य तथा गुण (लक्षण)
(Role and Qualities of a Good Interviewer)

साक्षात्कार की सफलता में साक्षात्कारकर्त्ता का वास्तव में अत्यधिक महत्व है। वास्तव में सफल साक्षात्कार का रहस्य कुशल साक्षात्कारकर्त्ता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। एक बार साक्षात्कारदाता साक्षात्कार की अनुमति प्रदान कर दे, फिर तो सारी बात साक्षात्कारकर्त्ता पर ही निर्भर करती है; बल्कि साक्षात्कार की अनुमति देना भी बहुत-कुछ साक्षात्कारकर्त्ता के प्रथम व्यवहार व कुशलता पर निर्भर करता है।

साक्षात्कारकर्त्ता में निश्चित ही वे सभी गुण होने अवश्यम्भावी हैं जो कि एक कुशल अनुसन्धानकर्त्ता में होते हैं क्योंकि साक्षात्कारकर्त्ता एक कुशल अनुसन्धानकर्त्ता भी होना चाहिये। साक्षात्कारकर्त्ता में अन्य अनेक विशेष गुण जैसे कुशलता, चतुरता, बौद्धिक ईमानदारी, निष्पक्षता, विनम्रता, प्रेम की भावना आदि गुण होने चाहिएं क्योंकि कुछ सूचनादाता अत्यधिक चतुर एवं मक्कार होते हैं। हो सकता है वे साक्षात्कारकर्त्ता को बेवकूफ बनाने का प्रयत्न करते हैं। कोई साक्षात्कारदाता अत्यधिक मन्द बुद्धि का होता है, तो कोई डरपोक एवं आत्मगत। कोई साक्षात्कारदाता केवल अपनी ही बात कहने का आदी होता है। तो कोई साक्षात्कारकर्त्ता से ही नई-नई बातें सुनने का इच्छुक होता है। कोई साक्षात्कारदाता अधिक बढ़ा-चढ़ाकर बातें करता है, तो कोई आदर्शवादिता के पीछे पड़ा रहता है, कोई साक्षात्कारदाता तो अत्यधिक झूठ बोलने का प्रयत्न करता है, एवं बड़ी मुश्किल से अपने मन की बात कहता है, साक्षात्कारकर्त्ता को इन सभी प्रकार के व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित कर, उनको प्रसन्न कर, अपने मतलब की बात निकालनी पड़ती है।

साक्षात्कारदाता जब अपनी कोई बात लम्बे रूप में सुना रहा होता है तो अनेक बातें गप्पों के रूप में सुना जाता है या फिर कुछ व्यक्ति तो अधिकतर 'हाँ' या 'नहीं' में ही प्रश्नों का उत्तर दे देते हैं। यह साक्षात्कारकर्त्ता की कुशलता पर निर्भर है कि वह कहाँ तक साक्षात्कारदाता को अपनी बात कहने के लिए प्रोत्साहित करे। इस रूप में उसको साक्षात्कारदाता के भावों एवं मुद्राओं पर विशेष ध्यान रखना होता है और इसके लिए उसको यदि मनोविज्ञान का अच्छा अध्ययन हो तब तो सोने पर सुहागा ही है।

इन सब बातों के अतिरिक्त साक्षात्कारकर्त्ता को बौद्धिक रूप से ईमानदार एवं पक्षपातरहित होना चाहिए; क्योंकि इसके बिना निष्कर्षों में भी वैषयिकता नहीं आने पाएगी, जो कि सामाजिक अनुसन्धानों की एक आवश्यक शर्त है।

साक्षात्कारकर्त्ता एक अनुसन्धानकर्त्ता ही होता है। अतः उसमें भी अनुसन्धानकर्त्ता के सभी गुण होने चाहिएँ तभी वह सफल साक्षात्कारकर्त्ता बन सकता है। उन सभी गुणों का साक्षात्कारकर्त्ता के गुणों का वर्णन करते समय उल्लेख करना चाहिए।

साक्षात्कार की उपयोगिता (Utility of Interview): सामाजिक अनुसन्धान के क्षेत्र में साक्षात्कार हर प्रकार से उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में प्रो. गुड एवं हाट ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए लिखा है कि, **"समकालीन खोज में साक्षात्कार का अधिक महत्व हो गया है क्योंकि वह गुणात्मक साक्षात्कार का पुनर्निधारण है।"** इसकी उपयोगिता निम्नलिखित बातों से स्पष्ट होती है -

1. **प्रत्येक स्तर के लोगों से सूचना एकत्रित करना (To Collect the Information all Level of Persons):** इस पद्धति का प्रमुख लाभ यह है कि इससे लगभग सभी प्रकार की सूचनाएँ

एकत्रित की जा सकती हैं। यदि शैक्षिक सूचना प्राप्त करनी है तो शिक्षा विभाग के सदस्यों, यदि अपराधियों का अध्ययन करना है तो अपराधियों व जेल अधिकारियों से साक्षात्कार के द्वारा समस्या का समाधान किया जा सकता है। इस तरह यह पद्धति अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

2. **अमूर्त घटनाओं का अध्ययन** **(Study of Abstraction):** साक्षात्कार एक ऐसी प्रविधि है जिसके द्वारा धारणाओं, भावनाओं, संवेगों, विचारों आदि अनेक अमूर्त एवं अद श्य घटनाओं का भी अध्ययन सम्भव है। इन घटनाओं का निरीक्षण नहीं किया जा सकता है क्योंकि ये प्रत्यक्ष रूप में द ष्टिगोचर नहीं हैं। इन अमूर्त घटनाओं पर पड़ने वाले प्रभावों को केवल उत्तरदाता ही जानता है। लेकिन साक्षात्कार के दौरान योग्य एवं कुशल साक्षात्कारकर्त्ता अपने उत्तरदाताओं से इस प्रकार की सभी सूचनाएँ मालूम कर लेता है।

3. **पारस्परिक प्रेरणा** **(Mutual Co-operation):** साक्षात्कार के अन्तर्गत दो या दो से अधिक व्यक्ति अध्ययन विषय के बारे में वार्तालाप करते हैं। इस तरह साक्षात्कारकर्त्ता व साक्षात्कारदाता दोनों में विचारों का आदान-प्रदान होता रहता है। ऐसी स्थिति में एक की उपस्थिति से दूसरा उत्साहित व प्रेरित होता है। ज्यों-ज्यों बातचीत का क्रम आगे बढ़ता है त्यों-त्यों सम्बन्धित बातें प्रकट होती रहती हैं। यह सब पारस्परिक प्रेरणा का ही परिणाम है और साथ ही प्रेरणा साक्षात्कार के बिना सम्भव भी नहीं है।

4. **भूतकालीन घटनाओं का अध्ययन सम्भव** **(Possibility of Past Events):** साक्षात्कार प्रणाली के द्वारा भूतकालीन घटनाओं का भी अध्ययन किया जा सकता है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि साक्षात्कारदाता जो भी पूर्वक घटना के बारे में बतला रहा है, अपने अनुभव का परिचय दे रहा है। उसमें अधिक से अधिक प्रमाणिक तथ्य होने की सम्भावना हैं। लेकिन इस प्रकार की परिस्थितियाँ अवलोकन प्रणाली में सम्भव नहीं हैं उसमें केवल उन्हीं घटनाओं का ज्ञान हो सकता है जिनको मानव स्वयं अपनी इंद्रियों से देख रहा हैं।

5. **मनोवैज्ञानिक अध्ययन सम्भव** **(Possibility of Psychological Study):** साक्षात्कार प्रणाली के द्वारा साक्षात्कार की उपयोगिता इस द ष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसके द्वारा व्यक्ति के उद्देश्यों, धारणाओं एवं भावनात्मक प्रत्युतरों के बारे में सही सूचना प्राप्त की जा सकती है। साक्षात्कार के दौरान साक्षात्कारकर्त्ता साक्षात्कारकर्त्ताओं के मानसिक भावों के उतार-चढ़ाव का भी अध्ययन करता रहता है। यहाँ तक कि कुशल साक्षात्कारकर्त्ता साक्षात्कारकर्त्ताओं के दिल की भी बातें जान लेता है। वह धीरे-धीरे इस प्रकार के प्रश्न उत्तरदाताओं से करते चला जाता है जिससे धीरे-धीरे वे अनजाने में अपने दिल की न कहने वाली बात भी कह डालते हैं। इस तरह साक्षात्कार पद्धति द्वारा वैज्ञानिक ढंग से इन सबका अध्ययन आसानी से कर सकते हैं और साथ ही उसमें सफलता भी प्राप्त कर सकते हैं।

6. **प्राप्त उत्तरों का सत्यापन सम्भव** **(Possibility of Verification):** साक्षात्कार प्रणाली के द्वारा प्राप्त उत्तरों की जाँच सम्भव है। इस सत्यापन का मुख्य कारण है साक्षात्कार के दौरान साक्षात्कारकर्ता व साक्षात्कारदाता के बीच खुलकर व स्वतन्त्र रूप से विचारों को स्पष्ट करना। इसलिए एक बार कही गई बात की सत्यता उसके स्पष्टीकरण में प्रकट हो जाती है। साक्षात्कार में केवल किए गए प्रश्नों का उत्तर ही नहीं मिलता बल्कि उसके विस्तार में प्रमाण भी प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए प्राप्त सामग्री अधिक उपयुक्त समझी जाती है।

साक्षात्कार पद्धति की सीमाएँ अथवा दोष **(Limitations or Demerits of Interview):** साक्षात्कार

पद्धति के लाभ के साथ की साथ इस पद्धति की कुछ सीमाएं अथवा दोष भी हैं जिनका वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है :

1. **स्मरण शक्ति का नितान्त अभाव** (Lack of Memory): साक्षात्कार में सबसे बड़ा दोष यह पाया जाता है कि इसमें प्राप्त सूचनाओं को समयाभाव के कारण तुरन्त उत्तरदाता के सामने अंकित नहीं किया जा सकता है। उसको जो कुछ भी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं, इन सबको याद रखना पड़ता है। ये सब निर्भर करता है एक कुशल अध्ययनकर्त्ता पर।

2. **योग्य एवं अनुभवी साक्षात्कारकर्ता की समस्या** (Problem of Experienced Interviewer): यह सही है कि साक्षात्कार की सफलता साक्षात्कारकर्ता की योग्यता पर निर्भर करती है। जब तक साक्षात्कारकर्ता का व्यवहार कुशल, म दुभाषी एवं अनुभवी नहीं होगा तब तक सही व कुशल साक्षात्कारकर्ता नहीं कहलायेगा, अब अध्ययन विषय से संबंधित अधिकतर यह समस्या उत्पन्न होती है कि योग्य व अनुभवी साक्षात्कारकर्ता का चयन कैसे किया जाए। यही कारण है कि अध्ययन-विषय से संबंधित योग्य अध्ययनकर्त्ता नहीं मिल पाता है। इससे है वार्तालाप के दौरान दिए गये प्रश्नों के उत्तर ही अप्रामाणिक एवं अविश्वसनीय हो सकते हैं जिससे सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में सबसे बड़ी कमी हो सकती है और इस कमी के साथ ही साथ लोगों का विश्वास भी सामाजिक विज्ञान की सत्यता से हट जायेगा। इस तरह य सबसे बड़ी समस्या है।

3. **महंगी** (Costly Technique): सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में अन्य प्रविधियों की तुलना में साक्षात्कार के द्वारा सूचनाएँ प्राप्त करने में अधिक धन, शक्ति व समय की आवश्यकता पड़ती है। प्रयोगशाला के अभाव में ये सारी समस्यायें सामने आती हैं। सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में साक्षात्कारकर्ता को बार-बार साक्षात्कारदाता के पास जाना पड़ता है, व बड़ी मुश्किल से साक्षात्कार के लिये समय लेता है, इसके साथ ही साक्षात्कार के लिए साक्षात्कारकर्त्ता का चुनाव करना भी एक समस्या है। अलग-अलग उत्तरदाता से व्यक्तिगत रूप से साक्षात्कार करने में समय व धन काफी मात्रा में खर्च होता है। कभी-कभी तो समय व धन खर्च करने के पश्चात् भी उत्तरदाताओं से सम्पर्क नहीं हो पाता है।

4. **उत्तरदाताओं द्वारा उत्पन्न समस्यायें** (Problems Created by the Respondents): अधिकतर अध्ययनों के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि साधारणतया उत्तरदाताओं की व्यवहार अध्ययनकर्ता के प्रति सहयोगपूर्ण नहीं होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस तरह के अध्ययन विषय से सम्बन्धित समस्याओं के समाधान से वे लोग समझते हैं कि कोई फायदा नहीं बल्कि हम लोग अध्ययनकर्ता के साथ अपना समय बर्बाद करते हैं, ये उत्तरदाताओं की धारणा होती है। इसीलिए अध्ययनकर्ता को अधिकतर उत्तरदाताओं की खुशामद करनी पड़ती है तब जा के कहीं उन्हें वास्तविक सूचना प्राप्त हो पाती है। इसके साथ ही साथ अध्ययनकर्ता पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। उसमें हीनता की भावना आने लगती है। उत्तरदाताओं के दोषों को स्पष्ट करते हुए पी॰ वी॰ यंग ने लिखा है कि, "समझदार होने के बाद भी उत्तरदाताओं में अक्सर घटनाओं के दोषपूर्ण स्म ति अर्न्तद ष्टि के अभाव तथा अपनी बात को स्पष्ट रूप से कह सकने की अयोग्यता होती है"। इन सबके कारण साक्षात्कार की प्रविधि दोषपूर्ण हो जाती है। इस सम्बन्ध में पी॰ वी॰ यंग ने आगे और लिखा है कि, "साक्षात्कार मुख्य रूप से एक कला है, न कि एक विज्ञान।"

अध्याय - 9

अनुसूचि

(Schedule)

सामाजिक अनुसन्धान के लिये सबसे बड़ी आवश्यकता अध्ययन-विषय से सम्बन्धित सामाजिक तथ्यों का संकलन है। अनुसन्धानकर्त्ता इन तथ्यों को विभिन्न सूचना-स्त्रोतों (Sources of Information) से एकत्रित करता है। इन स्त्रोतों को हम मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—प्रथम तो प्राथमिक स्त्रोत और दूसरा द्वितीयक स्त्रोत। प्राथमिक स्त्रोत के अन्तर्गत अनुसन्धाकर्त्ता अध्ययन-विषय से सम्बन्धित घटनाओं को स्वयं देख-सुनकर अर्थात् निरीक्षण (Observation) कर और सम्बन्धित व्यक्तियों से मिलकर उनसे बात-चीत कर एकत्रित करता है। द्वितीयक स्त्रोत के अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता अध्ययन-विषय से सम्बन्धित लिखित प्रलेखों (Written Documents) का अध्ययन कर तथ्यों को एकत्रित करता है। पर इस द्वितीयक स्त्रोत से हम अध्ययन-विषय से सम्बन्धित बीती हुई (Past) घटनाओं के सम्बन्ध में ही जान सकते हैं। वर्तमान स्थिति का पता तो हमें स्वयं निरीक्षण करके और सम्बन्धित व्यक्तियों से सूचना एकत्रित करके ही लग सकता है। अध्ययन-विषय से काफी अरसे से सम्बन्धित व्यक्ति न केवल महत्वपूर्ण सूचनाओं को प्रदान करते हैं अपितु सामाजिक प्रक्रिया के धारा-प्रवाह से भी हमारा परिचय करवाते हैं। पर सम्बन्धित व्यक्तियों से इस प्रकार की महत्वपूर्ण सूचनाओं को मनमाने ढंग से एकत्रित नहीं किया जा सकता। इसके लिए कोई व्यवस्थित तरीका होना चाहिए जिससे कि केवल उन्हीं तथ्यों को एकत्रित करना सम्भव हो जो कि हमारे अध्ययन-विषय की वास्तविकताओं को सही और संक्षेप में व्यक्त कर सकें और व्यर्थ की सामग्री का ढेर इकट्ठा न होने पाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जिन-जिन उपकरणों (Tools) का प्रयोग अनुसन्धाकर्त्ता करता है उनमें से अनुसूची (Schedule) एक है। अनुसूची वास्तव में प्रश्नों की एक लिखित सूची है जिसे कि अनुसन्धाकर्त्ता अपने अध्ययन-विषय की प्रकृति व उद्देश्य को ध्यान में रखकर तैयार करता है जिससे कि उन प्रश्नों का उत्तर सम्बन्धित व्यक्तियों से मालूम किया जा सके और इस प्रकार आवश्यक सूचना एकत्रित करने की प्रक्रिया को एक व्यवस्थित रूप मिले।

अनुसूचि : अर्थ एवं परिभाषा

(Schedule : Meaning & Definition)

अनुसूचि आँकड़े एवं सूचना संकलित करने का वह माध्यम है जिसमें अनुसन्धानकर्त्ता ऐसे प्रश्नों की सूचि (अनुसूचि) तैयार करता है जो उसके अध्ययन की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इसके पश्चात् अध्ययनकर्त्ता इस अनुसूचि को लेकर स्वयं उत्तरदाताओं के पास जाता है तथा अनुसूचि में लिखे गए प्रश्न पूछता है। आँकड़े एवं सूचनाएँ संकलित करने की इस विधि को ही अनुसूचि विधि कहा जाता है।

गुडे तथा हाट ने अनुसूचि को परिभाषित करते हुए लिखा है :

"अनुसूचि उन प्रश्नों के एक समूह का नाम है जो साक्षात्कारकर्त्ता द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति से आमने-सामने की स्थिति में पूछे और भरे जाते हैं।"

बोगार्डस ने अनुसूची को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "अनुसूची उन तथ्यों को प्राप्त करने की एक औपचारिक प्रणाली का प्रतिनिधित्व करती है जो वैषयिक रूप में तथा सरलता से प्राप्त करने योग्य है।"

मैककोर्मिक के शब्दों में, "अनुसूची उन प्रश्नों की एक सूची से अधिक कुछ नहीं है जिनका उत्तर देना प्राक्कल्पनाओं की जाँच के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।"

डॉ० गोपाल ने अनुसूची के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, "अनुसूची एक अर्थ में विभिन्न मदों अथवा पक्षों की एक विस्त त, वर्गीकृत, नियोजित और श्रेणीबद्ध सूची है जिस पर उत्तरदाताओं से सूचना प्राप्त की जाती है।"

अनुसूची की परिभाषा करते हुए मोजर ने लिखा है कि, "जब तक साक्षात्कारकर्त्ताओं द्वारा संचालित होती है, यह स्पष्ट रूप से औपचारिक प्रलेख हो सकती है जिसमें आकर्षता की अपेक्षा कुशल क्षेत्र संचालन ही उद्देश्य में कार्यरत विचार है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि अनुसूची एक प्रकार की सामग्री संग्रहण के हेतु बनायी गई प्रश्नों की सूची है, जिनके उत्तर स्वयं अध्ययनकर्त्ता अपने क्षेत्र में जाकर सूचनादाताओं के आमने-सामने के सम्पर्क द्वारा प्राप्त करता है। इस द ष्टि से अनुसूची में प्रश्नावली से कुछ मौलिक भिन्नता दिखलाई देती है। इस तरह सामाजिक अनुसन्धान में अनुसूची की उपयोगिता बहुत अधिक है क्योकि यह एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा अध्ययनकर्त्ता की अवलोकन शक्ति में अधिकाधिक व द्धि होती है।

अनुसूची की विशेषताएँ
(Characteristics of Schedule)

विभिन्न विद्वानों के द्वारा दी गई अनुसूची की परिभाषाओं के आधार पर हम इसकी कुछ विशेषताओं का उल्लेख कर सकते हैं। अनुसूची की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं :

1. अनुसूची अध्ययन-विषय के विभन्न पक्षों से सम्बन्धित अनेक शीर्षकों और प्रश्नों की एक व्यवस्थित और वर्गीकृत सूची है।
2. इसका उपयोग स्वयं अध्ययनकर्त्ता द्वारा उत्तरदाता से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करके इस प्रकार किया जाता है जिससे उत्तरदाता अध्ययन-विषय के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित अधिक से अधिक सूचनाएँ प्रदान कर सके।
3. अनुसूची में अवलोकन के गुणों का समावेश होता है। अध्ययनकर्त्ता केवल प्रश्नों के द्वारा ही सूचनाएँ प्राप्त नहीं करता बल्कि स्वयं भी घटनाओं का अवलोकन करके सूचनाओं की सत्यता को जानने का प्रयत्न करता है।
4. अनुसूची अध्ययनकर्त्ता पर नियन्त्रण बनाए रखने की भी एक प्रविधि है। इसका तात्पर्य है कि अनुसूची के द्वारा किए जाने वाले अवलोकन और साक्षात्कार में अध्ययनकर्त्ता अपने विषय से अलग नहीं हट पाता।

5. साधारणतया अनुसूची का प्रयोग अशिक्षित उत्तरदाताओं से सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए किया जाता है लेकिन यदि अध्ययन-विषय बहुत जटिल अथवा भावनात्मक प्रकृति का हो तो शिक्षित उत्तरदाताओं से सूचनाएँ प्राप्त करने में भी यह प्रविधि बहुत उपयोगी होती है।
6. अनुसूची एक छोटे क्षेत्र में किए जाने वाले अध्ययन के लिए अधिक उपयुक्त होती है लेकिन विशेष परिस्थितियों में एक बड़े क्षेत्र में फैले हुए सीमित संख्या वाले उत्तरदाताओं से सूचनाएँ एकत्रित करने में भी इसका महत्त्व बहुत अधिक होता है।

अनुसूची के उद्देश्य
(Objects of Schedule)

अनुसूची प्रणाली के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य हैं :

1. अनुसूची का उद्देश्य अध्ययन एवं अवलोकन को अधिकाधिक प्रामाणिक एवं वैषयिक बनाना है।
2. इसका उपयोग स्वयं अध्ययनकर्त्ता द्वारा उत्तरदाता से प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित करके इस प्रकार किया जाता है जिससे उत्तरदाता अध्ययन विषय के विभिनन पक्षों से सम्बन्धित अधिक से अधिक सूचनाएँ प्राप्त कर सके।
3. अनुसूची पद्धति में उत्तरदाता को अपनी ही भाषा में उत्तर देने का अवसर मिल जाता है। इस प्रकार इसमें सही स्थिति के स्पष्टीकरण की अधिक सम्भावना रहती है।
4. अनुसूची में अवलोकन के गुणों का समावेश होता है जो कुछ अध्ययनकर्त्ता प्रत्यक्ष देखता है या अनुभव करता है उसे वह अनुसूची में लिख देता है। इससे गलती की सम्भावना नहीं रहती है।
5. अनुसूची अनुसंधानकर्त्ता पर नियन्त्रण बनाए रखने की भी एक प्रणाली है, जिससे अनुसंधानकर्त्ता अध्ययन क्षेत्र में मनमाने ढंग से काम नहीं कर सकता है।
6. अनुसूची के प्रयोग से तथ्यों को व्यवस्थित रूप से संकलित किया जा सकता है जिसके द्वारा भविष्य में उनके वर्गीकरण एवं विश्लेषण में अधिक कठिनाई नहीं होती।
7. अनुसूची एक छोटे क्षेत्र में किए जाने वाले अध्ययन के लिए अधिक उपयुक्त होती हैं

इस प्रकार अनुसूची का प्रयोग विभिन्न उपयोगी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है।

अनुसूची के प्रकार
(Types of Schedule)

अनुसूची का विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न द ष्टिकोण से वर्गीकरण किया है। इनमें मुख्य रूप से लुण्डवर्ग एवं पी.वी. यंग हैं। इन्होंने निम्नलिखित प्रकार से अनुसूची को वर्गीकृत किया है—

1. **लुण्डवर्ग का वर्गीकरण:** इनके अनुसार अनुसूची को निम्न तीन भागों में बाँटा जा सकता है—
   (i) वस्तुनिष्ठ तथ्यों को लिपिबद्ध करने वाली अनुसूचियाँ (Schedules for the Recording of Objective Facts).
   (ii) अभिव तियाँ तथा मतों का निर्धारण और उनका परिमाप करने वाली अनुसूचियाँ (Schedules for the Determinations and Measurement of Attitude and Opinion).

(iii) सामाजिक संगठनों तथा संस्थाओं की स्थिति और कार्यों को जानने से सम्बन्धित अनुसूचियाँ (Schedules for the Scoring of Status & Functions).

2. **पी.वी० यंग का वर्गीकरण:** प्रो. यंग ने अनुसूची को निम्न भागों में विभाजित किया है—
   (i) अवलोकन अनुसूची (Observation Schedule)
   (ii) निश्चयीकरण अनुसूचियाँ (Rating Schedules)
   (iii) संस्था सर्वेक्षण अनुसूचियाँ (Institution Survey Schedules)
   (iv) प्रलेखीय अनुसूचियाँ (Document Schedules)

अनेक दूसरे विद्वानों ने भी अनुसूची के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट किया है। इन सभी विवेचनाओं के आधार पर अनुसूची के निम्नांकित पाँच प्रमुख प्रकारों को स्पष्ट किया जा सकता है—

1. **अवलोकन अनुसूची (Observation Schedule):** जैसा कि नाम से स्पष्ट है यह अनुसूची का वह प्रकार है जिसमें साक्षात्कार के लिए किन्हीं निश्चित प्रश्नों का समावेश नहीं होता। ऐसी अनुसूची का उद्देश्य विभिन्न शीर्षकों अथवा अध्ययन-विषय से सम्बन्धित उन पक्षों को स्पष्ट करना होता है जिनके आधार पर अध्ययनकर्त्ता घटनाओं का स्वयं अवलोकन करके प्रमुख तथ्यों को संकलित कर सके। इस आधार पर अवलोकन अनुसूची को 'अवलोकन प्रदर्शिका' भी कहा जाता है। अध्ययनकर्त्ता ऐसी अनुसूची का दो प्रकार से सहयोग ले सकता है—प्रथम, इसमें अंकित बातें अध्ययनकर्त्ता को विभिन्न तथ्यों का अध्ययन करने के लिए मार्गनिर्देशन दे सकती है और दूसरी ओर इसकी सहायता से अध्ययनकर्त्ता अध्ययन-विषय से दूर नहीं हट पाता। इस द ष्टिकोण से अवलोकन अनुसूची का कार्य स्वयं अध्ययनकर्त्ता पर नियन्त्रण स्थापित करना है।

2. **मूल्यॉंकन अनुसूची (Rating Schedule):** इस प्रकार की अनुसूची का उपयोग सूचनादाताओं की मनोव त्तियों, अभिरुचियों, राय अथवा पसन्द का मूल्यॉंकन करने के लिए किया जाता है। विभिन्न सामाजिक घटनाओं तथा समस्याओं का मूल्यॉंकन करने अथवा उनकी तुलनात्मक स्थिति का निर्धारण करने में भी ऐसी अनुसूचियाँ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है। मूल्यॉंकन अनुसूची में विभिन्न प्रश्नों के उत्तरों का महत्त्व संख्या में निर्धारित कर लिया जाता है और उत्तरदाता विभिन्न उत्तरों के क्रमिक महत्त्व को समझते हुए एक विशेष उत्तर देता है। इस प्रकार यह मालूम हो जाता है कि यदि कोई व्यक्ति किसी घटना अथवा स्थिति के कितने पक्ष या विपक्ष में है।

3. **प्रलेख अनुसूची (Document Schedule):** पी.वी. यंग के अनुसार "प्रलेख अनुसूचियों का उपयोग ऐसी सामग्री का आलेखन करने के लिए किया जाता है जिन्हें विभिन्न प्रकार के प्रलेखों, व्यक्तिगत जीवन इतिहासों तथा अन्य प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है।" इसका तात्पर्य है कि ऐसी अनुसूची उत्तरदाताओं की सहायता से द्वैतीयक सामग्री के स्त्रोतों को जानने के एक सरल माध्यम के रूप में कार्य करती है।

4. **संस्था सर्वेक्षण अनुसूची (Institution Survey Schedule):** इस प्रकार की अनुसूची का प्रयोग किसी संस्था जैसे धर्म, परिवार, विवाह, शिक्षा आदि के विशिष्ट पहलू का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। कोई संस्था अपनी प्रकृति से जितनी अधिक जटिल होती है उसके अनुसार ऐसी अनुसूची का आकार भी अपेक्षाकृत अधिक बड़ा हो जाता है। इसका कारण यह है कि जटिल तथ्यों के अध्ययन के लिए निर्धारित

प्रश्नों की संख्या अधिक होने से ही उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। ऐसी अनुसूची के कार्य-क्षेत्र और उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए पी.वी. यंग ने लिखा है कि, "इन अनुसूचियों की रचना किसी संस्था के समक्ष उत्पन्न होने वाली अथवा उसमें विद्यमान समस्याओं की जानकारी करने के लिए की जाती है।" वर्तमान समय में सरकारी समितियों, पंचायतों की कार्य-पद्धति, शिक्षा संस्थाओं तथा पुलिस प्रशासन जैसे विषयों के अध्ययन में ऐसी अनुसूचियों का उपयोग करना अधिक उपयोगी समझा जाता है।

5. **साक्षात्कार अनुसूची** (Interview Schedule): यह अनुसूची किसी विशेष विषय पर कुछ व्यक्तियों का साक्षात्कार करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। इसके अन्तर्गत अध्ययन-विषय के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित प्रश्नों का इस प्रकार समावेश किया जाता है, जिससे अध्ययनकर्त्ता किसी व्यक्ति का व्यवस्थित रूप से साक्षात्कार करके सूचनाओं का संकलन कर सके। ऐसी अनुसूची के द्वारा उत्तरदाता द्वारा दिये गए वर्णनात्मक उत्तरों का भी संक्षेप में आलेखन करके उनका सरलतापूर्वक वर्गीकरण और सारणीयन किया जाता है। साक्षात्कार अनुसूची में प्रश्नों का संयोजन जितना व्यवस्थित होता है, उनसे उतनी ही उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त करना सम्भव हो जाता है।

अनुसूची का निर्माण करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाए कि अध्ययन विषय से सम्बन्धित उपयुक्त तथ्यों की प्राप्ति हो सके। अनुसूची का निर्माण करने से पहले अध्ययनकर्त्ता को चाहिए कि वह विषय वस्तु के सम्बन्ध में हर तरह की विस्त त जानकारी प्राप्त कर लें। अनुसूची में प्रश्न इस प्रकार से अंकित होने चाहिए कि उत्तरदाता आसानी से उनके अर्थ को समझ सके, जिससे कि उपयुक्त उत्तर अध्ययनकर्त्ता को दे सके। साथ ही साथ प्रश्न समयानुसान ही पूछे जाने चाहिए तभी सही तथ्य प्राप्त हो सकते हैं। एक अच्छी अनुसूची के लिए निम्नांकित विशेषताओं का होना अति आवश्यक है :

(1) अनुसूची में प्रश्न सदैव सरल व स्पष्ट होने चाहिए। जिससे कि उत्तरदाताओं को किसी भी प्रकार की समस्या का सामना न करना पड़े।

(2) अध्ययनकर्त्ता को प्रश्नों का निर्माण करते समय ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिए जिसका कि एक ही अर्थ निकलता हो। भ्रमित करने वाले वाक्यों का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए जिससे गलती की सम्भावना रहती हैं। साथ ही साथ बहुअर्थक वाले शब्दों का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। इससे भी उत्तरदाता भ्रमित हो सकता है। अतः यह आवश्यक है कि अध्ययनकर्त्ता अनुसूची में ऐसे शब्दों का प्रयोग करे जिसका कि एक ही निकलता हो।

(3) अध्ययकर्त्ता को अनुसूची में खड़ी बोली का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। सदैव सीधे एवं साधारण शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

(4) अध्ययनकर्त्ता को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अनुसूची में प्रश्न छोटे से छोटे हों ताकि उत्तरदाता शीघ्र उनका उत्तर दे सके। साथ ही साथ उत्तर देते समय वह सुख की अनुभूति भी कर सके। जिससे आगामी प्रणाली भी ठीक चल सके। इससे उत्तरदाता एवं अध्ययनकर्त्ता दोनों की समय की भी बचत होगी।

(5) अध्ययनकर्त्ता को चाहिए कि वह इस प्रकार के प्रश्नों का निर्माण करे जिससे

उत्तरदाताओं को किसी भी प्रकार से आघात एवं अपमानित न होना पड़े। प्रश्नों का निर्माण इस तरह से किया जाना चाहिए कि उत्तरदाता को उत्तर देने में किसी भी प्रकार का संकोच ना हो। कभी कभी ऐसे प्रश्न भी अनुसूची में अंकित होते हैं जो उत्तरदाता को चोट पहुँचाते हैं। ऐसी परिस्थिति में अध्ययनकर्त्ता को चाहिए कि वह विकट शब्दों को ऐसे प्रयुक्त करे जिससे उत्तरदाताओं को इसका आभास ही न हो।

(6) अध्ययनकर्त्ता को चाहिए कि वह अनुसूची में ऐसे प्रश्नों का ही निर्माण करे जो विशिष्ट अनुसंधान के लिए आवश्यक हों।

(7) अनुसूची में इस प्रकार के प्रश्नों की रचना होनी चाहिए, जिसका सांख्यिकीय विवेचन सम्भव हो सके। एक अच्छी अनुसूची के बारे में प्रसिद्ध समाजशास्त्री पी. वी. यंग ने अग्रलिखित दो बातों पर विशेष ध्यान दिया है:

Good Schedule (अच्छी अनुसूची)
- Accurate Communication (सही संदेशवाहन)
- Accurate Response (सही उत्तर)

(i) **सही संदेशवाहन** **(Accurate Communication) :** सही संदेशवाहन का अर्थ है कि जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक अनुसूची का निर्माण किया गया है। उस उद्देश्य की प्राप्ति हो सके। वह उद्देश्य तभी प्राप्त होगा जबकि सभी सूचनादाता प्रश्नों का एक समान अर्थ लगावें। सूचनादाता प्रश्नों का अर्थ तभी लगा पायेगा। जबकि अनुसूची की भाषा स्पष्ट, सरल भावार्थ व वैषयिक मूल्यांकन से वंचित प्रश्नयुक्त हो। इन चीजों के आधार पर सही संदेश प्राप्त हो सकते हैं इससे ही एक अच्छी अनुसूची का महत्व बढ़ता है।

(ii) **सही उत्तर** **(Accurate Response) :** इसका तात्पर्य है सूचनादाता अनुसंधानकर्त्ता को सही उत्तर दे जो अध्ययन के द ष्टिकोण से उपयुक्त हो। अनुसूची की सफलता केवल प्रश्नों के निर्माण पर ही निर्भर नहीं है बल्कि इस बात पर भी निर्भर है कि उत्तरदाता अनुसूची के प्रति कहाँ तक सही अनुक्रिया करते हैं। अनुसूची की सफलता इस बात पर निर्भर होती है की इससे वही तथ्य प्राप्त हों जिसके लिए अध्ययनकर्त्ता ने अनुसूची का निर्माण किया है। इस प्रकार प्रश्न और उसके उत्तर परस्पर सम्बन्धित होने चाहिएं। इसके लिए यह आवश्यक है कि अनुसूची में सही संदेशवाहन का गुण हो। कभी-कभी उत्तरदाता प्रश्न को समझने के बावजूद भी उसका सही उत्तर नहीं देता। वह या तो उत्तर देने के प्रति लापरवाह होता है या जानबूझ कर गलत उत्तर देता है। ऐसी परिस्थिति में अनुसूची को सफलता प्राप्त नहीं हो सकती है। अतः अध्ययनकर्त्ता अनुसूची में मिले

उत्तरों की प्रामणिकता की जाँच करने के बाद ही उनमें दी हुई सामग्री के आधार पर किसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

अनुसूची निर्माण की प्रक्रिया
(Process of Preparing a Schedule)

यह सच है कि अनुसूची कुछ प्रश्नों की एक सूची मात्र होती है; पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अनुसूची का निर्माण कोई सरल कार्य है। पर्याप्त सोच-विचार के बाद अत्यन्त सावधानीपूर्वक इसका निर्माण अनुसन्धानकर्त्ता को करना पड़ता है। इसीलिए अनुसूची निर्माण की प्रक्रिया कई स्तरों में से गुजरती है। वे चरण इस प्रकार हैं:

1. **प्रथम चरणः** प्रथम चरण में अनुसूची निर्माण से सम्बन्धित पूर्ववर्त्ती विचार (Prior Consideration) आते हैं। अनुसूची निर्माण के पहले यह निश्चय करना आवश्यक है कि अनुसूची में अध्ययन-विषय से सम्बन्धित किन-किन पहलुओं और मदों (Items) का समावेश करना अध्ययन के उद्देश्य के द ष्टिकोण से आवश्यक है। यह काम सफलतापूर्वक तभी किया जा सकता है जबकि अनुसन्धाकर्त्ता को समस्या का प्रारम्भिक ज्ञान हो। इसके लिए समस्या या अध्ययन-विषय के सम्बन्ध में पूर्ववर्त्ती (Prior) विचार परमावश्यक है जिससे कि यह पता चल जाए कि विषय में कौन-कौन से पक्ष अधिक महत्वपूर्ण हैं और कौन-कौन से कम महत्वपूर्ण पक्ष हैं क्योंकि उसी के अनुसार प्रश्न भी अधिक या कम पूछे जाएंगे। पहले से ऐसा कर लेने से अनुसूची में प्रश्नों का एक सन्तुलित अनुपात बनाए रखना सम्भव होता है और उसमें अनावश्यक प्रश्नों का एक जमाव नहीं हो पाता है। साथ ही, पूर्ववर्ती विचार और समस्या के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी इसलिए भी आवश्यक होती है कि कभी-कभी अनुसन्धानकर्त्ता विषय के सम्बन्ध में एक सन्तुलित धारणा को पनपाए बिना ही अनुसूची में उन सभी मदों एवं पहलुओं को सम्मिलित करना चाहते हैं जो अपव्यय का कारण बनती है। अतः इस स्थिति से बचने के लिए एक सन्तुलित प्रश्न सूची को बनाना आवश्यक है क्योंकि इसके बिना यह सम्भव है कि कुछ महत्वहीन पक्षों को अनुसूची में अधिक मान्यता मिल जाए जबकि कुछ महत्वपूर्ण पक्ष बिल्कुल ही छूट जाएं अतः सर्वप्रथम अनुसन्धान-विषय से सम्बन्धित पूर्वज्ञान के आधार पर उसे विभिन्न पहलुओं में इस प्रकार विभाजित कर लेना चाहिए कि कोई भी महत्वपूर्ण पक्ष छूट न जाए और कोई भी महत्वहीन पक्ष सम्मिलित होने का अवसर न पाए।

2. **द्वितीय चरणः** समस्या या अध्ययन-विषय को विभिन्न पहलुओं में विभाजित कर लेने के पश्चात् प्रत्येक पहलू को विभिन्न उपविभागों में विभाजित कर लेना होता है और साथ ही यह भी निश्चित करना होता है कि प्रत्येक उपविभाग के सम्बन्ध में किस-किस प्रकार की सूचनाएँ आवश्यक हैं ताकि उस उपविभाग से सम्बन्धित सभी विषय स्पष्ट हो जाए अथवा उन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सके। ऐसा करने से पूर्व दो बातों का ध्यान हमें विशेष रूप से रखना होगा—पहला तो यह कि किस प्रकार के प्रश्नों को अनुसूची में सम्मिलित करने पर एक पहलू-विशेष पर अधिकतम प्रकाश पड़ सकेगा और दूसरा यह कि इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर से प्राप्त सूचनाओं का अनुसन्धान के उद्देश्य की पूर्ति में किस सीमा तक उपयोग हो सकेगा। इस प्रकार इस स्तर पर अध्ययन-विषय के विभिन्न पहलुओं के उपभागों तथा उनसे सम्बन्धित प्रश्नों के विस्तार, प्रकृति तथा उपयोगिता के सम्बन्ध में निश्चित कर लेना होता है।

3. **त तीय चरणः** तीसरे स्तर पर प्रश्नों का निर्माण किया जाता है। पर जल्दबाजी में प्रश्नों के निर्माण से सदा बचना चाहिए क्योंकि प्रश्नों की प्रकृति पर ही यह निर्भर करेगा कि उत्तरदाता उन प्रश्नों को सही अर्थ में समझकर सही उत्तर दे सकेगा या नहीं। अतः आवयश्क हैं कि प्रश्नों की भाषा किसी भी अवस्था में जटिल, अस्पष्ट, सन्देहयुक्त, बहुअर्थक और सूचनादाता की भावनाओं को ठेस पहुँचाने वाली न हो। प्रश्न ऐसा भी न हो कि सूचनादाता के मन में झुँझलाहट, विरक्ति या क्रोध उत्पन्न हो अथवा प्रश्न ऐसा भी न हो कि उसका उत्तर देने में उसे संकोच या डर का अनुभव हो। सरल, स्पष्ट तथा ठीक ढंग से पूछे गए विनम्र प्रश्न उत्तरदाता से सही उत्तरों को स्वतः ही प्राप्त कर लेते हैं, जबकि गलत ढंग से पूछे गए प्रश्न उत्तरदाता के मन में झुँझलाहट उत्पन्न करते हैं और वह या तो इधर-उधर बातें कहकर प्रश्नों को यूँ ही औपचारिकता करता है अथवा सूचना देने से बिल्कुल ही इनकार कर देता है। अव्यवस्थित व बिखरे हुए प्रश्न न तो सही उत्तर प्राप्त कर सकते हैं और न ही उनके उत्तरों से अध्ययन-विषय की वास्तविकताएँ प्रकट हो पाती हैं। साथ ही जल्दबाजी में ऐसा भी हो सकता है कि अनुसूची में कई ऐसे प्रश्नों का समावेश हो जाए जिनका अध्ययन-विषय से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध न हो। अनुसूची में सम्मिलित प्रश्नों की आधारभूत विशेषता यह होनी चाहिए कि प्रश्न इस प्रकार के हों कि सभी उत्तरदाता उन्हें एक ही अर्थ में समझें और उसी के अनुसार उत्तर दें और उन उत्तरों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध अध्ययन के उद्देश्य से हो अर्थात् वे उत्तर समस्या या विषय को समझने में उपयोगी हों।

4. **चतुर्थ चरणः** इस चरण में बनाए गए प्रश्नों को एक सिलसिले से या क्रमबद्ध रूप में लगाया जाता है। इसकी कई उपयोगिताएँ हैं। सर्वप्रथम तो यह कि प्रश्नों को इस प्रकार क्रम से लगा लेने से उत्तरों के माध्यम से तथ्यों की प्राप्ति उसी सिलसिले से होती है जिस सिलसिले से हमें तथ्यों का विश्लेषण व व्याख्या करना तथा रिपोर्ट प्रस्तुत करना है। प्रश्नों को एक क्रम से लगा लेने से दूसरा फायदा यह होता है कि सूचनादाताओं से उत्तर मिलने में भी आसानी होती है। उत्तर देने के लिए भी एक मानसिक तैयारी की आवश्यकता होती है और इसीलिए अगर आरम्भ में ही कुछ गम्भीर प्रश्न पूछे जाएँ तो उत्तरदाता घबरा जाता है और अनुसन्धानकर्त्ता से अपना पीछा छुड़ाने के लिए व्याकुल हो उठता है। ऐसी अवस्था में बहुत ही सरल, सीधे व संक्षिप्त प्रश्नों से आरम्भ करके यदि क्रमशः गम्भीर प्रश्नों की ओर आगे बढ़ा जाए तो उत्तरदाता को उत्तर देने के लिए आवश्यक मानसिक तैयारी कर लेने का अवसर मिल जाता है और वह स्वयं अध्ययन-विषय में रुचि लेने लगता है। इससे सही उत्तर प्राप्त हो जाते हैं। प्रश्नों को इस प्रकार एक क्रम से लगाते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कोई ऐसा प्रश्न तो सम्मिलित नहीं किया जा रहा है जिसका उत्तर नहीं मिल सकता; ऐसे प्रश्नों को निकाल देना चाहिए।

5. **अन्तिम चरणः** इस स्तर पर अनुसूची की वैधता (Validity) की जाँच की जाती है अर्थात् यह देखा जाता है कि जिस उद्देश्य से प्रश्नों का निर्माण किया गया है, उन प्रश्नों से वास्तव में उन उद्देश्यों की पूर्ति हो भी सकेगी या नहीं। इस प्रकार की जाँच कर लेना आवश्यक है क्योंकि व्यावहारिक रूप में यह देखा गया है कि प्रश्नों के निर्माण में कितनी ही सावधानी क्यों न बरती जाए, कुछ-न-कुछ ऐसी गलतियाँ या कमियाँ रह ही जाती हैं जिनके कारण सही उत्तर प्राप्त करने में कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। अतः इस कठिनाई को पहले ही दूर कर लेना श्रेयस्कर होता है। इसी उद्देश्य ने अनुसूची को अन्तिम रूप देने से पूर्व थोड़े

से व्यक्तियों से अनुसूची के प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करके यह जाँच कर लेनी चाहिए कि लोग प्रश्नों को उनके यथार्थ अर्थ में और एक ही अर्थ में समझकर सही उत्तर देने में समर्थ हैं अथवा नहीं। यदि नहीं, तो आवश्यकतानुसार प्रश्नों में हेर-फेर कर लेना उचित होता है। इस प्रकार का हेर-फेर कुछ प्रश्नों को बिल्कुल हटाकर या उनकी भाषा बदलकर, उनके क्रम में परिवर्तन करके अथवा नए प्रश्नों को जोड़कर किया जा सकता है। इस प्रकार अनुसूची की कमियों को दूर कर लेने से आगे चलकर अनेक परेशानियों से बचा जा सकता है।

अनुसूची का भौतिक स्वरूप
(Physical Features of Schedule)

अनुसन्धानकर्त्ता को सूचनादाताओं से उत्तर प्राप्त करने के लिए उनके सम्मुख अनुसूची को प्रस्तुत करना पड़ता है। अतः यह आवश्यक है कि अनुसूची का भौतिक स्वरूप आकर्षक हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है अर्थात् अनुसूची के भौतिक स्वरूप में निम्नलिखित बातों का समावेश हो:

1. **कागज** (Paper): अनुसूची का कागज घटिया किस्म का नहीं होना चाहिए। अच्छे किस्म के कागज को प्रयोग में लाने से न केवल अनुसूची का 'शो' (Show) बढ़ जाता है अपितु लिखने में भी सुविधा होती है। अगर कागज घटिया किस्म का हुआ तो प्रश्नों का उत्तर लिखते समय या तो स्याही फैल जाती है या लिखाई अस्पष्ट होती है। दोनों ही स्थितियों में आगे चलकर उत्तरों का कुछ का कुछ समझने की गलती हो सकती है, विशेषकर संख्या में व्यक्त सूचना को गलत समझने पर उसका प्रभाव अध्ययन के निष्कर्ष पर भी पड़ेगा।

2. **अनुसूची का आकार** (Size of the Schedule) : प्रायः अनुसूची का आकार प्रश्नों की संख्या और अनुसूची में सम्मिलित की गई रिक्त (blank) सारणियों के आकार पर निर्भर करता है। फिर भी अनुसूची का आकार बहुत छोटा या बहुत बड़ा होना असुविधाजनक है। यदि अनुसूची का कागज बहुत लम्बा है तो लाने-ले जाने असुविधा होती है और बार-बार मोड़ने से फट जाने का भी डर रहता है। उसी प्रकार कागज बहुत छोटा हुआ तो उत्तरों को लिखने में बहुत असुविधा होती है। इसलिए अनुसूची का प्रामाणिक आकार $8'' \times 11''$ माना जाता है।

3. **हाशिया** (Margin): अनुसूची के बायीं ओर कम-से-कम $\frac{2''}{8}$ तथा दाहिनी ओर $\frac{1''}{5}$ या $\frac{1''}{3}$ का हाशिया अवश्य छोड़ देना चाहिए। इससे अनुसूची अधिक आकर्षक बन जाती है और साथ ही आवश्यकता पड़ने पर टिप्पणी आदि भी हाशिया में लिखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त हाशिया रहने से कागजों को पंच (Punch) करके फाइल करने में भी आसानी रहती है।

4. **जगह छोड़ना** (Spacing): प्रश्नों को छापते समय उचित जगह छोड़-छोड़कर छापना चाहिए। अक्षर बहुत सटे या मिले होने से पढ़ने में कठिनाई होती है। उसी प्रकार दो प्रश्नों के बीच पर्याप्त जगह छूटी होनी चाहिए और प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लिखने के लिए आवश्यक जगह छोड़ना जरूरी है।

5. **छपाई** (Printing): जहाँ तक संभव हो अनुसूची को छपवा लेना चाहिए। छपाई साफ और सुन्दर 'टाइप' में हो यह भी जरूरी है। यदि धनाभाव के कारण छपवाना संभव न हो तो साफ-साफ 'साइक्लोस्टाइल' करवा लिया जा सकता है। किसी भी अवस्था में छपाई साफ-सुथरी ही होनी चाहिए।

6 **चित्रों का उपयोग** (Use of Pictures): प्रश्नों को अधिक आकर्षक तथा बोधगम्य बनाने के लिए कभी-कभी प्रश्नों के साथ-साथ चित्रों का भी उपयोग किया जाता है। यदि ऐसा किया गया तो इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चित्रों में किसी भी प्रकार की अश्लीलता को स्थान न मिले, जिससे कि उत्तरदाताओं की भावनाओं को ठेस पहुँचे। आकर्षक बनाने का अर्थ अश्लीलता का आश्रय लेना नहीं है। आजकल अनुसूची में चित्रों का उपयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

अनुसूची की अन्तर्वस्तु
(The Content of Schedule)

अनुसूची की अन्तर्वस्तु से तात्पर्य यह है कि अनुसूची में आरम्भ से अन्त तक किन-किन बातों या विषयों का समावेश होता है। इन्हें हम निम्नलिखित तीन भागों में बाँट सकते हैं:

1. **प्रारम्भिक सूचनाएँ** (Introductory Informations): इसके अन्तर्गत अनुसूची का वह शुरू का हिस्सा आता है जिसमें कि अनुसन्धान तथा उत्तरदाताओं के सम्बन्ध में सामान्य जानकारी प्राप्त करने से सम्बन्धित प्रश्नों का समावेश होता है। अनुसूची का यह भाग लगभग सभी प्रकार की अनुसूचियों में समान ही होता है। इसके अन्तर्गत अध्ययन-विषय का नाम, अध्ययन करने वाले संगठन का नाम, क्रम संख्या, सूचनादाता का नाम, पता, आयु, लिंग, शिक्षा, जाति, साक्षात्कार का स्थान, तरीका तथा समय आदि से सम्बन्धित प्रश्न या खाने (Columns) होते हैं।

2. **मुख्य प्रश्न व सारणियाँ** (Main Questions and Tables): यही अनुसूची का मुख्य अन्तर्वस्तु होती है क्योंकि इसी भाग में अनुसन्धान-विषय के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित प्रश्न तथा रिक्त सारणियाँ (जिन्हें कि उत्तरदाता को भरना होता है अथवा उससे पूछकर अनुसन्धाकर्त्ता स्वयं भरता है) होती हैं। ये प्रश्न तथा रिक्त सारणियाँ उन तथ्यों के संकलन में सहायक होती हैं जिनकी मदद से प्राक्कल्पना की जाँच की जाती है।

3 **अनुसन्धाकर्ताओं के लिए निर्देश** (Instructions for Investigators): अनुसूची के अन्त में या प थक् रूप से अनुसन्धानकर्ताओं के लिए कुछ ऐसे निर्देश दिए जाते हैं जिनकी सहायता से यर्थाथ तथ्यों का संकलन सरल तथा एक तरह का हो सके। यद्यपि अनुसन्धानकर्त्ता प्रशिक्षित होते हैं फिर भी लिखित तौर पर दिए गए ये निर्देश उनका निरन्तर मार्ग प्रदर्शन करते रहते हैं।

अनुसूची के प्रश्न
(Questions of Schedule)

अनुसूची वास्तव में विभिन्न प्रकार के प्रश्नों की ही एक सूची होती है, पर इसमें सम्मिलित किए जाने वाले सभी प्रश्न एक प्रकार के नहीं हाते हैं। दूसरे शब्दों में विभिन्न प्रकार के प्रश्नों

का समावेश एक अनुसूची में हो सकता है। जिन्हें कि हम निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं:

1. **विमुक्त प्रश्न** (Open end Questions): इस प्रकार के प्रश्नों की विशेषता यह है कि उत्तरदाता को किसी भी तरह से अपने मत को व्यक्त करने की स्वतन्त्रता होती है और इसलिए ऐसे प्रश्नों के उत्तरों में भाषा आदि की कोई समानता नहीं होती है। ऐसे प्रश्नों का प्रयोग प्रायः उत्तरदाता से सुझाव माँगने के लिए किया जाता है और इसीलिए इनके उत्तर काफी लम्बे तथा विविध प्रकार के हो सकते हैं। इस प्रकार के प्रश्नों का उदाहरण निम्नवत है:
   (अ) आप हरिजनों की स्थिति को उन्नत करने के लिए क्या सुझाव देंगे?
   (ब) भारत में एक आदर्श पत्नी को कैसा होना चाहिए।

2. **संयोजित प्रश्न** (Structured Questions): जब प्रश्नों के सम्भावित उत्तरों को भी एक सिलसिले से प्रश्न के सामने सजा दिया जाता है और उत्तरदाता को उन्हीं दिए हुए उत्तरों में से एक को अपने उत्तर के रूप में चुनना होता है तो उसे संयोजित प्रश्न कहते हैं। ऐसे प्रश्नों का उत्तर या तो एक निश्चित संख्या होती है अथवा निश्चित वाक्यांश होता है। इस प्रकार के प्रश्नों की सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि उनका सांख्यिकीय वर्गीकरण, सारणीयन आदि अत्यन्त सरलता से किया जा सकता है। उत्तर भी प्रश्नों के साथ रहने के कारण उत्तरदाता को उत्तर देने में काफी आसानी रहती है। इस प्रकार के प्रश्नों के उदाहरण निम्नलिखित हैं:
   (अ) आपके कितने बच्चे हैं? एक/दो/तीन/चार....
   (ब) आपके बच्चे कहाँ पढ़ते हैं? नर्सरी/प्राइमरी स्कूल/उचच माध्यमिक स्कूल/कालेज।
   (स) आपके बच्चे किस प्रकार के परिवार के सदस्य हैं? एकाकी परिवार/संयुक्त परिवार।

3. **दोहरे प्रश्न** (Dichotomous Questions): जब किसी प्रश्न के दो ही उत्तर हो सकते हैं और उन उत्तरों को भी अनुसूची में प्रश्नों के सामने लिख दिया जाता है तो उन्हें दोहरे प्रश्न कहते हैं। इन दोहरे प्रश्नों में एक का उत्तर प्रायः सकारात्मक होता है और दूसरे का नकारात्मक। संयोजित प्रश्नों की भाँति इनका भी वर्गीकरण व सारणीयन सरलता से हो सकता है। दोहरे प्रश्नों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :
   (अ) क्या आप अनुसूचित जाति के सदस्य हैं? हाँ/नहीं।
   (ब) क्या आप अखबार रोज पढ़ते हैं? हाँ/नहीं।
   (स) आप कहाँ की बनी चीजों को इस्तेमाल करना पसन्द करते हैं? स्वदेशी/विदेशी।

4. **बहुवैकल्पिक प्रश्न** (Multiple Choice Questions): इस प्रकार के प्रश्नों के साथ कई सम्भावित उत्तर दिये रहते हैं तथा उत्तरदाता को उनमें से कोई एक या एकाधिक उत्तर छाँटना पड़ता है। इस अर्थ में इस प्रकार का प्रश्न संयोजित प्रश्न से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है, पर दोनों में अन्तर केवल इतना है कि संयोजित प्रश्नों में उत्तरदाता को दिए हुए उत्तरों में से केवल एक को चुनना पड़ता है जबकि बहुवैकल्पिक प्रश्नों में एकाधिक उत्तरों को भी चुना जा सकता है। इसीलिए बहुवैकल्पिक प्रश्नों के सभी सम्भावित उत्तरों को सावधानीपूर्वक लिख दिया जाता है और अन्त में एक उत्तर "अन्य कोई" के नाम से और जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार के प्रश्न का एक उदाहरण निम्नवत् है:

आप अपने वर्तमान पेशे को क्यों पसन्द करते हैं? आकर्षक वेतन/नौकरी की सुरक्षा/भविष्य में उन्नति की आशा/ऊपरी आमदनी/मालिक द्वारा दी गई सुविधाओं का आकर्षण/अन्य कोई।

5. **निर्देशक प्रश्न** **(Leading Questions):** जब किसी प्रश्न में सूचनादाता को कोई निश्चित उत्तर प्रदान करने के लिए संकेत किया जाता है तो उसे निर्देशक प्रश्न कहते हैं। जहाँ तक सम्भव हो सके इस प्रकार के प्रश्नों से बचना चाहिए क्योंकि जब अनुसन्धानकर्त्ता स्वयं ही प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में उत्तर की ओर संकेत करता है तो सूचनादाता स्वभावतः उसी ओर झुक जाते हैं और उनसे वास्तविक सूचना प्राप्त नहीं हो पाती है। निर्देशक प्रश्न के उदाहरण इस प्रकार हैं :

   (अ) क्या आप इस बात से सहमत हैं कि लड़कियाँ कालेज में ही फैशन करना सीखती हैं? (ब) क्या सरकार के लिए यह उचित न होगा कि अनाज के भाव को तेज होने से रोकने के लिए बड़े-बड़े गल्ला व्यापारियों पर कड़ी निगरानी रखे?

6. **सन्देहपूर्ण प्रश्न** **(Ambiguous Questions):** जब प्रश्न की भाषा इस प्रकार की होती है कि प्रश्नों के सम्बन्ध में उत्तरदाता के मन में सन्देह उत्पन्न होता है या प्रत्येक सूचनादाता उसका अर्थ अपने-अपने ढंग से लगा सकता है तो उसे सन्देहपूर्ण प्रश्न कहते हैं। इस प्रकार के प्रश्नों को अनुसूची में सम्मिलित नहीं करना चाहिए। क्योंकि सन्देहजनक प्रश्न सन्देहजनक उत्तरों को एकत्रित करता है और सन्देहजनक उत्तरों से केवल सन्देहजनक निष्कर्ष ही निकल सकते हैं। उदाहरणार्थ, यदि केवल यह पूछा जाए कि "आपकी आयु क्या है?" तो यह प्रश्न सन्देहपूर्ण प्रश्न होगा क्योंकि इस प्रश्न को लोग सम्भावित रूपों में समझकर उसका उत्तर दे सकते हैं : (अ) वर्तमान वास्तविक आयु (ब) पिछले जन्म-दिन पर व्यक्ति की आयु (स) पिछले जन्म-दिन और वर्तमान समय के बीच एक अनुमानित आयु। अतः स्पष्ट है कि इस प्रकार के प्रश्नों से एक ही प्रकार के प्रामाणिक उत्तर प्राप्त नहीं होते हैं।

7. **अस्पष्ट प्रश्न** **(Vague Questions):** जब कोई प्रश्न किसी निर्दिष्ट उत्तर को प्राप्त करने में असफल रहता है तो उसे अस्पष्ट प्रश्न कहते हैं। उदाहरणार्थ यह पूछना कि "क्या आप सुशिक्षित हैं;"—एक अस्पष्ट प्रश्न है। इसकी अपेक्षा यह पूछना अधिक उचित है कि "आपने कहाँ तक शिक्षा प्राप्त की है?" इसी प्रकार यह पूछना कि "आपके मकान में हवा, रोशनी, बरामदा, आँगन, पाखाना, स्नानग ह आदि की व्यवस्था है अथवा नहीं?"

8. **श्रेणीबद्ध प्रश्न** **(Ranking Items Questions):** जब उत्तरदाता को किसी प्रश्न के दिये हुए सम्भावित उत्तरों में से एक-दो उत्तरों को नहीं अपितु सभी उत्तरों को चुनना तथा उन्हें अपनी पसन्द के अनुसार एक क्रम से सजा देना होता है तो उसे श्रेणीबद्ध प्रश्न कहते हैं। इस प्रकार के प्रश्नों में अनुसूची में छपे हुए उत्तरों के क्रम का बहुत प्रभाव पड़ता है।

किस प्रकार के प्रश्नों को सम्मिलित करना चाहिए
(What Type of Questions are to be included)

एक अनुसूची में किस प्रकार के प्रश्नों को सम्मिलित किया जाएगा यह बहुत कुछ निर्भर करता है अध्ययन की प्रकृति तथा उद्देश्य, उत्तरदाताओं के स्वभाव, कार्यकर्ताओं की योग्यता तथा सूचना की जाँच की सुविधाओं पर। पर सामान्य रूप से किसी भी प्रश्न को अनुसूची में स्थान देने से

पूर्व यह सोच लेना चाहिए कि उससे अध्ययन के उद्देश्य के अनुकूल स्पष्ट, सांख्यिकीय विवेचना के योग्य तथा प्रमाणिक उत्तर ही प्राप्त हों। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जिन प्रश्नों को अनुसूची में सम्मिलित किया जा रहा है उनमें निम्नलिखित विशेषताएँ भी हों:

1. प्रश्न छोटे, सरल तथा उत्तर देने में सहज हों। पर प्रश्न इतना छोटा न हो कि उससे कोई अर्थ ही न निकल सके।
2. प्रश्न सूचनादाता के ज्ञान-स्तर से सम्बन्धित होना चाहिए। उदाहरणार्थ, एक मिल के साधारण श्रमिक से मिल के आय-व्यय के सम्बन्ध में प्रश्न करना निरर्थक है।
3. प्रश्न सारणीयन के योग्य हो। इससे अध्ययन में अधिकाधिक वैषयिकता पनपती है और वर्णनात्मक विवरण से बचा जा सकता है।
4. अनुसन्धान के उद्देश्य से सम्बन्धित प्रश्नों को ही अनुसूची में सम्मिलित करना चाहिए। जो भी प्रश्न इस प्रकार का नहीं है उससे बचना चाहिए क्योंकि ऐसे प्रश्नों से अनुसूची बोझिल हो जाती है और अनावश्यक सूचनाएँ एकत्रित हो जाती हैं।
5. यदि प्रत्यक्ष प्रश्नों से सही उत्तर पाने की आशा न हो तो अप्रत्यक्ष (Indirect) प्रश्नों को पूछना चाहिए। "क्या आप नास्तिक हैं। यह प्रश्न पूछने के स्थान पर अच्छा हो कि यह पूछा जाए—"क्या आप मन्दिर जाते हैं?"
6. प्रश्न एक-दूसरे से सम्बन्धित और सम्पूर्ण क्रम में एक-दूसरे के पूरक हों। उदाहरणार्थ, यदि हम एक स्थान पर मकान के सम्बन्ध में प्रश्न कर रहे हैं तो अनुसूची के उस भाग में मकान से सम्बन्धित सभी प्रश्नों को ऐसे क्रम में रखना चाहिए कि उन सबके उत्तर एकसाथ मकान का एक सम्पूर्ण चित्र उपस्थित कर सकें।
7. ऐसे प्रश्न भी दिए जाने चाहिए जिनसे एक प्रश्न के उत्तर की, दूसरे प्रश्न या प्रश्नों के उत्तर की सहायता से, जाँच की जा सके। जैसे आय के साथ-साथ व्यय, बचत और ऋण सम्बन्धी सूचनाएँ भी प्राप्त करने के लिए प्रश्न पूछे जाने चाहिए।
8. जो प्रश्न व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित नहीं हैं तथा पक्षपातरहित हैं, ऐसे प्रश्नों को पूछना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ ऐसे पक्ष होते हैं जहाँ पर कि वह किसी भी बाहर वाले का प्रवेश सहन नहीं करता। यदि ऐसे प्रश्न पूछे गए तो सूचनादाता यथार्थ स्थिति को छिपाने का प्रयत्न करेगा। इसलिए गुप्त जीवन से सम्बन्धित सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए अप्रत्यक्ष प्रश्नों का प्रयोग करना चाहिए।
9. अनुसूची के प्रश्न ऐसे होने चाहिए जिनका उत्तर देने के लिए लिखने का काम कम से कम करना पड़े। अतः यदि उत्तरों में व्यवस्था व संक्षिप्तता लानी हो तो उत्तर चेकमार्क, क्रास मार्क अथवा संख्या में अथवा 'हाँ' या 'नहीं' में लिखने योग्य ही प्रश्न होने चाहिए।
10. जब विचारों अथवा भावनाओं से सम्बन्धित प्रश्न करना हो तो 'क्यों, क्या, कब, कैसे' वाले प्रश्न भी कर लेना चाहिए जिससे उन विचारों अथवा भावनाओं की प ष्ठभूमि का पता लग जाए।

किस प्रकार के प्रश्नों को सम्मिलित नहीं करना चाहिए
(Whats Type of Questions are not to be Included)

कुछ इस प्रकार के भी प्रश्न होते हैं जो कि गलत, अस्पष्ट या अधूरी सूचनाओं को ही एकत्रित

करते हैं। ऐसी सूचनाओं से कोई लाभ नहीं होता अपितु भटक जाने की आशा होती है। अतः इस प्रकार के प्रश्नों से बचना चाहिए:

1. **अनुसूची में सन्देहपूर्ण (Ambiguous):** प्रश्नों को सम्मिलित नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसे प्रश्नों के उत्तर भी भ्रम उत्पन्न करने वाले होते हैं और प्रत्येक उत्तरदाता का उत्तर भी अलग-अलग होता है।
2. **उसी प्रकार अनिर्दिष्ट या अस्पष्ट (Vague):** प्रश्नों को भी अनुसूची में स्थान नहीं देना चाहिए। "अपने मोहल्ले में क्या आप अपने को सुरक्षित महसूस करते हैं?"— एक अस्पष्ट प्रश्न है क्योंकि सुरक्षा की प्रकृति व सीमा के सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है। अतः ऐसे प्रश्नों को और भी स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करना चाहिए।
3. **निर्देशक (Leading):** प्रश्नों से भी यथासम्भव बचना चाहिए क्योंकि ऐसे प्रश्नों में उत्तर का संकेत भी होता है और सूचनादाता उसी संकेत के अनुसार उत्तर देते हैं। इससे वास्तविकता का पता नहीं चलता है।
4. बहुअर्थक प्रश्नों को भी अनुसूची में सम्मिलित नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसे प्रश्नों के उत्तर में कदापि प्रामणिकता की आशा ही नहीं की जा सकती है।
5. प्राक्‌कल्पनात्मक प्रश्नों (Hypothetical Questions) से भी बचने की आवश्यकता होती है। जैसे कि यह पूछना अनुपयुक्त है, "क्या आप अपनी गिरी हुई आर्थिक स्थिति को उन्नत करना चाहेंगे?" ऐसा भला कौन होगा जो ऐसा करना नहीं चाहेगा, अतः यह प्रश्न व्यर्थ का ही है।
6. व्यक्ति के गुप्त जीवन सम्बन्धी प्रश्नों को प्रत्यक्ष तौर पर कभी न पूछना चाहिए। ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने से या तो सूचनादाता साफ इन्कार कर देगा अथवा वास्तविकता को छिपाकर उत्तर देगा। "क्या आप वैश्यागमन के आदी हैं?" "क्या आप घूस लेते हैं?" "क्या आपके परिवार में कोई अपराधी है?" आदि प्रश्नों से बचना चाहिए।
7. बहुत लम्बे तथा जटिल प्रश्नों को भी अनुसूची में स्थान नहीं देना चाहिए क्योंकि ऐसे प्रश्नों को उत्तरदाता सरलता से समझ नहीं पाता है और इसीलिए जैसा समझ में आता है उसी के अनुसार जो कुछ भी उत्तर वह देता है वह वास्तविक सूचना नहीं होती है।
8. उत्तरदाता को असमंजस में डालने वाले प्रश्नों से भी सदा बचना चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि दफ्तर के एक कर्मचारी से यह पूछा जाए कि, "क्या आपने अपने अफसर को घूस लेते हुए देखा है?" तो प्रश्न उसे असमंजस में डाल देगा क्योंकि वह यह निश्चित नहीं कर पाएगा कि सच कहना उचित होगा अथवा नहीं।
9. यदि कोई सूचना अन्य निर्भर योग्य साधन से प्राप्त हो सकती है तो उससे सम्बन्धित प्रश्नों को भी अनुसूची में सम्मिलित नहीं करना चाहिए क्योंकि निरीक्षण आदि के द्वारा प्राप्त सूचनाएँ अधिक निर्भरयोग्य होती हैं।
10. उन प्रश्नों को भी अनुसूची में सम्मिलित नहीं करना चाहिए जो कि अनुसन्धान के उद्देश्य से स्पष्टतः सम्बन्धित न हों क्योंकि इस प्रकार के उद्देश्यविहीन प्रश्नों से अध्ययन का तो कुछ भला नहीं होता, केवल धन, समय व परिश्रम का ही अपव्यय मात्र होता है।
11. समाज में सर्वमान्य या स्वीकृत आदर्शों से सम्बन्धित प्रश्नों से भी बचना चाहिए क्योंकि ऐसे

प्रश्नों के उत्तर में लोग प्रायः वही कहते हैं जो कि सर्वमान्य आदर्शों के अनुकूल है। उदाहरणार्थ, यदि आप यह पूछते हैं कि "वेश्याव त्ति समाज के लिए अच्छी है या बुरी?" तो उसके उत्तर में अधिकतर लोग वेश्याव त्ति को बुरा ही कहेंगे क्योंकि यही स्वीकृत आदर्श है।

अनुसूची की उपयोगिता या महत्त्व
(Importance or Utility of Schedule)

अनुसूची को इसके गुणों के कारण सामाजिक अनुसन्धान की एक अत्यन्त उपयोगी पद्धति माना जाता है। सामाजिक शोध में इस पद्धति की उपयोगिता या महत्त्व को हम निम्नांकित बिन्दुओं से अच्छी प्रकार समझ सकते हैं:

1. **यथार्थ तथा ठोस सूचनाओं की प्राप्तिः** अनुसूची के प्रयोग द्वारा अध्ययन-विषय से सम्बन्धित ठोस एवं यथार्थ सूचनाएँ एकत्रित की जा सकती हैं। क्योंकि इसमें अनुसन्धानकर्त्ता सूचना को एकत्रित करने के साथ-साथ तथ्यों का वास्तविक निरीक्षण भी करता जाता है। अतः उसे सत्य को ढूँढने और असत्य को त्याग देने का अवसर मिलता है। इस प्रकार समग्र के बारे में अनुसन्धानकर्त्ता को पूर्ण व सही सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं।

2. **प्रश्नों का स्पष्ट तथा वास्तविक उत्तरः** अनुसूची द्वारा अध्ययन करने का दूसरा प्रमुख लाभ यह है कि इसके द्वारा प्रश्नों का स्पष्ट एवं वास्तविक उत्तर प्राप्त हो जाता है। इसका कारण यह है कि उत्तर प्राप्त करते समय उत्तरदाता के पास स्वयं अनुसन्धाकर्त्ता होता और किसी भी प्रश्न के सम्बन्ध में कोई भी अस्पष्टता व सन्देह होने पर अनुसन्धाकर्त्ता से उसका स्पष्टीकरण प्राप्त हो जाता है। अनुसन्धाकर्त्ता का एक प्रमुख कार्य प्रश्नों को सही अर्थ में समझाना होता है जिसके फलस्वरूप प्रश्नों का स्पष्ट एवं सही उत्तर भी सम्भव हो जाता है।

3. **व्यक्तिगत सम्पर्क के कारण संकोच आदि का निराकरणः** कभी-कभी उत्तरदाताओं से इसलिए भी सही उत्तर प्राप्त नहीं हो पाता है कि उत्तरदाता के मन में कोई भ्रम, सन्देह, संकोच का भय घर कर गया है। अनुसूची-प्रविधि में इनका निराकरण इसलिए सम्भव होता है कि अनुसन्धानकर्त्ता व्यक्तिगत रूप में उपस्थित रहता है और वास्तविक परिस्थिति को समझाकर भय, सन्देह, भ्रम आदि को दूर कर सकता है। साथ ही साथ व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहने पर, उत्तरदाता के मन में विश्वास पनपता है और वास्तविक सूचनाएँ प्राप्त करने में बहुत मदद मिलती है। व्यक्तिगत सम्पर्क से निकटता का अनुभव होने लगता है और उत्तरदाता कोई बात छिपाने का प्रयत्न नहीं करता है।

4. **अनुसन्धानकर्त्ता के व्यक्तित्व का पूरा-पूरा लाभः** अनुसूची-प्रविधि के अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता उत्तरदाताओं पर अपने व्यक्तित्व का पूरा प्रभाव डाल सकता है। वह इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न कर सकता है कि वास्तविकता को छिपाना उत्तरदाता के लिए वास्तव में कठिन हो जाए। व्यक्तित्व के प्रभाव से उत्तरदाता अनुसन्धान में विशेष रुचि भी ले सकता है और साथ ही गुप्त बातों को भी बताने में संकोच नहीं करता जो कि अन्य परिस्थिति में वह कभी किसी से न कहता।

5. **अनुसन्धानकर्त्ता की निरीक्षण शक्ति में व द्धिः** अनुसूची के उपयोग द्वारा अनुसन्धानकर्त्ता की निरीक्षण शक्ति में अत्यधिक व द्धि होती है। एक ही प्रकार के प्रश्नों को विभिन्न व्यक्तियों

से पूछने और उनके विभिन्न उत्तरों के लिखने में अध्ययन-विषय के सम्बन्ध में उसकी अर्न्तद ष्टि बढ़ती जाती है और यह अर्न्तद ष्टि निरीक्षण की शक्ति में व द्धि करती है।

6. **तथ्यसंग्रह की प्रक्रिया को संक्षिप्त करता है:** अनुसूची को स्वयं अनुसन्धानकर्त्ता भरता है और उत्तर भरने के इस काम में वह सांकेतिक शब्दों का भी प्रयोग कर सकता है। इससे अनेक प्रश्नों का उत्तर बहुत कम समय में मिल जाता है और तथ्य संकलन की प्रक्रिया संक्षिप्त हो जाती है।

7. **लेखबद्ध सामग्री:** अनुसूची का एक उल्लेखनीय लाभ यह है कि जो कुछ भी तथ्य इसके द्वारा एकत्रित होता है वह सब लिखित रूप में हमारे पास सुरक्षित रहता है और किसी भी अवस्था में हमें अपनी कल्पना या स्मरणशक्ति पर विश्वास नहीं करना पड़ता है। साथ ही साथ प्रश्नों की अनुसूची पहले से बनी रहने के कारण कोई भी आवश्यक सूचना छूट जाने का कोई भय नहीं रहता।

8. **अधिक प्रत्युत्तर:** अनुसूची का एक महत्वपूर्ण लाभ यह है कि इस प्रविधि का प्रयोग करने पर लोगों से मिलने वाले उत्तरों का प्रतिशत बढ़ जाता है। डाक द्वारा भेजी गई प्रश्नावलियों में से अनेक प्रश्नावलियों को उत्तरदाता भरकर लौटाते ही नहीं हैं। पर चूँकि अनुसूची-प्रविधि में अनुसन्धानकर्त्ता व्यक्तिगत रूप में उपस्थित रहता है इसलिए उत्तरदाता उतना ज्यादा टाल नहीं पाते हैं। और इस प्रकार अधिक से अधिक अनुसूचियों को भरना सम्भव हो जाता है।

9. अन्त में अनुसूची-प्रविधि में मानवीय तथ्य आरम्भ से अन्त तक छाया हुआ होता है जिसके कारण सूचना एकत्रित करने की प्रक्रिया अधिक सरस, रोचक तथा आकर्षक हो जाती है। इसका कारण यह है कि इस प्रविधि के अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता और उत्तरदाता एक-दूसरे के निकट आते हैं और एक-दूसरे की उपस्थिति से कुछ लेते और कुछ देते हैं। यह लेन-देन की प्रक्रिया वास्तविक अनुसन्धान को एक मानवीय अनुसन्धान बनाने में सहायक होती है।

अनुसूची की सीमाएं
(Limitations of Schedule)

उपरोक्त अनेक गुण होने के बावजूद भी अनुसूची-प्रविधि की अपनी कुछ सीमाएं हैं जिन्हें कि हम निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं:

1. **सार्वभौमिक प्रश्नों की समस्या:** अनुसूची को बनाते समय सबसे बड़ी समस्य यह होत है कि विषय से सम्बन्धित सार्वभौमिक प्रश्नों को किस प्रकार रखा जाए या उनका निर्माण किया जाए। यहाँ सार्वभौमिक प्रश्नों से तात्पर्य उन प्रश्नों से है जिनका कि सभी उत्तरदाता एक ही अर्थ लगाएँगे और उसके यथार्थ अर्थ को समझकर सही उत्तर देंगे। इस प्रकार के प्रश्नों का निर्माण अत्यन्त कठिन है।

2. **सीमित क्षेत्र:** अनुसूची के द्वारा बहुत विस्त त क्षेत्र का अध्ययन नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमें सूचना एकत्रित करने के लिए उसे सूचनादात के पास व्यक्तिगत रूप से जाना पड़ता है। सीमित साधनों के द्वारा सीमित क्षेत्र में ही अध्ययन किया जा सकता है। अतः विस्त त अध्ययन के लिए अनुसूची बेकार सिद्ध होती है।

3. **अत्यधिक महँगी:** अनुसूची-प्रविधि अत्यधिक महँगी होती है क्योंकि साक्षात्कार की व्यवस्था करने, सूचना एकत्रित करने, कार्यकर्त्ताओं को रखने तथा उन्हें प्रशिक्षित करने में काफी धन व्यय करना पड़ता है जो कि सामान्यतया लोग नहीं कर पाते हैं।

4. **सम्पर्क की समस्याः** आज के युग में प्रत्येक व्यक्ति हर समय किसी न किसी व्यक्तिगत कार्य में उलझा रहता है। उस की कार्यव्यस्तता आज बहुत बढ़ गई है इसीलिए अनुसूची भरने के लिए वह अनुसन्धाकर्त्ता को प्रायः समय नहीं दे पाता है और यदि देता भी है तो जल्दी से जल्दी अनुसन्धाकर्त्ता को टालने का प्रयास करता है। सम्पर्क की समस्या उस समय और भी गम्भीर हो जाती है जबकि अनुसूची बहुत लम्बी होती है और अधिकांशतः ऐसा ही होता है।

5. **मिथ्या झुकाव का पनपनाः** उत्तर देते समय अनुसन्धानकर्त्ता की उपस्थिति मिथ्या-झुकाव को पनपाने में सहायक होती है। प्रायः उत्तरदाता वही उत्तर देता है जो कि उसकी समझ में उससे आशा करते हैं। कभी-कभी तो कार्यकर्त्ता स्वयं ही उत्तर देने में सूचनादाता की सहायता करते जाते हैं और उस अवस्था में सूचनादाता ठीक-ठीक राय प्रकट करने के स्थान पर अनुसन्धानकर्त्ता के सुझावों की ओर अधिक झुक जाता है; इससे वास्तविक सूचनाएँ प्राप्त नहीं हो पाती हैं और अनुसन्धान के निष्कर्ष पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं।

अध्याय - 10
प्रश्नावली
(Questionnaire)

अनुसूची की भांति प्रश्नावली भी प्रश्नों की एक आयोजित व क्रमबद्ध सूची है जिसका उद्देश्य अध्ययन-विषय से सम्बन्धित प्राथमिक तथ्यों (Primary Data) को संकलित करना होता है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि प्रश्नावली व अनुसूची में केवल अन्तर इतना ही है कि अनुसूची-प्रविधि में अनुसन्धाकर्त्ता स्वयं सूचनादाता से मिलकर प्रश्नों के उत्तर भरता है जबकि प्रश्नावली को डाक द्वारा सूचनादाताओं के पास भेज दिया जाता है और उनसे यह अनुरोध किया जाता है कि वे प्रश्नों का उत्तर स्वयं लिखकर फिर डाक द्वारा ही प्रश्नावली को अनु-सन्धाकर्त्ता के पास भेद दें। अतः हम कह सकते हैं कि सामान्यतः प्रश्नावली भी उन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित है जिनपर कि अनुसूची। फिर भी, जैसा कि श्री लुण्डबर्ग (Lundberg) ने लिखा है, प्रश्नावली का निर्माण करते समय अन्य अनेक बातों का ध्यान रखना पड़ता है, विशेषकर इसलिए कि इसमें प्रश्नों का उत्तर अनुसन्धानकर्त्ता के प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अनुरोध तथा सहायता के बिना ही भरना होता है। प्रश्नावली-प्रविधि में इस सीमा के अतिरिक्त भी अन्य कई दोष हैं। पर, जैसा कि र्स्वश्री गूड तथा हॉट (Goode and Halt) ने लिखा है, इन दोषों के बावजूद भी डाक द्वारा प्रेषित स्वयं भरी जाने वाली प्रश्नावली समाजशास्त्रीय शोध में एक उपयोगी प्रविधि है। जब तक इस प्रविधि का प्रयोग उपयुक्त तरीके से किया जाता रहेगा, इसमें वास्तविक लाभ प्राप्त हो सकेगा। परन्तु इस सम्बन्ध में और कुछ विवेचना करने से पहले यह आवश्यक है कि हम प्रश्नावली के वास्तविक अर्थ को समझ लें। अग्रलिखित विवेचना से इसी का स्पष्टी-करण होगा।

प्रश्नावली का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning & Definition of Questionnaire)

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि एक विषय से सम्बन्धित व्यक्तियों से सूचना प्राप्त करने के लिए बनाए गए प्रश्नों की एक क्रमबद्ध सूची को प्रश्नावली कहते हैं जिसे कि डाक द्वारा भेजकर सूचना एकत्रित की जाती है, पर विभिन्न विद्वानों ने इसके अर्थ को अपने-अपने ढंग से समझाने का प्रयत्न किया है।

गूड तथा हॉट (Goode and Halt) के अनुसार, “सामान्य रूप से प्रश्नावली से तात्पर्य प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने की उस प्रविधि से है जिसमें कि एक पत्रक का प्रयोग किया जाता है जिसे उत्तरदाता स्वयं भरता है।”

श्री लुण्डबर्ग (Lundberg) ने लिखा है कि, “मूलतः प्रश्नावली प्रेरणाओं का एक समूह है जिसे कि

शिक्षित लोगों के सम्मुख, उन प्रेरणाओं के अन्तर्गत उनके भौतिक व्यवहारों का निरीक्षण करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है।"

प्रश्नावली की परिभाषा करते हुए श्री पोप (Pope) ने लिखा है, "एक प्रश्नावली को प्रश्नों के एक समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका उत्तर सूचनादाता को बिना एक अनुसन्धानकर्त्ता अथवा प्रगणक (Enumerator) की व्यक्तिगत सहायता के देना होता है।"

विलसन गी (Wilson Gee) के मतानुसार, "प्रश्नावली बड़ी संख्या में लोगों से अथवा छोटे चुने हुए एक समूह से, जिसके कि सदस्य विस्त त क्षेत्र में छिटके हुए हैं, सीमित मात्रा में सूचना प्राप्त करने की एक सुविधाजनक प्रणाली है।"

बोगार्डस (Bogardus) ने लिखा है कि, "प्रश्नावली विभिन्न व्यक्तियों को उत्तर देने के लिए दी गई प्रश्नों की एक तालिका है।" जबकि प्रो० सिन पायो यांग (Hsin Pao Yang) के अनुसार, "अपने सरलतम रूप में प्रश्नावली प्रश्नों की एक अनुसूची है जो कि अनुसूचित अथवा सर्वेक्षण निर्दशन के रूप में निर्वाचित व्यक्तियों के पास डाक द्वारा भेजी जाती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि प्रश्नावली एक विशेष प्रकार की अनुसूची है जिसे कि अध्ययन-विषय से सम्बन्धित प्राथमिक तथ्यों को एकत्रित करने के लिए निदर्शन के रूप में चुने हुए व्यक्तियों के पास डाक द्वारा इस अनुरोध के साथ भेज दिया जाता है कि वे उन प्रश्नों का उत्तर स्वयं लिखकर प्रश्नावली को वापस भेज दें क्योंकि ये उत्तरदातागण या तो संख्या में इतने अधिक हैं अथवा इतने अधिक बिखरे हुए हैं कि व्यक्तिगत सम्पर्क के द्वारा उनसे सूचना एकत्रित नहीं की जा सकती।

प्रश्नावली की प्रकृति (Nature of Questionnaire) : प्रश्नावली की प्रकृति व अन्य पहलुओं पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं :

(i) **प्रश्नों का आकार (Size of Questions):** प्रश्नों का आकार बड़ा नहीं होना चाहिए क्योंकि उत्तरदाता बड़े आकार को देखते ही विचलित हो जाता है, अतः छोटी प्रश्नावलियाँ अधिक उपयोगी सिद्ध होती हैं।

(ii) **भाषा की स्पष्टता (Clarity of Language):** प्रश्नावलियों की भाषा इतनी सरल और स्पष्ट होनी चाहिए कि एक साधारण उत्तरदाता उनके अर्थ व प्रयोग को समझ सके। भाषा को जटिल व मुहावरेदार नहीं बनाना चाहिए। किसी प्रकार की पारिभाषिक शब्दावलियों, बहुअर्थक शब्दों को जहाँ तक सम्भव हो सके, स्थान नहीं देना चाहिए। जितने प्रश्न सरल होंगे, उनके उत्तर उतने ही स्पष्ट होंगे।

(iii) **इकाइयों की स्पष्टता (Clarity of Units):** अध्ययनकर्त्ता जिन इकाइयों को प्रयोग में ला रहा है, उनको स्पष्ट रूप से परिभाषित करना चाहिए ताकि अलग-अलग उत्तरदाता अपने-अपने द ष्टिकोण से उनकी व्याख्या न करें।

(iv) **उपयोगी प्रश्न (Useful Questions):** प्रश्न उपयोगी होने चाहिए। अनर्गल प्रश्नों से उत्तरदाता स्वयं भी परेशान होता है और अनुसन्धानकर्त्ता का स्वयं का भी उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता है, अतः ऐसे योग्य प्रश्न पूछे जाने चाहिए जिनसे कि उत्तरदाता भी उनका जबाव निःसंकोच होकर दे।

(v) **विशिष्ट प्रश्नों से बचाव (Avoidance of Specific Questions):** कुछ प्रश्नों का सम्बन्ध

व्यक्तिगत जीवन, भावनाओं तथा रहस्यात्मक जीवन से होता है अतः ऐसे प्रश्नों से बचना चाहिए। कोई व्यंगात्मक प्रश्न भी नहीं पूछे जाने चाहिए, क्योंकि उत्तरदाता की भावनाओं को ठेस पहुँच सकती है। यदि इस प्रकार के प्रश्नों से नहीं बचा गया तो अनुसन्धान का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा।

अच्छी प्रश्नावली की विशेषताएँ
(Features of a Good Questionnaire)

एल.एल. बाउले ने एक उत्तम प्रश्नावली की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया हैः

1. तुलनात्मक द ष्टि से प्रश्नों की संख्या कम होनी चाहिए।
2. ऐसे प्रश्नों का होना श्रेष्ठ है जिनका कि उत्तर संख्या में अथवा 'हाँ' या 'नहीं' में दिया जा सकता है।
3. प्रश्न इतने सरल, सीधे तथा एकअर्थक हों कि शीघ्र समझे जा सकें।
4. प्रश्नों की रचना इस प्रकार की जाए कि उनका उत्तर देते समय मिथ्या झुकाव की सम्भावना न्यूनतम हो।
5. प्रश्न अशिष्टतापूर्ण अथवा ध ष्टतापूर्ण एवं परीक्षात्मक नहीं होने चाहिए।
6. प्रश्न जहाँ तक सम्भव हो एक-दूसरे को पुष्ट करने वाले हों।
7. प्रश्न इस प्रकार का हो कि इच्छित सूचना प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त की जा सके।

इसके अतिरिक्त एगलवर्नर ने एक अच्छी प्रश्नावली में निम्नलिखित बातों का समावेश आवश्यक बताया हैः

(i) क्या-क्या सूचनाएं आवश्यक हैं यह निश्चित करने के लिए विषय की व्याख्या।

(ii) यथासम्भव स्पष्ट रूप से उस व्यक्ति की कल्पना करना जिससे सूचनाएं प्राप्त करनी है।

(iii) इस बात का निश्चय करना कि प्रश्नावली जिसे भेजी गई है उसमें किस प्रकार की सूचनाएं मांगी गई हैं।

(iv) ऐसे किसी भी प्रकार के प्रश्न नहीं पूछने चाहिए जिनसे उत्तर देने में सूचनादाता को कोई आपत्ति हो।

(v) प्रश्नों की रचना इस प्रकार होनी चाहिए कि जिससे इस प्रकार की भूल-भुलैया में कोई न पड़े कि उससे किस प्रकार की सूचनाएँ माँगी जा रही हैं।

(vi) प्रश्नावली को उत्तरदाता के लिए इतना सरल बना दिया जाए कि वह वांछित सूचना दे सके।

(vii) प्रश्नों को तार्किक क्रम से व्यवस्थित किया जाय।

(viii) लम्बे-लम्बे प्रश्नों से बचा जाय।

(ix) प्रश्नों की रचना पक्षपात रहित होकर करनी चाहिए।

(x) प्रश्नावली यथासम्भव संक्षिप्त हो।

प्रश्नावली के प्रकार
(Types of Questionnaires)

सभी प्रश्नावलियाँ समान प्रकृति की नहीं होतीं। अध्ययन की प्रकृति, प्रश्नों के प्रकार तथा उत्तरदाताओं की विशेषताओं के द ष्टिकोण से एक-दूसरे से भिन्न अनेक प्रकार की प्रश्नावली बनाई जा सकती हैं। लुण्डबर्ग ने प्रश्नावली के दो मुख्य प्रकारों का उल्लेख किया है—तथ्य सम्बन्धी प्रश्नावली, तथा मत और मनोव त्ति सम्बन्धी प्रश्नावली। प्रथम श्रेणी की प्रश्नावलियाँ वे हैं जिनका उपयोग किसी समूह की सामाजिक अथवा आर्थिक दशाओं से सम्बन्धित तथ्यों का संग्रह करने के लिए किया जाता है। दूसरी श्रेणी की प्रश्नावली का उद्देश्य एक विशेष विषय पर उत्तरदाताओं की रुचियों, विचारों अथवा मनोव त्तियों को जानना होता है। पी.वी. यंग ने भी प्रश्नावली के दो भागों का उल्लेख किया है—संरचित प्रश्नावली तथा असंरचित प्रश्नावली। प्रस्तुत विवेचन में हम प्रश्नावली के उन सभी सामान्य प्रकारों का वर्गीकरण प्रस्तुत करेंगे जिनका उपयोग विभिन्न परिस्थितियों में किया जा सकता है:

1. **संरचित प्रश्नावली** (Structured Questionnaire): संरचित प्रश्नावली सामाजिक सर्वेक्षण अथवा अनुसन्धान में प्रयोग की जाने वाली वह प्रश्नावली है जिसकी रचना वास्तविक अध्ययन आरम्भ होने से पहले ही कर ली जाती है और साधारणतया बाद में इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है। पी.वी. यंग ने लिखा है, "संरचित प्रश्नावलियाँ वे होती हैं जिनमें कि निश्चित, स्पष्ट तथा पूर्व-निर्धारित प्रश्नों के अतिरिक्त ऐसे अतिरिक्त प्रश्न भी सम्मिलित रहते हैं जो अपर्याप्त उत्तरों में स्पष्टीकरण करने या अधिक विस्त त उत्तर प्राप्त करने के लिए आवश्यक समझे जाते हैं।" सम्भवतः इसी आधार पर जहोदा एवं कुक ने संरचित प्रश्नावली को 'मानक प्रश्नावली' का नाम दिया है। ऐसी प्रश्नावली का उपयोग एक विस्त त अध्ययन क्षेत्र में फैले हुए व्यक्तियों से प्राथमिक तथ्यों का संकलन करने तथा संकलित तथ्यों की पुर्नपरीक्षा करने के लिए किया जाता है। संरचित प्रश्नावली में जिन प्रश्नों का समावेश किया जाता है वे अत्यधिक निश्चित, क्रमबद्ध और स्पष्ट होते हैं तथा प्रत्येक उत्तरदाता के लिए इनकी प्रकृति समान होती है। इसके परिणामस्वरूप ऐसी प्रश्नावली से प्राप्त उत्तरों का वर्गीकरण करना अधिक सरल हो जाता है। साधारणतया किसी समूह की सामाजिक-आर्थिक विशेषताओं का अध्ययन करने अथवा प्रशासनिक स्तर पर परिवर्तन हेतु व्यक्तियों के सुझाव जानने के लिए ऐसी प्रश्नावली का उपयोग किया जाता है।

2. **असंरचित प्रश्नावली** (Unstructured Questionaire): कैण्ट का कथन है कि "असंरचित प्रश्नावली वह होती है जिसमें कुछ निश्चित विषय-क्षेत्रों का समोवश होता है और जिनके बारे में साक्षात्कार के दौरान ही सूचना प्राप्त करनी होती है लेकिन इस प्रणाली में प्रश्नों के स्वरूप और उनके क्रम का निर्धारण करने में अध्ययनकर्त्ता को काफी स्वतन्त्रता प्राप्त होती है।" इससे स्पष्ट होता है कि असरंचित प्रश्नावली का निर्माण वास्तविक अध्ययन करने से पहले ही नहीं कर लिया जाता। इसके अन्तर्गत केवल उन विषयों का उल्लेख होता है जिनके सम्बन्ध में उत्तरदाता से सूचनाएँ प्राप्त करनी होती है। एक अध्ययनकर्त्ता ऐसी प्रश्नावली की सहायता से आरम्भ में यह ज्ञात करने का प्रयत्न करता है कि किस प्रकार के प्रश्नों और उनके एक विशेष क्रम के द्वारा सर्वोत्तम सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। यही कारण है कि ऐसी प्रश्नावली 'साक्षात्कार निर्देशिका' हमारे लिए तभी लाभदायक होती है जब अध्ययन का क्षेत्र सीमित हो तथा प्रत्येक उत्तरदाता से सम्पर्क स्थापित करना सम्भव

हो। इसके पश्चात् भी कुछ विद्वान् असंरचित प्रश्नावली को प्रश्नावली का एक प्रकार न मानकर साक्षात्कार विधि के आधार के रूप में देखते हैं। इसका कारण यह है कि प्रश्नावली के अन्तर्गत साक्षात्कार की प्रक्रिया का कोई स्थान नहीं होता। इस द ष्टिकोण से प्रश्नावली के प्रकारों में पी.वी. यंग द्वारा प्रस्तुत असंरचित प्रश्नावली का उल्लेख करना अधिक उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।

3. **बन्द प्रश्नावली (Closed Questionnaire):** प्रश्नावली का यह प्रकार अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक प्रश्न के सामने उसके अनेक संभावित उत्तर दे दिए जाते हैं तथा उत्तरदाता को उन्हीं उत्तरों में से किसी एक उत्तर को चुनकर अपने विचारों को अभिव्यक्त करना होता है। उदाहरण के लिए, यदि प्रश्न की प्रकृति इस प्रकार हो कि—1984 के आम चुनाव में आपने अपना वोट किस आधार पर दिया? दल की नीतियों और कार्यक्रमों को ध्यान में रखते हुए/उम्मीदवार के गुणों को देखते हुए/यह देखते हुए कि अधिक लोग किसे वोट दे रहे हैं/पड़ोसियों के दबाव को देखते हुए/कोई निश्चित आधार नहीं; तो ऐसे प्रश्नों को हम 'बन्द प्रश्न' तथाइस प्रकार के प्रश्नों से बनने वाली प्रश्नावली को बन्द अथवा प्रतिबन्धित प्रश्नावली कहेंगे। ऐसे प्रश्नों के अनेक दूसरे भी उदाहरण हो सकते हैं—जैसे आप किस आय वर्ग के अन्तर्गत आते हैं? 100 रु. मासिक से कम/100 से 200 रु. तक/200 से 300 रु. तक/300 से 400 रु. तक/400 रु. से अधिक। स्पष्ट है कि बन्द प्रश्नों का उत्तर देने के लिए उत्तरदाता को प्रमुख लाभ यह है कि इससे प्राप्त सूचनाओं का सरलता से सारणीयन करके उनका वर्गीकरण किया जा सकता है।

4. **खुली हुई प्रश्नावली (Open Questionnaire):** इस प्रकार की प्रश्नावली में प्रश्नों के साथ उनके संभावित उत्तर नहीं दिए जाते बल्कि उत्तरदाता से यह आशा की जाती है कि वह अपनी इच्छानुसार कोई भी उत्तर दे। इसमें प्रत्येक प्रश्न के सामने रिक्त स्थान छोड़ दिया जाता है जिससे उस खाली स्थान पर उत्तरदाता अपना उत्तर लिख सके।

5. **चित्रमय प्रश्नावली (Pictorial Questionnaire):** साधारणतया प्रश्नावली का उपयोग केवल शिक्षित समूह के लिए ही किया जाता है लेकिन यदि कोई समूह कम शिक्षित हो और दूसरी ओर यहाँ व्यक्तियों से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करना किसी कारण कठिन समझा जाता हो तो ऐसी स्थिति में चित्रमय प्रश्नावली के द्वारा तथ्यों का संग्रह करने का प्रयत्न किया जाता है। ऐसी प्रश्नावली में प्रत्येक प्रश्न को बहुत सरल ढंग से प्रस्तुत किया जाता है और उसके संभावित उत्तरों के स्थान पर विभिन्न चित्र इस प्रकार प्रदर्शित किए जाते हैं जिससे उत्तरदाता चित्रों के आधार पर अपने उत्तर को सरलता से चिहि्नत कर सके। उदाहरण के लिए यदि प्रश्न यह हो कि आप गाँव में रहना पसन्द करेंगे अथवा नगर में? तथा प्रश्न के आगे नगर और गाँव का चित्र बना दिया जाए तो उत्तरदाता सरलता से किसी एक पर चिह्न लगाकर अपनी पसन्द अभिव्यक्त कर सकता है। बच्चों की मनोव त्तियाँ अथवा रुचि का अध्ययन करने के लिए भी ऐसी प्रश्नावलियाँ उपयोग में लाई जाती हैं।

6. **मिश्रित प्रश्नावली (Mixed Questionnaire):** जैसा कि नाम से स्पष्ट है, मिश्रित प्रश्नावली वह होती है जिसमें प्रश्नों की प्रकृति किसी एक स्वरूप तक ही सीमित न होकर अनेक प्रकार के प्रश्नों से सम्बन्धित होती है। ऐसी प्रश्नावली में साधारणतया बन्द और खुले हुए सभी प्रकार के प्रश्नों का समावेश होता है। एक विशेष सूचना अथवा विचार प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार के प्रश्न को सबसे अधिक उपयुक्त समझा जाता है, उसका ऐसी प्रश्नावली

में समावेश कर लिया जाता है। वास्तविकता यह है कि सामाजिक तथ्य इतने जटिल और विविधतापूर्ण होते हैं कि एक विशेष प्रकृति के प्रश्नों द्वारा ही उन सभी को ज्ञात कर सकना बहुत कठिन होता है। विषय का व्यापक और गहन अध्ययन करने के लिए मिश्रित प्रश्नावली का उपयोग करके ही विश्वसनीय तथ्य प्राप्त किए जा सकते हैं। यही कारण है कि सामाजिक सर्वेक्षण तथा अनुसन्धान में मिश्रित प्रश्नावली का उपयोग सबसे अधिक किया जाता है।

प्रश्नावली का निर्माण
(Construction of Questionnaire)

यह सच है कि प्रश्नावली प्राथमिक तथ्यों (Primary Data) को एकत्रित करने का एक प्रभावपूर्ण साधन है। पर इस साधन की सफलता अधिकतर इस बात पर निर्भर रहती है कि प्रश्नावली के निर्माण में कितनी सर्तकता को अपनाया गया है। इस सर्तकता की आवश्यकता प्रश्नावली-प्रविधि में इसलिए अधिक होता है क्योंकि इसमें उत्तरदाता को बिना अनुसन्धानकर्त्ता की मदद से प्रश्नों का उत्तर देना होता है। इसीलिए यदि कभी भी कोई अस्पष्टता या कमी रह गई हो तो उत्तर भी अस्पष्ट तथा अपूर्ण ही होते हैं। ऐसी स्थिति में प्रश्नावली का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वह इतनी सरल व स्पष्ट हो कि विभिन्न प्रकार के उत्तरदाता उसे बिना अनुसन्धानकर्त्ता की सहायता के समझ सकें एवं वांछित उत्तर लिखकर भेज सकें। इसके लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

विषय का सावधानीपूर्वक विश्लेषण
(Careful Analysis of the Subject)

एक सफल प्रश्नावली तभी बन सकती है जबकि अनुसन्धाकर्त्ता प्रश्नावली बनाने से पूर्व विषय का सावधानीपूर्वक विश्लेषण कर लें। इस विश्लेषण के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें आती हैं:

(अ) **समस्या के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण (Analysis of the various Aspects of the Problem):** प्रश्नावली के निर्माण में सबसे पहले समस्या के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण करना पड़ता है जिससे कि उन पक्षों का तुलनात्मक महत्व स्पष्ट हो जाए और अनुसन्धानकर्त्ता को यह पता चल जाए कि समस्या के किन-किन पक्षों के किन-किन विषयों के सम्बन्ध में उसे प्रश्नावली के आधार पर सूचना प्राप्त हो सकती है। इसी विश्लेषण के आधार पर यह निश्चय करना पड़ता है कि किन-किन पहलुओं से सम्बन्धित किन-किन प्रश्नों को प्रश्नावली में स्थान दिया जा सकता है। ऐसा कर लेने से एक सन्तुलित प्रश्नावली का निर्माण संभव होता है और इस बात की सम्भावना न्यूनतम होती है कि समस्या का कोई भी आवश्यक पक्ष इस प्रकार छूट नहीं जाता है कि उस पर कोई भी प्रश्न नहीं किया गया हो। साथ ही अधिक महत्वपूर्ण पक्षों के सम्बन्ध में अधिक प्रश्नों का तथा कम महत्वपूर्ण पक्षों के सम्बन्ध में कम प्रश्नों का बँटवारा भी ठीक ढंग से हो जाता है। सम्पूर्ण विषय से सम्बन्धित सन्तुलित संख्या में प्रश्नों को प्रश्नावली में सम्मिलित करने के लिए यह आवश्यक है कि (क) प्रश्नों के निर्माण में विषय के सम्बन्ध में अनुसन्धानकर्त्ता के पूर्व-अनुभवों का सदुपयोग करना चाहिए जिससे कि आवश्यक सभी प्रश्न प्रश्नावली में सम्मिलित हो जाएँ (ख) विषय से सम्बन्धित उपलब्ध साहित्य के पूर्ण अध्ययन के आधार पर प्रश्नों का निर्माण करना चाहिए, (ग) विषय से सम्बन्धित विशेषज्ञों एवं मित्रों आदि के ज्ञान का भी उपयोग प्रश्नों के निर्माण में करना चाहिए, और (घ) प्रश्नों के निर्माण में स्थानीय परिस्थिति को समझाने वाले विशिष्ट व्यक्तियों

के अनुभव और पूर्व-ज्ञान से भी लाभ उठाना चाहिए। इस प्रकार विभिन्न स्रोतों से समस्या के बारे में पर्याप्त जानकारी हासिल करके समस्या के विभिन्न पक्षों का उचित विश्लेषण करने के पश्चात् ही प्रश्नावली का निर्माण करना चाहिए।

(ब) **उपयोगी प्रश्न (Useful Questions):** प्रश्नावली में किसी प्रश्न को स्थान देने से पहले यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वह प्रश्न अध्ययन-विषय या उसके किसी विशेष पक्ष पर प्रकाश डालने में कितना योग दे सकता है। प्रश्नावली में प्रत्येक प्रश्न इतना उपयोगी होना चाहिए कि उसका अभाव हमें खटके। यदि किसी प्रश्न का मूल्य प्रश्नावली में बहुत कम है तो उसकी तुलना इस पर खर्च करने वाले अतिरिक्त व्यय एवं समय से करनी चाहिए और इस तुलना में यदि उस प्रश्न की उपयोगिता कम मालूम पड़े तो उसे निकाल देना चाहिए। अनावश्यक प्रश्नों में व्यर्थ ही समय तथा धन नष्ट होता है और सूचनादाताओं से उन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करना भी कठिन होता है। अतः केवल उपयोगी प्रश्नों को ही प्रश्नावली में स्थान देना चाहिए।

प्रश्नों की प्रकृति तथा भाषा
(Nature and Wording of Questions)

किन उपयोगी प्रश्नों को प्रश्नावली में स्थान देना है, केवल इतना निश्चित कर लेने मात्र से ही एक उत्तम प्रश्नावली का निर्माण नहीं हो जाता है, जब तक कि प्रश्नों की प्रकृति तथा भाषा पर भी आवश्यक ध्यान न दिया जाए। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें स्मरणीय हैं:

1. **भाषा की स्पष्टता एवं विशिष्टता (Clear and Specific Language):** प्रश्नावली में उत्तरदाता को प्रत्येक प्रश्न को स्वयं समझकर उत्तर देना पड़ता है। अतः यह आवश्यक है कि प्रश्न इतने स्पष्ट हों कि उत्तरदाता को उन्हें समझने में कठिनाई न हो। प्रश्नों की भाषा इस प्रकार होनी चाहिए कि उनका अर्थ अत्यन्त स्पष्ट और सुनिश्चित हो। प्रश्नों में विशिष्ट शब्दों, विभागीय शब्दों तथा शब्दों के संक्षिप्त रूप (Abbreviations) का प्रयोग नहीं करना चाहिए। उसी प्रकार अप्रचलित शब्दों, दोषपूर्ण वाक्य-विन्यास, भावात्मक शब्द, सापेक्षिक शब्द (जैसे अधिक, प्रायः बहुधा, आदि), बहुअर्थक शब्द, परिभाषिक शब्दावलियों (Technical Terms) से यथासम्भव दूर रहना चाहिए। सूचनादाता के मन में असमंजस उत्पन्न करने वाले प्रश्नों को प्रश्नावली में सम्मिलित नहीं करना चाहिए। उदाहरणार्थ, "क्या आप अच्छे पढ़े लिखे हैं?" यह प्रश्न पूछने के स्थान पर "आपने किस कक्षा तक शिक्षा ग्रहण की है?" पूछना अधिक अच्छा है क्योंकि 'अच्छे पढ़े-लिखे' होने का अभिप्राय अलग-अलग सूचनादाता के लिए प थक-प थक होगा।

2. **प्रश्नों की सरलता (Simple Questions):** वह भी आवश्यक है कि प्रश्नावली में सम्मिलित किए गए प्रश्न सरल हों जिससे सामान्य बुद्धि वाले व्यक्ति भी उसके अर्थ को सरलता से समझ सकें। प्रश्नों की सरलता इसलिए और भी आवश्यक है क्योंकि प्रश्नावली के प्रश्नों का उत्तर सूचनादाता को बिना अनुसन्धानकर्त्ता की सहायता से देना होता है।

3. **इकाइयों की स्पष्ट परिभाषा (Clear Definitions of Units):** यथार्थ उत्तर पाने के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रश्नों की इकाइयों की स्पष्ट परिभाषा भी दे दी जाए। ऐसा न करने से प्रत्येक उत्तरदाता इन इकाइयों को अपने-अपने द ष्टिकोण तथा सूझ-बूझ से अलग-अलग रूप में परिभाषित करेगा और इसीलिए उनसे प्राप्त उत्तरों में पर्याप्त भिन्नता

पनपने की सम्भावना होगी। अतः इकाइयों की स्पष्ट परिभाषा आवश्यक है। उदाहरणार्थ, यदि हम यह प्रश्न करते हैं कि "आपके परिवार में कितने व्यस्क सदस्य हैं?" तो यह स्पष्ट कर देना होगा कि व्यस्क (Adult) से तात्पर्य उन लोगों से है जो कि 18 वर्ष की आयु से अधिक हैं। ऐसा कर देने से 'व्यस्क' शब्द को सभी सूचनादाता एक ही अर्थ में समझेंगे। उसी प्रकार परिभाषिक शब्दावलियों की व्याख्या भी कर लेनी चाहिए जैसे 'अर्द्ध बेकार' (Under Employment), कार्यशील जनसंख्या (Working Population) आदि के तात्पर्य को समझा देना चाहिए।

4. **कम प्रश्न (Few Questions):** प्रश्नावली के प्रश्नों का उत्तर देने के सम्बन्ध में अनुसन्धानकर्त्ता उत्तरदाताओं पर अपना व्यक्तिगत प्रभाव नहीं डाल सकता। इसीलिए यदि प्रश्नों की संख्या बहुत अधिक हुई तो प्रश्नावली को भरकर लौटाने का उत्साह सूचनादाता अपने में अनुभव नहीं करेगा। साथ ही, अधिक प्रश्न होने से समय, धन तथा परिश्रम का दुरुपयोग होता है। अतः प्रश्नों की संख्या न्यूनतम ही होनी चाहिए। पर इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि जिन विषयों पर प्रश्न पूछना आवश्यक है उसकी अवहेलना की जाए।

5. **सांख्यिकीय विवेचन के योग्य प्रश्न (Questions subject to Statistical Treatment):** प्रश्नों सम्मिलित करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रश्न ऐसे हों जिनके उत्तरों का उचित वर्गीकरण, सारणीयन आदि सम्भव हो। अतः अधिकांश प्रश्न ऐसे हों जिनका उत्तर संख्या में या 'हाँ/नहीं' में हो। इससे अध्ययन-कार्य में वस्तुनिष्ठता (Objectivity) पनपती है।

6. **सही सूचना प्राप्त करने के योग्य प्रश्न (Questions Stimulating Correct Informations):** प्रश्नों को इस ढंग से प्रस्तुत करना चाहिए कि उत्तरदाताओं के द्वारा सही स्थिति को छिपाने की सम्भावना न्यूनतम हो। श्रेष्ठ प्रश्न वही है जो कि सही सूचना प्राप्त करने में सफल होता है। उदाहरणार्थ, "तुम्हे वेश्यागमन का शौक क्यों है?" इस प्रश्न का सही उत्तर प्राप्त करना कठिन है। अतः ऐसे प्रश्नों से बचना ही उचित होता है।

7. **कुछ विशिष्ट प्रकार के प्रश्नों से बचाव (Avoiding some Particular Type of Questions):** कुछ इस प्रकार के प्रश्न होते हैं जिनके सम्बन्ध में वैषयिक उत्तर प्राप्त करना कठिन होता है। अतः इन्हें प्रश्नावली में सम्मिलित करना उचित नहीं होता। गुप्त व गहन सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए किए गए प्रश्न, पथ-प्रदर्शक प्रश्न प्राक्कल्पनात्मक प्रश्न, वैयक्तिक प्रश्न, भावात्मक प्रश्न, रूढ़िमुक्त प्रश्न आदि इसी प्रकार के कुछ प्रश्न हैं जिनसे बचना आवश्यक है। कभी-कभी तो ऐसा देखा जाता है कि गुप्त व वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित केवल दो-चार प्रश्नों का समावेश प्रश्नावली में कर देने पर सम्पूर्ण प्रश्नावली का ही उत्तर प्राप्त करना असम्भव हो जाता है। पति-पत्नी के गुप्त सम्बन्धों, व्यापारिक रहस्यों आदि से सम्बन्धित प्रश्नों से इसी कारण बचने की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार ऐसे प्रश्नों से बचना चाहिए जिनमें प्रातीतिक मूल्यांकन (Subjective Evaluation) करने वाले शब्दों जैसे 'अच्छा', 'बुरा' आदि का समावेश हो। इससे अध्ययन में वस्तुनिष्ठता पनप नहीं पाती है। इसके अतिरिक्त व्यंगात्मक प्रश्नों से भी दूर रहने की आवश्यकता है। ऐसा न करने पर सूचनादाता के मन में विरक्ति की भावना पनप जाती है। अनुसन्धानकर्त्ता का काम तो वास्तविकता की खोज करना है, न कि किसी के आन्तरिक जीवन को ठेस पहुँचाना।

प्रश्नावली का भौतिक पक्ष
(Physical Aspect of Questionnaire)

केवल प्रश्नों की प्रकृति व शब्दावली पर ही प्रश्नावली की सफलता निर्भर नहीं है। इसके कुछ भौतिक पक्ष भी कम महत्व के नहीं हैं। इस द ष्टि से निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए:

(क) **प्रश्नावली का आकार** **(Size of Questionnaire):** प्रश्नावली को उपयोगी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसका आकार न तो बहुत बड़ा हो और न ही बहुत छोटा। बहुत बड़े आकार की प्रश्नावली को देखकर ही उत्तरदाता घबड़ा जाता है और साथ ही ऐसी प्रश्नावलियों को बार-बार मोड़ने से फटने या अन्य प्रकार से नष्ट हो जाने की सम्भावना होती है। सामान्यतः 8½" x 11" के कागज पर ही प्रश्नावली छपवाई जाती है। पर जनगणना आदि के अवसर पर बड़े आकार की प्रश्नावली ही प्रयोग में लाई जाती है।

(ख) **छपाई और रंग** **(Printing and Colour):** प्रश्नावली को आकर्षक बनाने के लिए छपाई तथा कागज के रंग का भी अत्यन्त ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि इन सबका प्रभाव मनोवैज्ञानिक तौर पर सूचनादाता पर पड़ता है। खराब कागज फट भी जल्दी जाता है इसलिए वर्गीकरण आदि के समय में काफी कठिनाई हो सकती है। उसी प्रकार कागज उत्तम प्रकार का न होने से उत्तर लिखते समय स्याही फैल जाती है। इससे भी बाद में बहुत असुविधा होती है। उसी प्रकार यदि छपाई अच्छी नहीं है तो उसे पढ़ने में उत्तरदाता को कष्ट हो सकता है और उसकी उत्तर देने की रुचि कम हो सकती है। प्रश्नावली-प्रविधि में रंग, छपाई आदि के द्वारा प्रश्नावली को आकर्षक बनाने से कुछ सीमा तक अनुसन्धानकर्त्ता की अनुपस्थिति की पूर्ति हो जाती है।

(ग) **प्रश्नावली की लम्बाई** **(Length of Questionnaire):** एक प्रश्नावली में प्रश्नों की संख्या इतनी होनी चाहिए कि सम्पूर्ण प्रश्नावली अनेक प ष्ठों में छप सके। अधिक लम्बी प्रश्नावली को भरने में उत्तरदाता का बहुत अधिक समय लगता है और इसीलिए वह ऐसी प्रश्नावली से घबड़ाता है; इसीलिए यह आवश्यक है कि प्रश्नावली इतनी लम्बी न हो कि उसे भरने में उत्तरदाता ऊब जाएँ। कम-से-कम और संक्षिप्त प्रश्नों वाली प्रश्नावली अधिक उपयोगी मानी जाती है यद्यपि पचास प ष्ठों तक की प्रश्नावलियाँ भी सफलतापूर्वक प्रयोग में लाई जा चुकी हैं। फिर भी यदि प्रश्नावली की लम्बाई इतनी है कि अधिक-से-अधिक आधे घण्टे में उसे भरा जा सके, तो उसे एक उत्तम प्रश्नावली माना जाता है।

(घ) **मदों की व्यवस्था** **(Arrangement of Items):** यदि प्रश्नों की संख्या अधिक भी है और यदि उन प्रश्नों को सुव्यवस्थित ढंग से सजा दिया गया है तो प्रश्नावली की लम्बाई खटकती नहीं है। इसीलिए यदि प्रश्नों की संख्या अधिक है तो उन्हें कुछ समूहों में बाँट देना चाहिए और प्रत्येक समूह के प्रश्नों को व्यवस्थित रूप में इस प्रकार लगा देना चाहिए कि वे एक-दूसरे से सम्बन्धित जान पड़ें। इससे प्रश्नों का एक स्वाभाविक बहाव प्रश्नावली में देखने को मिलता है और उत्तरदाता उसी बहाव में बहता चला जाता है और उसे प्रश्नों का उत्तर देने में परेशानी नहीं होती। प्रत्येक प्रश्न-समूह का शीर्षक, उपशीर्षक आदि देने से भी प्रश्नावली व्यवस्थित व आकर्षक बन जाती है और प्रश्नों को एक क्रम से लिखने से न केवल विषय का स्पष्टीकरण हो जाता है अपितु वर्गीकरण आदि के काम में पर्याप्त सहायता मिलती है।

प्रश्नावली की पूर्व-जाँच
(Pretesting of Questionnaire)

हर तरह से सावधानी बरतने पर भी प्रत्येक प्रश्नावली में कुछ-न-कुछ त्रुटि अवश्य ही रह जाती है और इन त्रुटियों का तब तक पता नहीं चलता जब तक कि प्रश्नावली को व्यावहारिक प्रयोग में न लाया जाए। यदि बहुत बाद में इन त्रुटियों का पता चला तो उन्हें सुधारने में बहुत परेशानी होती है। इसीलिए वास्तविक रूप में सूचना एकत्रित करने के लिए प्रश्नावली को प्रयोग में लाने के लिए उसकी पूर्व-परीक्षा कर लेना आवश्यक होता है। इसीलिए प्रश्नावली को अन्तिम रूप देने और सूचनादाताओं के पास उसे भेजने से पूर्व अध्ययन-क्षेत्र से ही किसी छोटे समूह को सैम्पल (Sample) के रूप में चुनकर प्रश्नावली का प्रयोग कर लिया जाता है। इस प्रकार के परीक्षण से जो भी दोष पता चलते हैं उन्हें दूर करने के लिए आवश्यक कदम उठाना चाहिए अर्थात् आवश्यकतानुसार प्रश्नावली में परिवर्तन व परिवर्द्धन कर देना चाहिए। यदि बहुत ज्यादा त्रुटियों का पता चलता है तो प्रश्नावली को फिर से बनाना चाहिए।

सहगामी पत्र
(Accompaying Letter)

पूर्वपरीक्षा करने के बाद प्रश्नावली में आवश्यक परिवर्तन व परिवर्द्धन करके उसे अन्तिम रूप दिया जाता है और फिर वास्तविक सूचनादाताओं के पास डाक द्वारा उसे भेज दिया जाता है। पर ऐसा करते समय प्रत्येक प्रश्नावली के साथ एक व्यक्तिगत पत्र संलग्न कर देना चाहिए जिसमें सूचनादाता को अनुसन्धान-कार्य के उद्देश्यों के सम्बन्ध में बताते हुए उनको सहयोग प्रदान करने के लिए अनुरोध करना चाहिए। इसके लिए सबसे प्रथम आवश्यकता इस बात की है कि यह पत्र बहुत ही अच्छे कागज पर साफ व सुन्दर टाइप से आकर्षक शीर्षक सहित छपा हो ताकि वह पत्र सूचनादाता को अपनी तरफ आकर्षित करने में निश्चय ही सफल हो। यदि यह सहगामी पत्र इस काम में सफल हुआ तो वह व्यक्तिगत साक्षात्कार की ही भांति उपयोगी सिद्ध होगा और सूचनादाता तथा अनुसन्धानकर्त्ता को एक-दूसरे के निकट लाकर उन्हें व्यक्तिगत सम्बन्धों में बाँधने का काम करेगा। इसी सहगामी पत्र का प्राथमिक प्रभाव यह होता है कि उसी के आधार पर अनुसन्धान की प्रकृति, महत्व आदि के सम्बन्ध में कुछ तात्कालिक निष्कर्ष निकालने में सूचनादाता को अत्यन्त सुविधा होती है और उसकी इस जिज्ञासा की भी पूर्ति होती है 'कि सूचना किसे चाहिए' और 'किस लिए चाहिए'।

इस पत्र में किस प्रकार का अनुरोध किया जाए यह दूसरी समस्या है। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि सहगामी पत्र में सहयोग की याचना इस रूप में प्रस्तुत की जाए कि अपना समय तथा उत्साह नष्ट करके और उस समय के दौरान किए जाने वाले अन्य मनोरंजक क्रियाओं से अपने को वंचित करके भी प्रश्नावली को भरने के सम्बन्ध में सूचनादाता के मन में कोई हिचक अवशेष न रह जाए। इस सम्बन्ध में सबसे बड़ी समस्या यह है कि पत्र के द्वारा हमें सूचनादाता के मन से समस्त प्रकार के सन्देह व डर को इस प्रकार मिटा देना पड़ता है कि वह प्रश्नावली को भरने के लिए स्वतः प्रेरित हो। इसीलिए यह उचित है कि पत्र के आरम्भ में ही यह स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहिए कि केवल अनुसन्धान-कार्य के लिए अथवा ज्ञान के विस्तार के लिए सूचनाओं की याचना की जा रही है और उन सूचनाओं का किसी भी रूप में दुरुपयोग नहीं किया जाएगा।

इस प्रकार विश्वास उत्पन्न करने के बाद पत्र में यह लिखना चाहिए कि उस पत्र के साथ एक प्रश्नावली भेजी जा रही है जिसके प्रश्नों का उत्तर अपनी सुविधानुसार भरकर प्रश्नावली को वापस भेज देने की कृपा करें। यह भी लिख देना लाभदायक सिद्ध होता है कि वे अपना नाम प्रश्नावली में न लिखें ताकि उनके नाम के साथ उनके द्वारा दिए गए उत्तरों को जोड़ा न जा सके।

शीघ्र जबाव पाने के लिए और साथ ही अधिक संख्या में भरी हुई प्रश्नावलियों को प्राप्त करने के लिए टिकट सहित जबाबी लिफाफा प्रश्नावली के साथ भेज देना चाहिए। इस प्रकार के जवाबी लिफाफे का भी एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव सूचनादाता पर पड़ता है और वह सोचता है कि जब अनुसन्धानकर्त्ता ने इतना पैसा खर्चा किया है तो उसे जबाव दे ही दिया जाए। टिकट सहित जवाबी लिफाफे भेजने पर भी सभी लोग प्रश्नावली को भरकर नहीं भेजते हैं और उस अवस्था में पर्याप्त पैसा यूँ ही बर्बाद होता है। इस बर्बादी को रोकने के लिए 'व्यापारी जवाबी लिफाफा (Business Reply Envelope) सबसे उत्तम होता है।

श्री स्लेटो (Sletto) के अनुसार कभी-कभी सहगामी पत्र में सूचनादाता की रुचि को चुनौती देने का भी बड़ा अच्छा फल प्राप्त होता है। आपने स्वयं शिक्षा सम्बन्धी परिवर्तनों का अध्ययन करते समय अपने सहगामी पत्र में यह लिखा था कि "बहुत से लोग यह विश्वास करते हैं कि इस प्रकार का अध्ययन सफल हो ही नहीं सकता क्योंकि विश्वविद्यालय के विद्यार्थी अपने आपको लेकर ही इतने ज्यादा व्यस्त है कि इस प्रकार की लम्बी प्रश्नावलियों का उत्तर देने के प्रति वे अत्यधिक उदासीन हैं।" इस चुनौती से बड़ा अच्छा फल प्राप्त हुआ और पर्याप्त संख्या में प्रश्नावलियों को भरकर विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने लौटाया।

प्रश्नावलियाँ भेजने में सावधानी
(Precautions in despatching the Questionnaires)

सहभागी पत्र ठीक-ठीक तैयार हो जाने के बाद प्रश्नावली के साथ उसे लगाकर सूचनादाताओं को भेज देना चाहिए। ऐसा करते हुए कुछ विशेष बातों का ध्याना रखना आवश्यक है : (अ) प्रश्नावली पत्र के साथ भेजते समय इस सम्बन्ध में निःसन्देह हो जाना चाहिए कि सही पते पर उन्हें भेजा जा रहा है। (ब) सभी प्रश्नावलियों को एक ही दिन भेजना चाहिए इससे लगभग दो चार दिन के अन्तर में भरी हुई प्रश्नावलियों के लौटने की सम्भावना बढ़ जाती है। (स) प्रश्नावलियाँ ऐसे दिन भेजी जानी चाहिए कि वे साप्ताहिक अवकाश के एक-दो दिन पूर्व सूचनादाताओं को मिलें। इससे रविवार की छुट्टी में वे धैर्य और शान्ति के साथ प्रश्नावली को पढ़ने तथा प्रश्नों का उत्तर भेजने के लिए आवश्यक समय को निकाल सकेंगे। (द) प्रश्नावली के साथ उत्तर भेजने के लिए आवश्यक लिफाफा आदि जरूर भेज देना चाहिए।

अनुगामी पत्र
(Follow-up Letters)

सूचनादाताओं के द्वारा बहुत कम प्रश्नावलियाँ भरकर लौटाई जाती हैं, विशेष करके प्रथम सहगामी पत्र के पाने के तुरन्त बाद ही प्रश्नावलियों को लौटाया नहीं जाता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि प्रश्नावली भेजने के पश्चात् निश्चित समय तक उत्तर की प्रतीक्षा करने के उपरान्त पुनः सूचनादाता के अनुगामी पत्रों के द्वारा यह अनुरोध किया जाए कि वे प्रश्नावलियों को भरकर लौटा दें। कितने दिन बाद ऐसा पत्र भेजना चाहिए यह बहुत-कुछ निर्भर करता है सूचनादाताओं

की प्रकृति तथा प्रश्नावलियों के लौटने की दर पर। पर प्रायः 15 दिन पश्चात् पहला अनुगामी पत्र भेजना चाहिए। इसके पश्चात् एक-एक सप्ताह के बाद अनुगामी पत्र भेजने चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर तार या टेलीफोन का भी उपयोग किया जा सकता है।

प्रश्नावली-प्रविधि का महत्व व गुण
(Importance of Questionnaire Technique)

अनुसन्धान-कार्य के लिए प्राथमिक तथ्यों को एकत्रित करने की जो प्रविधियाँ प्रचलित हैं उनमें प्रश्नावली प्रविधि का अपना महत्व है क्योंकि इसके कुछ गुण तथ्यों को एकत्रित करने के कार्य को सरल बना देते हैं। इनके विषय में संक्षेप में हम इस प्रकार विवेचना कर सकते हैं:

1. **विस्त त जनसंख्या का अध्ययन (Study of Larger Population):** प्रश्नावली-प्रविधि की सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि इसकी सहायता से विशाल क्षेत्र में बिखरे हुए लोगों का अध्ययन करना सरल होता है। किसी अन्य प्रविधि की सहायता से इतनी अधिक जनसंख्या का सफल अध्ययन नहीं किया जा सकता। अन्य प्रविधि द्वारा विशाल जनसंख्या का अध्ययन करने में समय, धन तथा परिश्रम तो अत्यधिक खर्च होता ही है, साथ ही एक सूचनादाता के पास से दूसरे सूचनादाता के पास भटकते हुए सूचनाओं को एकत्रित करना बहुत कठिन होता है। प्रश्नावली-प्रविधि इन समस्त परेशानियों से अनुसन्धानकर्त्ता की रक्षा करती है।

2. **निम्नतम व्यय (Minimum Expenses):** प्रश्नावली-प्रविधि का एक और लाभ यह है कि इस प्रविधि को अपनाने से अध्ययन-कार्य पर होने वाला व्यय बहुत कम आता है। इसका कारण यह है कि इस प्रविधि में किसी प्रकार के क्षेत्र-कार्यकर्त्ताओं को नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं होती है। इसलिए उन पर होने वाले व्यय की बचत हो जाती है। इस प्रविधि के अन्तर्गत केवल प्रश्नावलियों को छपवाने और उन्हें सूचनादाताओं के पास डाक द्वारा भेजने आदि ही व्यय होता है, जो अधिक नहीं होता। अन्य प्रविधियों में अध्ययन-क्षेत्र में व द्धि के साथ खर्चा जिस अनुपात में बढ़ता है उसकी तुलना में प्रश्नावली-प्रविधि में व द्धि नाम-मात्र की होती है।

3. **सूचनाओं का शीघ्र प्राप्त होना (Early receipt of Informations):** प्रश्नावली-प्रविधि के द्वारा सूचनाओं को कम से कम समय के अन्दर प्राप्त करना सम्भव होता है। इसका कारण भी स्पष्ट है। इस प्रविधि में प्रश्नावलियों को छपवाकर उन्हें एकसाथ ही सूचनादाता के पास भेज दिया जाता है और साधारणतया कुछ दिनों के हेरफेर में वे प्रश्नावलियाँ उत्तर सहित पुनः वापस भी मिल जाती है। इसके विपरीत, अनुसूची, साक्षात्कार आदि प्रविधियों के अन्तर्गत अनुसन्धानकर्त्ता को एक-एक सूचनादाता के पास व्यक्तिगत रूप में जाकर सूचना एकत्रित करनी पड़ती है। इतना ही नहीं, अध्ययन-क्षेत्र के विस्तार के साथ-साथ उस पर लगने वाले समय की मात्रा में भी व द्धि होती जाती है, लेकिन प्रश्नावली में ऐसा नहीं होता है क्योंकि थोड़ी सी प्रश्नावलियों के उत्तर साहित लौट आने में जितना समय लगता है उससे कई गुणा अधिक प्रश्नावलियों के भरकर लौट आने में भी समय लगता है।

4. **सूचना को बार-बार प्राप्त करने में सुविधा (Easy to get repetitive Informations):** कुछ अनुसन्धान ऐसे होते हैं जिनमें सूचनादाताओं से एक निश्चित समय के बाद भी कई बार सूचना प्राप्त करनी होती है; जैसे पारिवारिक बजट सम्बन्धी आँकड़े। ऐसे समस्त अनुसन्धानों में प्रश्नावली-प्रविधि सबसे अच्छी रहती है क्योंकि इसमें कुल लागत कम आती है।

5. **स्वतन्त्र तथा प्रामाणिक सूचना** (Free and Valid Information): प्रश्नावली-प्रविधि से एक और लाभ यह होता है कि इसमें सूचनादाता को सूचना देने के मामले में पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। अनुसूची, साक्षात्कार आदि प्रविधियों में अनुसन्धानकर्त्ता उत्तर देने के समय में सूचनादाता के समक्ष उपस्थित रहता है। इस उपस्थिति के कारण कुछ विषयों पर सूचनादाता अपना स्वतन्त्र विचार प्रकट करने में हिचकिचाता है। फलतः वास्तविक परिस्थिति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती है। इसके विपरीत प्रश्नावली-प्रविधि में अनुसन्धानकर्त्ता व्यक्तिगत रूप में सामने नहीं होता है इसलिए सूचनादाता स्वतन्त्र रूप में विचारपूर्वक निःसंकोच होकर उत्तर दे पाता है जिसके फलस्वरूप वास्तविक व प्रामाणिक सूचना प्राप्त हो पाती है। इस प्रविधि का यह गुण है कि इसमें अनुसन्धानकर्त्ता के व्यक्तित्व का प्रभाव सूचनादाता पर नहीं पड़ता है और न ही उसके विचार सूचनादाता के विचारों को पथभ्रष्ट करने में सफल होते हैं, ऐसे स्थिति में पक्षपात रहित, विश्वसनीय व प्रामाणिक सूचनाओं को प्राप्त करने की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं।

6. **सुगमता** (Convenience): प्रश्नावली-प्रविधि के अन्तर्गत सूचनाओं को एकत्रित करना सरल है क्योंकि इसमें अनुसन्धानकर्त्ता को अधिक परिश्रम, धन तथा समय नहीं लगाना पड़ता है और साथ ही सूचनादाता को अपनी सुविधा व रुचि के अनुकूल समय पर प्रश्नों के उत्तर को लिखने की सुविधा प्राप्त हो जाती है और उसे अनुसन्धानकर्त्ता के सामने एक निश्चित समय पर बैठकर उत्तर देने के लिए तैयारी नहीं करनी पड़ती है।

7. **स्वयं-प्रशासित** (Self-administered): प्रश्नावली-प्रविधि की एक और उल्लेखनीय उपयोगिता यह है कि इसके द्वारा सूचना प्राप्त करने के लिए अनुसन्धानकर्त्ता को न तो स्वयं अध्ययन-क्षेत्र में उपस्थित होना पड़ता है और न ही कार्यकर्त्ता ओं के संगठन में दिमाग को उलझााना पड़ता है। इसमें तो प्रश्नावलियों को छपवाकर डाक द्वारा ठीक पते पर भेज देने मात्र से सूचनाओं के संग्रहणकार्य का चक्र आप-से-आप चलने लगता है। इसीलिए कहा जाता है कि प्रश्नावली-प्रविधि एक स्वयं संगठित व स्वयं-प्रशासित व्यवस्था है।

प्रश्नावली की सीमाएँ
(Limitations of Questionnaire)

यह सच है कि प्रश्नावली-प्रविधि एक अत्यन्त उपयोगी प्रविधि है, पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यह कोई दोष रहित प्रविधि है। प्रश्नावली-प्रविधि की भी अपनी कुछ आधारभूत कमियाँ व सीमाएँ हैं जो कि इस प्रकार हैं:

1. **प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन सम्भव न होना** (Reperesentative Sampling the Possible): प्रश्नावली-प्रविधि की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसके अन्तर्गत प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शनों का चुनाव नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसका प्रयोग केवल शिक्षित व्यक्तियों से सूचना प्राप्त करने के लिए किया जाता है। अधिकांश सामाजिक अनुसन्धानों में शिक्षित व अशिक्षित दोनों प्रकार के लोगों से सूचना प्राप्त करने की आवश्यकता होती है जो कि प्रश्नावली-प्रविधि के अन्तर्गत सम्भव नहीं होता है।

2. **अपूर्ण सूचना** (Imcomplete Information): प्रश्नावली को भरने में प्रायः सूचनादाता अधिक दिलचस्पी नहीं लेते हैं क्योंकि उससे उनके किसी स्वार्थ-सिद्धी की आशा नहीं रहती है और न ही अनुसन्धानकर्त्ता की उपस्थिति का कोई प्रभाव उन पर पड़ने की सम्भावना

होती है। इसलिए अक्सर केवल बला टालने के लिए लापरवाही से प्रश्नों के उत्तर भर दिए जाते हैं जो कि पूर्ण व स्पष्ट नहीं होते हैं। दूसरे शब्दों में, उत्तर प्रायः अधूरे रह जाते हैं और उनके आधार पर यह पता लगाना कठिन होता है कि सूचनादाता क्या कहना चाहते हैं। यही कारण है कि प्रोफेसर एलमर (Elmer) ने प्रश्नावली-प्रविधि को सामाजिक अनुसन्धान की एक अधूरी प्रविधि कहा है। प्रो० एब्राहम फ्लेसनर (A. Flesner) ने भी लिखा है कि यह एक मनोवैज्ञानिक प्रविधि नहीं है बल्कि सूचना या गैर-सूचना (कोई नहीं जानता कि इनमें से वास्तव में किसकी प्राप्ति होती है) प्राप्त करने की एक सस्ती, सुलभ तथा द्रुतगामी प्रविधि है। शब्दों का बिल्कुल एक ही अर्थ सबके लिए कदापि नहीं हो सकता और इसीलिए यह जानने का काई उपाय नहीं होता कि प्रश्नों के उत्तर विश्लेषणात्मक हैं अथवा व्यंग्यात्मक।

3. **प्रत्युत्तर प्राप्ति की समस्या (Problem of Response):** प्रायः यह देखा जाता है कि पत्र द्वारा कई बार याद दिलाने पर भी भेजी गई प्रश्नावलियों में से कम संख्या में प्रश्नावलियाँ उत्तर सहित लौटकर आती हैं जिसके फलस्वरूप प्रत्युत्तर की समस्या इसलिए पैदा हो जाती है कि उत्तर पाने के लिए पत्र लिखने के अतिरिक्त अनुसन्धानकर्त्ता के पास और कोई रास्ता नहीं होता। इसलिए कई पत्र भेजने के बाद भी उत्तर न मिलने पर उसे चुप बैठ जाना पड़ता है और उस अवस्था में जितनी सूचना उसे प्राप्त होती है वह अध्ययन-विषय की वास्तविकता को पूर्णतया प्रकट नहीं कर पाती हैं। प्रोफेसर राव (Rao) ने राष्ट्रीय आय सम्बन्धी सूचना प्राप्त करने के लिए कई हजार प्रश्नावलियाँ भेजी परन्तु अनुगामी पत्रों के पश्चात् भी बहुत कम प्रश्नावलियाँ उत्तर सहित लौटकर आईं।

4. **भावात्मक प्रेरणा का अभाव (Lack of Emotional Stimulation):** प्रश्नावली-प्रविधि में अनुसन्धाकर्त्ता सूचनादाता से कई मील दूर होता है। जिसके फलस्वरूप अनुसन्धाकर्त्ता अपने व्यक्तिगत प्रभाव के द्वारा सूचनादाता को वास्तविक तथ्यों को प्रकट करने के लिए भावात्मक प्रेरणा नहीं दे पाता है और प्रश्नों का उत्तर देना सूचनादाता के लिए औपचारिक विधि (formality) मात्र रह जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रश्नावली के द्वारा अपूर्ण तथा अपर्याप्त सूचनाएँ प्राप्त होने की सम्भावनाएँ अधिक रहती हैं।

5. **उत्तर लिखने में अनुसन्धानकर्त्ता की सहायता का अभाव (Lack of Assistance of the Investigaror on Answering the Questions):** प्रश्नावलियों में केवल इस प्रकार के प्रश्नों को शायद ही सम्मिलित किया जा सकता है जिन्हें कि सभी उत्तरदाता सरलतापूर्वक और सही तौर पर समझ लें। ऐसे बहुत से प्रश्न होते हैं जिन्हें कि कोई-न-कोई उत्तरदाता ठीक से नहीं समझ पाता है और उस अवस्था में यर्थाथ सूचना पाने के लिए यह आवश्यक होता है कि उन प्रश्नों को सही तौर पर कोई उन्हें समझा दे। पर इस प्रकार की कोई भी सहायता अनुसन्धानकर्त्ता से उत्तरदाता को प्रश्नावली-प्रविधि के अन्तर्गत नहीं मिल पाती है जिसके कारण या तो उत्तर गलत दिया जाता है अथवा न समझे हुए प्रश्नों को यों ही खाली छोड़ दिया जाता है।

6. **सार्वभौमिक प्रश्नों का निर्माण असम्भव (Impossibility of Uniform Questions):** प्रश्नावली में, अनुसूची की भाँति ही ऐसे प्रामाणिक सार्वभौमिक प्रश्नों का निर्माण सम्भव नहीं होता है जो प्रत्येक प्रकार के समूह, सांस्कृतिक प्रतिमान में पलने वाले लोगों तथा सभी आर्थिक व सामाजिक स्तर के लोगों के लिए उपयुक्त हों। इसका परिणाम यह होता है अलग-अलग आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक समूह के लोगा एक ही प्रश्न का अपने-अपने द ष्टिकोण

से अलग-अलग अर्थ लगाते हैं और उनके उत्तरों में इतनी विविधता होती है कि उनके आधार पर वैज्ञानिक निष्कर्ष असम्भव-सा हो जाता है।

7. **खराब लेख (Bad Handwriting):** प्रश्नावली-प्रविधि में प्रश्नों का उत्तर सूचनादाता स्वयं लिखता है, पर यह लिखावट अधिकांश क्षेत्रों में बहुत ज्यादा खराब होती है क्योंकि प्रश्नों के उत्तर प्रायः जल्दबाजी में दिये जाते हैं। इसका परिणाम यह है कि उनको पढ़ना और उनके अर्थ को समझना स्वयं ही एक समस्या बन जाती है। कुछ लोग तो पेंसिल से ही उत्तर भर देते हैं जो कि समय बीतने के साथ-साथ अस्पष्ट हो जाते हैं और उनको पढ़ना कठिन होता है। उसी प्रकार उत्तरों में काट-छाँट और पुनर्लेख (Overwriting) से भी अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएँ अस्पष्ट होने के कारण उपयोगी सिद्ध नहीं हो पाते हैं।

8. **गहन अध्ययन असम्भव (Deeper Study Impossible):** प्रश्नावली-प्रविधि का उपयोग साधारण अध्ययन के हेतु समस्याओं से सम्बन्धित सूचनाओं को एकत्रित करने के लिए किया जा सकता है। यदि किसी गहन समस्या का कुछ समय तक निरन्तर अध्ययन करना हो तो यह प्रविधि प्रायः अनुपयुक्त सिद्ध हुई है। प्रश्नावली द्वारा प्राप्त तथ्य केवल कुछ मोटे तौर पर तथ्यों को एकत्रित करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। प्रश्नावली को भरने में एक-आध घण्टा लगता है। इतने कम समय में गहन एवम् विस्त त सूचना प्राप्त करने की आशा नहीं की जा सकती है। इसके अतिरिक्त कि कुछ सहायक सूचनाएँ हमें प्राप्त हो जाएँ, प्रश्नावली से और कोई लाभ हमें नहीं हो सकता है। प्रत्यक्ष साक्षात्कार द्वारा किसी व्यक्ति के विचारों, मनोभावों, मूल्यों तथा उसके आन्तरिक जीवन में गहराई तक जिस भाँति पैठना सम्भव होता है वैसा प्रश्नावली-प्रविधि से कहीं भी सम्भव नहीं है। श्री पार्टन (Parten) ने उचित ही कहा है कि, "इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि सर्वोत्तम प्रश्नावली की अपेक्षा उत्तम साक्षात्कार के द्वारा अधिक गहन अध्ययन किया जा सकता है।"

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि प्रश्नावली की उपयोगिता के सम्बन्ध में विद्वानों में विरोधी मत देखने को मिलता है। श्री सीजर (O.E. Seser) ने लिखा है कि प्रश्नावली द्वारा प्राप्त उत्तरों से यह पता लगाना असम्भव है कि कौन-सा उत्तर सूचनादाता का लापरवाही पूर्ण अनुमान है और कौन सा जानबूझकर दी गई गलत सूचना। श्री सी. लूथर फ्राई (C. Luther Fry) ने भी लिखा है कि उत्तरदाता प्रायः प्रश्नावली को एक व्यर्थ की चीज तथा उनके समय को बर्बाद करने वाली समझते हैं और इसलिए इसके द्वारा वास्तविक सूचनाओं को प्राप्त नहीं किया जा सकता। पर प्रो० एलबर्ट (Albert Eilis) का मत है कि प्रेम तथा वैवाहिक सम्बन्धों से सम्बन्धित अनुसन्धानों में प्रश्नावली-प्रविधि तथ्यों को एकत्रित करने में साक्षात्कार-प्रविधि की ही भाँति सन्तोषप्रद है। प्रोफेसर के. डेविस (K. Davis) ने भी लिखा है कि व्यक्तिगत साक्षात्कार के दौरान में स्त्रियाँ अपने यौन-जीवन से सम्बन्धित सूचनाएँ देने में प्रायः संकोच करती हैं, पर प्रश्नावली के माध्यम से उन्हीं सूचनाओं को प्राप्त करना बहुत कठिन नहीं होता है। विद्वानों के उपरोक्त कथन से प्रश्नावली-प्रविधि के दोष व गुण दोनों ही प्रकट होते हैं और यही वास्तविक स्थिति भी है। पर पर्याप्त सावधानी लगन तथा वैज्ञानिक द ष्टिकोण को बनाए रखने पर इस प्रविधि को अधिकाधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। इसीलिए अपनी सब कमियों के बीच भी यह एक अत्यन्त लोकप्रिय प्रविधि बन गई है। इसका कारण, जैसा कि श्री लुण्डबर्ग (Lundberg) ने लिखा है कि इस प्रविधि में कम समय के अन्दर कम से कम खर्च में अधिक विस्त त क्षेत्र का अध्ययन सम्भव होता है और साथ ही इसकी अवैयक्तिक प्रकृति (Impersonal nature) के कारण यह अनुसन्धानकर्त्ता की व्यक्तिगत उपस्थिति के फलस्वरूप पड़ने वाले अनावश्यक प्रभावों से सूचनादाता की रक्षा करती है एवं

अनुसन्धानकर्त्ता के लिए सूचनादाता का इस भाँति अज्ञात बना रहना आन्तरिक व गुप्त सूचनाओं को प्राप्त करने में सहायक ही सिद्ध होता है। प्रश्नावली-प्रविधि की लोकप्रियता का शायद यही रहस्य है।

अनुसूची एवं प्रश्नावली में अन्तर
(Difference between Schedule and Questionnaire)

अनुसूची तथा प्रश्नावली के उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक सामग्री के संकलन में अनुसूची और प्रश्नावली दोनों ही महत्वपूर्ण प्रविधियाँ हैं। बाह्य रूप से इन दोनों के बीच इतनी अधिक समानता पाई जाती है कि कभी-कभी इनके बीच कोई भी स्पष्ट भेद कर सकना अत्यधिक कठिन हो जाता है। यदि हम प्रश्नावली और अनुसूची की समानता के द ष्टिकोण से इनका मूल्याँकन करें तो स्पष्ट होता है कि ये दोनों ही प्रश्नों की व्यवस्थित सूचियाँ हैं जिनके द्वारा प्राथमिक सूचनाओं का संकलन किया जाता है। अपने आकार और रूप-रंग में भी यह एक-दूसरे से बहुत मिलती-जुलती प्रतीत होती हैं। जहाँ तक इनके निर्माण की विधि का प्रश्न है, प्रश्नावली तथा अनुसूची दोनों में ही प्रश्नों का निर्माण करते समय समान सावधानियाँ रखने की आवश्यकता होती है तथा दोनों का ही उद्देश्य अध्ययन-विषय से सम्बन्धित संख्यात्मक तथा गुणात्मक तथ्यों को एकत्रित करना होता है।

इन समानताओं के पश्चात् भी प्रश्नावली तथा अनुसूची में अनेक ऐसी आधारभूत भिन्नताएँ हैं जिनके कारण इन्हें एक-दूसरे से भिन्न दो प थक् प्रविधियों के रूप में देखा जाता है। इनमें से कुछ प्रमुख भिन्नताओं को संक्षेप में निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है:

1. अनुसूची प्रश्नों की एक सूची है जिसका उपयोग अध्ययनकर्त्ता द्वारा क्षेत्र में जाकर स्वयं किया जाता है। जबकि प्रश्नावली उत्तरदाताओं के पास डाक द्वारा प्रेषित की जाती है। इस प्रकार इसका उपयोग करने के लिए उत्तरदाता तथा अध्ययनकर्त्ता के बीच कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित नहीं होता।

2. अनुसूची का उपयोग एक छोटे भौगोलिक क्षेत्र अथवा सीमित अध्ययन क्षेत्र में ही तथ्यों का संग्रह करने के लिए किया जाता है, जबकि प्रश्नावली एक ऐसी प्रविधि है जिसके द्वारा कितनी ही दूर-दूर फैले हुए बहुत बड़ी संख्या वाले उत्तरदाताओं से सूचनाएँ एकत्रित की जा सकती हैं।

3. अनुसूची का प्रयोग करने के लिए साक्षात्कार विधि का प्रयोग करना आवश्यक होता है तथा साक्षात्कार के दौरान उत्तरदाता से कहीं अधिक गहन सूचनाएँ प्राप्त होने की सम्भावना रहती है, जबकि प्रश्नावली के अन्तर्गत अध्ययनकर्त्ता उत्तरदाता के बीच किसी प्रकार का प्रत्यक्ष सम्पर्क न होने के कारण केवल वही सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं जिनसे सम्बन्धित प्रश्नों का प्रश्नावली में समावेश होता है।

4. अनुसूची एक अनौपचारिक विधि है जिसमें अध्ययनकर्त्ता को अनेक ऐसे प्रश्न करने का भी अवसर मिल जाता है जो परिस्थिति और वैयक्तिक विशेषताओं के अनुकूल होते हैं। साथ ही उत्तरदाता से प्राप्त सूचनाओं का आलेखन भी उसी समय कर लिया जाता है लेकिन प्रश्नावली के अन्तर्गत अध्ययनकर्त्ता अथवा उत्तरदाता किसी को भी निर्धारित प्रश्नों से बाहर जाने की कोई स्वतन्त्रता नहीं होती। प्रश्नों के उत्तरों का आलेखन भी उत्तरदाता द्वारा ही किया जाता है। इस द ष्टिकोण से यह प्रविधि कम सोचपूर्ण है।

5. अनुसूची का प्रयोग शिक्षित और अशिक्षित सभी श्रेणियों के उत्तरदाताओं के लिए समान रूप से किया जा सकता है क्योंकि उत्तरदाता सभी सूचनाएँ केवल मौखिक रूप से प्रदान करता है जबकि प्रश्नावली का प्रयोग केवल शिक्षित उत्तरदाताओं के लिए ही किया जा सकता है। इसके उपयोग के लिए उत्तरदाताओं का कम से कम इस सीमा तक शिक्षित होना आवश्यक होता है कि वे प्रश्नों को सही ढंग से समझकर उनका व्यवस्थित ढंग से उत्तर लिख सकें।

6. अनुसूची के उपयोग के लिए जिस निदर्शन का चुनाव किया जाता है वह तुलनात्मक रूप से अधिक वैज्ञानिक होता है। इसका कारण यह है कि निदर्शन की किसी विधी के द्वारा जिन इकाइयों का भी चयन हो जाता है उन सभी से अनुसूची के द्वारा सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं लेकिन प्रश्नावली का उपयोग करने के लिए एक ऐसा निदर्शन लेना आवश्यक होता है जिसमें केवल शिक्षित व्यक्तियों का ही समावेश हो। ऐसा निदर्शन अपूर्ण होने के साथ ही कभी-कभी अध्ययन-विषय से सम्बन्धित सम्पूर्ण समूह का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता।

7. अनुसूची एक ऐसी प्रविधि है जिसे अधिक स्पष्ट और सुविधापूर्ण समझा जाता है। इसका कारण यह है कि किसी भी प्रश्न की भाषा अथवा अर्थ स्पष्ट न होने की स्थिति में इसे अध्ययनकर्त्ता द्वारा सरल शब्दों में अभिव्यक्त किया जा सकता है, जबकि प्रश्नावली इस अर्थ में लोच-रहित होती है कि उत्तरदाता को प्रश्न से सम्बन्धित कोई भ्रम होने पर उसके निराकरण का उसे कोई अवसर प्राप्त नहीं हो पाता। प्रश्न को गलत रूप से समझ लिए जाने पर उसका उत्तर भी अक्सर गलत हो जाता है।

8. अनुसूची द्वारा प्राप्त उत्तरों का प्रतिशत किसी भी दूसरी विधि की तुलना में कहीं अधिक होता है। उत्तरदाता की उदासीनता अथवा व्यस्तता के बाद भी अध्ययनकर्त्ता को उससे सूचनाएँ प्राप्त करने का अवसर मिल जाता है। जबकि प्रश्नावली के द्वारा प्राप्त उत्तरों का प्रतिशत इतना कम रहता है कि कभी-कभी डाक द्वारा भेजी गई कुल प्रश्नावलियों में से दस प्रतिशत भरी हुई प्रश्नावली भी वापस नहीं मिल पार्ती। यदि उन्हीं के आधार पर निष्कर्ष दे दिए जाते हैं तो यह निष्कर्ष पूरे समूह के सभी वर्गों की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व नहीं कर पाते।

9. अनुसूची की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसके अन्तर्गत अवलोकन के गुणों का समावेश होना है। अध्ययनकर्त्ता साक्षात्कार के अतिरिक्त अवलोकन के द्वारा भी तथ्यों की परीक्षा करने अथवा नए तथ्यों का संकलन करने का प्रयत्न करता है जबकि प्रश्नावली के अन्तर्गत साक्षात्कार और अवलोकन का अभाव होने के कारण अध्ययन से सम्बन्धित ऐसे अनेक महत्वपूर्ण पक्ष छूट जाते हैं जिनकी अध्ययनकर्त्ता प्रश्नावली का निर्माण करते समय कल्पना नहीं कर सका था।

UNIT - IV

अध्याय - 11
सामग्री विश्लेषण की प्रक्रिया
(Data Analysis Process)

वैज्ञानिक अनुसंधान में सामग्री के संकलन के बाद उसके व्यवस्थित विश्लेषण : सम्पादन, गुण-स्थान, वर्गीकरण, संकेतीकरण एवं सारणीयन का कार्य अत्यन्त महत्त्व का कार्य है। तथ्यों का संकलन जितना महत्त्वपूर्ण होता है। उनका विश्लेषण भी उतना ही महत्त्व का कार्य है। इस सत्य को जे. एच. पाइनकर ने निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया है," जिस प्रकार से एक मकान का निर्माण पत्थरों से होता है उसी प्रकार से विज्ञान का निर्माण भी आँकड़ों से होता है, लेकिन जिस प्रकार पत्थरों के ढेर को मकान नहीं कहा जा सकता है उसी प्रकार से मात्र तथ्यों के संकलन से ही विज्ञान का निर्माण नहीं हो सकता।" तथ्यों या सामग्री का मात्र संकलन विज्ञान के लिए महत्त्व नहीं रखता हैं जब तक कि उनका क्रमबद्ध एवं तार्किक कार्य-कारण सम्बन्धों के अनुसार विश्लेषण एवं सामान्यीकरण नहीं किया जाता हैं। यंग (Young) ने लिखा है, "वैज्ञानिक विश्लेषण की यह मान्यता रही है कि संकलित सामग्री के पीछे, स्वयं सामग्री से अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्त होने वाली और चीज है। अगर इस व्यवस्थित सामग्री को सम्पूर्ण अध्ययन से सम्बद्ध किया जाए तो इनका एक महत्त्वपूर्ण सामान्य अर्थ ज्ञात हो सकता है।" इन विद्वानों के कथनों से स्पष्ट हो जाता है कि अनुसंधान में सामग्री का विश्लेषण विशिष्ट महत्त्व का कार्य है। सामग्री के द्वारा समस्या का हल एवं प्राक्कल्पना का निर्माण तभी संभव है जब एकत्र सामग्री का विश्लेषण एवं व्यख्या की जाए। गुडे तथा हाट्ट (Goode and Hatt) के अनुसार "जो अनुसंधानकर्त्ता शोध प्ररचना से पूर्ण रूपेण परिचित है उसे अपने तथ्यों के विश्लेषण में कोई कठिनाई नहीं होगी।"•

सामग्री-विश्लेषण की परिभाषाएँ एवं अर्थ (Definitions and Meaning of Data Analysis): सामग्री-विश्लेषण की परिभाषाएं विभिन्न समाज शास्त्रियों ने अलग-अलग दी हैं, जो इस प्रकार है :

1. **कर्लिजर** के अनुसार, "विश्लेषण का अर्थ अनुसंधान के प्रश्नों का सामग्री की कोटियों, क्रमबद्धता, जोड़-तोड़ और संक्षिप्तीकरण करके उत्तर प्राप्ती करना है।"

2. **यंग** ने लिखा है, "व्यवस्थित विश्लेषण यद्यपि एक विशेष प्रक्रिया है जिसका उपयोग उस समय किया जाता है जब एकत्र तथ्यों के सम्पूर्ण आकार—तथ्य एवं विचार, आँकड़े एवं विचार—पास में होते हैं।" उन्होंने विश्लेषण के अर्थ को और स्पष्ट करते हुए आगे लिखा, "व्यवस्थित विश्लेषण का कार्य एक बौद्धिक भवन का निर्माण करना है जिसमें तथ्य और आँकड़े ठीक से परखने के बाद विभाजित किये जाते हैं। एवं उन्हें उनके उपयुक्त स्थान परतर्कसंगत और द श्य विधान के अनुसार रखा जाता है जिससे कि सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकें—जो कि एक परिपक्व विज्ञान का एक लक्ष्य है।"

सामग्री विश्लेषण के सम्बन्ध में **मोजर** ने अपने निम्नलिखित विचार व्यक्त किए हैं–

1. उनका कथन है कि सामाजिक अनुसंधान की प्रक्रिया में एकत्र की गई सामग्री का विश्लेषण आवश्यक रूप से सांख्यिकीय ही नहीं होता। जिस सीमा तक हम सम्पूर्णता में अभिरुचि रख कर वैयक्तिक इकाइयों में अभिरुचि रखते हैं, उसी सीमा तक विश्लेषण तथा मूल्यांकन के गैर-परिमाणात्मक तरीकों को प्राथमिकता प्रदान करते हैं।

2. विश्लेषण का एक बड़ा भाग सांख्यिकीय आवंटनों को ज्ञात करने, चित्रों को बनाने, एवं औसतों, प्रसार के मापों, प्रतिशतांकों, सहसम्बन्ध गुणांकों के समान सरल मापों की गणना करने से संबधित होता है। इस प्रक्रिया को विश्लेषण की आवधारणा से जोड़ना बहुत कृत्रिमता भरी बात है। क्योंकि ये माप अध्ययन की गई इकाइयों का मात्र विवरण देते हैं, इसलिए इन्हें 'सांख्यिकीय विवरण' शब्द से व्यक्त करना चाहिए।

3. मोजर ने तीसरी और अन्तिम बात यह लिखी है कि अगर यह मान लिया जाए कि औसत, प्रतिशत, सह-सम्बन्ध आदि मात्र विवरण प्रस्तुत करते हैं तो इन्हें विश्लेषण का मात्र एक अंग समझना चाहिए। उनके अनुसार परिणाम इसका दूसरा भाग है।

तथ्यों के विश्लेषण की आवश्यकता (Need for Data Analysis): मात्र तथ्यों का संकलन तब तक अर्थहीन बना रहता है जब तक कि व्यस्थित तरीके से उनका विश्लेषण और उनकी व्याख्या न की जाए। इस प्रक्रिया के बगैर अनुसन्धान कार्य अपने प्रयोजन की सार्थकता सिद्ध नहीं कर सकता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि तथ्यों का विश्लेषण एक मूलभूत आवश्यकता है, जिसके बगैर शोध कार्य संपूर्ण नहीं माना जा सकता शोधकर्ता किसी घटना को ही सब कुछ मानकर नहीं चल सकता। उसे संकलित तथा-सामग्री की जाँच करनी होगी, उनके पारस्परिक संबंधों का पता लगाना होगा। राजनीतिक शोधकर्ता संकलित तथ्यों के प्रकाश में चलता है। वह प्रचलित आदर्शो, दार्शनिक मूल्यों आदि को समसामयिक मानता है। उसके लिए तथ्य ही मार्ग दर्शक होते हैं। वह उनकी सावधानी से जाँच करता है और उनके आपसी संबंधों और घटना के साथ संबंधों का विश्लेषण करता है। ऐसा करते समय अनेक बार उसे अपनी पुरानी धारणाओं में जाँच, सुधार और परिवर्तन करना पड़ता है। अनुसन्धानकर्ता जब अपनी लगन से तथ्यों की जाँच-पड़ताल करता है तो उसे नई-नई परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जिसकी कल्पना उसने पहले नहीं की थी, अतः वह एक ऐसी व्यवस्था में प्रशिक्षण प्राप्त करता है जो मानव जीवन के लिए बड़ी उपयोगी है। यदि अनुसन्धानकर्ता को ठोस परिणामों पर पहुँचने की तीव्र इच्छा है तो उसे विश्लेषण कार्य पर अधिक ध्यान देना होगा क्योंकि इसके बिना परिणामों की घोषणा करना अनुसन्धान के साथ खिलवाड़ करना है। तथ्यों के उपयुक्त विश्लेषण के बिना शोध-विषय या घटना की वास्तविक व्याख्या सम्भव नहीं होती। तथ्य युक्त व्याख्या के बिना कोई भी शोध कार्य सफल नहीं हो सकता।

तथ्य स्वयं कुछ नहीं कहते, वे मूक होते हैं। उनको क्रमबद्ध विश्लेषण द्वारा मुखरित बनाया जाता है। विश्लेषण के द्वारा ही घटना और तथ्यों के मध्य कार्य-कारण संबंधों को जाना जाता है। तथ्यों की सत्यता तभी सिद्ध हो सकती है जब हम उनका उचित विश्लेषण करें। विश्लेषण कार्य बड़ा कठिन है। इसकी सफलता विश्लेषणकर्ता के गुणों पर अधिक निर्भर होता है। उसमें एक आलोचनात्मक कल्पना शक्ति होनी चाहिए ताकि वह तथ्यों के मध्य अंतःसंबंधों को समझ सके। विश्लेषण को वैज्ञानिक बनाने के लिए जरुरी है कि शोध मिथ्या-झुकावों, पूर्वाग्रहों तथा पक्षपातों से दूर रहे। यदि ऐसा न हो तो शोध का संपूर्ण विश्लेषण निरर्थक और भ्रमपूर्ण हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि विश्लेषणकर्ता का अनुभव, उसकी अंतद ष्टि, बौद्धिक निष्पक्षता, सामान्य बोध, विश्लेषण कार्य में सबसे अधिक सहायक है।

विश्लेषण के आधार
(Basic of Analysis)

वैज्ञानिकों एवं शोधकर्त्ताओं ने विश्लेषण के प्रमुख निम्नलिखित दो आधारों का उल्लेख किया है—

विश्लेषण के आधार

- **इकाइयाँ** (units)
- **चर** (variables)

(A) **इकाइयाँ (Units):** सामाजिक विज्ञानों में इकाइयों का विश्लेषण महत्त्वपूर्ण होता है। सामाजिक संरचना में इकाइयों का अध्ययन अन्य इकाइयों के संदर्भ में किया जाता है। कई इकाइयाँ मिलकर एक समूह बन जाती है। इस समूह का भी अन्य इकाइयों के संदर्भ में अध्ययन किया जाता है। **गिलिन** और **गिलिन** ने सामाजिक संगठन एवं सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध में इकाइयों के विश्लेषण के रूप निम्नलिखित स्पष्ट किए हैं—

1. इकाई का अन्य इकाइयों के साथ सम्बन्ध।
2. इकाई का समूह के साथ सम्बन्ध।
3. समूह का समूह के साथ सम्बन्ध।

आगस्त कॉम्ट ने इकाइयों के अध्ययन के सम्बन्ध में लिखा है कि इकाई का सम्बन्ध अन्य इकाइयों के साथ देखना चाहिए। इकाई का सम्बन्ध पूर्ण के साथ तथा पूर्ण का सम्बन्ध इकाई के साथ विश्लेषित करना चाहिए।

सामाजिक शोध में उच्च स्तरीय इकाइयों के निम्नलिखित तीन प्रमुख प्रकार प्रचलित है—

(1) **श्रेणी (Category):** इसके अन्तर्गत उन इकाइयों का विश्लेषण रखा जाता है जिनकी कोई संरचना नहीं होती है, लेकिन वे असंरचित इकाइयों के समूह होते हैं।

(2) **व्यवस्था (System):** इसके अन्तर्गत भी इकाइयों के समूह होते हैं। इसमें इकाइयों में परस्पर अन्तःक्रिया द्वि-तंत्रीय होती है। अर्थात् इकाई दूसरी इकाई से सम्बन्धित होकर व्यवस्था का निर्माण तो कर रही है परन्तु ये सम्बन्ध अस्थाई और प्रभावहीन होते हैं। इकाइयों के सम्बन्ध अप्रत्यक्ष होते हैं।

(3) **समूह (Group):** इसमें इकाइयाँ प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होती है तथा इनमें एक व्यवस्था पाई जाती है। इकाइयों में परस्पर सम्बन्ध घनिष्ठ होते हैं। इकाइयों का विश्लेषण एक समूह के रूप में किया जाता है तथा निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

(B) **विश्लेषण के चर (Variables of Analysis):** चर के द्वारा वर्गो का निर्माण किया जाता है। चर के आधार पर वर्गीकरण की रचना की जाती है। चर मूल्यों का समूह होता है जिस पर वर्गीकरण आधारित होता है। मूल्य वह प्रत्येक वस्तु है जिसकी एक इकाई के रूप में भविष्यवाणी कर सकते हैं। चर की सहायता से इकाइयों के समूह निर्मित किए जाते हैं। जब इन समूहों को कोटियों के आधार पर श्रेणीबद्ध कर देते हैं तो वही वर्गीकरण कहलाता है। सर्वप्रथम इकाइयों को समूह के रूप में संगठित किया जाता है। इसके बाद

अगले चरण में इनकों समूहों के समग्र के रूप में संगठित किया जाता है। इकाइयों और चरों के सरल से जटिल संगठन के क्रम साथ-साथ चलते हैं। इनको तत्त्व, गुच्छ और समग्र के क्रम में श्रेणीबद्ध कर सकते हैं।

विश्लेषण की प्रक्रिया के चरण
(Steps of the Process of Analysis)

विश्लेषण की प्रक्रिया को निम्नलिखित पाँच चरणों में विभाजित किया जा सकता है –

1. **प्रथम चरण (First Stage):** विश्लेषण की प्रक्रिया का प्रथम चरण तथ्यों या एकत्र सामग्री का सम्पादन करना है। सम्पादन में प्रमुखतया तीन बातों का ध्यान रखा जाता है- (i) सभी निश्चित किए गए स्त्रोतों से सामग्री को प्राप्त करना चाहिए और उसे क्रम से व्यवस्थित करना चाहिए। (ii) प्रश्नावली एवं अनुसूची की जाँच करनी चाहिए कि सभी प्रश्नों के उत्तर प्राप्त हुए हैं अथवा नहीं। अशुद्धियों को पूर्ण रूप से दूर कर देना चाहिए। (iii) आगे चल कर भ्रान्ति पैदा न हो सके इसके लिए अनावश्यक सामग्री को अलग कर देना चाहिए।

2. **द्वितीय चरण (Second Stage):** विश्लेषण के दूसरे चरण में द्वैतीयक स्त्रोतों से प्राप्त सामग्री का सम्पादन किया जाता है। इन स्त्रोतों की जाँच की जाती है कि उनके स्त्रोत विश्वसनीय, प्रमाणित एवं शोध के उद्देश्यों के अनुकूल एवं उपयुक्त है या नहीं। इस कार्य को करने के लिए शोधकर्त्ता का अनुभवी एवं ज्ञानी होना आवश्यक है।

3. **त तीय चरण (Third Stage):** इस चरण में तथ्यों के वर्गीकरण की जाँच की जाती है। यह देखा जाता है कि वर्गीकरण शोध-समस्या के अनुरूप है अथवा नहीं। वर्गीकरण क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित भी होना चाहिए।

4. **चतुर्थ चरण (Fourth Stage):** प्रश्नावली और अनुसूची से प्राप्त उत्तरों का संकेतीकरण किया जाता है, उसे इस चतुर्थ चरण में जाँचा-परखा जाता है। यह देखा जाता है कि संकेतीकरण की प्रक्रिया में उत्तरों को उपयुक्त प्रतीक या संख्याएँ प्रदान की गई हैं अथवा नहीं।

5. **पंचम चरण (Fifth Stage):** सामग्री के विश्लेषण के लिए तथ्यों का सारणीकरण करना अत्यावश्यक है। इस पंचम एवं अन्तिम चरण में यह जाँच की जाती है कि सारणीय का कार्य ठीक से पूर्ण किया गया है या नहीं। सामग्री विश्लेषण की कार्यविधि में प्रमुख बात यही है कि जब तक तथ्यों का सम्पादन, वर्गीकरण और सरणीय ठीक से सम्पन्न नहीं हो जाता है तब तक विश्लेषण का कार्य एवं व्याख्या भी करना संभव नहीं होता है।

विश्लेषण एवं व्याख्या की प्रक्रिया (Process of Analysis and Explanation): यंग ने विश्लेषण और व्याख्या की प्रक्रिया को निम्नलिखित सोपानों द्वारा समझाया है–

1. **तथ्यों की तोल (Weighing the Data):** इसका तात्पर्य तथ्यों की पुनर्परीक्षा से है। चूँकि शोध-विश्लेषण का उद्देश्य संकलित तथ्यों को वास्तविक रूप में अर्थयुक्त बनाकर निष्कर्ष के लिए उन्हें उपयोगी बनाना है, इस कारण यह आवश्यक है कि तथ्यों की पुनर्परीक्षा कर ली जाए। इसके लिए निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर ढूँढना आवश्यक होगा-

(i) क्या संकलित तथ्य पर्याप्त वैषयिक तथा अपनी परिस्थिति के यथार्थ प्रतिनिधि है?

(ii) क्या उनकी परीक्षा और पुनर्परीक्षा सम्भव है और क्या उन्हें वस्तुनिष्ठ रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है?

(iii) क्या वे माप के योग्य है?

(iv) क्या क्रमबद्ध सिद्धान्त के लिए महत्त्वपूर्ण है?

(v) क्या उनसे सामान्य निष्कर्ष निकाला जा सकता है?

तथ्यों की पुनः जाँच करते समय यह देखा जाता है कि तथ्य पर्याप्त रूप से वस्तुपरक तथा परिस्थिति के यथार्थ प्रतिनिधि हो, उसकी वस्तुपरक ढंग से पुनः परीक्षा हो सके, उनका मापन किया जा सके, वे वास्तव में क्रमबद्ध सिद्धान्त का विकास करने के लिए महत्त्वपूर्ण हों तथा उनसे सामान्य निष्कर्ष प्राप्त करना सम्भव हो। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि संकलित तथ्य महत्त्वहीन और महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। केवल महत्त्वपूर्ण तथ्यों को स्थान दिया जाना चाहिए और व्यर्थ और अर्थहीन तथ्यों को निकाल देना चाहिए।

2. **एक रूपरेखा का निर्माण** (Preparation of an Outline): एक रूपरेखा अध्ययन का नक्शा होती है। स्पष्ट तथा मितव्ययी विचारधारा के विकास तथा विविध तथ्यों के विस्त त क्षेत्र में, विषय में सहज तथा क्रमबद्ध स्पष्टीकरण एक रूपरेखा के बिना सम्भव नहीं है। एक रूपरेखा वास्तव में तथ्यों का एक आरम्भिक वर्गीकरण ही होती है जोकि विषय से संबंधित महत्त्वपूर्ण तथ्यों को पहचानने में हमारी मदद करता है। विस्त त विश्लेषण और रूपरेखा प्रस्तुत करने से पहले यह आवश्यक है कि एकत्रित तथ्यों में से अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्यों को एक बार फिर से दोहरा लिया जाए ताकि अध्ययन की गई संपूर्ण परिस्थिति के संबंध में स्पष्ट ज्ञान प्राप्त हो जाए, नए तथ्य प्रकाश में आ सके और पहले वाले तथ्यों की सत्यता का भी पता लग सके। रूपरेखा तैयार करने में असावधानी नहीं बरतनी चाहिए। इसका निर्माण स्पष्ट मान्यताओं पर होना चाहिए। वैज्ञानिक ढंग से बनाई गई रूपरेखा अनुसन्धान के महत्त्वपूर्ण पक्षों का रहस्योद्घाटन करती है। यह इस बात का निर्धारण करती है कि तथ्यों का पारस्परिक संबंध क्या है, कहाँ पर गम्भीर गलतियाँ की गई हैं, आदि। रूपरेखा का निर्माण करने में दो प्रकार के लोगों की मदद ली जानी चाहिए-प्रथम विषय से सम्बद्ध गहरी जानकारी रखने वाले ईमानदार, स्पष्टवादी तथा निर्भीक लोग होंगे तथा दूसरे, उस विषय से अनभिज्ञ लोग होंगे। पहले सही रूपरेखा को बनाने या सुधारने में योगदान करेंगे, तो दूसरे उसे समझने योग्य बनाने की द ष्टि से सहायता करेंगे।

3. **व्यवस्थित वर्गीकरण** (Systematic Classification): सामाजिक विज्ञानों के अनुसन्धान में वर्गीकरण का अत्याधिक महत्त्व होता है क्योंकि एक घटना या परिस्थिति के अनेक कारण होते हैं जो विविध प्रकृति के होते हैं। वर्गीकरण के द्वारा ही इनके सापेक्ष प्रभाव का पता चलता है। सावधानीपूर्वक रूपरेखा के निर्माण के पश्चात् तथ्यों के वर्गीकरण करने की अवस्था आती है। वर्गीकरण के आधार पर तथ्यों में पाई जाने वाली समानता और असमानताओं का ज्ञान तुरन्त हो सकता है। समग्र एकत्रित तथ्यों के विस्त त तथा ठोस वर्गीकरण पर ही बहुत कुछ अध्ययन की प्रभावशीलता व मूल्य निर्भर करता है। श्री रॉबर्ट इ. चाड्डॉक ने लिखा है कि सामाजिक विज्ञानों में वर्गीकरण विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि सामाजिक घटनाओं में एक परिस्थिति को अनेक कारक (factor) प्रभावित करते हैं तथा कारकों में अत्याधिक विविधताएँ भी होती हैं। इस विस्त त प्रकार भेद को समझने के लिए वर्गीकरण

अति आवश्यक हो जाता है। तथ्यों का वर्गीकरण हो जाने पर उनकी तुलना, उनमें पाई जाने वाली समानताओं और असमानताओं और पारस्परिक संबंधों का ज्ञान हो जाता है।

4. **अवधारणाओं का निर्माण (Formulation of Concepts):** एकत्रित तथ्यों का वर्गीकरण कर लेने के पश्चात् अवधारणाओं का निर्माण आवश्यक हो जाता है ताकि संपूर्ण परिस्थिति को अवधारणात्मक भाषा में व्यक्त किया जा सके। इस भाषा को विद्यमान अवधारणाओं के आधार पर विकसित किया जा सकता है। अवधारणात्मक भाषा का प्रयोग करने से लाभ यह होता है कि एक संपूर्ण परिस्थिति या प्रक्रिया को केवल दो-एक शब्दों के माध्यम से सरलतापूर्वक समझाया जा सकता है।

   जब शोधकर्ता तथ्यों में अन्तः संबंध को देखता है अथवा एक निश्चित घटना या व्यवहार प्रतिमान को वह प थक करने में सफल होता है तो वह उस सम्पूर्ण स्थिति को अति संक्षेप में एक दो शब्दों की सहायता से अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करता है। तथ्यों के एक वर्ग की इस संक्षिप्त अभिव्यक्ति को ही विज्ञान में अवधारणा कहा जाता है। मिचेल के शब्दों में, "अवधारणा एक विवरणात्मक गुण या संबंध की ओर संकेत करने वाला एक पद है।" अवधारणा वैज्ञानिक अवलोकन, चिंतन एवं यथार्थ अनुभव पर आधारित होती है तथा उसका एक अर्थ-संबंधी आधार होता है। उसके द्वारा बनाये जाने वाले अर्थ या विशेषताएँ उससे सम्बद्ध संपूर्ण वर्ग या समूह में पायी जाती है। अवधारणा शब्दों द्वारा गुण-समूहीकरण का नाम है। अवधारणा के अंतर्गत आने वाली घटनाओं, वस्तुओं, क्रियाओं आदि को 'तथ्य' कह दिया जाता है। वास्तव में, अवधारणा किसी घटना, गतिविधि, वस्तु या विचार को देखने या अवलोकन के नियमों को कहते हैं। वे नियम विशेष उद्देश्य को सामने रखकर बनाये जाते हैं।

   अवधारणा का महत्त्व इसी से स्पष्ट हो जाता है कि तथ्यों के एक वर्ग या समूह की एक संक्षिप्त परिभाषा होती है। अर्थात् अवधारणा के माध्यम से एक घटना या प्रक्रिया का केवल कुछ शब्दों द्वारा सफलतापूर्वक समझाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यदि विद्यार्थियों के एक वर्ग में कक्षा से भाग जाने की प्रकृति सामान्य रूप से पाई जाती है तो इस संपूर्ण स्थिति को 'कक्षा पलायन' (Truancy) की अवधारणा द्वारा समझाया जा सकता है। अवधारणा के महत्त्व को समझाते हुए गुडे और हाट्ट ने लिखा है कि "अवधारणा को विकसित करने की प्रक्रिया इन्द्रिय जनित बोध को प्राप्त करने व उससे निष्कर्ष निकालने में सहायक सिद्ध होती है।" इस प्रकार तथ्यों के एक वर्ग या समूह के गुणों को समझना, उनका अध्ययन करना, उन्हें व्यवस्थित व प थक् करना सम्भव होता है। इस प्रकार तथ्यों के एक समूह में पाए जाने वाले गुणों को एक नाम दे देने से विचार आगे बढ़ सकता है। अतः विचारों को पनपने के लिए अवधारणाओं का निर्माण आवश्यक है। किन्तु अवधारणा का निर्माण वस्तुपरक ढंग से किया जाना चाहिए। उससे यथार्थ तथा सुस्पष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। यह निश्चित अर्थ को बताने वाली, बोधगम्य सामान्य तथा सदैव एकार्थक होनी चाहिए।

5. **तुलना एवं व्याख्या (Comparison and Interpretation):** जब संकलित तथ्यों का वैज्ञानिक वर्गीकरण कर लिया जाता है और अवधारणाओं का निर्माण भी कर लिया जाता है तो तथ्यों के सामान्य प्रतिमान (Pattern) स्पष्ट हो जाते हैं। तब इन प्रतिमानों की तुलना करनी सम्भव होती है। तुलनात्मक विश्लेषण किसी भी वैज्ञानिक निष्कर्ष के लिए बहुत

आवश्यक है। तुलना करने से विभिन्न तथ्यों और परिस्थितियों का केवल स्पष्टीकरण होता है बल्कि उनका तुलनात्मक महत्त्व भी हमारे लिए स्पष्ट हो जाता है। तुलना करने से न केवल विभिन्न तथ्यों का स्पष्टीकरण ही हो जाता है, बल्कि हम उनकी गहराइयों की और विस्त त जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। एकत्र तथ्यों का विश्लेषण करके हम जो निष्कर्ष निकालते हैं, उस क्रिया की व्याख्या करते हैं। शोधकर्ता व्याख्या करते समय कार्य-कारण के संबंध को स्पष्ट करने की कोशिश करता है। बिना कार्य-कारण के व्याख्या का कोई औचित्य नहीं है। कार्य-कारण सहित व्याख्या करना ही विज्ञान का लक्ष्य माना जाता है। शोधकर्ता को यह ध्यान देना चाहिए कि विषय से संबंधित व्याख्या स्पष्ट और सरल हो जिससे उसका लाभ अन्य लोग भी उठा सकें। जहाँ तक हो जटिलता को दूर किया जाना चाहिए।

6. **सिद्धांतों का प्रतिपादन** **(Formulation of Theories):** घटनाओं और तथ्यों की वैज्ञानिक-व्याख्या नए सिद्धांतों का निर्माण करती है। ये सिद्धांत संकलित तथ्यों के जटिल, अमूर्त तथा अस्पष्ट संबंधों को निश्चित करते हैं और संक्षिप्त शब्दावली में व्यक्त कर देते हैं। ये सिद्धांत वास्तव में व्याख्या के आधार पर निकाले गए निष्कर्षो का अति संक्षिप्त रूप होते है। विभिन्न शोधकर्ता अपने अनुसन्धान विश्लेषण और व्याख्या के आधार पर अलग-अलग सिद्धांतों को प्रतिपादित करते रहते हैं।

सिद्धांत के प्रतिपादन का अर्थ यह है कि अनुसन्धान के मुख्य उद्देश्य की पूर्ति हो गई है और यह व्याख्या का अंतिम चरण है और सबसे महत्त्वपूर्ण भी। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि इनके प्रतिपादन में आवश्यक सावधानी बरती जाए। सिद्धान्त को स्पष्ट और सुव्यवस्थित रूप में व्यक्त किया जाना चाहिए। इसमें भाषा का प्रयोग सरल रूप में किया जाना चाहिए तथा सिद्धांत को प्रस्तुत करने की प्रणाली भी बड़ी सरल होनी चाहिए ताकि अन्य लोग भी इसको समझ सके। इसके विपरीत यदि इसे जटिल, अस्पष्ट और असंगत रूप में प्रस्तुत किया गया तो अनुसन्धान के वास्तविक उद्देश्य की प्राप्ति न होगी। प्रतिपादित सिद्धान्त इस प्रकार का हो कि उसके विश्लेषण से संपूर्ण अध्ययन का क्षेत्र और मूल निष्कर्ष स्पष्ट हो जाये। यदि ऐसा नहीं हुआ तो सिद्धांत की वास्तविक उपयोगिता स्वतः ही कम हो जाएगी।

सामाजिक अनुसन्धानों में सिद्धांतों के प्रतिपादन में बड़ी कठिनाई आती है क्योंकि घटनाओं की प्रकृति में एकरूपता, समानता और स्थिरता नहीं है अतः इसके कारण अनुसन्धानकर्ता को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जिन-जिन सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में शोध कार्य हो चुके हैं उनकी सहायता से शोध कार्य में कठिनाई नहीं आती क्योंकि पहले वाले शोध कार्य को दिशा एवं निर्देशन प्रदान करते हैं। नए-नए अनुसन्धानों से कई छिपे हुए तथ्यों को प्रकाश मे लाया जाता है और पुराने सिद्धांतों में संशोधन या परिवर्तन कर उन्हें वैज्ञानिक एवं व्यवहारिक रूप दिया जाता है।

अध्याय - 12
सम्पादन, वर्गीकरण, संकेंतीकरण तथा सारणीयन
(Editing, Classification, Codification and Tabulation)

सामाजिक अनुसन्धान और सामाजिक सर्वेक्षण में जो सामग्री एकत्र की जाती है उसे 'आधार सामग्री' कहते हैं। इस आधार सामग्री की जाँच, निरीक्षण या त्रुटियों के सुधार को सम्पादन कहते हैं सामग्री को एकत्र करने के बाद उसका सूक्ष्म अनुवीक्षण करना ही सम्पादन कहलाता है। प्रगणकों, साक्षात्कारकर्त्ताओं तथा सूचनादाताओं से जो अनुसूचियाँ एवं प्रश्नावलियाँ प्राप्त होती हैं उनका अनुवीक्षण या सम्पादन करना आवश्यक होता है। शोध के लिए प्रलेखों या अवलोकन से जो सामग्री प्राप्त होती है उसका भी सम्पादन करना अनिवार्य होता है। सम्पादन का मुख्य उद्देश्य प्राप्त सामग्री या तथ्यों में रहने वाली त्रुटियों, असंगतियों, संदेह या अपूर्णताओं का निरीक्षण द्वारा पता लगाना है। विद्वानों का अनुभव है कि अनेकों चतुर शोधकर्त्ताओं से भी सामग्री-संकलन में त्रुटियाँ हो जाती हैं। सम्पादन की आवश्यकता उस स्थिति में विशेष महत्वपूर्ण हो जाती है जिसमें शोधाकर्त्ता तथा सामग्री-संकलनकर्त्ता अच्छे प्रशिक्षित और अनुभवी नहीं होते हैं। सामग्री के सम्पादन से शोधकार्य वैज्ञानिक एवं त्रुटि रहित होता है। सम्पादन के द्वारा शुद्ध निष्कर्ष निकाले जाते हैं। प्राथमिक और द्वैतीयक सामग्री का सम्पादन निम्नानुसार किया जाता है -

प्राथमिक सामग्री का सम्पादन (Editing of Primary Data): प्राथमिक सामग्री के सम्पादन में अग्रलिखित बिन्दुओं का ध्यान रखा जाता है - (1) प्राथमिक संकलित सामग्री शोधकार्य से सम्बन्धित होनी चाहिए, (2) निरर्थक एवं असम्बन्धित सामग्री को निकाल देना चाहिए, (3) संदेहयुक्त सामग्री को पुनः जाँच करनी चाहिए, (4) सामग्री में विश्वसनीयता, सत्यता एवं प्रमाणिकता का ध्यान रखना चाहिए, (5) सामग्री का परीक्षण वस्तुनिष्ठ होना चाहिए, (6) सामग्री में इच्छानुसार परिवर्तन नहीं करना चाहिए, (7) जहाँ तक सम्भव हो सामग्री तुलनात्मक होनी चाहिए, (8) सामग्री में एकरूपता बनाए रखनी चाहिए, (9) सामग्री को व्यवस्थित रखना चाहिए जिससे संकेतीकरण एवं सारणीयन में सुविधा हो सके।

दैतीयक सामग्री का सम्पादन (Editing of Secondary Data): प्राथमिक सामग्री की तुलना में द्वैतीयक सामग्री का सम्पादन निम्नलिखित कारणों से अधिक आवश्यक होता है। द्वैतीयक सामग्री का संकलन दूसरी संस्थाओं, शोधकर्त्ताओं एवं साक्षात्कारकर्त्ताओं द्वारा किया जाता है। उस समय जो सम्पादन किया गया था उसकी प्रमाणिकता संदेहपूर्ण हो सकती है। इसीलिए द्वैतीयक सामग्री का सम्पादन करने के साथ-साथ अनुवीक्षण करना भी आवश्यक होता है। इसके लिए सामग्री की जाँच करना आवश्यक हैं कि सामग्री संकलन में विश्वसनीयता की जाँच की गई थी अथवा नहीं? द्वैतीयक सामग्री-संकलन के स्रोतों की विश्वसनीयता की जाँच-पड़ताल करनी चाहिए। संकलन की पद्धतियों का अध्ययन एवं अनुवीक्षण करना चाहिए कि वह कितनी वैज्ञानिक, वस्तुनिष्ठ एवं

प्रमाणित थी। द्वैतीयक सामग्री का अध्ययन करना चाहिए कि वह वर्तमान अनुसन्धान के लिए अनुकूल है या नहीं? सामग्री पर्याप्त है अथवा ओर सामग्री एकत्र करने की आवश्यकता तो नहीं है इसकी जाँच करनी चाहिए। वर्तमान शोध में द्वैतीयक सामग्री का उपयोग किस सीमा तक किया जा सकता है इसका भी अध्ययन करना चाहिए। इस सामग्री के स्रोतों की विज्ञान जगत में कैसी साख है? इसका भी पता लगाना चाहिए। उपयुक्त आधारों पर द्वैतीयक सामग्री का निरीक्षण, परीक्षण एवं सम्पादन करने के बाद ही शोध में उपयोग करना चाहिए। ऐसा वैज्ञानिकों का आग्रह है।

अनुसन्धानकर्ताओं का प्रशिक्षण भली प्रकार न हुआ हो, या वे अनुभवी न हों, तब तो सम्पादन का महत्त्व बहुत ही बढ़ जाता है। इसलिए सम्पादन बहुत आवश्यक है। इसमें मुख्यतया तीन बातों का निरीक्षण किया जाता है– (i) पूर्णता, (ii) शुद्धता, और (iii) समानता।

(i) **पूर्णता (Totality):** सम्पादक को यह देखना होता है कि उसे एक स्रोत विशेष से सारी सामग्री प्राप्त हो गयी है या नहीं। प्रश्न सूचियों में कभी-कभी कुछ प्रश्नों के उत्तर भूल से छूट जाते हैं। इसी कारण प्रेक्षण के अभिलेख में कोई आवश्यक जानकारी देने से रह जाती है। सम्पादक के द्वारा इस पूरा करने का प्रयत्न किया जाता है।

(ii) **शुद्धता (Accuracy):** सम्पादक केवल यही नहीं देखता कि क्या सभी प्रश्नों के उत्तर आ चुके हैं या नहीं, बल्कि यह भी देखता है कि वे उत्तर शुद्ध हैं या नहीं। अशुद्धता का एक लक्षण है असंगति। यदि कोई दो उत्तर मेल न खाये तब उनमें से एक के गलत की सम्भावना है। यह भी हो सकता है कि साक्षात्कारकर्त्ता जल्दी में गलत उत्तर लिख गया हो। इस प्रकार गलतियों को अवश्य सुधारना चाहिए।

(iii) **समानता (Similarity):** यदि किसी शोध कार्य में साक्षात्कारकर्ता का उपयोग किया जाता है तो यह सम्भावना रहती है कि साक्षात्कारकर्ताओं ने प्रश्नों के अलग-अलग अर्थ लगाये हों। इस त्रुटि से बचने के लिए सम्पादक विभिन्न साक्षात्कारकार्ताओं द्वारा भरी हुई प्रश्न सूचियों की तुलना करता है और जरूरत के अनुसार उनसे पूछता है कि उन्होंने किस प्रकार का क्या अर्थ लगाया है।

विभिन्न सम्पादकीय कार्यो को सम्पादित करते हुए किसी भी प्रकार की गड़बड़ी के पता लगने पर इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि उत्तरदाताओं के साथ पुनः सम्पर्क स्थापित करते हुए पैदा हुए संदेहों का निराकरण किया जाये।

अनुसन्धानकर्ता को यह देख लेना चाहिए कि सूचनादाताओं द्वारा दी गयी जानकारी अनुसन्धान के अनुकूल है या प्रतिकूल। यदि प्रतिकूल या अनावश्यक है तो उसे तथ्य-समग्री में स्थान नहीं देना चाहिए। यदि सम्पादनकर्ता खुद गलती को सुधार सकता है, जिसमें सूचनादाता की स्वयं की आवश्यकता नहीं रहती है, तो उसी वक्त सुधार कर देना चाहिए, साथ में यह भी ध्यान रखें कि मौलिक विवरण में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आना चाहिए। मौलिक तथ्यों को तोड़ना-मरोड़ना नहीं चाहिए।

सम्पादन की प्रक्रिया के दौरान प्रमुख रूप से निम्नलिखित कार्य संपादित किए जाते हैं–

1. आँकड़ों की विश्वसनीयता (Reliability), यथार्थता या शुद्धता (Accuracy) तथा प्रमाणिकता (Validity) की जाँच करना।

2. अन्य संग्रहीत तथ्यों के साथ आँकड़ों की समरूपता (Homogenity) की जाँच करना।
3. आँकड़ों को एकरूपतापूर्ण ढंग से भरे जाने के लिए उनकी जाँच करना।
4. पूर्णता के लिए आँकड़ों की उपयुक्तता की जाँच करना।
5. सारिणीकरण की द ष्टि से आँकड़ों की उपयुक्तता की जाँच करना।
6. आँकड़ों को इस प्रकार व्यवस्थित करना ताकि श्रेणीकरण, संकेतीकरण, बारम्बारता आवंटन (Frequency Distribution) तथा सारिणीकरण के दौरान अधिक से अधिक सावधानी का अनुभव किया जा सके।

विभिन्न सम्पादकीय कार्यो को सम्पादित करते हुए किसी भी प्रकार की गड़बड़ी के द ष्टिगत होने पर इस बात का प्रयास किया जाता है कि उत्तरदाताओं के साथ सम्पर्क स्थापित करते हुए उत्पन्न हुए संदेहों का निराकरण किया जाए। उत्तरदाताओं से पुनः सम्पर्क स्थापित करने हेतु या तो दूरभाषी (Telephone) का सहारा लिया जाता है अथवा पत्र-व्यवहार किया जाता है अथवा व्यक्तिगत रूप से उनसे मिला जाता है।

सम्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया के दौरान निम्नांकित उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास किया जाता है—

1. **यथार्थता एवं सत्यता की प्राप्ति करना (To get Accuracy and Truth Fulness) —** यथार्थता का पता लगाने के लिए यह आवश्यक होता है कि सम्पादक को उत्तरदाताओं के विषय में पहले से ही पर्याप्त ज्ञान उपलब्ध हो। गणितीय रूप में दी गई सूचना के आधार पर पता लगाया जाना चाहिए। कुछ साक्षात्कारकर्त्ता अपनी तीव्र कल्पनाशक्ति तथा निर्धारित किए गए उत्तरदाताओं के अतिरिक्त अन्य उत्तरदाताओं का साक्षात्कार करते हुए धोखा देने का प्रयास करते हैं और इन धोखेबाज साक्षात्कारकर्त्ताओं से निपटने का एकमात्र उपाय "जाँच साक्षात्कार" (Check Interview) है।

   ईस्टवुड ने यह बताया है कि "डाक प्रश्नावली की यथार्थता एवं सत्यता का पता लगाने हेतु प्रश्नावली में एक या दो ऐसे सत्याभासी प्रश्न जोड़ दिए जायें जिनका उत्तर देने की कोई सम्भावना नहीं हो। उदाहरण के लिए, किसी उत्पाद पदार्थ (Product) के ऐसे नाम दे दिए जायें जो वास्तव में पाए ही न जाते हों।" भ्रम उत्पन्न करने वाली अथवा अस्पष्ट रूप से भरी गई सूचना को स्पष्ट रूप प्रदान किया जाता है। कभी-कभी एक व्यक्ति द्वारा प्रदान की गई सूचना में यथार्थता की कमी को उसकी अकेली अनुसूची के सम्पादन का पता तभी चल पाता है जबकि अन्य व्यक्तियों द्वारा दिये गये उत्तरों के सन्दर्भ में इसकी जाँच की जाए।

2. **अनुकूलता के विषय में आवश्स्त होना (Assurance about Suitability):** अनुकूलता की पूर्ण जाँच करने के लिए सभी सम्बन्धित उत्तरों की पूर्व निर्धारित जाँच के क्रम में क्रमबद्ध रूप से निरीक्षण किया जाना चाहिए। परस्पर विरोधी उत्तरों के प्राप्त होने पर यह निश्चित करने का प्रयास किया जाना चाहिए कि इनमें से कौन-सा गलत है। यदि यह निश्चित करना सम्भव न हो सके तो सभी विरोधी उत्तरों को अस्वीकृत कर देना चाहिए।

3. **एकरूपता की प्राप्ति करना (To get Uniformity):** उत्तरों के सही होने के बावजूद भी इन्हें संकेतबद्ध करना तब तक सम्भव नहीं होता जब तक कि इन्हें परिमापन की एकरूपतापूर्ण इकाइयों में परिवर्तित नहीं कर दिया जाए। कभी-कभी ऐसा होता है कि सूचना आवश्यकता से अधिक सूक्ष्म रूप में दी हुई होती है। सम्पादन की प्रक्रिया में इन पर उचित ध्यान दिया जाता है।

4. **पूर्णता का आश्वासन देना** **(Providing Assurance about Completeness):** कभी-कभी सूचनादाता के अत्याधिक व्यस्त होने के कारण साक्षात्कारकर्त्ता को जल्दी-जल्दी प्रश्न पूछ कर उत्तर भी प्रायः सूक्ष्य रूप में भरने पड़ते हैं। इस प्रक्रिया में अनेक प्रश्न बिना पूछे एवं बिना भरे रह जाते हैं। दूसरे प्रश्नों के उत्तरों के आधार पर इन बिना पूछे प्रश्नों के उत्तर भरने का प्रयास किया जाता है। जो अवैज्ञानिक एवं त्रुटिपूर्ण कार्य है। सम्पादक को इस प्रकार के उत्तरों और साक्षात्कारकर्त्ताओं का पता लगाना चाहिए तथा उचित कार्यवाही करनी चाहिए। सम्पादक का कर्त्तव्य है कि वह साक्षात्कारकर्त्ताओं द्वारा लिखी गई टिप्पणियों पर विशेष ध्यान दे तथा सूचनाओं को नियमानुसार स्पष्ट करवा कर पूर्ण करवाए। जहाँ तक सम्भव हो अज्ञात सूचनाओं को सामग्री में से अलग किया जाए। सम्पादक को स्पष्ट करना चाहिए कि कौन-कौन सामग्री, उत्तर एवं जानकारियाँ पूर्ण एवं विश्वसनीय हैं और कौन-कौन नहीं है। यह कार्य सम्पादक का है, उस इसे निष्ठापूर्वक सम्पन्न करना चाहिए।

5. **अनुसूची की स्वीकृति एवं अस्वीकृति** **(Acceptance and Rejection of Schedule):** अनेक अनुसूचियाँ साक्षात्कारकर्त्ता द्वारा झूठी भर दी जाती हैं। सम्पादक के द्वारा निरीक्षण की गई अनुसूचियों के परिणामस्वरूप उसे निर्णय लेना होगा कि कौन-कौनसी अनुसूचियों की सामग्री को उपयोग में लाया जाए तथा किन-किन अनुसूचियों (झूँठी) को रद्द किया जाए। यह उत्तरदायित्व सम्पादक का हैं। उसे ऐसे निर्णय लेने में कठोर होना चाहिए। सम्पादक को यह स्पष्ट करना होगा कि उसने अनुसूचियों को क्यों अस्वीकृत किया है। उसे उन आधारों को स्पष्ट करना होगा जिनके आधार पर अनुसूचियों को स्वीकृत एवं अस्वीकृत किया गया है।

6. **मदों की पुनर्व्यवस्था** **(Rearrangement of Items):** जिस क्रम से प्रश्नावली या अनुसूची में प्रश्नों को क्रमबद्ध किया एवं पूछा जाता है उसी क्रम में उनका उपयोग शोधकार्य में नहीं किया जाता है। शोधकार्य में सामग्री का उपयोग संकेतीकरण, वर्गीकरण और सारणीयन के बाद किया जाता है। यह आवश्यक नहीं कि इनका क्रम प्रश्नावली और अनुसूची के समान हो। इसलिए सम्पादक को सामग्री के मदों को पुनः व्यवस्थित करना पड़ता हैं। शोधकर्त्ता का प्रयास तो यही होना चाहिए कि यथासंभव मदों का क्रम एक ही बना रहे। मदों के क्रम-परिवर्तन से त्रुटियों के होने की संभावना रहती है।

7. **सुझावों को बनाए रखना** **(Maintaining Suggestions):** सम्पादक को इस सत्य का ध्यान रखना चाहिए कि जो उपयुक्त एवं तर्कसंगत राय सूचनादाताओं और साक्षात्कारकर्त्ताओं ने दी है, उन्हें बनाए रखें। उसकी सहायता से शोधकार्य एवं शोध प्रतिवेदन को वस्तुनिष्ठ, अर्थपूर्ण और सार्थक बनाने में पर्याप्त सहायता मिलती है। एक अच्छे पक्षपातरहित शोधपरिणामों के लिए यह आवश्यक है।

वर्गीकरण
(Classification)

सामाजिक अनुसन्धान के क्षेत्र में अध्ययनकर्त्ता अपने अध्ययन-विषय से संबंधित तथ्यों के एकत्रीकरण के लिए अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची व प्रश्नावली आदि की सहायता लेता है। परन्तु खाली इस तरह तथ्यों के एकत्रीकरण से अध्ययन-विषय के बारे में कुछ भी पता नहीं चल सकता। जब तक

कि उसे एक सुव्यवस्थित रूप प्रदान न किया जाए और उसके लिए तथ्यों का वर्गीकरण व सारिणीयन आवश्यक होता है। सामग्री चाहे प्राथमिक स्रोतों से एकत्रित की गई हो या द्वैतीयक स्रोत से एक बार उसका सम्पादन कर लेने के पश्चात् वह इस योग्य हो जाता है कि फिर हम उसे विभिन्न वर्गो, श्रेणियों या भागों में विभाजित करें। यही प्रक्रिया सामग्री का वर्गीकरण माना जाता है। जब वर्गीकृत तथ्यों को एक तालिका के रूप में पंक्तियों में व्यवस्थित कर देते हैं तो यह सारिणीयन कहलाता है। वर्गीकरण किसी भी वैज्ञानिक विश्लेषण का एक महत्त्वपूर्ण चरण है। तथ्यों का वर्गीकरण व सारिणीयन सामाजिक अनुसंधान का एक अनिवार्य अंग बन गया है।

वर्गीकरण का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning & Definition of Classification): किसी समस्या के सर्वेक्षण के दौरान एकत्रित किये गए तथ्य बिखरी हुई दशा में होते हैं। इसमें किसी भी प्रकार की व्यवस्था देखने को नहीं मिलती है। अतः विश्लेषण कार्य के लिए उन्हें सीधे प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है, उन्हें उपयोगी बनाने के लिए समस्त एकत्रित तथ्यों को उनकी समानता, भिन्नता या किसी अन्य आधार पर कुछ निश्चित श्रेणियों में व्यवस्थित करना आवश्यक होता है। इसी को वर्गीकरण कहते हैं। उदाहरण के लिए किसी क्षेत्र के विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता के अध्ययन में हमें विद्यार्थियों से प्राप्त सूचनाओं, प्राध्यापकों या प्रार्चायों से प्राप्त सूचनाओं, प्रशासन विभाग के अधिकारियों से प्राप्त सूचनओं को अलग-अलग रखना होगा। पुनः विद्यालयों के अनुसार या छात्र-छात्राओं के अनुसार अथवा आयु समूहों, कक्षाओं या वैवाहिक स्तर आदि के अनुसार सूचनाओं का वर्गीकरण करना होगा। ऐसा कर लेने के पश्चात् ही विश्लेषण या व्याख्या तथा विभिन्न प्रकार की तुलनायें कर पाना सम्भव होगा।

कोनोर (Connor) के अनुसार, "वर्गीकरण तथ्यों को उनकी समानता तथा निकटता के आधार पर समूहों तथा वर्गो में क्रमबद्ध करने तथा व्यक्तिगत इकाइयों की भिन्नता के बीच पाए जाने वाले गुणों की एकात्मकता को प्रकट करने की एक प्रक्रिया है।"

एल्हान्स (Elhance) के अनुसार "साद श्यताओं और समानताओं के अनुसार तथ्यों को समूहों या वर्गो में व्यवस्थित करने की प्रक्रिया को तकनीकी रूप में वर्गीकरण कहा जाता है।"

कैनी एवं कीपिंग (Kenny and Keeping) के अनुसार, "सांख्यिकीय अनुसंधान में सामग्री का संकलन कर लेने के पश्चात् प्रथम कार्य इस सामग्री में क्रमबद्धता लाना होता है। सामान्यतः हमारे पास सैकड़ों अवलोकन होते हैं जिनका लेखा एक मनमाने क्रम से, अवलोकन किया गया होता है। परन्तु एक अवलोकन समूह का विश्लेषण करने के लिए, जिससे उसके बारे में बुद्धिमतापूर्वक निर्णय किए जा सकें अथवा दो समूहों में तुलना की जा सके, उचित वर्गीकरण आवश्यक और प्राथमिक महत्त्व का होता है।"

पी० एच० मान (P.H. Mann) के अनुसार, "वर्गीकरण आवश्यक रूप से उन वस्तुओं जिनमें कुछ समानतायें पाई जाती हों, को एक साथ रखने का एक रूप है ताकि उन्हें सरलतापूर्वक प्रयोग किया जा सके।"

सेक्राइस्ट के अनुसार, "वर्गीकरण सामग्री को उनकी सामान्य विशेषताओं के आधार पर क्रम एवं समूहों में क्रमबद्ध तथा विभिन्न लेकिन सम्बन्धित भागों में अलग करने की विधि है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि वर्गीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो संकलित तथ्यों को संक्षिप्त स्पष्ट और सरलम बनाने के साथ-साथ उन्हें उनकी समानता और विभिन्नताओं के आधार पर कुछ निश्चित वर्गो या समूहों में व्यवस्थित करती है।

वर्गीकरण के उद्देश्य
(Objects of Classification)

सामाजिक अनुसन्धान में वर्गीकरण का अत्यन्त महत्त्व है क्योंकि इसके द्वारा निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति होती है।

1. **संक्षिप्त तथा बोधगम्य समूहीकरण** **(Brief and Tangible Grouping):** वर्गीकरण का प्रथम उद्देश्य जटिल, बिखरे हुए, परस्पर असम्बद्ध तथ्यों को थोड़े से, समझने योग्य तथा तर्कसंगत समूह में रखना है। स्नातक परीक्षा देने वाले हजारों परीक्षार्थियों के प्राप्तांकों की विशाल सूची को देखकर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। पर उन्हीं प्राप्तांकों के आधार पर जब हम परीक्षार्थियों का प्रथम, द्वितीय, त तीय तथा असफल श्रेणियों में वर्गीकरण कर देते हैं तो उन्हें समझना व कुछ सामान्य निष्कर्ष निकालना सरल हो जाता है।

2. **समानता तथा भिन्नता का स्पष्टीकरण** **(Clarification of Similarity and Dissimalitiry):** वर्गीकरण का दूसरा उद्देश्य इकाइयों की समानता तथा असमानता को स्पष्ट करना है। यह स्पष्टीकरण अन्य सम्बन्धित बातों की जानकारी में सहायक सिद्ध होता है। उदाहरणार्थ, यदि वर्गीकरण से किसी समुदाय के लोगों के व्यावसायिक समूह स्पष्ट हो जाते हैं तो प्रत्येक व्यवसाय से सम्बन्धित अनेक विशेषताओं का हमें स्वतः ही ज्ञान हो जाता है।

3. **तुलनात्मक अध्ययन की सुविधा** **(To Afford Comparative Study):** वर्गीकरण के द्वारा दो वर्गों के तुलनात्मक अध्ययन का कार्य सरल हो जाता है क्योंकि वर्गीकरण के द्वारा कुछ समान गुणों के आधार पर विभिन्न इकाइयों को अलग-अलग श्रेणियों में बाँटा जाता है और उन श्रेणियों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन सम्भव होता है। उदाहरणार्थ, यदि दो जिलों के लोगों को शिक्षित व अशिक्षित दो वर्गों में बाँट दिया जाए तो तुलनात्मक रूप में हम यह बता सकते है कि किस जिले के लोग अधिक संख्या में शिक्षित हैं।

4. **तथ्यों के महत्त्व का ज्ञान** **(Knowledge of Importanceof Facts):** बिखरे हुए तथ्यों को देखकर उनके महत्त्व के सम्बन्ध में स्पष्ट ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता है। पर वर्गीकरण के द्वारा जब वही तथ्य थोड़े से वर्गों में विभक्त हो जाते हैं तो उनकी वास्तविकता स्वतः ही प्रगट हो जाती है और उन्हें समझने के लिए बुद्धि पर अनावश्यक जोर नहीं देना पड़ता है।

5. **विश्लेषण व व्याख्या में सरलता** **(Convenience in Analysis and Interpretation):** वर्गीकरण का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य तथ्यों को विश्लेषण व व्याख्या के लिए सरल बनाना है। तर्कसंगत रूप में तथ्यों को कुछ श्रेणियों में बाँट देने पर ही यह सम्भव होता है कि उनकी सांख्यिकीय विवेचना की जाए। माध्य मूल्य, विचलन तथा सहसम्बन्ध आदि को जानने के लिए वर्गीकरण अत्यन्त आवश्यक प्रक्रिया है।

6. **परिशुद्ध निष्कर्ष निकालने के कार्य को सरल बनाना** **(To Make Easy Valid Generalization):** वर्गीकरण उचित निष्कर्ष निकालने के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है क्योंकि वर्गीकरण के द्वारा संकलित तथ्य संक्षिप्त तथा बोधगम्य हो जाते हैं। उनमें पाई जाने वाली समानता व भिन्नता स्पष्ट हो जाती है और तुलनात्मक अध्ययन सम्भव होता है। इस प्रकार तथ्यों की भिन्न-भिन्न विशेषताओं के स्पष्टीकरण से परिशुद्ध निष्कर्ष निकालना सम्भव होता है।

वर्गीकरण के प्रमुख आधार (**Main Basis of Classification**)– एकत्रित तथ्यों को हम किस भाँति वर्गीकरण करेंगे, यह तथ्यों की प्रकृति, प्रकार तथा अध्ययन के उद्देश्य पर निर्भर करता है। फिर भी वर्गीकरण के मुख्य आधार निम्नलिखित हैं–

1. **गुणात्मक** (Qualitative)
2. **परिमाणात्मक** (Quantitative)
3. **सामयिक** (Chronological)
4. **भौगोलिक** (Georaphical)

1. **गुणात्मक वर्गीकरण** (**Qualitative Classification**): गुणात्मक आधार पर वर्गीकरण उन तथ्यों का किया जाता है जिन्हें अंकों में प्रकट नहीं किया जा सकता। अतः ऐसे तथ्यों का वर्गीकरण उनके गुणों या लक्षणों के आधार पर किया जाता है। **एल्हाँड** के शब्दों में, "उन सभी इकाइयों को जिनमें एक विशेष लक्षण विद्यमान है, एक समूह में व्यवस्थित किया जाता है और जिन इकाइयों में वह लक्षण नहीं है उन्हें दूसरे समूह में व्यवस्थित किया जाता है। उदाहरण के लिए, विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को उनके अध्ययन किये जाने वाले विषयों के आधार पर वर्गीकृत किया जाए।

2. **परिमाणात्मक वर्गीकरण** (**Quantitative Classification**): परिमाणात्मक वर्गीकरण उस समय किया जाता है जब किसी परिमापन योग्य विशेषता के संदर्भ में मदों के अंतर्गत भिन्नता पाई जाती है। उदाहरणार्थ ऊँचाई, आयु, आय-व्यय; वजन आदि से संबंधित तथ्यों का गणनात्मक आधार पर ही वर्गीकरण किया जाता है।

3. **सामायिक वर्गीकरण** (**Chronological Classification**): इस आधार पर किये गए वर्गीकरण में 'समय' को वर्गीकरण का आधार माना जाता है अर्थात् इसमें तथ्यों का वर्गीकरण समय के आधार पर किया जाता है। इस आधार पर वर्गीकरण करना काफी आसान होता है क्योंकि विभिन्न समय या अवधि के अंतर्गत तथ्यों को रखना मुश्किल नहीं होता। उदाहरण के लिए, विभिन्न वर्षो में खाद्यान्नों के भावों की क्या स्थिति रही। एक अर्थ में काल श्रेणियाँ परिमाणात्मक आवंटनों के समान होती हैं क्योंकि श्रेणी का प्रत्येक अनुवर्ती वर्ष या महीना पहले दिए गए वर्ष से एक से कम अथवा अधिक होता है।

4. **भौगोलिक वर्गीकरण** (**Geographical Classification**): संकलित तथ्यों का स्थान अथवा भौगोलिक क्षेत्र के अनुसार भी वर्गीकरण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, विभिन्न प्रान्तों में बी.कॉम कक्षाएँ पास करने वाले विद्यार्थियों का वर्गीकरण भौगोलिक आधार पर किया गया वर्गीकरण भौगोलिक वर्गीकरण कहलाता है।।

वर्गीकरण की विशेषताएँ (**Characteristics of Classification**): एलहान्स, कॉनर, इलर्सिक आदि ने वर्गीकरण की विशेषताओं का वर्णन किया है। इनके आधार पर इसकी निम्नलिखित विशेषताओं को निश्चित किया जा सकता है–

1. **व्यापकता** (**Extensiveness**): वर्गीकरण की प्रथम विशेषता यह है कि यह इतना व्यापक होना चाहिए कि एकत्र सामग्री की सभी इकाइयाँ किसी-न-किसी वर्ग में अवश्य सम्मिलित की जा सकें। कोई भी इकाई छूटनी नहीं चाहिए। अगर कुछ इकाइयाँ निश्चित वर्ग में नहीं आ पाती हैं तो ऐसी स्थिति में एक "विविध" वर्ग बना लेना चाहिए। वर्गो का निर्माण करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वर्ग पूर्ण एवं व्यापक हो।

2. **स्पष्टता एवं निश्चितता** (Clarity and Definiteness): सभी वर्गों का निर्माण इस प्रकार किया जाए कि वह स्पष्ट, सुनिश्चित एवं सरल हो। कौनसी इकाई किस वर्ग में रखी जाए, इस बारे में कोई दुविधा या अस्पष्टता नहीं होनी चाहिए। एक इकाई मात्र एक वर्ग में ही आनी चाहिए। इकाई के वितरण में किसी प्रकार का आंशिक सन्देह भी नहीं होना चाहिए।

3. **स्थिरता** (Stability): वर्गीकरण में स्थायित्व होना जरूरी है। यह श्रेष्ठ वर्गीकरण का आवश्यक लक्षण है। संग हित सामग्री का जितनी बार वर्गीकरण किया जाए उसमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं आना चाहिए। भारतीय जनगणना के अन्तर्गत व्यावसायिक वर्गीकरण में यही दोष निहित है। इसमें विभिन्न व्यवसायों को अलग-अलग रूप में परिभाषित किया गया है। इस कारण तुलना करना कठिन हो जाता है। वर्ग विशिष्ट में रखे जाने वाले मदों को एक बार निर्धारित करने के बाद उनमें परिवर्तन नहीं करना चाहिए।

4. **अनुकूलता** (Suitability): शोध के उद्देश्य के अनुसार वर्ग की रचना की जानी चाहिए। उदाहरणार्थ मजदूरों की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करने में सामाजिक प्रस्थिति के लक्षणों के अनुसार वर्गीकरण करना चाहिए। उसमें राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक लक्षणों के आधार पर वर्गीकरण होना चाहिए।

5. **सजातीयता** (Homogenity): प्रत्येक वर्ग की इकाइयों में परस्पर समान गुण होने चाहिएँ अर्थात् उनमें सजातीयता होनी चाहिए। जिस गुण के आधार पर वर्गीकरण किया गया है उसी गुण के अनुसार एक वर्ग की सभी इकाइयाँ होनी चाहिए। उस गुण का अन्य वर्गों में अभाव होना चाहिए।

6. **लचीलापन एवं परिवर्तनशीलता** (Flexibility and Changeability): एक आदर्श वर्गीकरण वही होता है जिसमें वर्गीकरण लोचदार हो। नवीन परिस्थितियों के उभरने पर आवश्यकतानुसार वर्गों में परिवर्तन एवं संशोधन करना संभव हो।

7. **शोध के अनुरूप** (According to Research): वर्गीकरण का आधार शोध के अनुरूप होना चाहिए। अगर दो श्रमिक समूहों का अध्ययन ग्राम-नगर के आधार पर किया जा रहा है तो बुद्धिलब्धि पर आधारित वर्गीकरण अर्थहीन होगा क्योंकि निवास स्थान का सम्बन्ध बुद्धिलब्धि से नहीं होता है।

8. **उपयुक्त आकार** (Suitable Size): वर्गीकरण के अन्तर्गत आने वाले सभी वर्ग न तो बहुत अधिक विस्त त हों और न ही बहुत संकीर्ण। अध्ययन की सामग्री की मात्रा अर्थात् संख्या एवं गुण देखकर दो वर्गों की संख्या निर्धारित करनी चाहिए। वर्ग की तुलना एवं विश्वसनीयता की द ष्टि से वर्गों की संख्या एवं आकार ठीक-ठीक होने चाहिएँ।

वर्गीकरण की प्रक्रिया

वर्गीकरण की प्रक्रिया का सार वर्गों, कोटियों अथवा श्रेणियों के विकास में निहित है। श्रेणियों के निर्माण की प्रक्रिया के अन्तर्गत प्राप्त की गई मौलिक सामग्री को कुछ समूहों में इस प्रकार विभाजित किया जाता है कि वह अर्थपूर्ण प्रतीत होने लगे। कुछ श्रेणियाँ तो आँकड़ों से स्वयं ही प्राप्त हो जाती है, किन्तु कुछ का निर्माण करना पड़ सकता है। कुछ श्रेणियों की सूचना संग्रह के पूर्व ही निर्मित की जा सकती हैं जैसे कि प्रतिबन्धित प्रश्नों (Structured Question) के सन्दर्भ में तथा कुछ का निर्माण सूचना संग्रह का कार्य समाप्त होने पर किया जाता है।

वर्गों अथवा श्रेणियों का निर्माण करते समय निम्न नियमों का पालन किया जाना चाहिए।

1. **अनुसन्धान उद्देश्यों के लिए सार्थकता** **(Relevence for Research Objectives):** बनाई गई श्रेणियों को अनुसन्धान उद्देश्यों के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होना चाहिए।

2. **पूर्णता** **(Comprehensiveness):** श्रेणियों का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि संग्रहीत समस्त सूचना किसी न किसी श्रेणी के अन्तर्गत अवश्य ही वर्गीकृत की जा सके। "ज्ञात नहीं" अथवा "कोई प्रत्युत्तर नहीं" के लिए भी समुचित प्रावधान किया जाना चाहिए।

3. **पारस्परिक प थकता** **(Mutual Exclusiveness)** **एवं स्वतन्त्रता**—श्रेणियों में किसी भी प्रकार की परस्पर व्यापकता नहीं पाई जानी चाहिए तथा इसमें स्पष्ट रूप से प थकता दिखाई देनी चाहिए।

4. **स्पष्ट परिभाषा** **(Clear Definition):** प्रत्येक श्रेणी की स्पष्ट परिभाषा की जानी चाहिए ताकि किसी प्रकार के सन्देह एवं भ्रम की गुँजाइश न रह सके।

5. **श्रेणियों की व्यापकता** **(Comprehensiveness of Categories):** श्रेणियों का निर्माण इस द ष्टि से किया जाए कि इनका प्रयोग करते हुए सूचना के साराँश रूप का उचित अनुमान लगाने के अतिरिक्त व्यक्तिगत प्रत्युत्तरों को भी समझना सम्भव हो सके। साथ ही साराँश एवं विस्तार के बीच उचित सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

6. **एकिकता** **(Unitariness):** श्रेणियों का विकास इस प्रकार किया जाना चाहिए कि अध्ययन की प्रत्येक इकाई को केवल एक ही श्रेणी में केवल एक बार ही सम्मिलित किया जा सके।

7. **वर्गीकरण का एक सिद्धान्त** **(One Classification Principle):** प्रत्येक श्रेणी का निर्माण वर्गीकरण के एक ही सिद्धान्त को प्रयोग में लाते हुए किया जाना चाहिए।

8. **प्रबन्ध का एक स्तर** **(One Level of Discourse):** श्रेणियों के निर्माण की सम्पूर्ण योजना में अधिक सरलता एवं कहीं अधिक जटिलता का समावेश नहीं होना चाहिए।

अप्रतिबन्धित प्रश्नों का प्रयोग करते हुए श्रेणियों के निर्माण में यह आवश्यक होता है कि प्रत्येक उत्तरदाता द्वारा प्रदान किये गये उत्तरों को साराँशबद्ध किया जाए। फिर इन सभी उत्तरदाताओं के प्रत्युत्तरों में सामान्यता को ध्यान में रखते हुए काफी बड़ी संख्या में श्रेणियों का निर्माण किया जाए, और बाद में इन श्रेणियों को सामान्य विशेषताओं के आधार पर एक-दूसरे के साथ सम्मिलित करते हुए अन्तिम रूप से प्रयोग में लाई जाने वाली श्रेणियों की संख्या को सीमित किया जाए।

वर्गीकरण के प्रकार (Types of classification)—वर्गीकरण दो प्रकार का होता है-

(i) गुणात्मक वर्गीकरण

(ii) संख्यात्मक वर्गीकरण।

(i) **गुणात्मक वर्गीकरण** **(Qualitative Classification):** इस प्रकार के वर्गीकरण का आधार कोई गुण होता है। इकाइयों की गणना किसी एक विशेष अथवा अनेक गुणों के आधार पर की जाती है कि कितनी इकाइयों में वह विशेष गुण विद्यमान है और कितनी में नहीं। उदाहरण के लिए, साक्षरता के आधार पर कितने व्यक्ति साक्षर है तथा कितने निरक्षर। इसी प्रकार धर्म, व्यवसाय आदि के आधार पर भी वर्गीकरण किया जा सकता है। इस प्रकार जब तथ्यों को गुणात्मक विशेषताओं अर्थात् गुणों के आधार पर जैसे शिक्षा, धर्म,

रोजगार आदि के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है तो इस प्रकार का विभाजन गुणात्मक वर्गीकरण कहलाता है।

(ii) **संख्यात्मक वर्गीकरण (Quantitative Classification):** जब वर्गीकरण का आधार गुण के स्थान पर कोई ऐसे चल मूल्य (Variable) होते हैं जिनकी प्रत्यक्ष माप की जा सकती है, तो इस प्रकार के वर्गीकरण को संख्यात्मक वर्गीकरण कहते हैं। उदाहरण के लिए, ऊँचाई, लम्बाई, भार, आय आमदनी इत्यादि। गुणों के अनुसार वर्गीकरण तो उनकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति के आधार पर भी हो सकती पर चल मूल्यों में ऐसा नहीं होता। उसकी उपस्थिति तो प्रत्येक इकाई में होती है पर उसकी मात्रा में अवश्य अन्तर होता है।

संकेतीकरण
(Codification)

तथ्यों का वर्गीकरण करने के पश्चात् संख्यात्मक विवेचना के लिए उत्तरों का संकेतन करना होता है। इसका अर्थ है बड़े-बड़े वर्गात्मक उत्तरों को संकेतों या प्रतीकों (Symbols) के द्वारा व्यक्त करना। यह काम सूचना-सम्पादन करते समय भी किया जा सकता है। इसका उद्देश्य यह होता है कि भिन्न-भिन्न उत्तरों को सांकेतिक श्रेणियों में इस प्रकार रख दिया जाए कि उनकी आवश्यक विशेषताएँ स्पष्ट हो जाएँ।

आधुनिक अनुसन्धान में संकेतन का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनुसन्धानों में कार्य की कुशलता, समय की बचत और शुद्धता की द ष्टि से संकेतन प्रणाली को काम में लाया जाता है। इसके अंतर्गत तथ्यों को संकेतन संख्या दे दी जाती है और इन संकेतन संख्याओं को गिनकर हम यह बता सकते हैं कि किस वर्ग में कुल कितने (Items) की संख्या है। सावधानीपूर्वक सम्पन्न किया गया संकेतन, अनुसन्धान की महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति है।

संकेतीकरण की परिभाषाएं: संकेतीकरण की कुछ प्रमुख परिभाषाएं इस प्रकार हैं :

गुडे तथा **हाट्ट** के अनुसार, "संकेतीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा तथ्यों को वर्गो में संगठित किया जाता है और प्रत्येक पद को जो जिस वर्ग में आता है, एक संख्या या संकेत (Symbol) प्रदान किया जाता है। इस प्रकार संकेतों को गिनकर हम बता सकते हैं कि किसी दिए हुए वर्ग में पदों की संख्या कितनी है, परन्तु आधारभूत प्रक्रिया वर्गीकरण की है।"

सेलिज एवं **अन्य** के अनुसार, "संकेतीकरण तकनीकी प्रणाली है जिसके द्वारा तथ्यों को श्रेणीबद्ध किया जाता है। संकेतीकरण के द्वारा मूल तथ्यों का संकेतों में परिवर्तन किया जाता है,—उन्हें गिना एवं सारणीयन भी किया जा सकता है।"

कर्लिंजर ने पहले संकेत की परिभाषा दी है और उसके बाद संकेतीकरण की दी है जो निम्नलिखित है, "एक संकेत प्रतीतों का समुच्चय है जिसे वस्तुओं के समुच्चय को कई कारणों से प्रदान किया जाता है। बहु-प्रतिगतन विश्लेषण में, संकेतीकरण जनसंख्या के सदस्यों या निदर्शन को संख्या प्रदान करता है जो सदस्यों के समूह या उप-समुच्चय को स्वतंत्र तरीकों से निर्धारित नियमों के अनुसार इंगित करते हैं।"

इस सम्बन्ध में मोजर ने लिखा है कि, "सर्वेक्षण में संकेतन का उद्देश्य एक प्रश्न के उत्तरों का अनेक अर्थपूर्ण श्रेणियों में इस प्रकार वर्गीकरण करना है जिससे उनकी आधारभूत विशेषताओं को ज्ञात किया जा सके।"

संकेतीकरण की विशेषताएँ (Characteristics of Coding): संकेतीकरण की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं। जिनको वैज्ञानिकों द्वारा इसकी परिभाषाओं एवं अर्थ में स्पष्ट किया गया है।

1. इसके द्वारा मूल तथ्यों एवं सामग्री को संकेतों में परिवर्तित करके सारणीयन एवं गणना के लिए उपयुक्त बनाया जाता है।
2. गुडे एवं हॉट के अनुसार इसकी प्रमुख प्रक्रिया तथ्यों का वर्गीकरण करने की है।
3. यह मूल या मौलिक सामग्री के प्रत्येक पद को वर्ग के अनुसार संकेत प्रदान करती है।
4. यह तथ्यों को श्रेणीबद्ध करने के लिए आधार प्रदान करती है।
5. यह तथ्यों के विश्लेषण के कार्य को मितव्ययी बनाती है। इसके द्वारा विस्त त सामग्री कम समय एवं न्यून धन के द्वारा विभिन्न वर्गो एवं उप-वर्गो में बाँटी जाती है।
6. संकेतीकरण ही ऐसी प्रक्रिया है जो गुणात्मक तथ्यों को परिमाण में परिवर्तित करके सांख्यिकीय विश्लेषण के उपयुक्त बनाती है।
7. यह तथ्यों को शुद्धता प्रदान करती है।
8. इसके द्वारा शोधकर्त्ताओं एवं सामग्री-विश्लेषणकर्त्ताओं की न्यून आवश्यकता पड़ती है।

संकेतन के लाभ
(Advantages of Coding)

1. यह शुद्धता को प्रोत्साहन देता है।
2. यह समय और स्थान की बचत करता है।
3. पुनः सारणीयन करने से छुटकारा मिलता है या उसे कम से कम कार्य करना पड़ता है।
4. अनुसन्धानकर्त्ता को अधिकतम श्रम से बचाता है।

संकेतीकरण प्रक्रिया के स्तर (Stage of Coding Process): सामाजिक अनुसन्धान में सामग्री का संकेतीकरण तीन स्तरों पर सम्पन्न किया जाता है, जो निम्नानुसार है—

1. **उत्तरदाताओं के स्तर पर संकेतीकरण** (Coding at Respondent's Stage): प्रश्नावली और अनुसूची में अनेक प्रश्न ऐसे होते हैं जिनके सम्भावित उत्तर प्रश्नों के नीचे विकल्प के रूप में दिए होते हैं। शोधकर्त्ता इन सम्भावित उत्तरों को संकेत भी प्रदान कर देता है। उत्तरदाताओं को निर्देश दे दिए जाते है कि उन्हें प्रश्नों के उत्तर किस प्रकार देने हैं। प्रश्नावली के उत्तर पहले से ही संकेतबद्ध होने के फलस्वरूप उत्तरदाता के स्तर पर उत्तरों का संकेतीकरण स्वतः ही हो जाता है।

2. **साक्षात्कर्त्ताओं के स्तर पर संकेतीकरण** (Coding at Interviewers's Stage): साक्षात्कर्त्ता जब अनुसूची के द्वारा सूचनादाताओं से सूचना एकत्र करता है तब वह उत्तरों का संकेतीकरण साथ-साथ करता चला जाता है। प्रश्नावली और अनुसूची में प्रमुख अन्तर होता है कि प्रश्नावली में उत्तरदाता स्वयं प्रश्नों के उत्तर भरता है जबकि अनुसूची में साक्षात्कर्त्ता सूचनादाता से प्रश्नों को पूछता है और सूचनादाता द्वारा दिए गए उत्तरों को साक्षात्कर्त्ता स्वयं अनुसूची में भरता है। इसलिए जिस प्रकार से उत्तरदाता अपने स्तर पर उत्तरों का संकेतीकरण करता है लगभग उसी प्रकार से साक्षात्कर्त्ता भी उत्तरों का संकेतीकरण करता है। जो प्रश्न खुले

होते हैं, उनके सम्भावित उत्तर विकल्प के रूप में प्रश्नों के नीचे नहीं दिए जाते हैं; इनका संकेतीकरण बाद में कार्यालय के स्तर पर किया जाता है।

3. **कार्यालय के स्तर पर संकेतीकरण (Coding at the Level of Office):** सभी उत्तरदाता प्रश्नावलियों के उत्तर भर कर और सभी साक्षात्कर्त्ता सूचनादाताओं से अनुसूचियाँ भर कर शोध संस्थान केन्द्र को भेज देते हैं। इस प्रकार से सभी प्राप्त प्रश्नावलियाँ और अनुसूचियाँ जो कार्यालय को प्राप्त होती हैं, उनका संकेतीकरण कार्यालय में नियुक्त किए गए संकेत निर्धारकों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार से कार्यालय अन्तिम स्तर है जहाँ पर संकेतीकरण का बचा हुआ कार्य सम्पन्न किया जाता है।

संकेतकों का चयन
(Selection of Coders)

बड़े पैमाने पर किए जाने वाले अनुसन्धानों में संकेतकों की नियुक्ति अनिवार्य हो जाती है। संकेतकों के संकेतीकरण पर आँकड़ों पर अशुद्ध विश्लेषण और उसका उचित अर्थापन निर्भर करता है। अतः संकेतकों का चयन करने में अनेक सावधानियाँ रखनी चाहिए। संकेतक ऐसा संवेदनशील व्यक्ति होना चाहिए जो शब्दों के गूढ अन्तरों को पहचान सके। उसको अनुसन्धान विषयों के मूल संप्रत्यय स्पष्ट होने चाहिए क्योंकि तभी वह उद्देश्य के अनुकूल संकेतीकरण कर सकेगा। यह तभी सम्भव है जबकि वह बुद्धिमान हो। संकेतीकरण एक उबाने वाला यान्त्रिक कार्य है जिसे बार-बार दोहराना पड़ता है। अतः संकेतक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो शीघ्र उबे नहीं।

संकेतकों का प्रशिक्षण
(Training to Coders)

संकेतकों का प्रशिक्षण निम्नलिखित सोपानों में होना चाहिए—

1. अनुसन्धान के उद्देश्य अच्छी प्रकार समझा देने चाहिए। उन्हें अच्छी प्रकार प्रेरित करने के लिए अनुसन्धान कार्य के पीछे अनुसन्धानकर्त्ताओं की प्रेरणाओं से अवगत करा देना चाहिए।

2. आँकड़ा-सामग्री की सभी कोटियों तथा साँकेतिक नामों को अच्छी प्रकार सोदाहरण समझा देना चाहिए। उन्हें प्रत्येक कोटि और सांकेतिक नाम के पीछे तार्किकता समझ में आ जानी चाहिए।

3. संकेतकों को संकेतीकरण का अभ्यास कराना चाहिए। इस अभ्यास से उनकी त्रुटियों का पता लगेगा और सांकेतिक नामों को समझने की कमियाँ दूर हो जाएँगी। आवश्यकता पड़ने पर सामूहिक चर्चा की जानी चाहिए।

4. जब यह निर्णय हो जाए कि वे सांकेतिक नाम एक ही मनोरचना के आधार पर दे रहे हैं तो अन्तः संकेतक विश्वसनीयता (Inter-Coer-Reliabiality) का मापन कर लेना चाहिए। विश्वसनीयता बहुत अधिक आने पर (नौ से कम नहीं) मुख्य आँकड़ा-सामग्री का इन संकेतकों का इन संकेतकों द्वारा संकेतीकरण आरम्भ किया जा सकता है।

सावधानियाँ (Precautions): तथ्य-सामग्री को एकत्र करने के बाद उसकी जाँच की जानी चाहिए ताकि सम्भावित गलती को उसी समय दूर किया जा सके। यदि एक बार जाने या अनजाने में गलती रह गई और उसका पता नहीं लगाया गया तो वह आगे जाकर परिणामों को बहुत प्रभावित करेगी। इसलिए संकेतनकर्ता को चाहिए वह तथ्यों की तुरन्त जाँच कर ले। तथ्यों को सम्पादित करना चाहिए। इससे यह लाभ होता है कि अनुसन्धानकर्ता तथ्यों के संकलन करने के गुण को सुधार सकता है, उसकी कई गलतफहमियाँ दूर हो सकती हैं। जहाँ आवश्यक हो, निरीक्षणकर्ता की भी जाँच व्यवस्थित ढंग से होनी चाहिए ताकि कई समस्याएँ उसी समय दूर हो सकें।

संकेतन प्रक्रिया की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि तथ्य-सामग्री को एकत्र करने के तुरन्त बाद उसकी जाँच की जाये। उन तथ्यों को सही ढंग से सम्पादित किया तथा त्रुटियों को निकाला जाना चाहिए। जाँच में अनेक बातें देखी जातीं हैं—

(i) सभी मदों को भरकर पूर्णता लाई जाये। खाली स्थान को भरते समय यह ध्यान देना चाहिए कि जो प्रश्न पूछे जा रहे हैं उनकी क्या प्रकृति है। गलत ढंग से भरे गए खाली स्थान गलत परिणाम ला सकते हैं;

(ii) साक्षात्कारक या अवलोकनकर्ता का लेख सुपठनीय होना चाहिए। जब संकेतनकर्ता को सामग्री प्रदान की जाए, उस वक्त ही उसको देख लेना चाहिए कि अक्षर पढ़ने योग्य है या नहीं। वह उस वक्त तो साक्षात्कारकर्ता से सही जानकारी प्राप्त कर सकता है।

(iii) उसके लेखन में बोधगम्यता हो। कभी-कभी ऐसा होता है कि रिकार्ड किया गया उत्तर साक्षात्कारकर्त्ता या निरीक्षणकर्ता के समझने योग्य है।

(iv) उत्तरों में सुसंगति देखी जाये। किसी साक्षात्कार व निरीक्षण में असंगतपूर्ण बातें संकेतन में कई समस्याएँ पैदा कर देती हैं। उदाहरण के लिए, सफेद और नीग्रो लोगों के संबंधों पर कोई साक्षात्कार लिया गया हो, जिसमें उत्तरदाता एक बार तो यह उत्तर देता है कि उसने कभी नीग्रो परिवार की जानकारी या उसका निरीक्षण नहीं किया, लेकिन कभी बीच में यह उत्तर देता है कि वह कभी-कभी उनके परिवार में भी चला जाता है।

ऐसी असंगतपूर्णता को दूर किया जाना चाहिए। अन्यथा संकेतन के लिए गम्भीर समस्या पैदा हो जाएगी।

(v) सभी साक्षात्कारकर्ताओं अथवा अवलोकनकर्ताओं को निर्देश दिये जाये ताकि ये एकरूप कार्य विधि को अपनाएँ। संकेतन करने के बाद ठीक ढंग से वर्गीकरण करने की योजना बनायी जानी चाहिए। तथ्य अपने आप कुछ नहीं कहते। उनका अध्ययन करने के लिए उपयुक्त ढंग से वर्गीकरण तथा सारणीयन किया जाना चाहिए।

सामग्री का सारिणीयन
(Tabulation of Date)

सूचनाओं के वर्गीकरण तथा संकेतन करने के पश्चात् सामग्री को ओर भी स्पष्ट करने के लिए तथ्यों का सारिणीयन किया जाता है। सारणी के माध्यम से विभिन्न प्रकार के तथ्यों को तुलनात्मक स्तर पर लाया जाता है। एक अच्छी सारणी में शीर्षक, खाने, रेखाएँ, अंक उनका क्रम, प्रतिशत आदि लिखने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। सामग्री का सारिणीयन बड़े स्तर के अध्ययनों

में इसलिए आवश्यक हो जाता है कि इसी प्रक्रिया के द्वारा गुणात्मक तथा परिमाणात्मक दोनों ही प्रकार के तथ्यों को एक सांख्यिकीय रूप दिया जाता है और अधिक मात्रा में फैले हुए आँकड़ों को एक संक्षिप्त स्वरूप प्रदान करके उनका एकीकरण कर लिया जाता है। जहोडा ड्यूट्स, कूक आदि ने लिखा है कि, "जिस प्रकार संकेतन को तथ्यों के श्रेणीबद्ध करने की प्राविधिक पद्धति कहा जाता है, उसी प्रकार सारिणीयन को सांख्यिकीय तथ्यों के विश्लेषण की प्राविधिक प्रक्रिया का अंग माना जाता है।"

सी.ए. मोजन ने 'Survey Methods in Social Investigation' में लिखा है कि "मौलिक रूप से सारिणीकरण विभिन्न कार्यो में से प्रत्येक के अन्तर्गत पाए जाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या की गणना से अधिक और कुछ नहीं हैं।"

जहोदा एवं अन्य ने 'Research Mehods in Social Relation' में लिखा है कि "सारिणीयन आँकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण की प्राविधिक प्रक्रिया का एक अंग है। इस के अन्तर्गत आवश्यक क्रिया उन उत्तरदाताओं की संख्या को निर्धारित करने के लिए गणना करने की है जो विभिन्न श्रेणियों में पायी जाती है।"

ग्रेगरी एवं वार्ड के अनुसार, "सारिणीयन वर्गीकृत आँकड़ों को सारिणी के रूप में संक्षिप्त करने की प्रविधि है जिससे उसे अधिक सुगमता से समझा जा सके तथा कोई भी निहित तुलना अधिक शीघ्रता से की जा सके।"

डी.एन.एलहंस ने 'Fundamentals of Statistics' में सारिणीयन को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "विस्त त अर्थ में सारिणीयन आँकड़ों को कुछ स्तम्भों और पंक्तियों में प्रस्तुत करने की एक व्यवस्थित क्रमबद्धता है...यह एक ओर आँकड़ों के संकलन और दूसरी ओर आँकड़ों के अन्तिम विश्लेषण के बीच की एक प्रक्रिया है।"

सारिणीयन के उद्देश्य (Objectives of Tabulation)—सारिणीयन के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैः

1. **सुव्यवस्थित प्रस्तुतीकरण (Systematic Presentation):** सारणीयन का मुख्य उद्देश्य अनुसन्धान द्वारा प्राप्त सामग्री को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना है, जिससे सामग्री एक स्थान पर रखी जा सके, और वह बोधगम्य हो सके।

2. **बोधगम्य सूचनाएँ (Understandable Information):** सारणीयन का यह उद्देश्य है कि वर्गीकृत तथ्यों को संक्षिप्त, सुविधाजनक एवं समझने योग्य स्थिति में रखा जाए, जिससे वे बोधगम्य हो सकें।

3. **तथ्यों का स्पष्टीकरण (Clarification of Facts):** संकलित सामग्री को स्पष्ट करने के लिए उन्हें सारणियों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिससे समस्त सूचना एक साथ मिल जाती है। इससे निष्कर्ष निकालने में सुविधा रहती है, और समस्या का स्पष्टीकरण सरलता से हो जाता है।

4. **सुविधाजनक तुलना (Convenient Comparison):** सारणीयन द्वारा विभिन्न तथ्य अलग-अलग शीर्षकों में वर्गीकृत किए जाते हैं, इससे परस्पर उनकी तुलना करना, निष्कर्ष निकालना एवं व्याख्या करना सरल हो जाता है।

5. **संक्षिप्तिकरण** (Summarization): सारणीयन का उद्देश्य तथ्यों को छोटे रूप में प्रदर्शित करना है, जिससे विस्त त सूचना एक ही द ष्टि में मिल सके। इसी विशेषता के कारण पी. वी. यंग ने इसे 'सांख्यिकीय सारणियों की संकेत-लिपि' कहा है।

श्रेष्ठ सारणी की विशेषताएँ (Characteristics of a Good Table): सारणी एकत्रित तथ्यों को सरल, बोधगम्य तथा आकर्षक बनाने का एक साधन है और एक साधन के रूप में इसे अधिक से अधिक उत्तम प्रकृति का होना चाहिए। इसके लिए नीचे दिये गये गुणों का होना जरूरी हैः

1. **आकर्षक** (Attractive): सारणी यदि एक चित्र जैसा प्रभाव जमाने के उद्देश्य से बनायी गयी हो तो उसकी आकृति तथा बनावट विभिन्न प्रकार से आकर्षक होनी चाहिए। उसमें शीर्षक शब्द तथा अंक, लाइनें खींचने का कार्य इत्यादि बड़ी स्वच्छता तथा सुलेख के साथ होना चाहिए।

2. **समुचित आकार** (Adequate Size): एक उच्चस्तरीय सारणी का आकार समुचित होना चाहिए। 'समुचित' का मतलब है कि आकार न बहुत बड़ा हो और न ही बहुत छोटा। यदि आकार बड़ा होगा तो सारणी की सरलता नष्ट हो जायेगी। सारणी का एक उद्देश्य एकत्रित तथ्यों को संक्षिप्त रूप प्रदान करना है। आकार बहुत बड़ा होने पर इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पाती है। यदि सारणी का आकार छोटा होगा तो कुछ तथ्यों की विशेषताएँ प्रकट नहीं हो पाती हैं और न ही तुलनात्मक अध्ययन पूर्णतया किया जा सकता है।

3. **तुलना की सुविधा** (Comparability): एक अच्छे किस्म की सारणी में तथ्यों को इस प्रकार व्यवस्थित रूप में सजाकर प्रस्तुत किया जाता है कि विभिन्न तथ्यों के बीच तुलनात्मक अध्ययन करना हमारे लिए सरल हो जाए।

4. **सम्पूर्ण सूचनाएँ** (Full Information): सारणी का बाहरी रूप ऐसा होना चाहिए जिससे सभी प्रकार की सूचनाएँ एक क्रम या व्यवस्था के अनुसार शीर्षकों, उपशीर्षकों तथा विभिन्न खानों में प्रस्तुत की जा सकें। कोई भी अधिक आवश्यक सूचनाएँ सारणी में से छूट जाना सारणी को अनुपयोगी बना सकता है।

5. **स्पष्टता** (Clarity): एक उत्तम सारणी का स्पष्ट तथा सरल होना बहुत बहुत आवश्यक है। सारणी इतनी सरल और स्पष्ट होनी चाहिए कि साधारण व्यक्ति भी उसे देखकर समझ सकें। सारणी के स्पष्ट होने पर हम किसी भी आँकड़े को तुरन्त ढूँढ सकते हैं।

6. **वैज्ञानिक द ष्टिकोण** (Scientific Approach): यदि सारणी को वैज्ञानिक ढंग से बनाया जाए तब उसमें समय की बचत के साथ-साथ सारी सूचनाएँ अंतर्सबंधित होते हुए भी एक क्रम से लगी हुई होगी।

7. **उद्देश्य के अनुकूल** (In accordance with the purpose): सारणी का निर्माण इस ढंग से किया जाना चाहिए कि अध्ययन के उस उद्देश्य की पूर्ति हो जिस उद्देश्य से सारणी को तैयार करना आवश्यक माना गया है।

सारणियों के प्रकार
(Types of Tables)

(1) उद्देश्य के आधार पर (On the Basis of Objective).

(2) **बनावट के आधार पर** (On the Basis of Construction).

(3) **आव ति के आधार पर** (On the Basis of Frequency).

1. **उद्देश्य के आधार पर (On the Basis of Objective):** उद्देश्य के आधार पर सांख्यिकीय सारणी दो प्रकार की होती है- सामान्य उद्देश्यीय सारणी और विशिष्ट उद्देश्यीय सारणी अथवा संक्षिप्त सारणी।

(अ) **सामान्य उद्देश्यीय सारणी (General Purpose Table)**—**क्राकसटन** तथा **काउडेन** का कथन है 'सामान्य उद्देश्यीय सारणी का प्राथमिक तथा प्रायः एकमात्र उद्देश्य समंकों को ऐसे रूप में प्रस्तुत करना होता है कि व्यक्तिगत इकाइयाँ पाठक द्वारा तुरन्त ढूँढी जा सकें। इस प्रकार की सारणी का कोई विशेष उद्देश्य नहीं रहता और यह प्रायः किसी प्रकाशित रिपोर्ट के पीछे संलग्न रहती है। इसमें समस्त सूचना ज्यों की त्यों रखी जाती है, किसी विशेष प्रकार की तुलना के द ष्टिकोण से नहीं' इस प्रकार की सारणियों से हमें केवल कुछ विषयों के संदर्भ का ज्ञान होता है और किसी भी इकाई के बारे में जानने में सुविधा होती है। इस प्रकार की सारणियों का कोई विशिष्ट उद्देश्य नहीं रहता; और किसी विषय का संदर्भ ढूँढने में आसानी हो इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस प्रकार की सारणी को किसी प्रकाशित रिपोर्ट के अंत में लगा दिया जाता है।

(ब) **संक्षिप्त सारणी (Summary Table):** इस प्रकार की सारणी प्रायः एक या अधिक सामान्य उद्देश्यीय सारणियों की सहायता से किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए तैयार की जाती है। **क्राकसटन** तथा **काउडेन** के अनुसार, "संक्षिप्त सारणी जो प्रायः आकार में अपेक्षाकृत छोटी होती है किसी एक निष्कर्ष अथवा कुछ निकट संबंध वाले निष्कर्षो को अधिक से अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से रखने के लिए तैयार की जाती है।" वास्तव में संक्षिप्त सारणी सामान्य उद्देश्यीय सारणी का एक छोटा रूप होती है जिसको कि कुछ तथ्यों की विशेषताओं को विशिष्ट रूप से प्रदर्शित करने के उद्देश्य से तैयार किया जाता है। इसीलिए संक्षिप्त सारणी में उन सभी तथ्यों को छोड़ दिया जाता है जोकि विशिष्ट उद्देश्य से संबंधित है।

2. **बनावट के आधार (On the Basis of Construction):** सामान्यतः सारणियों को हम चार भागों में बांटते है—

(i) **एक गुणीय सारणीयन (One Way Tabulation):** इस प्रकार की सारणीयन में केवल एक ही गुण या विशेषता को दिखाया जाता है। जैसे परीक्षार्थियों के प्राप्तांक—

प्राप्तांक	विद्यार्थी
0–10	5
10–20	4
20–30	10
30–40	12
40–50	4

(ii) **द्वि गुणीय सारणीयन (Double way Tabulation):** इस प्रकार की सारणीयन में किसी

घटना या तथ्यों की दो विशेषताओं या गुणों को दिखाया जाता है। जैसे निम्नलिखित सारणी में छात्राओं द्वारा प्राप्तांक को प्रदर्शित किया गया है—

प्राप्तांक	छात्रों द्वारा	छात्राओं द्वारा
0–10	4	10
10–20	9	12
20–30	10	14
30–40	6	17
40–50	8	5

(iii) **त्रिगुणी सारणीयन (Tripple way Tabulation):** इस प्रकार की सारणी में किसी घटना या तथ्य से सम्बन्धित तीन परस्पर विशेषताओं को आंकड़ों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। जैसे निम्न सारणी में छात्र एवं छात्राओं के द्वारा प्राप्तांकों को छात्र, तथा उनकी वैवाहिक स्थिति-इन तीनों गुणों को हम इस प्रकार प्रस्तुत करेंगे—

प्राप्तांक	छात्र			छात्राऐं			कुल योग		
	वि	अवि	योग	वि	अवि	योग	वि	अवि	अन्तिम योग
0–10	2	1	3	5	1	6	7	2	9
10–20	3	4	7	2	1	3	5	5	10
20–30	0	3	3	4	2	6	4	5	9
30–40	2	5	7	5	0	5	7	5	12
40–50	6	2	8	3	4	7	9	6	15

(iv) **बहुगुणीय सारणीयन (Manifold Tabulation):** किसी घटना अथवा सदस्य के बारे में तीन से अधिक प्रकार के परस्पर सम्बन्धित आंकड़ों को प्रस्तुत करने के लिए बहुगुणीय सारणी की आवश्यकता पड़ती है।

उदाहरण - सारणी में छात्र, छात्राओं, प्राप्तांक तथा कॉलिजों के बारे में परस्पर संबंध प्रदर्शित करने के लिए।

कॉलिज	प्राप्तांक	छात्र			छात्राऐं			कुल योग		
		वि	अवि	योग	वि	अवि	योग	वि	अवि	अन्तिम योग
जाट कालिज रोहतक	10–20	3	3	6	2	4	6	5	7	12
	20–30	4	5	9	0	1	1	4	6	10
	30–40	2	4	6	2	3	5	4	7	11
	40–50	0	1	1	0	2	2	6	3	3
यूर्निवसिटी कॉलिज रोहतक	0–10	6	5	11	3	5	8	9	10	19
	10–20	7	8	15	8	7	15	15	15	30
	20–30	9	8	17	10	8	18	19	16	35
	30–40	9	7	16	9	7	16	18	14	32
	40–50	5	4	9	7	4	11	12	8	20

3. **आव त्ति के आधार पर सारणी** **(On the Basis of Frequecy):** आव त्ति के आधार पर सारणी दो प्रकार की होती है। एक को आव त्ति सारणी (Freqency Table) और दूसरी को संचयी आव त्ति सारणी (Cumulative Frequency Table) कहते हैं।

   (अ) **आव त्ति सारणी** **(Frequency Table):** जब खंडित श्रेणियों (Discrete Series) अथवा अखंडित श्रेणियों (Continuous Series) को सारणी में प्रदर्शित किया जाता है तो उसे आव त्ति सारणी कहते है।

   (ब) **संचयी आव त्ति सारणी** **(Cumulative Frequency Table):** इसमें प्रत्येक समूह या वर्ग की आव त्ति को अलग-अलग प्रदर्शित नहीं करते बल्कि पिछली आव त्ति में जोड़कर प्रदर्शित करते हैं।

सारिणीयन का लाभ अथवा महत्त्व
(Advantage or Importance of Tabulation)

सारिणीयन का वर्गीकृत सामग्री को प्रस्तुत करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। बाउले (Bowley) ने बताया है कि "साँख्यिकीय अनुसन्धान की सामान्य योजना में सारिणीयन का कार्य उत्तर को, जिससे अनुसन्धान का सम्बन्ध है, सुलभ रूप में क्रमबद्ध करना है।" पाडेन (Paden) के विचार में, "एक साँख्यिकीय सारिणी का कार्य साधारण प्रस्तुतीकरण के अतिरिक्त विश्लेषण के उपयोगी यन्त्र के रूप में कार्य करना भी है।" सारिणीयन के महत्त्व को निम्नांकित बिन्दुओं में रखकर समझा जा सकता है–

1. **सरलता** **(Simplicity):** सारिणीयन के द्वारा आँकड़ों को ऊपर से नीचे की ओर तथा बायें से दाहिनी ओर सफलतापूर्वक देखकर उनसे सम्बन्धित निष्कर्षो और प्रव त्तियों को समझना भी एक सरल कार्य है। साथ ही इसके द्वारा संख्यात्मक त्रुटियों को दूर करके अधिक यथार्थ निष्कर्ष दिए जा सकते हैं।

2. **उद्देश्य की स्पष्टता** **(Clarity of Objects):** सारिणीयन इस द ष्टिकोण से भी एक उपयोगी प्रणाली है कि उसके अन्तर्गत विभिन्न सारिणीयों का निर्माण अध्ययन के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। जिससे अध्ययन के उद्देश्यों को समझना सम्भव हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि विभिन्न सारिणीयों में किसी विशेष समूह की परिवारिक, सामाजिक, आर्थिक तथा मनोव त्ति सम्बन्धी विशेषताओं का समावेश होता है तो सरलता से यह समझा जा सकता है कि अध्ययन का उद्देश्य एक विशेष समूह की सामाजिक-आर्थिक विशेषताओं को ज्ञात करना है।

3. **तुलनात्मक अध्ययन** **(Comparative Study):** सारिणी के अन्तर्गत आँकड़ों को अनेक खानों और पंक्तियों में इस प्रकार व्यवस्थित करके प्रस्तुत किया जाता है कि विषय के विभिन्न पक्षों का तुलनात्मक अध्ययन करना सम्भव हो जाता है। इसके अतिरिक्त सारिणीयों द्वारा प्रतिशत, अनुपात, माध्य अथवा औसत आदि के प्रदर्शन के कारण भी तुलनात्मक अध्ययन करना सरल हो जाता है।

4. **वस्तुनिष्ठता** **(Objectivity):** सारणीयों का निर्णय करना एक मनमाना कार्य नहीं होता बल्कि इनके निर्माण में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया जाता है। सारिणीयाँ इसलिए भी वैज्ञानिक होती है कि इनके अर्थ में सार्वभौमिकता का गुण होता है। एक सारणी को देखने वाले

सभी अनुसन्धानकर्त्ता उसका एक जैसा अर्थ लगाते हैं। इनके फलस्वरूप सारिणीयों के माध्यम से किसी विशेषता का कहीं अधिक वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करना सम्भव हो जाता है।

5. **मितव्ययता** (Economy): सारिणीयन एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा आँकड़ों के विशाल समूह को बहुत कम समय में ही व्यवस्थित करके महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किए जा सकते हैं। सारणीयन की सहायता से प्रतिवेदन को संक्षिप्त बनाना अथवा कम प ष्ठों में ही अधिक से अधिक सूचनाएँ दे सकना सम्भव हो जाता है। इससे अध्ययनकर्ता के समय में भी बहुत बचत होती है।

6. **साँख्यिकीय विवेचन** (Statistical Interpretation): सारिणीयन के अभाव में आँकड़ों का साँख्यिकीय विवेचन नहीं किया जा सकता। वर्तमान युग में जैसे-जैसे माध्य, माध्यिका, बहुलाँक, विचलन तथा सह-सम्बन्ध आदि के रूप में साँख्यिकीय विवेचन का महत्त्व बढ़ता जा रहा है, सारिणीयन के द्वारा तथ्यों को प्रदर्शित करना भी अनिवार्य हो गया है।

7. **चित्रमय प्रदर्शन** (Diagrammatic Presentation): रिपोर्ट के प्रस्तुतीकरण में आँकड़ों के चित्रमय प्रदर्शन का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। दण्ड चित्रों अथवा ग्राफ के रूप में इन तथ्यों को केवल तभी प्रदर्शित किया जा सकता है जब पहले उन्हें सारणीयों में व्यवस्थित कर लिया जाए। इस द ष्टिकोण से भी सामाजिक अनुसन्धान की प्रक्रिया में सारिणीयन के महत्त्व की अवहेलना नहीं की जा सकती।

सारणीयन की सीमाएँ (Limitations of Tabulation): सारणीयन से जहाँ अनेक लाभ हैं वहीं इसकी कुछ सीमाएँ भी हैं, जिनके कारण यह पूर्णतया दोषों से मुक्त नहीं है। कुछ सीमाएँ विन्नलिखित हैं—

1. **केवल संख्यात्मक सूचनाएँ** (Only Quantitative Information): सारणीयन के द्वारा केवल संख्यात्मक सूचनाओं को ही स्पष्ट किया जा सकता है, गुणात्मक सूचनाएँ इस विधि से प्राप्त नहीं हो पातीं। किन्तु सामाजिक अनुसन्धानों में अधिकांश सूचनाएँ गुणात्मक प्रकृति की होने के कारण सारणीयों से उन्हें व्यक्त करना कठिन होता है। यह इस विधि की सीमा है।

2. **विशिष्ट ज्ञान की आवश्कता** (Necessity of Specialized Knowledge): सारणीयों गणितीय ज्ञान पर आधारित होती हैं और गणितीय ज्ञान सामान्य व्यक्ति के लिए कठिन होता है, इन्हें तो विशेष शिक्षित व्यक्ति ही समझ सकता है। अतः सारणीयन के लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता है। इसकी यह भी एक सीमा कही जा सकती है।

3. **पूर्ण परिशुद्धता का अभाव** (Lack of Complete Purity): सारणीयन में प्रदर्शित सूचनाएँ पूर्णरूपेण स्वतन्त्र नहीं होती हैं क्योंकि उन्हें सापेक्षित रूप से विभिन्न पदों के अन्तर्गत दिखाया जाता है। ऐसा करने में कभी-कभी वे गलत अथवा असम्बद्ध रूप में भी प्रदर्शित की जाती हैं अथवा कभी-कभी महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को भी सही स्थान नहीं दिया जाता। परिणामस्वरूप वे पूर्णतया विशुद्ध नहीं हो पाती हैं।

4. **नीरस एवं रूचिहीन** (Dry and Disintrested): सारणीयन के आँकड़े प्रायः नीरस होते हैं। उनमें केवल संख्याएँ होती हैं जिन्हें समझना अरूचिकर प्रतीत होता है, उन्हें समझने

के लिए अधिक बौद्धिक योग्यता की आवश्यकता होती है। इसलिए सारणीयाँ अनाकर्षक, अरूचिकर तथा नीरस दिखाई देती है।

सारणी निर्माण के आवश्यक नियम एवं सावधानियाँ (Rules and Precautions in preparing Tables)

सारणी निर्माण एक साधारण कार्य नहीं है बल्कि एक ऐसा कार्य है जो कि अनुसन्धानकर्त्ता के अनुभव, कार्यकुशलता और विशुद्ध ज्ञान पर आधारित होता है। सारणी का निर्माण मनमाने ढंग से नहीं किया जाता है बल्कि उसके कुछ निश्चित नियम होते हैं जिनका पालन करना आवश्यक होता है। इन नियमों को और सम्बन्धित सावधानियों को हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं :

1. **सारणी का शीर्षक** (Heading of the Table): सारणी का एक उचित कथन संक्षिप्त शीर्षक होना चाहिए। यह आवश्यक है कि यह शीर्षक मोटे अक्षरों में लिखा जाए और वह स्पष्ट एवं आकर्ष हो। शीर्ष ऐसा हो जिससे सारणी का विषय, वर्गीकरण का आधार आदि स्पष्ट हो सके। वास्तव में सारणी को देखकर ही यदि उसका उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है तो शीर्षक सार्थक होता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि शीर्षक इतन लम्बा न हो कि वह दो-तीन लाइनों में लिखा जाए पर इतना छोटा भी न हो कि उसका अर्थ भी स्पष्ट न हो।

2. **स्तंभों का आकार** (Size of Columns): स्तम्भों का आकार निर्धारित करते समय उस कागज से आकार का ख्याल रखना चाहिए जिस पर कि सारणी को बनाना है। अनावश्यक रूप में केवल स्तम्भों के बड़ा कर देने से ही उचित सारणी का निर्माण नहीं हो जाता है। वास्तव में तथ्यों के विवरण के आधार पर स्तम्भों की लम्बाई-चौड़ाई निश्चित की जानी चाहिए। प्रायः प्रथम स्तम्भ सबसे बड़ा होता है क्योंकि इसमें खंडित या अखंडित श्रेणियों के वितरण लिखे जाते हैं। इसी प्रकार यह भी देख लेना चाहिए कि प्रत्येक स्तम्भ में हमें कितनी बड़ी व छोटी संख्या लिखनी है; इसी संख्या के आकार के अनुसार स्तम्भों या कॉलमों का आकार निश्चित करें जिससे कि संख्याओं को सरलता से लिखा जा सके।

3. **अनुशीर्षक** (Captions): प्रत्येक स्तम्भों का कॉलमों का अनुशीर्षक होता है जिसे कि बहुत ही स्पष्ट रूप से लिख देना चाहिए जिससे कि यह स्पष्ट हो जाए कि एक कॉलक विशेष में किन तथ्यों के आँकड़ों को प्रस्तुत किया गया है। कभी-कभी बहुत बड़ी संख्या को प्रदर्शित करने के लिए कुछ संकेतों का प्रयोग किया जाता है। जैसे जनसंख्या 'लाखों में' अथवा '00,000 व्यक्तियों में'। इस प्रकार के संकेतों को अनुशीर्षक के साथ ही जरूर लिख देना चाहिए।

4. **पंक्तियों में सूचना लिखना** (Writing in Rows): तथ्यों का संख्याओं को पंक्तियों में लिखने की कई विधियाँ होती हैं। अनुसन्धान के उद्देश्य के अनुसार किसी एक विधि को अपनाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, कतारों को वर्णमाला के अनुसार एक क्रम से लिखा जा सकता है। उसी प्रकार स्थान के अनुसार, समय के अनुसार और महत्त्व के अनुसार भी सूचनाओं को अथवा तथ्यों को पंक्तियों में लिखा जा सकता है।

5. **स्तम्भों का क्रम** (Sequence of Columns): कतारों के समान ही कॉलमों को भी कई प्रकार के क्रमों में लिखा जा सकता है। इसके लिए निम्नलिखित बातों की आवश्यकता होती है :

(क) प्रथम कॉलमों में प्रायः विवरण लिखा जाता है जिससे कि आगे लिखी संख्याओं का परिचय प्राप्त हो।

(ख) अधिक महत्त्वपूर्ण सूचना यथासम्भव बायीं ओर के कॉलमों में लीखी जानी चाहिए।

(ग) तुलना की जाने वाली संख्याओं को पास-पास देना चाहिए जैसे पुरुष-स्त्री, शिक्षित-अशिक्षित।

(घ) संख्याओं के प्रतिशत माध्य अथवा अनुपात को उन संख्याओं के बगल में ही रखना चाहिए।

6. **स्तम्भों का विभाजन** (Division of Columns): यदि आँकड़ों या तथ्यों को कई वर्गों तथा उपवर्गों में विभाजित करके प्रदर्शित करना है तो उसी अनुसार कॉलमों का भी विभाजन कर देना चाहिए। पर यह विभाजन इस प्रकार का होना चाहिए कि एक वर्ग को दूसरे वर्ग से सरलतापूर्वक प थक किया जा सके। इसके लिए प्रायः उपवर्ग की रेखा पतली तथा वर्गों की रेखा गहरी अथवा लाल स्याही से बनाई जाती है। योग वाले कॉलम की रेखा भी इसी प्रकार से कुछ गहरी खींची जाती है।

7. **योग** (Total): यदि कॉलमों को कई उपवर्गों में विभाजित किया गया है तो प्रत्येक उपवर्ग का योग अलग-अलग देना चाहिए। जैसे यदि जनसंख्या को पुरुष स्त्रियों तथा विवाहित-अविवाहित में बाँटा गया है तो दोनों उपयोग भी प थक्-प थक् दे देने चाहिए। वैसे भी प्रत्येक कॉलम का योग अवश्य होना चाहिए। आवश्यकतानुसार प्रत्येक कॉलम का योग खड़े और पड़े दोनों रूप में दे देना अधिक सुविधाजनक होता है।

8. **टिप्पणियाँ** (Notes): यदि सारणी में उल्लेखित संख्याओं या स्वयं सारणी के सम्बन्ध में कोई विशेष बात बतलानी हो तो उसे सारणी के नीचे एक या एकाधिक टिप्पणियों द्वारा प्रगट कर देना चाहिए। इसी प्रकार की टिप्पणियों में प्रायः सूचना के स्त्रोतों का अथवा कुछ विशिष्ट अपवादों का उल्लेख किया जाता है। टिप्पणी यदि किसी विशेष संख्या से सम्बन्धित है तो कोई चिन्ह जैसे तारक आदि लगाकर यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि अमुक टिप्पणी अमुक आँकड़े से सम्बन्धित है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कुछ मद्दों से सम्बन्धित आँकड़े उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। ऐसी स्थिति में उस कॉलम को खाली नहीं रखना चाहिए बल्कि कोई चिन्ह बनाकर नीचे टिप्पणी में उसे स्पष्ट कर देना चाहिए जिससे कि यह शक न रहे कि वह स्थान भूल से छूट गया है।

अध्याय - 13

माध्य प्रव तियों की माप : सामानान्तर माध्य, माध्यांक, बहुलक माध्य व मानक विचलन

(Measures of Central Tendencies : Arithmetic Mean, Median, Mode, Mean Deviation and Standard Deviation)

संख्यात्मक तथ्यों का वर्गीकरण और सारणीयन करने से ही वे इतने सरल और स्पष्ट नहीं हो पाते कि उनसे शीघ्र ही कोई निष्कर्ष निकाला जा सके। इनकों अधिक सरल और स्पष्ट बनाने के लिए चित्रों एवं ग्राफों की सहायता ली जाती है, परन्तु इनसे निकाले गये निष्कर्ष भी विश्वसनीय होंगे अथवा नहीं यह अनुसन्धानकर्ता पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी कक्षा में 50 छात्र हैं और उनके कद संबंधी आंकड़े एकत्रित किये जाए तो इन आंकड़ों को देखकर यह बताना कठिन होगा कि कक्षा के विद्यार्थी लम्बे कद के हैं या छोटे कद के। इसी प्रकार यदि फर्म के श्रमिकों की आय की तुलना दूसरे फर्म के श्रमिकों की आय से करनी है तो केवल उनके द्वारा प्राप्त की जाने वाली आयों के आंकड़ों से ही किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता कि किस फर्म के श्रमिकों को अधिक आय मिल रही है। यह तुलना तभी सम्भव है जबकि दोनों फर्मों के श्रमिकों की आय से सम्बन्धित ऐसी संख्याएं प्राप्त हो सकें जोकि दोनों फर्मों के श्रमिकों की आय का अलग-अलग प्रतिनिधित्व कर सकें। इन प्रतिनिधत्व संख्याओं की तुलना करके यह निष्कर्ष निकाला जा सका है कि किस फर्म के श्रमिकों को अधिक आय मिल रही है।

अतः वर्गीकृत और सरणीयन आंकड़ों को अधिक सरल संक्षिप्त और विश्वसनीय बनाने के लिए एक ऐसी संख्या ज्ञान कर ली जाए जोकि उस श्रेणी का उचित प्रतिनिधित्व कर सके। जिससे आसानी से निष्कर्ष भी निकाला जा सके। ऐसी संख्या को ही सांख्यिकीय माध्य कहते हैं। ऐसी संख्या श्रेणी विस्तार के मध्य में होती हैं इसलिए इस माध्य को केन्द्रीय प्रव ति की माप (Measure of Central Tendency) भी कहते हैं।

एक ऐसी संख्या अथवा समंक जो कि पूरी श्रेणी के गुणों का प्रतिनिधित्व करे उसे केन्द्रीय प्रव त्ति की माप कहते हैं। उदाहरण के तौर पर, यदि एक कक्षा में सांख्यिकीय पेपर में 100 में से 60 के आस पास नम्बर आते हैं तो 60 सांख्यिकीय माध्य कहलाएगा, इसी प्रकार यदि किन्हीं पाँच छात्रों के वजन के आंकड़े क्रमशः 43, 47, 45, 46, 44 हैं तो यह कहा जाएगा कि पाँचों छात्रों के कद एक दूसरे से भिन्न हैं परन्तु ध्यान से देखने पर 45 एक ऐसा अंक है जो कि पूरे समूह का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए 45 को सांख्यिकी में माध्य अथवा केन्द्रीय प्रव त्ति की माप कहा जाएगा।

परिभाषाएँ – विभिन्न विद्वानों ने इसे निम्नलिखित तरीके से परिभाषित किया है –

1. **क्राक्सटन और काउडेन के अनुसार** "माध्य समंकों के विस्तार के अन्तर्गत स्थित एक ऐसा

मूल्य है जिसका प्रयोग समंकमाला के सभी मूल्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिए किया जाता है।"

2. **एलहान्स के अनुसार,** "यह स्पष्ट है कि एक ऐसी संख्या जिसका प्रयोग सम्पूर्ण श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए किया जाता है, वह श्रेणी न तो न्यूनतम मूल्य रखती है और न ही उच्चतम मूल्य, बल्कि वह मूल्य तो

   इन दोनों सीमाओं के बीच का एक मूल्य होता है जहाँ श्रेणियों की अधिकांश इकाइयाँ एकत्र हो जाती हैं। ऐसे अंक (मूल्य) केन्द्रीय प्रव त्ति का माप अथवा माध्य कहलाते हैं।"

3. **पी. वी. यंग के अनुसार** "विशाल अंकों को संक्षिप्त करने के लिए आव त्ति वितरण अत्यधिक उपयोगी है, लेकिन संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया सम्पूर्ण श्रेणी की विशेषताओं को एक अथवा अधिक-से-अधिक कुछ महत्त्वूपर्ण अंकों में संकुचित करने के द्वारा बहुत अधिक आगे बढ़ाई जा सकती है। ये अंक माध्य के रूप में जाने जाते हैं तथा वे एक चरण के विशिष्ट मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं।"

4. **ए. ई. वाघ** ने 'Elements of Statistical Methods' में लिखा है कि "एक औसत मूल्यों के एक समूह में से चुना गया वह मूल्य है जो उसका किसी रूप में प्रतिनिधित्व करता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि औसत सम्पूर्ण श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करने वाला और केन्द्रीय मूल्य को प्रकट करने वाला एक अंक होता है जो कि उन श्रेणियों के न्यूनतम एवं अधिकतमक 'मूल्य' के बीच की एक स्थिति में होता है। इस प्रकार औसत को देखकर ही सम्पूर्ण श्रेणियों की केन्द्रीय विशेषता या मूल्य का पता लगाना हमारे लिए आसान होता है। इस अर्थ में औसत विशाल संख्याओं का संक्षिप्तीकरण करने का एक साधन बन जाता है। और भी स्पष्ट रूप से 'औसत' समस्त श्रेणी का एक मूल्य (केन्द्रीय) प्रस्तुत करता है जिससे अनुसन्धानकर्त्ता के समक्ष उस समूह का मुख्य लक्षण स्पष्ट हो जाता है।

सांख्यिकीय माध्य की उपयोगिता एवं उद्देश्य (Utility and objectives of statistical average) – सांख्यिकीय माध्य की निम्नलिखित उपयोगिताएँ हैं –

1. **संक्षिप्त एवं सरल रूप प्रस्तुत करना (Summarization and Precision):** माध्य का मुख्य कार्य सांख्यिकीय श्रेणी को संक्षिप्त एवं सरल रूप में प्रस्तुत करना है ताकि कोई भी व्यक्ति इनको समझ सके, इनसे किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके। उदाहरण के लिए यदि किसी देश के निवासियों की आय को व्यक्गित रूप में व्यक्त किया जाए तो आंकड़े जटिल और विशाल हो जाएंगे और इनसें कोई निष्कर्ष भी नहीं निकाला जा सकता। इसके विपरीत यदि औसत प्रति व्यक्ति आय के रूप में व्यक्त किया जाए तो समंक सरल, संक्षिप्त एवं समझने योग्य बन जाते हैं। आर. एल. बाऊले (R. L. Bowley) के अनुसार माध्यों के प्रयोग से जटिल समूहों और विशाल संख्याओं को कुछ महत्त्वपूर्ण शब्दों और अथवा संख्याओं में प्रस्तुत किया जा सकता है।

2. **नीति निर्धारण में सहायक (Helpful in Policy Making):** माध्य का दूसरा उद्देश्य नीतियों का निर्धारण है। यदि देश की प्रगति के सम्बन्ध में कोई नीति निर्धारित करनी है तो देश की औसत प्रति व्यक्ति आय द्वारा सहायता मिल सकती है। माध्यम द्वारा कीमत स्तर और उत्पादन स्तर आदि में होने वाले परिवर्तनों को भी ज्ञात किया जा सकता है और इस

जानकारी के आधार पर नीतियों का निर्माण किया जा सकता है। बैंक अधिकारी भी धन रखने से सम्बन्धित नीतियों को बनाने के लिये यह देखता है कि औसत रूप में कितनी राशि एक दिन में बैंक से निकाली जा सकती है। देश की प्रगति से सम्बन्धित, कर्मचारियों का उपयुक्त महंगाई भत्ते से सम्बन्धित नीतियों को भी माध्य द्वारा आसानी से बनाया जा सकता है।

3. **तुलनात्मक अध्ययन में सहायक (Helpful in Comparative Study):** माध्यों की सहायता से विभिन्न समूहों का तुलनात्मक अध्ययन सम्भव हो जाता है। माध्य समूह को संक्षिप्त रूप में प्रकट करता है। जिससे कार्य सरल हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि दो फर्मों के श्रमिकों की आय के बार में यह निष्कर्ष निकालना हो कि किस फर्म के श्रमिक को अधिक आय मिल रही है और किसको कम तो उनकी व्यक्तिगत आयों को तुलना करना चाहें तो यह व्यावहारिक नहीं होगा लेकिन यदि उनका माध्य निकाल लिया जाए तो यह तुलना आसान हो जाएगी। जैसे यदि एक फर्म के श्रमिकों का औसत 300 रुपये है और दूसरी फर्म के श्रमिकों का औसत 350 रुपये है तो यह कहा जा सकता है कि दूसरी फर्म के श्रमिकों को अधिक वेतन मिल रहा है।

4. **समग्र का प्रतिनिधित्व करना (Representing whole):** माध्य का पूरे समूह का प्रतिनिधित्व करना भी मुख्य उद्देश्य है। माध्य पूरे समूह की विशेषताओं को व्यक्त करता है। इसलिए इसे प्रतिनिधित्व संख्या भी कहते हैं।

5. **सांख्यिकीय विश्लेषण का आधार (Basis of Statistical Analysis):** सांख्यिकीय विश्लेषण में भी माध्यों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है। सहसम्बन्ध (Correlation) काल माला का विश्लेषण (Analysis of time series), सूचकांक (Index Number), अपकिरण (Dispersion), विषमता (Skewness) आदि के अध्ययन में माध्य आधार रूप में प्रयोग किए जाते हैं। अतः माध्य के बिना सांख्यिकीय विश्लेषण सम्भव नहीं है।

आदर्श माध्य के गुण
(Properties of an Ideal Average)

माध्य पूरे समूह का प्रतिनिधत्व करता है। ऐसे मूल्य में निम्न गुण होने चाहिये ताकि समंकों का ठीक रूप से प्रतिनिधित्व हो सके।

1. **समझने में सरल (Easy to Understand):** सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग समंकों को संक्षिप्त तथा सरल बनाने के लिए किया जाता है। अतः माध्य ऐसा होना चाहिए जो सुगमता से समझा जा सके, अन्यथा इसका प्रयोग बहुत ही सीमित होगा।

2. **गणना में सुगम (Easy to Compute):** माध्य की गणन-क्रिया सरल होनी चाहिये ताकि इसका प्रयोग व्यापक रूप से हो सके। यद्यपि इनका निर्धारण यथा-सम्भव सरल होना चाहिये तथापि विशेष परिस्थितियों में परिणामों की शुद्धता के लिये अधिक कठिन माध्यों का प्रयोग भी किया जा सकता है।

3. **श्रेणी के सभी मूल्यों पर आधारित (Based on all the Items of the Series):** माध्य श्रेणी के सभी मूल्यों पर आधारित होना चाहिये ताकि एक या अधिक मूल्यों में परिवर्तन होने

से माध्य में भी परिवर्तन हो सके। यदि माध्य श्रेणी के सभी मूल्यों पर आधारित नहीं है तो वह पूरे समूह का ठीक प्रकार से प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता।

4. **न्यूनतम तथा अधिकतम मूल्यों पर अनुचित प्रभाव से बचाव (Should not be Unduly Affected by Extreme items):** यद्यपि माध्य सभी मूल्यों पर आधारित होना चाहिये तथापि किसी विशेष मूल्य का माध्य पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये अन्यथा माध्य समंकों का सही प्रतिरूप व्यक्त नहीं करेगा।

5. **स्पष्ट व स्थिर (Rigidly defined):** माध्य की परिभाषा स्पष्ट शब्दों में व्यक्त होनी चाहिये ताकि जो भी व्यक्ति दिये हुये समंको से माध्य निकाले वह एक ही निष्कर्ष पर पहुंचे। इसलिये यह आवश्यक है कि माध्य गणितीय सूत्र के रूप में दिया जाये। यदि माध्य के परिगणन में व्यक्तिगत प्रव त्तियों का प्रभाव पड़ा तो फल भ्रामक तथा अशुद्ध होंगे।

6. **बीजगणितीय विवेचन सम्भव (Capable of Algebraic Treatment):** एक अच्छे माध्य का बीजगणितीय विवेचन सम्भव होना चाहिये। उदाहरणार्थ, यदि दो कारखानों में मजदूरों की संख्या तथा औसत आय से सम्बन्धित समंक दिये गये हों तो दोनों कारखानों के मजदूरों की आय का सामूहिक माध्य निकालना सम्भव होना चाहिए।

7. **निदर्शन की भिन्नता का कम-से-कम प्रभाव (Least Effect of Fluctuations of Sampling):** यदि एक ही समग्र में से उचित रीति द्वारा विभिन्न निदर्शन लेकर माध्य निकाले जायें तो उन माध्यों में बहुत अधिक अन्तर नहीं होना चाहिये। उदाहरणार्थ, यदि एक विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को दस भागों में बांटकर 10 निदर्शन लिये गए हैं तो उनके परिणामों में बहुत अधिक असमानता नहीं होनी चाहिये।

केन्द्रीय प्रव त्ति या माध्य की सीमायें (Limitations of measure of Central Tendency or Average) – सांख्यिकीय माध्यों की सीमायें निम्नलिखित हैं –

1. **विचित्र संख्याएं (Ridiculous numbers):** जब माध्य किसी अविभाज्य इकाइयों के किसी अंश या भिन्न के रूप में निश्चित होता है, तो बड़ा हास्यपद सा लगता है। उदाहरण के लिये 2½ व्यक्ति प्रति परिवार, 1½ पशु प्रति परिवार, 3½ डॉक्टर प्रतिशत व्यक्ति इत्यादि।

2. **व्यक्तिगत इकाइयों की अवहेलना (Neglegence of Individual Units):** इस अध्ययन में इकाइयों के सामूहिक गुणों पर ही ध्यान दिया जाता है तथा उनके व्यक्तिगत या विशिष्ट गुणें पर ध्यान नहीं दिया जाता।

3. **दुरुपयोग (Misuse):** यदि माध्य का चुनाव सहीं ढंग से नहीं किया गया तो इसका दुरुपयोग हो सकता है और इसके परिणाम प्रभावित हो सकते हैं।

4. **गणितीय त्रुटियां (Mathematical Error):** माध्य ज्ञात करते समय गणितीय त्रुटियाँ रह जाने की आशंका रहती है। इन त्रुटियों के कारण माध्य गलत हो सकता है।

5. **निष्कर्षों की अविश्वसनीयता (Unfaithfulness of Conclusions):** माध्य द्वारा सामान्यतः वास्तविक वस्तु-स्थिति का चित्रण सम्भव नहीं हो पाता बल्कि भ्रमपूर्ण परिणाम निकलते हैं। इससे प्राप्त निष्कर्ष विश्वसनीय नहीं होते हैं।

6. **अनिश्चित तुलनाएं (Uncertain comparisons):** माध्य द्वारा विभिन्न अंक समूहों में जो तुलना

की जाती है तथा इस आधार पर जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं उनमें निश्चितता का अभाव रहता है जिससे कभी माध्य द्वारा तुलना से कभी-कभी सही निष्कर्ष निकालना आसान नहीं होता।

माध्यों की उपरोक्त सीमाओं के बावजूद इनका प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है। सामाजिक एवं धार्मिक, राजकीय, तुलनात्मक, परिवर्तनों के क्षेत्रों, सह-सम्बन्ध का पता लगाने और विभिन्न तथ्यों के गणितीय विश्लेषण आदि में इनका उपयोग किया जाता है।

माध्यों के प्रकार
(Types of Mean)

माध्य के अनेक प्रकार वर्गीकृत किए गए हैं। एक माध्य को सामान्यतः निम्नांकित प्रकार से विभाजित किया जा सकता है :—

1. **गणितीय माध्य (Mathematical Mean)**
   - (A) अंकगणितीय माध्य (Mathematical Mean)
   - (B) गुणोत्तर माध्य (Arithmetic Average or Mean)
   - (C) हरात्मक माध्य (Harmonic Mean)
   - (D) द्विघातीय माध्य (Quadratic Mean)
2. **स्थिति सम्बन्धी माध्य (Averages of Mean)**
   - (A) मध्यका (Median)
   - (B) बहुलक या भूयिष्ठक (Mode)
3. **व्यापारिक माध्य (Commercial Mean)**
   - (A) चल या गतिशील माध्य (Moving Mean)
   - (B) प्रगतिशील माध्य (Progressive Mean)
   - (C) संग्रथित माध्य (Composite Mean)

उपरोक्त समस्त माध्यों को केन्द्रीय प्रकृति का माप कहा जाता है। इन्हें प्रथम दर्जे के माध्य (First Order Mean) भी कहा जाता है, लेकिन यहाँ हम तीन प्रकार के प्रमुख औसत का प थक शीर्षकों में विस्तार से उल्लेख करेंगे —

1. अंकगणितीय माध्य (Mean),
2. बहुलक या भूयिष्ठक (Mode),
3. मध्यका (Median).

अंकगणितीय माध्य (Arithmetic Mean): इसे समानान्तर माध्य भी कहते हैं। यह वह माध्य होता है जो कि समूह में आने वाले सभी मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है। समानान्तर माध्य सबसे अधिक प्रचलित माध्य है क्योंकि यह सरल है। इसको माध्य भी कहते हैं। समानान्तर माध्य को समक्ष पदों के मूल्यों के योग को पदों की संख्या से भाग देने पर प्राप्त किया जाता है। अतः इसको निकालने के लिए समस्त पदों का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रतिनिधित्व और भी बढ़ जाता है।

परिभाषाएँ: विभिन्न विद्वानों ने इस निम्नलिखित तरीके से परिभाषित किया है –

घोष तथा चौधरी के अनुसार, "समान्तर माध्य जिसे कि समान्तर माध्य या केवल मध्यक भी कहते हैं यह वह परिणाम है जो कि किसी चल में पदों के मूल्यों के योग को उनकी संख्या से भाग देकर प्राप्त होता है।"

सेक्राइस्ट के शब्दों में, "किसी श्रेणी के पदों के मूल्यों के योग में उनकी संख्या से भाग देने से प्राप्त संख्या सामान्तर माध्य है।"

किंग के शब्दों में, "किसी श्रेणी के पदों के मूल्यों के योग में उनकी संख्या का भाग देने से जो मूल्य प्राप्त होता है, उसे समान्तर माध्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

एफ. सी. मिल के अनुसार, "समान्तर माध्य एक वितरण के केन्द्र बिन्दु है।

क्राक्सटन और काउडेन के अनुसार, "किसी समंक श्रेणी का समान्तर माध्य उस श्रेणी के मूल्यों को जोड़कर उसकी संख्या का भाग देने से प्राप्त होता है।"

अतः उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि समान्तर माध्य वास्तव में औसत निकालना है।

समान्तर माध्य की विशेषताएँ
(Characteristics of Mean)

1. समान्तर माध्य केन्द्रीय प्रव त्ति के आकलन की एक सरलतम प्रणाली है। मदों की कुल संख्या का मदों के मूल्यों के कुल योग में भाग देने से माध्य प्राप्त हो जाता है।
2. इसमें प्रत्येक व्यक्तिगत इकाई के मूल्य को समान रूप से महत्त्व दिया जाता है।
3. इसमें मदों के मूल्यों को विशेष महत्त्व दिया जाता है।
4. समान्तर माध्य के आकलन में प्रत्येक मद की तथा उसके मूल्य की गणना केवल एक बार की जाती है।
5. कुल मदों की संख्या की समान्तर माध्य से गुणा करने पर मदों के मूल्यों के योग का आकलन किया जा सकता है।

सरल समान्तर माध्य के परिगणन की विधि
(Method of Calculating Simple Arithmetic Mean)

सरल समान्तर माध्य का निर्धारण अत्यन्त सुगम है। इसकी गणन-क्रिया की व्याख्या निम्न भागों में की गई है :

1. **व्यक्तिगत श्रेणी में समान्तर माध्य का परिगणन** (Calculation of Arithmetic Mean in Individual Observations)
2. **खण्डित श्रेणी में समान्तर माध्य का परिगणन** (Calculation of Arithmetic Mean in Discrete Series)
3. **खण्डित श्रेणी में समान्तर माध्य का परिगणन** (Calculation of Arithmetic Mean in Continuous Series)

व्यक्तिगत श्रेणी में समान्तर माध्य का परिगणन
(Calculation of Arithmetic Mean in Individual Series)

व्यक्तिगत श्रेणी में समान्तर माध्य दो प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है :

(i) **प्रत्यक्ष रीति** (Direct Method),

(ii) **लघु रीति** (Short-cut Method).

(a) **प्रत्यक्ष विधि (Direct Method):** इस रिति के अन्तर्गत सब मदों के मानों को जोड़कर मदों की संख्या से भाग दे दिया जाता है। इस प्रकार जो अंक प्राप्त होता है उसे समान्तर माध्य कहते हैं। सूत्र से रूप में :

$$\overline{X} = \frac{X_1 + X_2 + X_3 + X_4 + ...X^n}{N}$$

X_1, X_2 आदि श्रेणी के विभिन्न मान (Different Values of the Variable);

N = मदों की संख्या (Number of Observations)

संक्षिप्त रूप में, $\overline{X} = \frac{\Sigma X}{N}$

$\overline{X}$ = समान्तर माध्य (Arithmetic Means), N = मदों की संख्या (Number of Observation). = चल X के विभिन्न मानों का योग (Sum of the different values of the variable X)

ΣX $\overline{X} = \frac{\Sigma X}{N} = \frac{560}{10} = 56$

उदाहरण — एक कक्षा में 10 विद्यार्थी हैं। सांख्यिकी की एक मासिक परीक्षा में उनके अंक इस प्रकार हैं :

रोल नम्बर : 1, 2, 3, 4, 5, 6, 8, 9, 10

अंक : 90, 65, 45, 58, 62, 72, 70, 40, 25, 33

समान्तर माध्य ज्ञात कीजिये।

हल : समान्तर माध्य का परिगणन प्रत्यक्ष रीति द्वारा

रोल नम्बर (Roll No)	**अंक (X)**
1	90
2	65
3	45
4	58
5	62
6	72
7	70
8	40
9	25
10	33
N = 10	$\Sigma X = 560$

अर्थात् औसत अंक = 56

(b) **संक्षिप्त विधि (Short-cut Method):** लघु रीति से समान्तर माध्य की गणना इस प्रकार से ही जाएगी।

(i) सबसे पहले दिए गए मूल्यों में से या, बाहर से किसी भी संख्या को कल्पित माध्य माना जाता है।

(ii) प्रत्येक पद-मूल में से कल्पित माध्य (A) को घटाकर विचलन ज्ञात किया जाता है।

(iii) उपर्युक्त विचलनों का योग कर लिया जाता है।

सूत्र $\overline{X} = A + \frac{\Sigma d}{N}$

A = कल्पित माध्य

Σd = विचलनों का बीजगणितीय योग

N = पदों की संख्या

उदाहरण

छात्रों के नाम	प्राप्तांक	विचलन (d) **A = 25** **(X – A)**
A	15	– 10
B	38	+ 13
C	13	– 12
D	95	+ 70
E	65	+ 40
F	62	+ 37
G	18	– 7
H	48	+ 23
I	53	+ 28
J	71	+ 26
N = 10		Σd = 208

विच्छिन्न श्रेणी में समान्तर माध्य का परिगणन
(Calculation of Arithmetic Mean in Discrete Series)

उपर्युक्त दोनों विधियों द्वारा विच्छिन्न श्रेणी में भी समान्तर माध्य ज्ञात किया जा सकता है। परन्तु विच्छिन्न श्रेणी में आव त्तियाँ होती है इसलिए सूत्र भिन्न हैं। जब प्रत्यक्ष विधि का प्रयोग किया जाता है जो सूत्र इस प्रकार होगा :

$$\overline{X} = \frac{\Sigma fX}{N}$$

ΣfX = चल तथा आव त्तियों का गुणाओं का योग (Sum of the products of frequency and the variable), N = आव त्तियों को योग (Number of observations or)

विधि :

1. चल के प्रत्येक मूल्य को उसकी आव त्ति से गुणा किजिए और सभी गुणनफलों को जोड़ लीजिये।
2. प्राप्त गुणनफल को आव त्तियों के कुल योग से भाग दीजिये।

उदाहरण : एक कक्षा के 60 विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त निम्न अंकों से औसत अंक निकालिये :

अंक	विद्यार्थियों की संख्या	अंक	विद्यार्थियों की संख्या
20	8	50	10
30	12	60	6
40	20	70	4

हल : अंकों को X से तथा विद्यार्थियों की संख्या को f से प्रदर्शित कीजिए :

समान्तर माध्य का परिगणन प्रत्यक्ष रीति द्वारा

अंक X	विद्यार्थियों की संख्या f	fX
20	8	160
30	12	360
40	20	800
50	10	500
60	6	360
70	4	280
	N = 60	

$$\bar{X} = \frac{\Sigma fX}{N} = \frac{2460}{60} = 41$$

अंक

लघु विधि (Short-cut method) जब लघु विधि का प्रयोग किया जाता है तो सूत्र इस प्रकार होगा :

$$\bar{X} = A + \frac{\Sigma d}{N}$$

विधिः

1. एक कल्पित समान्तर माध्य लीजिये।
2. चल मूल्यों को कल्पित समान्तर माध्य से हटाकर विचलन (deviations) निकालिये।
3. प्राप्त विचलनों को उनकी आव त्तियों से गुणा कीजिये और जोड़ लीजिये अर्थात्, Σfd निकालिये।
4. इस प्रकार प्राप्त योग को कुल आव त्ति से विभाजित कीजिये।
5. भागफल यदि धन में आये तो कल्पित समान्तर माध्य में जोड़ दीजिये और ऋण में आये तो कल्पित समान्तर माध्य में से घटा दिजिये। इस प्रकार प्राप्त संख्या समान्तर माध्य होगी।

उपर्युक्त प्रश्न को लघु रीति द्वारा हल किया गया है।

समान्तर माध्य का परिगणन लघु विधि द्वारा

अंक X	विद्यार्थियों की संख्या f	(X – 40) d	fd
20	8	– 20	– 160
30	12	– 10	– 120
40	20	0	0
50	10	+ 10	+ 100
60	6	+ 20	+120
70	4	+ 30	+ 120
	N = 60	∑fd = 60	

अखण्डित (सतत) श्रेणी का माध्य निकालना (Calculation of Mean in Continuous Series)

यदि वर्गान्तरों (Class Intervals): की आव त्ति आ बारम्बारता (Frequency) दी हुई है तो भी माध्य निकालने की दो विधियाँ हैं एक तो प्रत्यक्ष विधि और दूसरी संक्षिप्त या लघु विधि। इन दोनों विधियों के सम्बन्ध में यहाँ अलग-अलग विवेचना की जाती है।

(क) **प्रत्यक्ष विधि (Direct Method):** प्रत्यक्ष विधि द्वारा अखण्डित श्रेणियों का माध्य बिल्कुल उसी तरह निकाला जाता है जैसे प्रत्यक्ष विधि द्वारा खण्डित श्रेणियों का माध्य निकाला जाता है। केवल इसमें एक चरण अधिक इस रूप में हो जाता है कि इसमें वर्गान्तरों (Class Intervals) का मध्य-मूल्य या मध्यमान निकाल लिया जाता है और इस प्रकार अखण्डित श्रेणी खण्डित श्रेणी में बदल जाती है। इस प्रकार प्रत्यक्ष विधि को हम निम्न रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं –

(क) प्रत्येक वर्गान्तर का मध्यमान मालूम कीजिए। यह मध्यमान किसी वर्गान्तर की उच्चतर सीमा (Upper Limit) तथा निम्नतर सीमा (Lower Limit) के योग का आधा होता है। इस प्रकार यदि कोई वर्गान्तर सीमा (Class Interval)

10 – 15 है तो इसका मध्यमान $\frac{10+15}{2} = 12.5$ होगा।

(ख) प्रत्येक वर्गान्तर की आव त्ति (f) से उसी वर्गान्तर के मध्यमान (x) को गुणा कीजिए और उनका गुणनफल (fx) मालूम कीजिए।

(ग) तत्पश्चात् उपरोक्त गुणनफलों का योग ($\sum fx$) तथा आव त्तियों का योग (fx अर्थात् n) ज्ञात कीजिए।

(घ) गुणनफलों के योग (fx) का आव त्तियों के योग (n) से भाग देकर लब्धि मालूम कीजिए।

(ङ) यही लब्धि माध्य होगा।

अतः संक्षिप्त विधि के सूत्र को हम इस प्रकार लिख सकते हैं —

माध्य

यदि संकेताक्षर n के स्थान पर $\sum f$ का प्रयोक किया जाये तो माध्य का सूत्र इस प्रकार होगा।

उपरोक्त दो सूत्रों में से किसी भी सूत्र की सहायता से माध्य की गणना की जा सकती है। उत्तर या परिणाम एक ही होगा।

उदाहरणः निम्न सारणी में भारत इलेक्ट्रीनिक्स लि॰ के 65 कर्मचारियों की साप्ताहिक मजदूरी का आव त्ति बंटन दिया हुआ है। प्रत्यक्ष विधि द्वारा समान्तर माध्य की गणना कीजिये।

मजदूरी (रुपयों में)	कर्मचारियों की संख्या
50 – 60	8
60 – 70	10
70 – 80	16
80 – 90	14
90 – 100	10
100 – 110	5
110 – 120	22

$M = \frac{\Sigma fx}{\Sigma f}$ $\left(\frac{50+60}{2}\right) = 55$

हलः प्रत्यक्ष विधि (जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है) द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिये हमें सर्वप्रथम मध्यमान (x) ज्ञात करने उसी आधार पर fx और फिर $\sum fx$ एवं f अर्थात् n मालूम करना होगा। यह कार्य उपरोक्त सारणी को इस प्रकार प्रस्तुत करने का सम्भव होगा —

सारणी नं॰ 5

मजदूरी (रुपयों में)	कर्मचारियों की संख्या (f)	मजदूरी वर्गों के मध्यमान (x)	मजदूरी (मध्यमान) और कर्मचारियों की संख्या का गुणनफल (fx)
50 – 60	8		$(8 \times 55) = 440$
60 – 70	10	$\left(\frac{60+70}{2}\right) = 65$	$(10 \times 65) = 650$
70 – 80	16	$\left(\frac{70+80}{2}\right) = 75$	$(16 \times 75) = 1200$
80 – 90	14	$\left(\frac{80+90}{2}\right) = 85$	$(14 \times 85) = 1190$

90 – 100	10	$\left(\frac{90+100}{2}\right)=95$	(10 × 95) = 950
100 – 110	5	$\left(\frac{100+110}{2}\right)=105$	(5 × 105) = 525
110 – 120	2	$\left(\frac{110+120}{2}\right)=115$	(2 × 115) = 230
योग	Σf अर्थात् $n = 65$		fx = 5185

प्रत्यक्ष विधि द्वारा समान्तर माध्य का (M) सूत्र –

अथवा $\frac{\Sigma fx}{\Sigma f}$

अतः औसत साप्ताहिक मजदूरी = 79.77 रुपये

(ब) **संक्षिप्त विधि (Short-cut Method):** यह संक्षिप्त विधि भी खण्डित श्रेणियों का माध्य निकालने के लिये प्रयोग की जाने वाली संक्षिप्त विधि के ही समान है, केवल इसमें भी वर्गान्तरों का मध्यमान निकाल लिया जाता है। अतः इस संक्षिप्त विधि हो हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं :

(क) प्रत्येक वर्गान्तर (Class Interval) का मध्यमान (x) ज्ञात कीजिये। यह मध्यमान किसी वर्गान्तर की उच्चतर सीमा तथा निम्नतर सीमा के योग का आधा होगा।

(ख) किसी वर्गान्तर के मध्यमान को कल्पित माध्य (A) मान लीजिये। पर ऐसा करते समय दो बातों का ध्यान रखिए – प्रथम तो यह कि वह कल्पित माध्य उस वर्गान्तर का मध्यमान हो जिसकी बारम्बारता अर्थात् आव ति (frequency) सब से अधिक हो और द्वितीय वह कल्पित माध्य उस वर्गान्तर का मध्यमान हो जो दिए हुए वर्गान्तरों के लगभग मध्य में हों।

(ग) प्रत्येक वर्गान्तर (Class Interval) के मध्यमान (x) तथा कल्पिन माध्य (A) का अन्तर ($x - A$) ज्ञात कीजिये अर्थात् कल्पित माध्य से वर्गान्तर के मध्यमानों का विचलन (d) मालुम करना होगा।

(घ) तत्पश्चात् प्रत्येक आव त्ति (f) से उससे सम्बन्धित विचलन (d) को गुणा करके सभी गुणनफलों (fd) के योग (Σfd) को मालूम कीजिये।

(ङ) इस प्रकार प्राप्त योग (fd) को आव त्तियों के योग (f अर्थात् n) से भाग देकर लब्धि ज्ञात कीजिये। इस लब्धि को कल्पित माध्य (A) के साथ जोड़ दीजिये।

(च) यही जोड़ समान्तर माध्य होगा।

इस विधि को यदि एक सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया जाए तो वह इस प्रकार होगा –

अथवा $A + \frac{\Sigma fd}{\Sigma f}$

उदाहरण: उदाहरण में दिए गए प्रश्न को ध्यान में रखते हुए, संक्षिप्त विधि द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात कीजिये।

हल: प्रस्तुत प्रश्न को ऊपर बताये गये विधि के अनुसार हल करने के लिये हमें उदाहरण 5 की सारणी को इस रूप में प्रस्तुत करना होगा –

सारणी नं॰ 7

$M = A + \frac{\Sigma fd}{N} = 75 + \frac{310}{65}$

मजदूरी (रुपयों में)	कर्मचारियों की संख्या (f)	मजदूरी वर्गों के मध्यमान (x)	कल्पित माध्य (A = 75) से मध्यमानों (x) का विचलन ($x - A = d$)	विचलन तथा कर्मचारियों की संख्या (आव त्ति) (fd)
50 – 60	8	$\left(\frac{50+60}{2}\right) = 55$	(55 – 75) = –20	8 × –20 = –160
60 – 70	10	$\left(\frac{60+70}{2}\right) = 65$	(65 – 75) = –10	10 × –10 = –100
70 – 80	16	$\left(\frac{70+80}{2}\right) = 75A$	(75 – 75) = –0	16 × 0 = 0
80 – 90	14	$\left(\frac{80+90}{2}\right) = 85$	(85 – 75) = +10	14 × 10 = +140
90 – 100	10	$\left(\frac{90+100}{2}\right) = 95$	(90 – 75) = +20	10 × 20 = +200
100 – 110	15	$\left(\frac{100+110}{2}\right) = 105$	(105 – 75) = +30	5 × 30 = +150
110 – 120	2	$\left(\frac{110+120}{2}\right) = 115$	(115 – 75) = +40	2 × 40 = +80
	f अर्थात् $n = 65$			fd = (+570 260) = +314

संक्षिप्त विधि द्वारा समान्तर माध्य का (M) सूत्र –

$M = A + \frac{\Sigma fd}{\Sigma f}$ अथवा $A + \frac{\Sigma fd}{n}$

यहाँ A = 75 (कल्पित माध्य)

$\Sigma f d = + 310$

f या n = 65 (कर्मचारियों की कुल संख्या)

= 75+4.77

= 79.77

अतः औसत साप्ताहिक मजदूरी = 79.77 रुपये

समान्तर माध्य के गुण **(Merits of Mean):** समान्तर माध्य के गुण निम्नलिखित हैं -

1. समानान्तर माध्य को समझना सबसे सरल है।
2. समानान्तर माध्य की गणना कई माध्यों से सरल है।
3. समानान्तर माध्य श्रेणी में आए सभी पदों पर आधारित होता है।
4. समानान्तर माध्य का बीजगणितीय विवेचन सम्भव है।
5. समानान्तर माध्य पर निदर्शन के परिवर्तन का बहुत कम प्रभाव पड़ता है।
6. समानान्तर माध्य स्पष्टतः परिभाषित होता है और इसीलिए इसमें कोई सन्देह नहीं होता।
7. समानान्तर माध्य निकालने के लिए विभिन्न श्रेणियों के अंकों को किसी व्यस्थित क्रम में रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अंक जैसे भी दिए होते हैं उसी रूप में उनका प्रयोग करके माध्य निकाला जा सकता है।
8. समानान्तर माध्य निकालने के लिए श्रेणियों के सभी पदों के बारे में जानकारी आवश्यक नहीं है। यदि अंकों का अथवा पद के परिणामों का कुल योग एवं उनकी संख्या मालूम है तो उनके द्वारा समानान्तर माध्य ज्ञात किया जा सकता है।
9. समानान्तर माध्य तुलनात्मक अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी होता है।
10. समानान्तर माध्य को विशेष रूप से विभिन्न गतियों का औसत निकालने के लिए प्रयोग किया जाता है।

दोष **(Demerits):** समानान्तर माध्य के गुण निम्नलिखित हैं -

1. समानान्तर माध्य गतिशील और प्रतिगामी प्रव त्तियों अर्थात् बढ़ती हुई प्रव त्तियों और घटती हुई प्रव त्तियों की ओर संकेत नहीं करता। कभी-कभी इससे भ्रामक परिणाम प्राप्त होते हैं।
2. समानान्तर माध्य की गणना गुण सम्बन्धी आंकड़ों के लिए नहीं की जा सकती।
3. समानान्तर माध्य निकालने के लिए यह आवश्यक है कि पदमाला के समस्त पदों के मापों का योग अथवा अलग-अलग माप मालूम हो यदि थोड़े से पद छूट जाए तो माध्य ज्ञात नहीं किया जा सकता।
4. यह आवश्यक नहीं है कि किसी श्रेणी का समान्तर माध्य श्रेणी भी हो। उदाहरण के लिए 12, 14, 16, 18, 20, 24 का समानान्तर माध्य 17.33 है जो कि इस श्रेणी में नहीं हैं।
5. समानान्तर माध्य न्यूनतम और अधिकतम पदों से अनुचित रूप से प्रभावित हो जाता है।
6. यदि पदों की संख्या अधिक है तो इसे निरीक्षण मार्ग से ही ज्ञात नहीं किया जा सकता। बड़ी संख्या में बड़े-बड़े जोड़, गुणा, भाग आदि करने की आवश्यकता होती है जो कि साधारण व्यक्ति के लिए सरल नहीं होता है।

मध्यका
(Median)

मध्यका (Median) एक स्थिति सम्बन्धी माध्य है। ऐसे माध्य जो कि किसी समंक-श्रेणी के अन्तर्गत किसी विशेष स्थिति को दर्शाते हैं या जिन्हें किसी विशिष्ट स्थिति पर निर्धारित किया जाता है, स्थिति सम्बन्धी माध्य (Averages of Position) कहा जाता है। मध्यका किसी समंक श्रेणी (Statistical Series) के "मध्य वाले पद" के मूल्य को कहते हैं। जबकि किसी समंक श्रेणी के मूल्यों को आरोही (Ascending) अथवा अवरोही (Descending) क्रम में व्यवस्थित कर लिया जाता है। इस प्रकार मध्यका समंक श्रेणी को दो बराबर भागों से विभाजित करती है। मध्यका के एक भाग में सभी पद मध्यका से छोटे एवं दूसरे भाग में सभी पद मध्यका से बड़े होंगे। उदाहरण के लिए, यदि एक परिवार के पाँच भाइयों की लम्बाई क्रमशः 48", 52", 63", एवं 69" है तो 63" लम्बाई मध्यका कही जाएगी। 63" से कम दो भाइयों की लम्बाई है, एवं 63" से अधिक भी दो भाइयों की लम्बाई है। इस प्रकार आरोही अथवा अवरोही, किसी क्रम की श्र ंखला में समस्त श्रेणी अथवा पदों के अर्द्ध बिन्दु पर निर्धारित पद का मूल्य ही मध्यका मानी जाएगी। हमें ध्यान रखना चाहिए कि मध्य पद स्वयं ही मध्यका नहीं होती, बल्कि उस पद का माप अथवा मूल्य मध्यका मानी जाती है।

माध्यिका/मध्यांक का अर्थ व परिभाषा
(Meaning and Definition of Median)

मध्यका को परिभाषित करते हुए **कोनोर (Connor)** ने 'Statistics in Theory and Practice' में लिखा है कि "मध्यका समंक श्रेणी का वह पद-मूल्य है जो समूह को दो समान भागों में इस प्रकार विभाजित करता है कि एक भाग में समस्त मूल्य मध्यका से अधिक और दूसरे भाग में समस्त मूल्य मध्यका से कम होते हैं।

चतुर्वेदी (Chaturvedi) के अनुसार, "यदि एक श्रेणी (Series) के पदों को उनके परिणामों के आधार पर आरोही अथवा अवरोही क्रमों से लगाया जाए तो बिल्कुल बीच वाली राशि के मान या माप को माध्यिका या मध्यांक कहते हैं।"

घोष तथा चौधरी (Ghosh and Chowdhury) के अनुसार, "मध्यांक श्रेणी में उस पद का मूल्य है जो कि श्रेणी को दो बराबर भागों में बांटता है जिसमें से एक भाग में मध्यांक से कम और दूसरे भाग में मध्यांक से अधिक मूल्य होते हैं।"

एल्हांस (D.N. Elhance) के शब्दों में, "जब एक समंक माला आरोही अथवा अवरोही क्रम में व्यवस्थित होती है तो इस समंक माला को दो बराबर भागों में विभाजित करने वाले मध्य मूल्य को हम मध्यांक कहते हैं।"

माध्यिका की विशेषताएँ (Characteristics of Median):

1. माध्यिका का निर्धारण करने के लिए पदों को आरोही (बढ़ते हुए) या अवरोही (घटते हुए) क्रम में व्यवस्थित किया जाता है।
2. माध्यिका समंकमाला के केन्द्र में स्थित पद का मूल्य होता है।
3. माध्यिका सम्पूर्ण समंक-श्रेणी को दो बराबर-बराबर भागों में बाँटती है तथा विभाजित करती है।

4. माध्यिका को पद-मूल्यों की क्रमिक व द्धि पर आधारित किया जाता है। जिसके एक ओर मूल्य कम तथा दूसरी ओर अधिक मूल्य होते हैं।

मध्यांक गणना करने की विधियाँ (Methods of Calculation Median): सबसे पहले मदों को आरोही या अवरोही क्रम में अनुविन्यासित करते हैं।

यदि N विषय संख्या में है $M = \text{size of} \left(\frac{N+1}{2}\right)^{th}$ item. or

$$M = \left(\frac{N+1}{2}\right) \text{ वें पद का मान}$$

यदि N सम संख्या में है तो - $M = \frac{1}{2}\left[\frac{N}{2} \text{ वे पद का मान } \left(\frac{N}{2}+1\right) \text{ वे पद का मान}\right]$

मध्यांक की गणना भिन्न-भिन्न सारणियों में भिन्न प्रकार से होती है।

I. व्यक्तिगत श्रेणी (Individual Series): इसमें मध्यांक ज्ञात करने के लिए, हमें सर्वप्रथम वह निश्चित करना पड़ता है कि पदों को आरोही क्रम में या अवरोही क्रम में से किस में रखा जाये। उसके बाद उक्त सूत्र का प्रयोग करते हैं।

मध्यका संख्या $= \frac{N+1}{2}$

उदाहरण : निम्न समंकों से मध्यांक करो - 520, 20, 340, 190, 35, 800, 1210, 50 व 80 पदों को आरोही क्रम में रखने पर -

क्रम संख्या	पद
1	20
2	35
3	50
4	80
5	190
6	340
7	520
8	800
9	1210

मध्यांक $= \frac{N+1}{2}$ वां पद $= \frac{9+1}{2} = 5$

यहाँ 5 वाँ पद 190 है अतः यही मध्यिका है।

II. विच्छिन्न श्रेणी (Discrete Series): विच्छिन्न श्रेणी में मध्यिका ज्ञात करने की वही रीति है जो व्यक्तिगत श्रेणी में थी। सर्वप्रथम यह जरूरी है कि वह आरोही या अवरोही क्रम में रखे, यहाँ पदों की संचयी आव त्ति निकालनी पड़ती है, जिससे मध्यिका की क्रम संख्या ज्ञात हो जाती है। इसके पश्चात् सूत्र का प्रयोग करते हैं। जिस संचयी आव त्ति में यह

क्रम संख्या प्रथम बार सम्मिलित होते हैं, उस संचय आव त्ति के सामने का मूल्य ही मध्यांक होता है।

उदाहरण : निम्न सारणी की मध्यिका ज्ञात कीजिए -

पद आकार	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15
आव त्ति	2	3	8	10	12	16	10	8	6	5	6	4	3	1

हल : यहाँ पद आरोही क्रम में पहले ही अनुविन्यसित है।

पद का आकार	आव त्ति	संचयी आव त्ति
2	2	2
3	3	5
4	8	13
5	10	23
6	12	35
7	16	51
8	10	61
9	8	69
10	6	75
11	5	80
12	6	86
13	4	90
14	3	95
15	1	94

मध्यांक $M = \left(\frac{N+1}{2}\right)$ वाँ पद $= \left(\frac{94+1}{2}\right)$ वाँ पद $= \frac{95}{2}$ 47.5 वाँ पद

यह संचयी आव त्ति 51 में आता है अतः उसके सामने वाला पद आकार M = 7 मध्यिका है।

III. अखण्डित श्रेणी (Continuous Series): अखण्डित श्रेणी का मध्यांक मालूम करने के लिए विभिन्न पदों की आव त्तियों को संचयी आव त्तियों के रूप में बदल लेते हैं, इसके पश्चात् $\frac{n}{2}$ के सूत्र द्वारा माध्यिका को ज्ञात कर लिया जाता है। यह पद मूल्य के जिस वर्ग में मध्यांक स्थित होता है, उसमें निमन सूत्र के द्वारा वास्तविक मध्यांक को ज्ञात कर लिया जाता है।

सूत्र (Formula) : $Me = L_1 + \frac{L_2 - L_1}{f_1}(m - c)$

Significance of the Formula —
(सूत्र का महत्त्व)

Me = मध्यांक (Median)

L_1 = माध्यांक वर्ग की निम्न सीमा (Lower Limit of Median Class)

L_2 = मध्यांक वर्ग की उच्च सीमा (Upper Limit of Median Class)

F_1 = मध्यांक वर्ग की आव त्ति (Frequency of Median Class)

$m = \frac{n}{2}$ अर्थात कुल आव त्तियों की आधी संख्या

(Median number i.e. ($\frac{n}{2}$ th item)

C = मध्यांक वर्ग से पहले के वर्ग की संचयी आव त्ति (Cumulative Frequency of the group just preceding the median class).

उदाहरण : निम्नलिखित सारणी का मध्यांक ज्ञान कीजिए।

भूमि :	0-5	5-10	10-15	15-20	20-25	25-30	30-35	35-40	40-45
परिवार :	29	195	241	117	52	10	6	3	2

भूमि	परिवार (f)	संचयी आव त्ति (cf)
0-5	29	29
5-10	195	224
10-15	241	465
15-20	117	582
20-25	52	634
25-30	10	644
30-35	6	650
35-40	3	653
40-45	2	655

मध्यांक $(M) = \frac{n}{2} = \frac{655}{2}$

= 327.5वें पद का मान

उपर्युक्त सारणी में 10-15 वर्गान्तर में मध्यमान स्थित है, इस वर्गान्तर में निम्नलिखित सूत्र के द्वारा मध्यांक की गणना की जा सकती है :

$$Me = L_1 + \frac{L_2 - L_1}{f_1}(m - c)$$

$$\therefore Me = 10 + \frac{15-10}{241}(327.5 - 224)$$

$$= 10 + \frac{5}{241} \times 103.5$$

$$= 10 + \frac{517.5}{241}$$

$= 10 + 2.1$

$= 12–1$

$\therefore$ Median $= 12.1$ **उत्तर**

Example: Calculate the Median form the following table :

Age :	1-3	4-12	6-14	8-14	10-16	12-16	14-16
No. of Persons :	6	22	45	75	25	21	16

Solution:

Age	**Frequency**	**Cum. Frequency**
1-5	6	6
4-12	22	28
6-14	45	73
8-14	75	148
10-16	25	173
12-16	21	173
14-16	16	210

Median = $\frac{n}{2} = \frac{210}{2} = 105^{th}$

Me = $L_1 + \frac{L_2 - L_1}{f_1}(m - c)$

$= 8 + \frac{14-8}{75} \ (105 - 73)$

$= 8 + \frac{6}{75} \ (32)$

$= 8 + \frac{192}{75}$

= 8 + 2.5 = 10.5

Median = 10.5 **उत्तर**

मध्यांक के गुण
(Merits of Median)

मध्यांक के कुछ गुण निम्नलिखित हैं :

(1) मध्यांक बहुत सरलता से मालूम किया जाता सकता है; और साथ ही इसे समझना भी आसान है। पदों को एक क्रम से लगा देने पर मध्यांक की स्थिति का ज्ञान आसानी से हो सकता है क्योंकि इसकी स्थिति बीचों बीच में होती है।

(2) मध्यांक दिये हुए पदों का ही एक अंश होता है। इसलिये वह सम्पूर्ण समूहों का उचित प्रतिनिधित्व करता है। इसका मान सभी पदों पर आधारित होता है।

(3) यदि पदों की संख्या मालूम हो तो बिना समस्त पदों का परिणाम जाने ही माध्यांक ज्ञात किया जा सकता है। माध्यांक मालूम करने के लिये अन्तिम पदों की आव त्तियों जानना भी आवश्यक नहीं है, केवल पदों की संख्या मालूम होनी चाहिये।

(4) समान्तर माध्य की भाँति मध्यांक पर किसी बहुत बड़ी संख्या या छोटी संख्या का अनुचित प्रभाव नहीं पड़ता है।

(5) कुछ अधिक पदों को जोड़ देने पर भी मध्यांक का आकार अधिक बदल नहीं जाता है।

(6) मध्यांक उस समय अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है जबकि अध्ययन का विषय या तथ्य की प्रकृति ऐसी हो जिसे कि निश्चित इकाइयों में मापा नहीं जाता है; जैसे कि बच्चे की बुद्धि आदि।

दोष (Demerits of Median): मध्यांक के दोष निम्नलिखित हैं :

(1) मध्यांक का मान श्रेणी के सभी पदों पर आधारित नहीं होता।

(2) मध्यांक का बीजगणितीय सूत्र विवेचन योग्य नहीं है।

(3) मध्यांक का मान सिर्फ तभी लगाया जा सकता है जबकि श्रेणी के सभी पद आरोही अथवा अवरोही क्रम में हों।

(4) यदि पद बहुत छोटे या बड़े हो तो मध्यांक को निकालना कठिन होता है।

(5) यदि वर्ग-अन्तराल समान न हो तो मध्यिका का मान समूह को सही प्रदर्शित नहीं करता।

(6) यदि किसी समूह में बहुत से मद होते हैं तो इनकी प्रव त्ति भिन्न-भिन्न होती है।

भूयिष्ठक या बहुलक
(Mode)

किसी समंक श्रेणी में जिस मूल्य की आव त्ति सबसे अधिक होती है, उसी को बहुलक या भूयिष्ठक (Mode) कहा जाता है। इसी प्रकार भूयिष्ठक समंक श्रेणी का सर्वाधिक सामान्य मूल्य होता है। यह समंक श्रेणी या पदमाला का ऐसा मूल्य या परिणाम है, जो दिये हुए आँकड़ों में सबसे अधिक बार आता है। अंग्रेजी का "Mod" शब्द फ्रेंच भाषा के "La Mode" से बना है जिसका आशय "Most Fashionable" (सर्वाधिक फैशन या रिवाज) है। औसत व्यक्ति अमूक वस्त्र पहनता है, औसत स्त्री अमुक सौन्दर्य प्रसाधन का प्रयोग करती है, औसत व्यक्ति अमुक नाप के जूते पहनता है आदि कथनों में औसत शब्द का आशय अधिकाँश से है। यह "अधिकाँश" ज्ञात करने की विधि ही भूयिष्ठक या बहुलक है। बहुलक "सर्वाधिक घनत्व की स्थिति" (Position of greatest density) "मूल्यों के अधिकतम केन्द्रीयकरण का बिन्दु" (Point of highest concentration of value) "सर्वाधिक आने वाले पद का मूल्य" (Most Frequency occuring value) होता है। बहुलक को अनेक विद्वानों एवं साँख्यिकी शास्त्रियों ने परिभाषित किया है।

बहुलक के निर्माता **जिजेक (Zizek)** के अनुसार-"बहुलक वह मूल्य है जो पदों की श्रेणी अथवा समूह में सबसे अधिक बार आता है, तथा जिसके चारों ओर सबसे अधिका घनत्व में पदों का विवरण रहता है।"

क्राक्सटन एवं काउडन (Croxton and Cowden) के अनुसार, "एक वितरण का बहुलक वह मूल्य है, जिसके निकट श्रेणी की अधिक से अधिक इकाइयाँ केन्द्रित होती हैं। उसे मूल्यों की श्रेणी का सबसे अधिक प्रतिरूपी माना जा सकता है।"

केने एवं कीपिंग (Kenny and Keaping) के अनुसार, "वितरण में सर्वाधिक आने वाले पद का मूल्य बहुलक या भूयिष्ठक कहलाता है"

गिलफोर्ड (Gilford) ने लिखा है, "माप के पैमाने पर बहुलक वह बिन्दु है, जहाँ पर वितरण मे सबसे अधिक आव त्तियाँ केन्द्रित होती हैं।"

एलहान्स (Elhance) के शब्दों में, "बहुलांक एक समंक माला का वह पद है जो सबसे अधिक बार आता है। यह श्रेणी के बहुल मूल्य का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधी है, एक ऐसा प्रतिनिधी जिसे वास्तविक फैशन अथवा प्रचलन कहा जा सकता है।

बहुलक की विशेषताएँ : बहुलक की विशेषताएँ निम्न हैं :

1. बहुलक का मूल्य प्रायः अधिकतम आव त्तियों से निर्धारित होता है, इकाइयों से नहीं।
2. बहुलक का मूल्य केवल एक सम्भाविक मूल्य होता है जो हमेशा अस्थिर रहता है और वर्गीकरण की प्रक्रियाओं से प्रभाविक होता हे।
3. बहुलक का मूल्य सबसे अधिक सम्भवित मूल्य होता है जिसके आस-पास सबसे अधिक आव त्तियाँ केन्द्रित होती हैं।
4. किसी भी एक विभाजन में दो या दो से अधिक बहुलक हो सकते हैं।
5. बहुलक का मूल्य बहुलकता की मात्रा को प्रदर्शित करता है।
6. बहुलक का मूल्य ही केवल ऐसा मूल्य है जो गुणात्मक तथ्यों के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है।
7. बहुलक का मूल्य के लिए तथ्य को उनके आकारानुसार क्रमबद्ध करना पड़ता है।
8. बहुलक के मूल्यों को बीजगणितीय के सिद्धांतों द्वारा हल नहीं किया जा सकता।
9. बहुलक का मूल्य खूले वर्गान्तरों (Open and Classes) मे दिए गए तथ्यों से भी निकाला जा सकता है।

बहुलक की गणना
(Calculation of Mode)

बहुलक अधिकतम आव त्ति का मूल्य होने के कारण उसे निरीक्षण द्वारा भी ज्ञात किया जा सकता है। बहुलक के गणना की निधि आव त्ति के बंटनो पर निर्भर करती है। जो निम्नलिखित प्रकार है :

1. **व्यक्तिगत श्रेणी में बहुलक का निर्धारण (Location of Mode in Individual Series):** व्यक्तिगत श्रेणी मे बहुलक का निर्धारण निम्नलिखित तीन प्रणालियों के द्वारा किया जा सकता है :

   1.1 निरीक्षण द्वारा,

   1.2 खण्डित श्रेणी में परिवर्तित करके, तथा

   1.3 माध्यिका एवं समान्तर माध्य के आधार पर।

   1.1 **निरीक्षण द्वारा बहुलक का निर्धारणः** व्यक्तिगत श्रेणी में बहुलक ज्ञात करने के लिए पद की आव त्ति का निरीक्षण किया जाता है। जिस पद की आव त्ति सर्वाधिक होती है वही बहुलक होता है। अगर पद-मूल्य क्रम नहीं होते हैं तो पहले मूल्यों को क्रम से व्यवस्थित किया जाता है उससे निरीक्षण क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित हो जाता है।

उदाहरणः एक कक्षा में 20 छात्रों के प्राप्तांक निम्नलिखित हैं, बहुलक ज्ञात कीजिए :

4, 6, 5, 8, 5, 4, 4, 6, 7, 2, 3, 8, 4, 7, 4, 2, 5, 4, 6, 3,

बहुलक का निर्धारण करने के लिए पद-मूल्यों को एक क्रम में निम्नलिखित प्रकार से पुनः व्यवस्थित करना होगा :

2, 2, 3, 3, 4, 4, 4, 4, 4, 4, 5, 5, 5, 6, 6, 6, 7, 7, 8, 8

पद मूल्यों को क्रम व्यवस्थित करने पर स्पष्ट होता है कि अंग 4 की आव त्ति सर्वाधिक है। यह छः बार आया है। अतः कक्षा में 20 छात्रे के प्राप्तांक का बहुलक अंक 4 होगा।

1.2 **खण्डित श्रेणी में परिवर्तित करके बहुलक का निर्धारणः** जब व्यक्तिगत श्रेणी के अनेक मूल्य दो या दो से अधिक बार पाए जाते हैं तो उन्हें आरोही क्रम के अनुसार व्यवस्थित करके उनके समाने उनकी आव त्ति लिख दी जाती है। इसके बाद निरीक्षण करके ज्ञात किया जाता है कि किस मूल्य की आव त्ति सर्वाधिक है। सर्वाधिक आव त्ति का मूल्य ही बहुलक होगा।

उदाहरणः छात्रों की आयु का बहुलक ज्ञात कीजिए-17, 18, 20, 15, 20, 16, 18, 21. 15, 19, 13, 15, 14, 18, 15, 22, 20, 15, 16, 15,

इन आयु श्रेणियों को आरोही क्रम में व्यवस्थित करने पर-

पद-मूल्य (छात्रो की आयु) वर्षों में	आव त्ति
13	1
14	1
15	6
16	2
17	1
18	3
19	1
20	3
21	1
22	1

उपर्युक्त पद-मूल्यों की आव त्ति के निरीक्षण से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक आव त्ति 6 बार पद-मूल्य 15 वर्ष की है, अतः छात्रों की आयु का बहुलक 15 वर्ष होगा।

1.3 **माध्यिका तथा समान्तर माध्य के आधार पर बहुलक का निर्धारणः** व्यक्तिगत श्रेणियों का बहुलक माध्यिका तथा समान्तर माध्य के द्वारा भी निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात कर सकते हैं -

सूत्र - $Z = 3M - 2\overline{X}$

संकेताक्षर - Z = बहुलक

M = माध्यिका

$\overline{X}$ = समान्तर माध्य

विच्छिन्न श्रेणी में भूयिष्ठक का निर्धारण
(Determination of Mode in Discrete Series)

विच्छिन्न श्रेणी में भूयिष्ठक ज्ञात करने की दो विधियां हैं : (i) निरीक्षण विधि (Inspection Method), तथा (ii) समूहीकरण विधि (Grouping Method).

1. **निरीक्षण विधि (Inspection Method):** विच्छिन्न श्रेणी में केवल निरीक्षण द्वारा भूयिष्ठक ज्ञात किया जा सकता है लेकिन यह तभी सम्भव है जब आव तियां नियमित हों अर्थात् श्रेणी के आरम्भ में आव त्तियां निरन्तर बढ़ती रहें, अधिकतम आव त्ति लगभग केन्द्र में हो और उसके बाद आव त्तियां निरन्तर घटने लगे। ऐसे समूह में अधिकतम आव त्ति बिल्कुल स्पष्ट होती है। निरीक्षण द्वारा उसका मूल्य ज्ञात कर लिया जाता है। निम्न उदाहरण से यह विधि स्पष्ट हो जायेगी :

उदाहरण : निम्न सारणी 30 व्यक्तियों का वेतन प्रदर्शित करती है। भूयिष्ठक ज्ञात कीजिये :

वेतन (रु. में)	आव त्ति	वेतन (रु. में)	आव त्ति
600	4	750	18
650	6	800	7
700	12	850	3

हल - उपर्युक्त सारणी में आव त्तियाँ नियमित हैं। अतः निरीक्षण द्वारा भूयिष्ठक ज्ञात किया जा सकता है। श्रेणी का निरीक्षण करने से पता लगता है कि अधिकतम आव त्ति 18 हैं जिसका मूल्य 750 है अर्थात् भूयिष्ठक वेतन 750 रु. है।

2. **समूहीकरण विधि (Grouping Method):** जहाँ आव त्तियों में अनियमितता (Irregularity) है वहां निरीक्षण द्वारा भूयिष्ठक ज्ञात करना कठिन है। कभी-कभी दो या दो से अधिक मूल्यों की आव त्ति सबसे अधिक होती है यह निश्चित करना कठिन होता है कि किस मद को भूयिष्ठक माना जाये। सर्वाधिक आव त्ति एक होने पर भी भूयिष्ठक मद सर्वाधिक आव त्ति वाला न होकर दूसरा हो सकता है। भूयिष्ठक का ठीक पता लगाने के लिये समूहीकरण विधि (Grouping Method) का प्रयोग किया जाता हैं जब विधि प्रयोग में लाई जाती है तो दो सारणियाँ बनाई जाती हैं, जो इस प्रकार हैं : (a) समूहीकरण सारणी (Grouping Table), तथा (b) विश्लेषण सारणी (Analysis Table) :

इन दोनों सारिणयों के आधार पर भूयिष्ठक ज्ञात किया जाता है।

(a) **समूहीकरण सारणी (Grouping Table):** समूहीकरण का उद्देश्य अनियमित आव त्ति वाले वितरण में आव त्तियों का सर्वाधिक घनत्व निश्चित करना होता है। समूहीकरण सारणी बनाने की क्रिया इस प्रकार है :

एक सारणी बनाई जाती है जिसमें चल-मानों के अतिरिक्त 6 स्तम्भ होते हैं। इन स्तम्भों में आव त्तियों का दो-दो और तीन-तीन के समूहों में समूहन (Grouping in two's and three's) निम्न क्रम से लिया जाता है :

(i) **प्रथम स्तम्भः** प्रथम स्तम्भ में दी हुई आव त्तियां होती हैं। इन आव त्तियों में से अधिकतम आव त्ति को चिन्हित किया जाता है।

(ii) **द्वितीय स्तम्भः** दूसरे स्तम्भ में प्रथम स्तम्भ में दी हुई पहली दो आव त्तियों का योग, फिर इसके आगे वाली दो आव त्तियों का योग और इसी प्रकार अन्त तक दो-दो आव त्तियों का योग लिया जाता है।

(iii) **त तीय स्तम्भः** प्रथम स्तम्भ में दी हुई आव त्तियों में से पहले वाली आव त्ति को छोड़कर दो-दो आव त्तियों के योग लिये जाते हैं।

(iv) **चतुर्थ स्तम्भः** प्रथम स्तम्भ में दी हुई आव त्तियों में से पहली तीन आव त्तियों का योग फिर आगे की तीन आव त्तियों का योग, और इसी प्रकार आगे भी तीन-तीन आव त्तियों का योग लेते हैं।

(v) **पंचम स्तम्भः** प्रथम स्तम्भ में दी हुई आव त्तियों में से पहली आव त्ति को छोड़कर अगली तीन आव त्तियों का योग, फिर अगली तीन आव त्तियों का योग और इसी प्रकार आगे भी तीन-तीन आव त्तियों का योग लेते हैं।

(vi) **षष्ठम स्तम्भः** प्रथम स्तम्भ में दी हुई आव त्तियों में से प्रथम दो आव त्तियों को छोड़कर अगली तीन आव त्तियों का योग और इसी प्रकार आगे तीन-तीन आव त्तियों का योग लेते हैं।

उपर्युक्त स्तम्भों में समूहीकरण की संख्यायें लिखने के बाद प्रत्येक खाने की सबसे बड़ी संख्या को मोटे अक्षरों में व त्त में लिख दिया जाता है ताकि वह अन्य संख्याओं से भिन्न लगे और सुगमता से पहचानी जा सके।

(b) **विश्लेषण सारणी (Analysis Table):** यह सारणी उन अधिकतम आव त्तियों (Maximum Frequencies) के आधार पर बनाई जाती है जिन्हें उपर्युक्त समूहीकरण वाली सारणी में रेखांकित (Underline) किया गया है या व त्त में लिखा गया है। इस सारणी में छहों स्तम्भों के सामने अधिकतम आव त्तियों के चल-मूल्यों पर चिन्ह लगाकर उनकी गणना कर ली जाती है जिस मूल्य के सामने सबसे अधिक चिन्ह होते हैं वही भूयिष्ठक मूल्य होता है। विश्लेषण सारणी का प्रारूप नीचे दिया गया है :

विश्लेषण सारणी का प्रारूप

स्तम्भ संख्या	चल के मान					
I						
II						
III						
IV						
V						
VI						
योग						

उदाहरण - निम्नलिखित समंकमाला से समूहीकरण विधि द्वारा भूयिष्ठक ज्ञात कीजिए :

चल :	40,	44,	48,	52,	56,	60,	64,	68,	72,	76
आव त्ति :	10,	12,	14,	20,	15,	20,	18,	10,	8,	4

हल : **भूयिष्ठक का निर्धारण (समूहीकरण सारणी)**

चल आव त्ति

I	II	III	IV	V	VI		
40	10						
44	12	22		36			
48	14		26		46		
52	20	34				46	49
56	15		35	55			
60	20	35			53	53	
64	18		38				48
68	10	28		36		22	
72	8		18		22		
76	4	12					

विश्लेषण सारणी

स्तम्भ चल मूल्य

संख्या	40	44	40	52	56	60	64	68	72	76
I				1		1				
II					1	1				
III						1	1			
IV				1	1	1				
V					1	1	1			
VI			1	1	1					
योग				1	3	4	5	2		

अर्थात् सारणी से यह स्पष्ट है कि चल मूल्य 60 सबसे अधिक (पांच) बार आया है अर्थात् यही भूयिष्ठक मूल्य है।

3. **अविच्छिन्न या सतत् श्रेणी में बहुलक का निर्धारण (Location of Mode in Continuous Series):** अविच्छिन्न श्रेणी में अग्रलिखित दो विधियों द्वारा बहुलक निर्धारित किया जाता है -

(1) निरीक्षण विधि।

(2) समूहन विधि।

3.1 **निरीक्षण विधि -** इस विधि में आव त्तियों का अवलोकन किया जाता है तथा ज्ञात किया

जाता है कि सर्वाधिक आव त्ति कौन-सी है तथा उसका वर्ग कौन-सा है वही बहुलक वर्ग कहलाता है। अगर सबसे अधिक आव त्ति वाले वर्ग एक से अधिक होते हैं तो निरीक्षण विधि के स्थान पर समूहन विधि को काम में लेकर बहुलक वर्ग ज्ञात किया जाता है तथा अग्र सूत्र से परिकलन किया जाता है -

सूत्र - Z =

संकेताक्षर - Z = बहुलक या भूयिष्ठक

L_1 = बहुलक वर्ग की निम्न सीमा

f_1 = बहुलक वर्ग की आव त्ति

f_0 = बहुलक वर्ग से पहले वाले वर्ग की आव त्ति

f_2 = बहुलक वर्ग से बाद वाले वर्ग की आव त्ति

i = बहुलक वर्ग की निम्नतम तथा उच्चतम सीमाओं का अन्तर (वर्गान्तर)

उदाहरण - निम्नलिखित समंकों से बहुलक मजदूरी की गणना कीजिए -

मजदूरी (रुपयों में) :	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60	60-70
श्रमिकों की संख्या :	4	7	11	15	11	6	4

मजदूरी (रुपयों में) x	श्रमिकों की संख्या f
0-10	4
10-20	7
20-30	11
30-40	15
40-50	11
50-60	6
60-70	4

L

उपर्युक्त सारणी का निरीक्षण करने से स्पष्ट हो जाता है कि सबसे अधिक आव त्ति 15 है इसलिए बहुलक वर्ग 30-40 है।

सूत्र -

$$Z = L_1 + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$$

$$Z = 30 + \frac{15 - 11}{2 \times 15 - 11 - 11} \times 10$$

$$= 30 + \frac{4}{8} \times 10$$

$$= 30 + \frac{40}{8}$$

$$= 30 + 5$$

$$Z = 35$$

अतः बहुलक मजदूरी 35 रुपये है।

3.2 **समूहन प्रणाली द्वारा बहुलक की गणना विधि -** सबसे पहले खण्डित श्रेणी की तरह इसमें भी समूहन एवं विश्लेषण तालिका के द्वारा बहुलक वर्ग ज्ञात किया जाता है। इसके उपरान्त निम्नलिखित सूत्र के द्वारा बहुलक की गणना की जाती है।

सूत्र - $X = L_1 + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$

मजदूरी (रुपयों में) x	श्रमिकों की संख्या (1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	अधिकतम आव त्तियों की संख्या	योग
0-10	3	8						
10-20	5		14	17				
20-30	9	<u>23</u>			28		11	2
30-40	<u>14</u>		<u>27</u>			<u>36</u>	1111	5
40-50	13	22		<u>36</u>			111	3
50-60	9		15		28		1	1
60-70	6							

उपर्युक्त सारणी का निरीक्षण करने से स्पष्ट हो जाता है कि सबसे अधिक आव त्ति 15 है इसलिए बहुलक वर्ग 30-40 है।

सूत्र - $Z = L_1 + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$

$$Z = 30 + \frac{14 - 9}{2 \times 14 - 9 - 13} \times 10$$

$$= 30 + \frac{5}{6} \times 10$$

$$= 30 + \frac{50}{6}$$

$$= 30 + 8.33$$

$$Z = 38.33$$

बहुलक के लाभ एवं हानियाँ
(Advantages and Disadvantages of Mode)

लाभ (Merits) : बहुलक के लाभ निम्नलिखित हैं -

1. इसको ज्ञात करना एवं समझना सरल है।
2. यह न्यूनतम और अधिकतम पदों से प्रभावित नहीं होता।
3. भूयिष्ठक का मान ग्राफ की सहायता से भी निकाला जा सकता है।
4. सभी पदों को ध्यान में रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

5. भूयिष्ठक तब अधिक उपयोगी होता है जब दो या अधिक समग्रों का मिश्रण हो। ऐसी स्थिति में माध्य या मध्यिका केन्द्रीय प्रव त्ति को भली-भांति नहीं बता सकेगा।
6. इसकी गणना शीघ्रता, सरलता एवं यथार्थता से की जा सकती है।
7. बहुलक समंक श्रेणी का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व मान होता है क्योंकि बहुलक वही होता है जिसकी आव त्ति पदमात्रा में सर्वाधिक होती है।
8. बड़े पैमाने में उत्पादन करने वाले उत्पादकों के लिए बहुलक अत्यधिक महत्वपूर्ण होता हैं। क्योंकि बहुलक के आधार पर ही वह उत्पादन के लिए आकार को निर्धारित करते हैं।
9. यह अधिकतम इकाइयों पर प्रत्यक्ष रूप से लागू होता है। इस प्रकार यह अन्य माध्यों से अधिक श्रेष्ठ होता है।
10. यह गुणात्मक तथ्यों को प्रकट करने के लिए भी महत्वपूर्ण रूप से प्रयोग होता है।

दोष **(Demerits) :** बहुलक के लाभ निम्नलिखित हैं -

1. यह बीजगणितीय रूप में प्रयोग नहीं किया जाता।
2. यह सभी पदों को ध्यान में नहीं रखता।
3. यह प्रायः अनिश्चित होता है। यह विस्तार के साथ बदलता रहता है एक ही समंक से लोग अलग-अलग बहुलक निकाल सकते हैं।
4. इसका प्रयोग सीमित होता है। इसके लिए श्रेणी का बंटन सीमित होना चाहिए और आव ति वक्र में एक ही शिखर हो। यदि आव त्ति वक्र के एक से अधिक शिखर होंगे तो बहु-भूयिष्ठक श्रेणी हो जाएगी और भूयिष्ठक ज्ञात करना कठिन होगा।
5. कभी-कभी बहुलक का निश्चित माप सरलता से ज्ञात नहीं होता विशेष रूप से तब जबकि एक पदमाला में एक से अधिक बहुलक होते हैं।
6. भूयिष्ठक को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता।
7. बहुलक निकालने के लिए बहुत से सूत्र हैं और उन सबसे बहुलक का मान अलग-अलग आता है।

बहुलक, माध्यिका और समान्तर माध्य की तुलनात्मक उपयोगिता
Comparative Utility of Mode, Median and Arithmetic Mean

1. तीनों माध्यों - बहुलक, माध्यिका और माध्य की अपनी-अपनी विशेषताएँ लक्षण, सीमा तथा गणना की प्रणालियाँ भिन्न-भिन्न हैं, उनके अनुसार इनका उपयोग भी भिन्न-भिन्न है। किस अध्ययन में कौन-से माध्य का प्रकार उपयुक्त होगा यह अध्ययन के तथ्यों, सामग्री, आँकड़ों, उनकी प्रकृति तथा वर्गीकरण आदि पर निर्भर करता है। सामाजिक अनुसन्धान तथा सामाजिक सर्वेक्षण में तीनों ही माध्यों का अपना विशेष महत्व है। तथ्यों का औसत निकालकर तीनों निष्कर्षों का सार रूप प्रस्तुत करने में बहुत उपयोगी है।

2. तीनों माध्यों का उपयोग किन्हीं तथ्यों का संक्षिप्तीकरण करने के लिए विशेष रूप से चयन किया जाता है फिर भी अगर कभी ऐसी स्थिति आ जाए कि तीनों में से सबसे उपयुक्त कौन-सा माध्य है, इसका निर्णय करना कठिन हो जाए तो समान्तर माध्य का ही चयन करना चाहिए। यह सबसे अच्छा माध्य इस रूप में है कि इसमें प्रत्येक पद के मूल्यों को समान रूप से प्रतिनिधित्व दिया जाता है।

3. जब आव त्ति का वितरण असीमित हो तथा श्रेणी में मूल्यों तथा आव त्ति में क्रमबद्ध वितरण न हो; कुछ में बहुत अधिक तथा कुछ में बहुत कम हो तो माध्यिका का उपयोग करना चाहिए। पूंजीगत और पिछड़े देशों में आय का वितरण बहुत असीमित होता है। वहाँ आय की केन्द्रीय प्रव त्ति का निर्धारण करने के लिए माध्यिका सबसे उपयोगी माध्यम है।

4. कई बार अध्ययन में एक से अधिक समंकों का मिश्रण हो जाता है ऐसे तथ्यों के माध्य निर्धारण के लिए बहुलक का उपयोग सर्वश्रेष्ठ रहता है। इस प्रकार के समग्र में समान्तर माध्य अथवा माध्यिका केन्द्रीय प्रव त्ति का निर्धारण उपयुक्त नहीं कर पाते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि दो समष्टियों के मिश्रण में बहुलक भी दो मिल जाते हैं। ऐसी स्थिति में बहुलक की गणना करना समान्तर माध्य तथा माध्यिका की तुलना में अधिक उपयुक्त रहता है।

निष्कर्षतः यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि किस अध्ययन में कौन-सा माध्य अधिक उपयोगी होगा यह अनुसन्धानकर्त्ता, तथ्यों तथा आँकड़ों की प्रकृति, सांख्यिकी के उपयोग का स्तर, तथ्यों के चर, वर्गीकरण के आधार के उद्देश्यों आदि के आधार पर स्वयं निर्णय लेकर चयन करे।

अध्याय - 14

माध्य विचलन तथा मानक विचलन

(Mean Deviation and Standard Deviation)

विचलन अथवा विक्षेपण (Dispersion) वह गुण है जिससे यह ज्ञात होता है कि पदों के मान उसके मध्यमानों (या माध्य, मूल्यों) से किस सीमा तक विचलित हैं। यह सच है कि माध्य मूल्यों (माध्य, माध्यांक व बहुलक) से सम्पूर्ण श्रेणी की केन्द्रीय प्रव त्ति का पता लग जाता है। परन्तु इसके द्वारा श्रेणी के विभिन्न पदमूल्यों का पूर्ण तथा निश्चित ज्ञान विशेषकर उस अवस्था में नहीं हो पाता है जबकि मध्यमान तथा अन्य पदमूल्यों में अधिक अन्तर होता है। व्यवहारिक द ष्टिकोण से देखा जाये तो अनेक स्थल ऐसे आते हैं जहाँ मध्यमान भ्रामक परिणाम प्रदान करता है। उदाहरणार्थः यदि किसी परिवार के पांच व्यक्यिों की आमदनी क्रमशः 20 : 60, 200, 50 और 70 रुपये हो तो उनकी आमदनी का मध्यमान 80 रुपये हुआ। यदि हमें इन पांचों आंकड़ों का प थक्-प थक् ज्ञान न हो तो मध्यमान के आधार पर हम यही समझेंगे कि परिवार के प्रत्येक व्यक्ति की आमदनी 80 या 80 रुपये के आस-पास होगी जबकि वास्तविक स्थिति इससे कहीं भिन्न है। अतः ऐसी दशाओं में किसी ऐसे माप (Measure) की आवश्यकता पड़ती है जो अधिक-से-अधिक पदमूल्यों की जानकारी करा दे अर्थात् पदमूल्यों का मध्यमान से कितना विचलन है। इन्हीं मापों को विचलन के माप कहा जाता है।

विचलन के अर्थ को एक और उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लिजिये दो विद्यार्थियों के चार विषयों में प्राप्कांक 28, 60, 60, 92, और 56, 60, 60, 64 हैं जबकि प्रत्येक विषय में पूर्णांक 100 और पास होने के लिये 33 अंक आवश्यक हैं। इन विद्यार्थियों के स्तर को जानने के लिये यदि समान्तर माध्य ज्ञात करें तो उसका मान दोनों विद्यार्थियों के लिए 60 आता है। अतः इस आधार पर दोनो विद्यार्थियों का स्तर समान प्रतीत होता है, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है क्योंकि पहला विद्यार्थी पहले विषय में अनुत्तीर्ण (failed) है, जबकि दूसरा विद्यार्थी प्रत्येक विषय में उत्तीर्ण है। अतः स्पष्ट है कि केवल मध्यमान के आधार पर ही श्रेणी के स्वरूप का पूर्ण ज्ञान नहीं हे सकता। अतः यह भी जानना आवश्यक है कि श्रेणी का प्रत्येक पद माध्य से कितनी दूरी पर है या कितना विखरा हुआ है। इस बिखराव को ही विचलन या विक्षेपण कहते हैं।

विचलन की मापें

(Measuring of Dispersion)

विचलन की मुख्य मापें इस प्रकार हैं –

1. **परिसर** (Range)
2. **चतुर्थांशीय विचलन** (Quartile Deviation)

3. माध्य विचलन (Mean Deviation)
   (क) समान्तर माध्य से
   (ख) मध्यांक से
   (ग) बहुलक से
4. मानक विचलन (Mean Deviation)

हम यहां पर केवल माध्य विचलन तथा मानक विचलन के बारे में विस्त त रूप से पढेगें।

माध्य विचलने के आशयः समंक श्रेणी में केन्द्रीय प्रव त्ति की किसी माप अथवा किसी भी सांख्यिकीय माध्य (समान्तर माध्य, मध्यिका अथवा बहुलक) से निकाले गये विचलनों के समान्तर माध्य से है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि विचलनों की गणना करते समय गणितीय चिह्न (+ अथवा -) पर ध्यान नहीं दिया जाता है। माध्य विचलन जितना अधिक होता है उस श्रेणी में अपकिरण का फैलाव उतना ही अधिक पाया जाता है। समान्तर माध्य से निर्धारित अथवा गणना किये गये माध्य विचलन को प्रथम घात का अपकिरण *(First Moment of dispersion)* भी कहा जाता है।

परिभाषाएँ (Definitions): माध्य विचलन की प्रमुख परिभाषायें निम्न प्रकार हैं –

क्लार्क एवं शकाडे (Clark and Schakade) के अनुसार, "माध्य विचलन का वितरण के पदों के माध्य अथवा मध्यिका से विचलनों के चिह्नों की उपेक्षा करके ज्ञात विचलनों की माध्य मात्रा है।"

मिल्स (Mills) के शब्दों में, "किसी पद माला का समान्तर माध्य अथवा मध्यिका से लिये गये विचलनों के औसत को माध्य विचलन कहते हैं।"

घोष एवं चौधरी (Ghose and Chowdhry) के अनुसार, "दूसरे शब्दों में एक माध्य से विचलनों के योग को पदों की संख्या से भाग देने पर जो परिणाम प्राप्त होता है उसे माध्य विचलन कहते हैं।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि विचलनों के योग में पदों की संख्या से भाग करके 'माध्य विचलन' ज्ञात कर लेते हैं।

माध्य विचलन की विशेषताएँ
(Characteristics of Mean Deviation)

1. माध्य विचलन गणितीय विधि से ही प्राप्त किया जात है अतएव यह समस्त विचलनों का समान्तर माध्य (Arithmetic Average) होता है।
2. विचलन सम्पूर्ण श्रेणी के पद-मूल्यों में किसी भी माध्य से ज्ञात किये जा सकते हैं चाहे समान्तर माध्य, भूयिष्टक अथवा मध्यिका, कुछ भी हो।
3. विचलनों का माध्य निकालने में केवल समान्तर माध्य ही ज्ञात किया जाता है।
4. मध्यिका से माध्य विचलन बहुत कम से कम होता है, इसे अधिक उपयुक्त माना जा सकता है।
5. इकाई के आकार के साथ-साथ उसकी संख्याओं में भी माध्य विचलन प्रभावित होता है।
6. माध्य विचलन को ग्रीक संकेताक्षर 'δ' (डेल्टा) द्वारा दिखाया जाता है।

7. कभी-कभी अधिक स्पष्टीकरण के लिए, उस माध्य का संकेत भी डेल्टा के नीचे दे देते हैं जिससे माध्य विचलन निकाला गया हो, जैसे δm = मध्यिका *(median)* से माध्य विचलन, इत्यादि।

माध्य विचलन ज्ञात करने की विधि
(Method of Calculation of Mean Deviation)

माध्य-विचलन ज्ञात करने में निम्न तथ्यों को ध्यान में रखा जात है :

1. **माध्य का चुनाव (Selection of Appropriate Average):** माध्य-विचलन भूयिष्ठक, मध्यका एवं मध्यक किसी से भी निकाला जा सकता है परन्तु मध्यका को प्रधानता दी जानी चाहिए क्योंकि इससे निकाले गये विचलनों का प्रयोग सबसे कम होता है। व्यवहार में माध्य विचलन निकालने के लिये मध्यक का भी प्रयोग होता है। भूयिष्ठक का प्रयोग यथासम्भव नहीं करना चाहिये क्योंकि यह बहुत अनिश्चित होता है। यदि प्रश्न में स्पष्ट रूप से यह निर्देष नहीं दिया है किसी माध्य से माध्य-विचलन निकालना है तो मध्यका से ही विचलन निकालने चाहियें।

2. **बीजगणितीय चिन्हों की उपेक्षा (Ignoring Algebric Signs):** मध्य के चुनाव के पश्चात् प्रत्येक मूल्य का माध्य से विचलन निकाल लेते हैं। माध्य-विचलन निकालते समय + तथा - चिन्हों को छोड़ दिया जाता है अर्थात् ऋणात्मक विचलनों (Negative Deviation) को भी धनात्मक (Positive) मान लेते हैं। उदाहरणार्थ, यदि 20 में से 25 घटायेंगे तो - 5 के स्थान पर 5 लिखेंगे। जब विचलन + तथा - को छोड़ कर लिखे जाते हैं तो उसके योग को सीधी रेखाओं के बीच इस प्रकार लिखते हैं $\Sigma|D|$ इसका अर्थ है कि विचलनों का योग करते समय + या - का ध्यान नहीं रखा गया है।

3. **विचलनों का माध्य (Average of Deviations):** विचलनों के योग को मदों की संख्या से भाग देकर जो मूल्य आता है उसे माध्य-विचलन कहते हैं। विच्छिन्न एवं अविच्छिन्न आव त्ति श्रेणियों से विचलनों में आव त्तियों को गुणा देकर योग निकाला जाता है और आव त्ति के योग से भाग दिया जाता है।

माध्य-विचलन गुणांक
(Coefficient of Mean Deviation)

तुलनात्मक अध्ययन के लिये माध्य विचलन का सापेक्ष माप निकाला जाता है जिसे माध्य-विचलन का गुणक कहते है। इसके लिये माध्य विचलन के निरपेक्ष माप का उस माध्य के विचलनों के कुल योग को भाग दिया जाता है जिससे विचलन निकाले गये हैं अर्थात्

(क) Coeffi of mean deviation from median of median coefficient of dispersion =

(ख) Coeffi of mean deviation from mean or mean coefficient or dispersion =

$$\frac{\text{Mean deviation}}{\text{Median}}$$

व्यक्तिगत श्रेणी में माध्य विचलन का निर्धारण
(Computing Mean Deviation in Individual Series)

निम्न सूत्र द्वारा व्यक्तिगत श्रेणी में माध्य-विचलन का निर्धारण किया जाता है :

$$M.D. = \frac{\Sigma |D|}{N}$$

|D| = **(माध्य विचलन) मध्यक या मध्यका से विचलन (+ या - चिन्ह को छोड़े हुए)।** |D| = Deviations from mean or median (ignoring signs).

विधिः

1. **उस माध्य का परिगणन किया जाता है जिससे माध्य विचलन निकालना है - अधिकतर मध्यका का प्रयोग किया जाता है।**
2. **+ और - चिन्हों का छोड़ते हुए मध्यका या अन्य माध्य से विभिन्न मूल्यों के विचलन निकाले जाते हैं।**
3. **इन विचलनों का जोड़ (Σ|D|) प्राप्त किया जाता है।**
4. **विचलनों के योग को मदों की संख्या से भाग देते हैं। प्राप्त भागफल माध्य विचलन होता है। माध्य विचलन गुणक निकालने के लिए माध्य-विचलन को सम्बन्धित माध्य से भाग दे दिया जाता है।**

उदाहरणः 10 **दुकानों पर किसी एक प्रकार के रेडियों की कीमत इस प्रकार है :**

कीमत (रु. में)

Σ $M.D. = \frac{\Sigma |D|}{N}$

210, 220, 225, 225, 225, 235, 240, 250, 270, 280.

माध्य-विचलन तथा माध्य-विचलन गुणक ज्ञात कीजिये।

हलः **माध्य-विचलन का परिगणन**

X	230 से विचलन |D|
210	20
220	10
225	5
225	5
225	5
235	5
240	10
250	20
270	40
280	50
N – 10	|D| = 170

$$M = \text{Size of } \frac{N+1}{2} \text{ th item} = \quad = 5.5 \text{ th item}$$

$$\text{M.D.} = \frac{170}{10} = 17$$

$$\text{Coeff. of M.D.} = \frac{\text{M.D.}}{\text{Median}} = \frac{17}{230} = 0.074$$

विच्छिन्न श्रेणी में माध्य विचलन का परिगणन
(Calculating Mean Deviation in Discrete Series)

विच्छिन्न श्रेणी में निम्न सूत्र द्वारा माध्य-विचलन ज्ञात किया जाता है :

$$\text{माध्य-विचलन} = \frac{\Sigma f\,|D|}{N}$$

विधि:

1. जिस माध्य से माध्य-विचलन निकालना है उसका निर्धारण किया जाता है अर्थात् मध्यक, मध्यका, भूयिष्ठक आदि।
2. प्रत्येक चल-मूल्य का उस माध्य से विचलन निकाल लिया जाता है। अर्थात् |D| ज्ञात किया जाता हैं।
3. विचलनों को आव त्तियों से गुणा करके जोड़ निकाला जाता है अर्थात् $\Sigma f|D|$ ज्ञात करते है।
4. f|D| को आव ति के योग से भाग देते हैं। प्राप्त भागफल माध्य-विचलन कहलाता है।

   माध्य-विचलन गुणक निकालने के लिये निरपेक्ष माप को उस माध्य से भाग दे दिया जाता है जिससे विचलन ज्ञात किये गये हैं।

उदाहरण: निम्न समंकों से माध्य विचलन तथा माध्य-विचलन गुणांक का परिगणन कीजिये :

X	2.5	3.5	4.5	5.5	6.5	7.5	8.5	9.5	10.5
f	2	3	5	6	6	4	6	4	14

हल: माध्य विचलन का मध्यका से परिगणन

X	f	C.f.	|X-7.5| |D|	f|D|
2.5	2	2	5	10
3.5	3	5	4	12
4.5	4	10	3	15
5.5	6	16	2	12
6.5	6	22	1	6
7.5	4	26	0	0
8.5	6	32	1	6
9.5	4	36	2	8
10.5	14	50	3	42
	N = 50			f | D | = 111

अर्थात् मध्यका मूल्य 7.5 है।

माध्य-विचलन

माध्य-विचलन गुणांक $(\text{Coefficient of M.D.}) = \frac{\text{M.D.}}{\text{Median}} = \frac{2.22}{7.5} = 0.296$

उदाहरण: निम्न आव त्ति-वितरण से समान्तर मध्य तथा (समान्तर माध्य के सापेक्ष) मध्य-विचलन ज्ञात किजिए :

X	:	2	4	6	8	10
आव त्ति	:	1	4	6	4	1

हलः समान्तर माध्य तथा माध्य-विचलन का निर्धारण

X	f	fx	(X-6| |D|	f | D |
2	1	2	4	4
4	4	16	2	8
6	6	36	0	0
8	4	32	2	8
10	1	10	4	4
	N = 16	Σ fX = 96		f | D | = 24

$\bar{X} = \frac{\Sigma fX}{N} = \frac{96}{16} = 6$ (Median) = $\frac{N+1}{2}$ th item = $\frac{50+1}{2}$ = 25.5th item; Mean deviation = $\frac{\Sigma f|D|}{N} = \frac{111}{50} = 2.22$

यदि प्रश्न से यह स्पष्ट नहीं है कि विचलन मध्यक से लें या मध्यका से तो हमें मध्यक से ही विलचन लेने चाहियें।

$$\text{M.D.} = \frac{\Sigma f|D|}{N} = \frac{24}{16} = 1.5$$

अविच्छिन्न श्रेणी में माध्य-विचलन का परिगणन
(Calculating Mean Deviation in Continuous Series)

अविच्छिन्न श्रेणी में दो रीतियों द्वारा माध्य-विचलन ज्ञात किया जा सकता है :

1. प्रत्यक्ष रीति (Direct Method)
2. लघु रीति (Short-cut Method)

प्रत्यक्ष विधि (Direct method): प्रत्यक्ष विधि द्वारा माध्य-विचलन निकालते समय प्रत्येक वर्ग के मध्य-बिन्दु ज्ञात किये जाते हैं। मध्य-बिन्दु निकालते ही अखंडित श्रेणी खंडित श्रेणी में बदल जाती है और शेष सभी क्रियायें पूर्ववत रहती हैं। माध्य-विचलन के निर्धारण के लिय निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं :

$$\text{M.D.} = \frac{\Sigma f \mid D \mid}{N}$$

|D| = मध्य-बिन्दुओं का मध्यक : से विचलन (+ या - चिन्ह छोड़कर)

(Deviation of midpoints from median ignoring signs)

निम्न उदाहरण द्वारा यह विधि स्पष्ट हो जायेगी:

यदि हम कोई उभयनिष्ट गुणांक (Common factor) **लेते है तो सूत्र इस प्रकार होगा :**

$$\text{M.D.} = \frac{\Sigma f \mid D \mid}{N} \times C$$

अंक	m	f	e.f.	$\lvert m-54.8\rvert 10$ $\lvert D\rvert$	$f\lvert D\rvert$
10–20	15	2	2	3.98	7.96
20–30	25	6	8	2.98	17.88
30–40	35	12	20	1.98	23.76
40–50	45	18	38	0.98	17.64
50–60	55	25	63	0.02	0.50
60–70	65	20	83	1.02	20.40
70–80	75	10	93	2.02	20.20
80/090	85	7	100	3.02	21.14
		N = 100			$\Sigma fd \lvert D\rvert = 129.48$

मध्यका 50–60 वर्ग में स्थिति है।

$$\text{Med} = L + \frac{N/2 - \text{c.f.}}{f} \times i$$

L = 50, N/2 = 50, C. f. = 38. f = 25, i = 10

$$\text{Med} = 50 + \frac{50 - 38}{25} \times 10 = 50 + 4.8 = 54.8$$

$$\text{M.D.} = \frac{\Sigma f \mid D \mid}{N} \times C = \frac{129.48}{100} \times 10 = 12.948$$

$$\text{Coeff of M.d.} = \frac{\text{M.D.}}{\text{Median}} = \frac{12.948}{54.8} = 0.236$$

लघु विधि (Short cut method): माध्य-विचलन निकालते समय जब मध्यक या मध्यका मूल्य अंशों में आते तो गणन-क्रिया को सरल बनाने के लिए लघु विधि का प्रयोग उचित रहता है।

सूत्र इस प्रकार है :

$$\frac{\text{M.D.}}{\text{(from Median)}} = \frac{\Sigma f_{ma} - \Sigma f_{mb} - (\Sigma f_a - \Sigma f_b) \times \text{Med}}{N}$$

$$\frac{\text{M.D.}}{\text{(from mean)}} = \frac{\Sigma f_{ma} - \Sigma f_{mb} - (\Sigma f_a - \Sigma f_b) \times \overline{X}}{N}$$

विधि

1. वह माध्य (मध्यक मध्यका) निकालते हैं जिससे माध्य-विचलन निकालना होता है।
2. मध्य-बिन्दु (m) और सम्बन्धित आव त्ति (f) को गुणा करते हैं।
3. अपेक्षित माध्य से अधिक मूल्यों व उनकी आव त्तियों के गुणनफलों का योग प्राप्त करते हैं अर्थात् Σfm_a ज्ञात करते हैं।
4. अपेक्षित माध्य से कम मूल्यों तथा उनकी आव त्तियों के गुणनफलों का योग प्राप्त करते हैं अर्थात् f_{mb} ज्ञात करते हैं।
5. अपेक्षित माध्य के बराबर के मूल्य को छोड़ देते हैं।
6. माध्य-मूल्य से अधिक आव त्तियों का योग निकाल लेते हैं अर्थात् fa ज्ञात करते हैं।
7. माध्य-मूल्य के कम आव त्तियों का योग निकाल लेते हैं अर्थात् f_a ज्ञात करते हैं।

उदाहरणः उदाहरण 40 के समंको से लघु विधि का प्रयोग करके माध्य-विचलन ज्ञात कीजिये :

$$\Sigma fm_a = 619; \Sigma fm_b = 274; \Sigma f_a = 62, \Sigma f_b = 38; M = 9; N = 100$$

$$\Sigma$$

$$\text{M.D.} = \frac{\Sigma fm_a - \Sigma fm_b - (\Sigma f_a - \Sigma f_b) \times \text{Median}}{N}$$

$$\text{M.D.} = \frac{619 - 274 - (62 - 38) \times 9}{100}$$

$$= \frac{345 - 216}{100} = \frac{129}{100} = 1.29$$

इससे स्पष्ट है कि दोनों विधियों द्वारा उत्तर एक ही आयेगा

उदाहरणः निम्न समंकों के मध्यका से माध्य विचलन ज्ञात कीजिए-

उम्र वर्षों में	व्यक्तियों की संख्या	उम्र वर्षों में	व्यक्तियों की संख्या
10—20	15	50—60	15
20—30	14	60—70	11
30—40	16	70—80	9
40—50	20		

हल : मध्यका से माध्य विचलन परिगणन

उम्र	मध्य बिन्दु m	f	c.f.	| m − 42.5 | | D|	f | D |
10—20	15	15	15	27.5	412.5

20—30	25	14	29	17.5	245.0
30—40	35	16	45	7.5	120.0
40—50	45	20	65	2.5	50.0
50—60	55	15	80	12.5	187.5
60—70	65	11	91	22.5	247.5
70—80	75	9	100	32.5	292.5
		N = 100			$\sum f \mid D \mid = 1555.0$

मध्यका (Median)

$$\text{Med} = \text{Size of } \frac{N}{2} \text{ th item} = \frac{100}{2} = 50\text{th item}$$

मध्यका 40—50 **वर्ग में स्थित है।**

$$M = L + \frac{N/2 - c.f.}{f} \times i$$

L = 40, N/2 = 50, c.f. = 45, f = 20, i = 10

$$\text{Med} = 40 + \qquad \times 10 = 40 + 2.5 = 42.5$$

माध्य विचलन (Mean Deviation)

$$\text{M. D.} = \qquad = 15.55$$

उदाहरणः उदाहरण 4 **से लघु रीति द्वारा विचलन गुणांक ज्ञात कीजिये :**

माध्य विचलन गुणांक का लघुरीति द्वारा परिगणन

m.	f.	f.m		
15	2	30		(b)
25	6	150	$\sum f_b = 38$	**मध्यका**
35	12	420	$\sum fm_b = 1410$	**वर्ग से**
45	18	810		(a)
55	25	1375		
65	20	1300	$\sum f_a = 62$	**मध्यका**
75	10	750	$\sum fm_a = 4020$	**वर्ग**
85	7	595		**से ऊपर**

M. D. =

$$= \frac{4020 - 1410 - (62 - 38)54.8}{100} = \frac{2610 - (24 \times 54.8)}{100}$$

=

Coeff. of M.D.

$$= \frac{\text{M.D.}}{\text{Median}} = \frac{12.948}{54.8} = 0.236$$

इस विधि द्वारा गणन क्रिया बहुत सरल हो जाती है और उत्तर भी वही आता है जो प्रत्यक्ष विधि द्वारा प्राप्त होता है। जहाँ समान्तर माध्य या मध्यका अंशों में आये वहाँ लघुरीति का प्रयोग करना चाहिए।

माध्य विचलन के गुण
(Merits of Mean Deviation)

(1) इसको समझना सरल है।

(2) इसकी गणना आसान एवं सरल है।

(3) माध्य विचलन सभी पदों पर आधारित होता है।

(4) माध्य विचलन के मान पर न्यूनतम और अधिकतम पदों का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

(5) माध्य विचलन की गणना में किसी भी माध्य का प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन वास्तव में सामानन्तर माध्य और मध्यिका का ही प्रयोग किया जाता है।

(6) इसका बीजगणितिय विवेचन सम्भव है।

(7) यह आर्थिक वाणिज्य एवं सामाजिक क्षेत्रों में काफी योगदान देता है।

माध्य विचलन के दोष
(Demerits of Mean Deviation)

(1) माध्य विचलन की गणना में पदों के माध्य से विचलनों के बीजगणितिय चिन्हों (+ एवं –) को छोड़ दिया जाता है।

(2) यद्यपि यह गणना करने में आसान है लेकिन फिर भी इसका समय और श्रम अधिकता लगता है।

(3) जब बहुलक से माध्य विचलन निकाला जाता है तो इसका परिणाम शुद्ध नहीं होता।

(4) यह प्रभाव विचलन की तरह प्रचलित नहीं है।

(5) यह आगे विश्लेषण के लिए उपयोगी नहीं है।

प्रमाण या मानक विचलन
(Standard Deviation)

इसको प्रमाप विचलन भी कहा जाता है। संकेत के रूप मे इसे S. D. अथवा (Small sigma) से व्यक्त किया जाता है। माध्य विचलन निकालने में एक बड़ा दोष यह रह जाता है। कि हम विचलन के धन. (+) और ऋण (–) चिन्ह पर कोई ध्यान नही देते और विचलन को धनात्मक मान लेते हैं। मानक विचलन में इस दोष को दूर किया जाता है। विचलन के धन (+) और ऋण (–) चिन्हों के अन्तर को समाप्त करने के लिये विचलन का वर्ग (Square) निकाल लिया जाता है और तब मानक विचलन ज्ञात करते हैं।

अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definitions)

मानक विचलन रीति का प्रयोग सर्वप्रथम कार्ल पियर्सन ने किया था। इसकी प्रकृति को स्पस्ट करते हुए एल्हान्स के शब्दों मे कहा जा सकता है कि, **"मानक विचलन अंकगणितीय माध्य से मापे गए विचलनों के वर्गों के माध्य का वर्गमूल होता है।"**

कार्ल पियर्सन (Karl Pearsan) के अनुसार, "प्रमाप विचलन का आशय किसी समंक माला के माध्य से लिये गये विचलनों के वर्गों के समान्तर माध्य के वर्गमूल से है।"

स्पीगल के अनुसार, "प्रमाप विचलन समान्तर माध्य से श्ंखला के विभिन्न मूल्यों के विचलनों के वर्गों के माध्य का वर्गमूल है।"

मानक विचलन की गणना
(Compution of Standard Deviation)

मानक विचलन ज्ञात करने के लिये हम निम्नलिखित गणना करते हैं।

(1) सर्वप्रथम हम समान्तर माध्य से प्राप्त विचलनों का वर्ग (d^2) ज्ञात कर लेते हैं।

(2) विचलनों के वर्गों के वर्गों का योग ज्ञात करते हैं ($\sum d^2$)

(3) इस योग को पदों की संख्या (N) से भाग देते हैं $\frac{\Sigma d^2}{n}$

(4) प्राप्त संख्या का वर्ग मूल ज्ञात कर लेते हैं $\sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}}$

इस प्रकार मानक विचलन का सूत्र है-

$$\text{S. D. or } \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}} \text{ .... (i)}$$

हम d को और अधिक स्पष्ट करने के लिये इसे ($x—M$) लिख सकते हैं इस प्रकार

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma(X-M)^2}{N}}$$

यहाँ σ = मानक विचलन

X — चल राशि अर्थात् पद माला के विभिन्न पद का मान

M = पदों का समान्तर माध्य

N = पदों की कुल संख्या

$d = (x — M)$

सूत्र $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}}$ से मानक विचलन ज्ञान करने को प्रत्यक्ष विधि द्वारा मानक विचलन ज्ञात करना कहा जाता है। यदि गये पदों का समान्तर माध्य पूर्ण संख्या नहीं आती तो d का मान दशमलव में आता है अतः गणना कठिन हो जाती है। इस स्थिति से बचने के लिये हम संक्षिप्त विधि का प्रयोग करते हैं।

संक्षिप्त विधि का सूत्र

$$S.\ D.\ or\ \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma(x-A)^2}{N} - \left\{\frac{\Sigma(x-A)}{n}\right\}^2}$$

इस सूत्र में

x = चल राशि अर्थात् पद माला के विभिन्न पद का मान

A = कल्पित माध्य

N = पदों की कुल संख्या

यदि हम $(x — A)$ को d' से व्यक्त करें तो सूत्र इस प्रकार हो जायेगा।

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}\left(\frac{\Sigma d}{N}\right)^2}$$

...(ii)

मानक विचलन ज्ञात करने के लिये सूत्र (i) और सूत्र (ii) का प्रयोग सरल श्रेणी (Simple Series) के लिये किया जाता है। खण्डित श्रेणी (Discrete Series) तथा सतत श्रेणी (Continuous Series) में मानक विचलन (S. D.) ज्ञात करने के लिये इन सूत्रों में थोड़ा परिवर्तन हो जाता है-

उदाहरणः निम्नांकित श्रेणी में 10 विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त अंक अंकित किए गए हैं। प्रत्यक्ष विधि से मानक विचलन की गणना कीजिए :

विद्यार्थी	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
प्राप्तांक	60	60	61	62	63	63	63	64	64	70

हल :

प्राप्तांक (m)	**समान्तर माध्य से विचलन (63) d**	**विचलनों के वर्गफल (d^2)**
60	-3	9
60	-3	9
61	-2	4
62	-1	1
63	0	0
63	0	0
63	0	0
64	+1	1
64	+1	1
70	+7	49
$\Sigma m = 630$		$\Sigma d^2 = 74$

N = 10

$\therefore M = \dfrac{630}{10}$ $\qquad \therefore S.D. = \sqrt{\dfrac{\Sigma d^2}{N}}$

$M = 63$ $\qquad = \sqrt{\dfrac{74}{10}} = \sqrt{7.4}$

$= 2.72$

$\therefore$ मानक विचलन 2.72 = प्राप्तांक

उदाहरण निम्नांकित श्रेणी में 10 विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त अंक अंकित किए गए हैं। संक्षिप्त विधि से मानक विचलन की गणना कीजिए :

विद्यार्थी	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
प्राप्तांक	60	60	61	62	63	63	63	64	64	70

हल :

प्राप्तांक (m)	**कल्पित माध्य से पद मूल्य का विचलन** (m–A) = d	**विचलनों का वर्गफल** (d^2)
60	-2	4
60	-2	4
61	-1	1
62A	+1	1
63	+1	1
63	+1	1
63	+1	1
64	+2	4
64	+2	4
70	+8	64
$\Sigma m = 630$	$\Sigma d = +15$ $\dfrac{-5}{+10}$	$\Sigma d^2 = 82$

N = 10

$\therefore M = \qquad = 63$

सूत्र के आधार पर : $S.D. = \sqrt{\dfrac{\Sigma d2}{N} - \left(\dfrac{\Sigma d}{N}\right)}$

$= \sqrt{\dfrac{84}{10} - \left(\dfrac{10}{10}\right)^2}$

$=\sqrt{8.4-1}$

$=\sqrt{7.4}$

= 2.72

∴ **S. D. = 2.72 उत्तर**

विच्छिन्न श्रेणी में प्रमाप विचलन का परिगणन
(Calculating Standard Deviation in Discrete Series)

विच्छिन्न श्रेणी में प्रमाम विचलन प्रत्यक्ष तथा लघु दोनों रीतियों से ज्ञात किया जा सकता है लेकिन व्यवहार में लघु विधि का ही अधिकतर प्रयोग किया जाता है। यदि मध्यक पूर्णांक नहीं है तो प्रत्यक्ष रीति के प्रयोग से गणन क्रिया जटिल हो जाती है। इससे पहले से ही कल्पित मध्यक लेकर लघु विधि का प्रयोग करते हैं। जब प्रत्यक्ष विधि का प्रयोग होता है तो सूत्र इस प्रकार होगाः

$$\sigma=\sqrt{\frac{\Sigma fx^2}{N}}$$

$x = (x - \overline{X})$ अर्थात् श्रेणी के मूल्यों का मध्यक से विचलन

पदमाला के प्रत्येक मूल्य का मध्यक से विचलन लेकर उसका वर्ग निकाला जाता है। इन वर्गों को प्रत्येक मद की आव त्ति से गुणा किया जाता है और $\sum fx^2$ ज्ञात किया जाता है $\sum fx^2$ की आव त्ति के योग अर्थात् N से भाग देकर भागफल का वर्ग मूल्य निकालते हैं और यही प्रमाप विचलन होता है :

$$\sigma=\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}-\left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2}$$

जब लघु विधि का प्रयोग किया जाता है तो सुत्र इस प्रकार होता है :

d = (X – A) अर्थात् मूल्यों का कल्पित मध्य विगलन

M = $\sum f$ अर्थात् मदो की संख्या

विधि

(1) पदमाला के मूल्यों में से किसी मूल्य को कल्पित मध्यक मान लेते हैं।

(2) इस कल्पित मध्यक से मदमाला के प्रत्येक मूल्य का विचलन निकालते हैं :

(3) विचलनों को उनसे सम्बन्धित आव त्ति से गुणा करके गुणन फलों को योग कर लेते हैं अर्थात् $\sum fd$ निकालते हैं।

(4) विचलनों व आव त्तियों की गुणाओं मे फिर विचलनों को गुणा देकर इन गुणनफलों का भी जोड़ निकाल लेते हैं अर्थात् $\sum fd^2$ ज्ञात करते हैं।

(5) अन्त में, उपर्युक्त सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण निम्न सूचना से प्रमाप विचलन निकालिये :

मूल्यः	6	7	8	9	10	11	12
बारम्बारता :	3	6	9	13	8	5	4

हल : **प्रमाप विचलन का परिगणन**

x	f	(X–9) d	fd	fd^2
6	3	–3	–9	27
7	6	–2	–12	24
8	9	–1	–9	9
9	13	0	0	0
10	8	+1	+8	9
11	5	+2	+10	20
12	4	+3	+12	36
	N = 48		∑fd = 0	$\sum fd^2$ = 124

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2} = \sqrt{\frac{124}{48} - \left(\frac{0}{48}\right)^2} = \sqrt{2.583} = 1.607$$

अविच्छिन्न श्रेणी में प्रमाप विचलन का निर्धारण
(Calculating Standard Deviation in Continuous Series)

अविच्छिन्न श्रेणी में प्रमाप विचलन ज्ञात करने की निम्न विधियां हैं :

(1) प्रत्यक्ष विधि (Direct Method);

(2) लघु विधि (Short-cut Method), तथा

(3) पद-विचलन विधि (Step Deviation method), तथा

व्यवहार के सबसे अधिक पद-विचलन विधि को प्रयोग किया जाता है क्योंकि इससे गणन-क्रिया बहुत सरल हो जाती है।

प्रत्यक्ष विधि (Direct Method): इस विधि के अनुसार सर्वप्रथम मध्यक ज्ञात किया जाता है। प्रत्येक मध्य-बिन्दु में ये मध्यक घटाकर विचलन ज्ञात किये जाते हैं। शेष सभी क्रियाएँ वैसे ही रहती हैं जैसे विच्छिन्न श्रेणी में। सूत्र इस प्रकार है :

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fx^2}{N}}$$

$x = (m - \overline{X}$ अर्थात् मध्य-बिन्दुओं का समान्तर माध्य से विचलन

लघु विधि (Short-cut method): इस विधि के अनुसार गणन-क्रिया बिल्कुल वही है जो खण्डित श्रेणी में हैं। केवल पदमला के विभिन्न मूल्यों के स्थान मध्य-बिन्दुओं का प्रयोग होता है। सूत्र वहीं है जो खण्डित में प्रयुक्त होता है, अर्थात्

d = (m – A) अर्थात् मध्य-बिन्दुओं का कल्पित समान्तर माध्य से विचलन

पद विचलन विधि (**Step-deveiation method**): पद विचलन विधि से प्रमाप विचलन ज्ञात करते समय एक उभनिष्ठ गुणक लिया जाता है। प्रत्येक मध्य-बिन्दु से कल्प्ति मध्यक घटाकर उभयनिष्ठ गुणक से भाग दिया जाता है अर्थात् $\left(\frac{m-A}{C}\right)$ ज्ञात करते हैं। इन विचलनों को **d'** से प्रदर्शित करते हैं। शेष क्रिया ऊपर के सूत्र से समान ही है। पद-विचलन विधि से प्रमाप विचलन निकालते समय निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है :

$$\sigma\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}-\left(\frac{\Sigma fd^1}{N}\right)^2}\times C$$

$$d'=\frac{(m-A)}{C}$$; C = उभयनिष्ठ गुणक (Common Factor)

अधिकांशतः अविच्छिन्न श्रेणी में पद विचलन विधि का प्रयोग होता है।

उदाहरण निम्न समकों से प्रमाप विचलन ज्ञात कीजिये।

आयु	व्यक्तियों की संख्या	आयु	व्यक्तियों की संख्या
20—30	3	60—70	140
30—40	61	70—80	51
40—50	132	80—90	2
50—60	153		

$$\sigma=\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}-\left(\frac{\Sigma fd}{n}\right)^2}$$

(बी. कॉम. मेरठ, 1982)

हल : **प्रमाप विचलन का परिगणन**

आयु	मध्य-बिन्दु m	आव त्ति f	(m – 55)/10 d'	fd'	fd'^{2}
20—30	25	3	–3	–9	27
30—40	35	61	–2	–122	244
40—50	45	132	–1	–132	132
50—60	55	153	0	0	0
60—70	65	140	+1	+140	140
70—80	75	51	+2	+102	204
80—90	85	2	+3	+6	18
		N = 542		Σfd' = 15	Σfd'^{2} = 765

$$\sigma=\sqrt{\frac{\Sigma df'^2}{N}-\left(\frac{\Sigma fd'}{N}\right)^2}\times C=\sqrt{\frac{765}{542}-\left(\frac{-15}{542}\right)^2}\times 10$$

$$=\sqrt{1.411-0.001}\times 10=\sqrt{1.41}\times 10=1.187\times 10=11.87$$

प्रमाप विचलन के गुण
(Merits of S.D.)

(1) इसको समझना सरल है।

(2) इसकी गणना करते सयम बीजगणितिय चिन्हों (+, –) को छोड़ा नहीं जाता है।

(3) यह सभी पदों पर आधारित होता है।

(4) प्रमाप विचलन के मान पर न्यूनतम एवं अधिकतम पदों का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

(5) विभिन्न मापों की अर्थ पूर्णता की जाँच *(Tests of Significnce)* में प्रमाप विचलन अत्यन्त उपयोगी है।

(6) इसका बीजगणितीय विवेचन योग्य है।

(7) यह स्पष्ट रूप से परिभाषित है।

(8) न्यादर्श में परिवर्तन का इस पर कम प्रभाव पड़ता है।

प्रमाप विचलन के दोष
(Demerits of S.D.)

(1) इसकी गणना करने में काफी समय व श्रम लगता है।

(2) कुछ परिस्थितियों में यह न्यूनतम और अधिकतम मूल्यों से अवांछनीय रूप से प्रभावित हो जाता है।

अध्याय - 15

सहसम्बन्ध

(Correlation)

पिछले अध्यायों में तथ्यों को प्रस्तुत करने के चित्रमय तथा बिन्दु-रेखीय (Graphic) प्रणालियों के बारे में हमने विवेचना की है। इस प्रकार तथ्यों को प्रस्तुत करने का उद्देश्य विभिन्न तथ्यों को एक संक्षिप्त और स्पष्ट रूप देना तथा उनकी तुलनात्मक स्थिति को स्पष्ट करना है। इन्हीं उद्देश्यो की पूर्ति केन्द्रीय प्रव त्तियों को सही-सही तौर पर मापता है और साथ ही उनको एक अत्यन्त संक्षिप्त रूप दे देता है। परन्तु केवल एकत्रित तथ्यों को संक्षिप्त कर देने से ही तथ्यों का विश्लेषण और परिणाम प्राप्त होते हैं जो अधिक उपयोगी नहीं होते हैं। इन्हें अधिक उपयोगी बनाने के लिये यह आवश्यक है कि तथ्यों की विभिन्न श्रेणियो के बीच पाये जाने वाले पारस्परिक सम्बन्ध को भी स्पष्ट किया जाए। सह सम्बन्ध की प्रविधि इस उद्देश्य की पूर्ति करती है, पर इस सम्बन्ध में और कुछ लिखने से पहले सह-सम्बन्ध के अर्थ को समझ लेना आवश्यक है।

सह-सम्बन्ध की परिभाषाएँ
(Definition of Correlation)

किंग (King) के अनुसार, "दो पदमालाओं अथवा समूहों के बीच पाये जाने वाले कार्य-कारण सम्बन्ध को सह-सम्बन्ध कहते हैं।" इन्होंने एक अन्य स्थान पर सह-सम्बन्ध को दूसरे क्षेत्र से परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "यदि यह सच प्रमाणित हो कि अधिकांश क्षेत्रों में दो चल सदैव एक ही दिशा में या विपरीत दिशा में घटते-बढ़ते हों तो हम यह मानते हैं कि तथ्य निर्धारित हो गया और उनमें सम्बन्ध विद्यमान है। इस सम्बन्ध को हम सह-सम्बन्ध कहते हैं।"

बॉउले (Bowley) के शब्दों मे "जब दो परिमाण इस प्रकार सम्बन्धित हों कि एक का परिवर्तन दूसरे के परिवर्तन की सहानुभूति में पाया जाता है, ताकि एक की व द्धि या कमी या विपरीत के सम्बन्ध में हो और एक के परिवर्तन की मात्रा जितनी अधिक हो उतनी ही दूसरे की हो तब दोनों परिमाण सह-सम्बन्धित कहलाते हैं।"

कॉनर (Conner) ने लिखा है कि, "जब दो या अधिक परिमाण सहानुभूति में परिवर्तित होते हैं ताकि एक के परिवर्तन के परिणामस्वरूप दूसरे में भी परिवर्तन होता है तो वे सह-सम्बन्धित कहलाते हैं।"

गिलफोर्ड (Gilford) के शब्दों में, "सह-सम्बन्ध गुणांक एक अंक है जो हमें यह बताता है कि किस सीमा तक दो वस्तुएँ सम्बन्धित हैं, एक में विचरण होने पर दूसरी वस्तु में किस सीमा तक विचरण होगा।"

सहसम्बन्ध के प्रकार
(Kinds of Correlation)

चल-मूल्यों के परिवर्तन की दिशा, अनुपात, तथा मालाओं की संख्या के आधार पर सहसम्बन्ध के निम्न भेद हैं :

1. **धनात्मक एवं ऋणातमक सहसम्बन्ध (Positive and Negative Correlation):** चल-मूल्यों के परिवर्तनों की दिशा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सहसम्बन्ध ऋणात्मक है या धनात्मक। यदि दोनों समंकमालाओं में एक ही दिशा में परिवर्तन हो रहा है अर्थात् एक में व द्धि (या कमी) होने से दूसरी श्रेणी में भी व द्धि या कमी होती है तो ऐसा सहसम्बन्ध धनात्मक (Positive) या प्रत्यक्ष (Direct) कहलाता है। उदाहरणार्थ, यदि अन्य बातें समान रहें तो किसी वस्तु की मांग के कम होने से उसका मूल्य कम हो जाता है और बढ़ने से अधिक हो जाता है अर्थात् मांग और मूल्य में धनात्मक सहसम्बन्ध है।

   जब एक समंकमाला में परिवर्तन होने से दूसरी सम्बद्ध श्रेणी में विपरीत दिशा में परिवर्तन होता है तो उसका सहसम्बन्ध ऋणात्मक (Negative) या अप्रत्यक्ष (Indirect) कहलाता है। ऋणात्मक सहसम्बन्ध में यदि एक श्रेणी में मूल्य बढ़ते हैं तो दूसरी के कम होते हैं, यदि एक श्रेणी के मूल्य कम होते हैं तो दूसरी के बढ़ते हैं। अन्य बातें समान रहने पर वस्तु की पूर्ति में व द्धि होने से उसके मूल्य में कमी हो जाती है और पूर्ति घट जाने से उसका मूल्य बढ़ जाता है अर्थात् वस्तु की पूर्ति और मूल्य में ऋणात्मक सहसम्बन्ध है।

2. **सरल, बहुगुणी एवं आंशिक सहसम्बन्ध (Simple, Multiple and Partial Correlation):** दो चल-मूल्यों (Two Variables) के बीच पायें जाने वाले सहसम्बन्ध को सरल सहसम्बन्ध (Simple Correlation) कहते हैं। जब दो से अधिक चल-मूल्यों मे सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है वह बहुगुणी हो सकता है या आंशिक। बहुगुणी सहसम्बन्ध तब होता है जब दो या दो से अधिक स्वतन्त्र चल-मूल्य होते है और आश्रित चल-मूल्य केवल एक होता है। इन सभी स्वतन्त्र चल-मूलों का आश्रित चल-मूल्य पर प्रभाव पड़ता है। आंशिक सहसम्बन्ध के अन्तर्गत दो से अधिक चल-मूल्यों का अध्ययन किया जाता है। परन्तु अन्य चल-मूल्यों के प्रभाव को स्थिर रखकर केवल दो चल-मूल्यों का पारस्परिक सहसम्बन्ध निकाला जाता है। सरल, बहुगुणी एवं आंशिक सहसम्बन्ध में अन्तर निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा। यदि वर्षा की मात्रा और गेहूं की उपज के सम्बन्ध का अध्ययन किया जाये। वह सरल सहसम्बन्ध कहलायेगा। यदि वर्षा की मात्रा और तापमान दोनों के सामूहिक प्रभाव का गेहूं की उपज पर गणितीय अध्ययन किया जाये तो वह बहुगुणी सहसम्बन्ध कहलायेगा। यदि एक स्थित तापक्रम में वर्षा की मात्रा और गेहूं की उपज के सम्बन्ध का अध्ययन किया जाये तो यह आंशिक सहसम्बन्ध कहलायेगा।

3. **रेखीय तथा अरेखीय सहसम्बन्ध (Linear and Curvilinear Correlation):** रेखीय सहसम्बन्ध में एक चल के परिवर्तन की मात्रा दूसरे चल के परिवर्तन की मात्रा से स्थायी अनुपात रखती हैं। 'उदाहरणार्थ' यदि किसी वस्तु के मूल्य में 10% व द्धि होने से उनकी मांग में सदा 5% की कमी होती है तो उनमें रेखीय सहसम्बन्ध हुआ। रेखीय सहसम्बन्ध वाले चल-मूल्यों को बिन्दुरेख पर अंकित करने से एक सरल रेखा बन जाती है। इस प्रकार के सहसम्बन्ध के बहुत ही कम उदाहरण मिलेंगे-सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र में अधिकतर वक्र-रेखीय सहसम्बन्ध पाया जाता है-भौतिक व पूर्ण विज्ञानों में रेखीय सहसम्बन्ध के उदाहरण मिलते हैं निम्न समंकों को देखिये :

मूल्यः	10	20	30	40	50
प्राप्तांक :	70	140	210	280	350

दोनों श्रेणियों के परिवर्तन का अनुपात स्थायी है, अर्थात् दोनों श्रेणियों का सहसम्बन्ध रेखीय है। जब परिवर्तन का अनुपात स्थायी नहीं रहता तब सहसम्बन्ध को अरेखीय या वक्र रेखीय (Non-linear or curvilinear) कहते है। उदाहरणार्थ, यदि वस्तु में मूल्य में 10% व द्धि होने से उसकी मांग में कभी 50% की कमी हो जाती है, कभी 60% और कभी 80% की, तो वस्तु के मूल्य और मांग का सहसम्बन्ध वक्र रेखीय कहलायेगा। ऐसी स्थिति में रेखाचित्र पर चल-मूल्यो को प्रांकित करने से एक वक्र रेखा बनती है इसलिए इसे वक्र रेखीय सहसम्बन्ध कहते हैं।

सहसम्बन्ध की मात्रा
(Degree of Correlation)

सहसम्बन्ध की मात्रा सहसम्बन्ध गुणांक (Coefficient of Correlation) द्वारा ज्ञात की जाती है। इसके आधार पर धनात्मक और ऋणात्मक सहसम्बन्ध के निम्न परिणाम हो सकते हैं :

(1) **पूर्ण सहसम्बन्ध (Perfect Correlation):** पूर्ण सहसम्बन्ध उस स्थिति में होता है जब दो चल-मूल्यों के परिवर्तन समान अनुपात में हों। पूर्ण सहसम्बन्ध ऋणात्मक या धनात्मक हो सकता है। जब दो मूल्यों के परिवर्तन अनुपात में तथा एक ही दिशा में हों तो उनमें पूर्ण धनात्मक सहसम्बन्ध होता है। ऐसी स्थिति में सहसम्बन्ध गुणांक का मूल्य +1 होगा। जब दो मालाओं के परिवर्तन समान अनुपात, परन्तु विपरीत दिशा में हों तो उनमें पूर्ण ऋणात्मक सहसम्बन्ध होता है तथा उसका गुणांक–1 होता है।

(2) **सहसम्बन्ध की अनुपस्थिति (Absence of Correlation):** जब दो श्रेणियों में परस्पर बिलकुल भी आश्रितता न पाई जाये तो उस स्थिति में सहसम्बन्ध का अभाव होता है। ऐसी स्थिति में गुणांक शुन्य (Zero) होता है।

(3) **सहसम्बन्ध की सीमित मात्रा (Limited Degree of Correlation):** पूर्ण सहसम्बन्ध के अभाव के बीच सीमित मात्रा का धनात्मक या ऋणात्मक सहसम्बन्ध होता हैं। व्यावसायिक सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों मे अधिकतर सीमित मात्रा का सहसम्बन्ध होता हैं इन परिस्थितियों में सहसम्बन्ध 0 से अधिक किन्तु 1 से कम होता है। सीमित सहसम्बन्ध के तीन परिणाम हो सकते हैं :

(i) **उच्च (High):** उच्च-स्तरीय सहसम्बन्ध की दशा में उसका गुणांक 0.7 और 0.999 के बीच होता है। गुणांक का चिन्ह + होने पर उच्च धनात्मक सहसम्बन्ध तथा - होने पर उच्च ऋणात्मक सहसम्बन्ध होता है।

(ii) **मध्यम (Medium):** मध्यम सहसम्बन्ध को दशा में उसका गुणक 0.5 और 0.699 के बीच होता हैं मध्यम सहसम्बन्ध भी धनात्मक या ऋणात्मक हो सकता है। उदाहरणार्थ, यदि सहसम्बन्ध गुणक का मूल्य - 0.4 है तो मध्यम धनात्मक सहसम्बन्ध कहेंगे।

(iii) **निम्न (Low):** निम्न सहसम्बन्ध की दशा मे उसका गुणक 0.5 से कम होता हैं। यह भी धनात्मक और ऋणात्मक हो जाता है।

निम्न सारणी से सहसम्बन्ध की मात्रा स्पष्ट हो जाती है :

सहसम्बन्ध की मात्रा
(Degree of Correlation)

वर्णन	धनात्मक	ऋणात्मक
पूर्ण (Perfect)	+1	–1
उच्च (High)	+0.7 और +0.999 के बीच	–0.7 और –0.999 के बीची
मध्यम (Medium)	+0.5 और +0.699 के बीच	–0.5 और –0.699 के बीच
निम्न (Law)	+0.5 से कम	–0.5 से कम
सहसम्बन्ध की अनुपस्थिति (Absence of correlation)	0	0

सह-सम्बन्ध ज्ञात करने की विधियाँ
(Methods of Measurement of Correlation)

सह-सम्बन्ध ज्ञात करने की प्रमुख विधियां इस प्रकार हैं :

1. बिन्दु रेखीय विधि (The Graphic Method)
2. बिन्दु चित्र विधि (Dot Diagram Method)
3. कार्ल-पियर्सन का सह-सम्बन्ध गुणांक (Karl Pearson's Co-efficient of Correlation)
4. संगामी विचलन गुणांक (Co-efficient of Concurrent Deviation)
5. स्पीयरमैन की श्रेणी अन्तर विधि (Spearman's Ranking Method)
6. न्यूनतम वर्ग विधि (Least Square Method)

1. **बिन्दु रेखीय विधि (The Graphic Method):** इस विधि के अनुसार ग्राफ-पेपर पर दोनों चलों को बिन्दु रेखा के रूप में प्रकट किया जाता है। रेखाओं के घटने व बढ़ने की प्रव त्ति के अनुसार ही यह अनुमान लगाया जाता है कि दो श्रेणियों मे सह-सम्बन्ध है या नहीं अथवा धनात्मक है या ऋणात्मक। यह प्रविधि इतनी वैज्ञानिक नहीं कही जा सकती है क्योंकि इसके द्वारा सह-सम्बध की दिशा व प्रव त्ति का ज्ञान नहीं हो पाता है।

2. **विशेष या बिन्दु चित्र विधि (Dot Diagram Method):** यह प्रविधि भी बिन्दु रेखीय विधि से बहुत कुछ मिलती-जुलती है चूंकि इस रीति द्वारा भी सह-सम्बन्ध का अनुमान लगाया जा सकता है। उसका अंकात्मक माप प्राप्त नहीं हो पाता इसलिये इसका प्रयोग भी सामान्यतः कम किया जाता है।

3. **कार्ल-पियर्सन का सह-सम्बन्ध गुणांक (Karl Pearson's Co-efficient of Correlation):** सह सम्बन्ध की गणना के लिए कार्ल-पियर्सल द्वारा प्रस्तुत सूत्र सर्वश्रेष्ठ माना जाता हैं कार्ल-पियर्सन के सूत्र के अनुसार दो चलों का सह-सम्बन्ध गुणांक उनके माध्यों से लिए गए विचलनों के गुणनफल के योग को निरीक्षण के युग्मों ओर उनके मानक विचलनो के गुणनफल से विभाजित करके प्राप्त होने वाली संख्या हैं।

   कार्ल-पियर्सन के सूत्रों के अनुसार सह-सम्बन्ध गुणांक निकालने के लिए दो विधियों का प्रयोग किया जाता है-(i) प्रत्यक्ष विधि (Direct Method), (ii) संक्षिप्त विधि (Short-cut-Method) इन विधियों में अलग-अलग सूत्रों को काम में लाया जाता है।

प्रत्यक्ष विधि से कार्ल-पियर्सन के सह-सम्बन्ध की गणना
(Calculation of Karl Pearson's Co-efficient of Correlation by Direct Method)

प्रत्यक्ष विधि से सह-सम्बनध गुणांक की गणना निम्न प्रकार से की जाती है।

(i) सबसे पहले दोनों श्रेणियों का समान्तर माध्य निकाला जाता है।

(ii) उनके बाद दोनों श्रेणियों में समान्तर माध्य से व्यक्तिगत मूल्यों के विचलन ज्ञात किए जाते हैं प्रथम श्रेणी के विचलनों को (dy) कहते हैं।

(iii) विचलन ज्ञात करने के पश्चात परस्पर सम्बन्धित विचलनों की गणना की जाती है तथा जोड़ (Σdxdy) प्राप्त कर लिया जाता है।

(iv) (x) श्रणी के विचलनों का वर्ग करके उनका योग ज्ञात कर लिया जाता है। ठीक यही क्रिया (y) श्रेणी के साथ करके निकाला जाता है।

(v) दोनो श्रेणियों (x) तथा (y) के अलग-अलग प्रमाण विचलन निकाल लिए जाते हैं।

(vi) अन्त में निम्न सूत्र की सहायता से सह-सम्बन्ध की गणना की जाती है;

$$y = \frac{\Sigma xy}{\sqrt{\Sigma x^2 \times \Sigma y^2}}$$

उदाहरण : निम्न आंकड़ों की मदद से पति ओर पत्नी की आयु के सह-सम्बन्ध की गणना कीजिए :

पति की आयु :	23	27	28	28	29	30	31	33	35	36
पत्नी की आयु :	18	20	22	27	21	29	27	29	28	29

हल :

पति की उम्र (m^1)	औसत लम्बाई से विचलन (x)	विचलन का वर्ग (x^2)	पत्नी की उम्र (m_2)	औसत लम्बाई से विचलन (y)	विचलन का वर्ग (y^2)	विचलन का गुणनफल (xy)
22	–7	49	18	–7	49	+49
27	–3	9	20	–5	25	+15
28	–2	4	22	–3	9	+6
28	–2	4	27	+2	4	–4
29	–1	1	21	–4	16	+4
30	0	0	29	+4	16	0
30	+1	1	27	+2	4	+2
33	+3	9	29	+4	16	+12
35	+5	25	28	+3	9	+15
36	+6	36	29	+4	16	+24
$\Sigma m_1 = 300$	$\Sigma x^2 = 1$	38	$\Sigma m_2 = 250$		$\Sigma y^2 = 164$	$\Sigma xy = 123$

N = 10 N = 10

$M = \frac{300}{10}$ $M = \frac{\Sigma m_2}{N}$

$= 30$ $= \frac{250}{10} = 25$

सुत्र के आधार पर : $y = \frac{\Sigma xy}{\sqrt{\Sigma x^2 \times \Sigma y^2}}$

$= \frac{123}{\sqrt{138 \times 164}}$

$= \frac{123}{\sqrt{22632}}$

$= \frac{123}{150.255} = +.25$ **उत्तर**

संक्षिप्त विधि द्वारा हल

(Short-cut Method)

प्रत्यक्ष विधि के प्रयोग करने में एक कठिनाई अधिकतर यह आती है कि जब कभी समान्तर माध्य पूर्णांक न होकर दशमलव में आता है, तो विचलन लेते समय गणन-क्रिया अत्यन्त जटिल हो जाती है। इस समस्या को दूर करने के लिए संक्षिप्त विधि में विचलन समान्तर माध्य से न लेकर कल्पित माध्य से लिए जाते हैं। शेष प्रक्रिया लगभग वही रहती है।

Example. **नीचे दिए गए आकड़ों की मदद से छात्रों की ऊंचाई तथा भार में सह-सम्बन्ध की गणना कीजिए :**

ऊंचाई	:	57	59	62	63	64	65	55	58	57
भार	:	113	117	126	126	130	129	111	116	112
हल	:									

ऊंचाई (x)	dx from (59)	d^2x	**भार** (y)	dy from (126)	d^2y	Product dxdy
57	–2	4	113	13	169	26
59	0	0	117	–9	81	0
62	+3	9	126	0	0	0
63	+4	16	126	0	0	0
64	+5	25	130	+4	16	20
65	+6	36	129	+3	9	18
55	–4	16	111	15	225	60
58	–1	1	116	–10	100	10
57	–2	4	112	–14	196	28
N = 9	$\Sigma dx = 9$	$\Sigma d^2x = 111$	N = 9	$\Sigma dy = 54$	$\Sigma d^2y = 796$	$\Sigma dxdy = 162$

$$y = \frac{\Sigma dxdy \times n - (\Sigma dx)\,(\Sigma dy)}{\sqrt{\Sigma d^2x \times n - (\Sigma dx)^2}\,\sqrt{\Sigma d^2y \times n - (\Sigma dy)^2}}$$

$$= \frac{162 \times 9 - (9) \times (-54)}{\sqrt{111 \times 9 - (9)^2}\,\sqrt{796 \times 9 - (-54)^2}}$$

$$= \frac{1458 + 486}{\sqrt{999 - 81}\,\sqrt{7164 - 2916}}$$

$$= \frac{1944}{\sqrt{918}\,\sqrt{4248}}$$

$$= \frac{1944}{\sqrt{3899664}}$$

$$= \frac{1944}{1974.8}$$

= + .98 **उत्तर**

4. संगामी विचलन विधि
(Concurrent Deviation Method)

यह विधि कार्ल-पियर्सन की विधि से कुछ अधिक सरल है लेकिन इसका एक दोष यह है कि यह केवल सह-सम्बन्ध की दिशा की ओर संकेत करती है। इस विधि से सह-सम्बन्ध के परिमाण का ज्ञान नहीं हो सकता है।

परिगणन विधि

(क) इसमें सबसे पहले विचलन मालूम किए जाते हैं। विचलन मालूम करने की विधि यह है कि प्रत्येक पद का विचलन उससे पिछले पद के मूल्य पर आधारित होता है। यदि किसी पद का मूल्य उससे पिछले पद के मूल्य से अधिक है तो उस पद का विचलन (+) होगा और अगर कम है तो विचलन (–) होगा और अगर बराबर है तो विचलन (=) लिखा जाएगा

(ख) इसके बाद (x) तथा (y) श्रेणी के तत्सम्बन्धी विचलनों की गुणा करके घनात्मक गुणनफलों को गिन लिया जाता है। इसी को संगामी विचलनों की संख्या कहते हैं। संगामी विचलनो की संख्या की गणना करते समय केवल सामान्य चिन्हों की गुणा को ही लिया जाता है, अर्थात् केवल धनात्मक गुणनफल।

(ग) तत्पश्चात् निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है :

$$RE = \pm\sqrt{\pm\left(\frac{2C - N}{N}\right)}$$

RE = Co-Efficient of Correlation.

N = Number of Pairs of Deviation

C = Number of Concurrent Deviation.

सूत्र में प्रयुक्त चिन्हों (±) का स्पष्टीकरणः सूत्र में प्रयुक्त (±) के चिन्हों के कारण एक सन्देह यह होता है कि किस चिन्ह का प्रयोग कब करना चाहिए क्योंकि सूत्र दोनों चिन्हों को स्वीकार करता है। इसका आधार यह है कि यदि संगामी विचलनों की सख्यां अर्थात् C का दुगना (2C), पदों की संख्या (N—1) से कम है तो 2C—N का मूल्य ऋणात्मक होता है, ऐसी परिस्थिति मे दोनों जगहो पर अर्थात् करणी (√) के बाहर व अन्दर 'ऋण चिन्ह' का प्रयोग किया जायेगा। ऐसा करने पर अन्दर वाला ऋण चिन्ह स्वतः ही धनात्मक हो जायेगा और वर्गमूल आसानी से निकल आता है। करणी (√) के बाहर का चिन्ह उसे पुनः ऋणात्मक बना देता है जिससे उत्तर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

Example : Calculate the Co-efficient of Correlation between supply and prices by the method of Concurrent devation.

Heights	:	1954	1955	1956	9157	1958	1959	1960
Weight	:	150	154	160	172	160	165	180
Price	:	200	180	170	160	190	180	172

Solution : Computation of Co-effiecient of Correlation of Concurrent Deviations.

Year	x-series	Deviation Symbols	y-series	Deviation Symbols (xy)	Product of Deviations
1954	150	+	200		
1955	154	+	180	–	–
1956	160	+	170	–	–
1957	172	+	160	–	–
1958	160	–	190	+	–
1959	165	+	180	–	–
1960	180	+	172	–	–
		n = 6			C = 0

यहाँ (2C – N) ऋणात्मक होने के कारण सूत्र में (–) चिन्हों का प्रयोग होगा।

$$RE = -\sqrt{-\left(\frac{2C-N}{N}\right)} \text{ or } = -\sqrt{-\left(\frac{2\times0-6}{6}\right)}$$

$$= \sqrt{-(-1)} \quad \text{or} = -\sqrt{+1} \quad \therefore re = -1$$

5. स्पियरमैन की श्रेणी-अन्तर विधि (Spearman's Rank Difference Method)

स्पियरमैन द्वारा प्रतिपादित श्रेणी-अन्तर विधि, गणना की द ष्टि से अत्यधिक सरल है। इसकी परिगणन विधि निम्न प्रकार से हैः

(a) सबसे पहले विचलन मालूम करने के लिए (x) तथा (y) श्रेणी के पद मूल्यों को अलग-अलग क्रम प्रदान किए जाते हैं। सबसे बड़ी संख्या को क्रम 1, उससे छोटी से 2, उससे छोटी को 3, तथा शेष इसी प्रकार क्रम निश्चित किए जाते हैं।

(b) (x) श्रेणी के क्रमों से (y) श्रेणी के तत्सम्बन्धी क्रमों को घटाकर क्रमान्तरों के अन्तर की गणना कर ली जाती है।

(c) क्रमान्तरों का वर्ग निकाल कर उनका योग Σd^2 निकाला जायेगा

(d) अन्त में निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है:

$$P \text{ or } r = 1 - \frac{6(\Sigma d^2)}{n(n^2-1)}$$

Σd^2 = क्रमान्तरों के वर्गों का जोड़

n = पद-युग्मों की संख्या

उदाहरण : निम्नलिखित तालिका से श्रेणी-अन्तर विधि के आधार पर सह-सम्बन्ध की गणना कीजिए:

पद	:	160	164	172	182	166	170	178	192	186
मूल्य	:	292	280	260	234	266	254	230	190	200

हल :

$\Sigma D^2 = 236$

पद - X		मूल्य - y		पद	
X	पद-X	y	पद-y	मतभेद d	वर्गमूल (D^2)
160	9	292	1	+ 8	64
164	8	280	2	+ 6	36
172	5	260	4	+ 1	1
182	3	234	6	- 3	9
166	7	266	3	+ 4	16
170	6	254	5	+ 1	1
178	4	230	7	- 3	9
192	1	190	9	- 8	64
186	2	200	8	- 6	36
Total		n = 9		ΣD = O	

$$r = 1 \frac{6\Sigma D^2}{n(n^2-1)} = 1 - \frac{6 \times 236}{9\,(9-1)} = 1 - \frac{1416}{720}$$

$$= \frac{720 - 1416}{720} = \frac{-696}{720}$$

$\therefore \quad r = -.967$ उत्तर

जब कभी श्रेणी में दो या दो से अधिक मूल्य बराबर आकार के होते हैं तो प्रश्न उठता है कि किस पद मूल्य को कौन-सा क्रम दिया जाए। ऐसी स्थिति के आने पर उन समस्त बराबर पद-मूल्यों को प्रदान किए जाने वाले क्रमों का औसत ही, सबको क्रम के रूप में प्रदान कर दिय जाता

है। उदाहरणार्थ एक श्रेणी में प्रथम दो क्रम मान लीजिए क्रमशः 80 तथा 75 मूल्यों को दिए गए हैं, 75 संख्या के बाद 65 की चार बार पुनराव ति होती है, ऐसी हालत में चारों स्थानों पर क्रमों का औसत क्रम लिख दिया जाएगा तथा 65 के अगले छोटे पद मूल्य को 7 क्रम दिया जाएगा। ऐसी स्थिति में सूत्र में निम्न संशोधन करना।

यहाँ, m = उन पद मूल्यों की संख्या है जिनके क्रम समान हैं।

Example : Calculate the Co-effcient of Rank Correlation from the following data :

X	:	48	33	40	9	16	65	24	16	57
Y	:	13	13	24	6	15	4	20	9	19

Solution :

X – Series: X	Ranks – X			Ranks Differences D	Squares of D D^2
48	3	13	5.5	-2.5	6.25
33	5	13	505	-0.5	0.25
40	4	24	1	+ 3	9.00
9	10	6	8.5	+1.5	2.25
16	8	15	4	+ 4	16.00
16	8	4	10	-2	4.00
65	1	20	2	-1	1.00
24	6	9	7	-1	1.00
16	8	6	8.5	-05	0.25
57	2	19	3	-1	1.00
	n = 10				

$$=1-\frac{6\left[41+\frac{1}{12}(3^3-3)+\frac{1}{12}(2^3-2)+\frac{1}{12}(2^3-2)\right]}{10(10^2+1)}$$

$$=1-\frac{6[41+2+5+5]}{990}$$

$$=1-\frac{6\times 44}{990}$$

= 1 –0.27 ∴ r = + .73 उत्तर

6. न्यूनतम विधि द्वारा सह-सम्बन्ध

(Correlation by Least Square Method)

न्यूनतम वर्ग विधि, सर्वोतम रेखा अर्थात् उपयुक्त रेखा पर आधारित है। इस रेखा से निकाले गए मूल्यों के आधार पर भी दो श्रेणियों में पाए जाने वाले सह-सम्बन्ध की गणना की जा सकती है। इस सर्वोत्तम रेखा को खींचने के लिए $y = a + bx$ सूत्र का प्रयोग किया जाता है। इस समीकरण के द्वारा (x) पद माला के दिए हुए विभिन्न मूल्यों के लिए (y) पद माला के सर्वोत्तम उपयुक्त नए पद मालूम कर लिए जाते हैं। इस विधि से सह-सम्बन्ध गुणांक निकालने की निम्नलिखित विधि है :

(i) सबसे पहले (y) श्रेणी के सर्वोपयुक्त संगणित मूल्य प्रसामान्य समीकरणों द्वारा ज्ञात किए जाते हैं।

(a) $y = a + bx$ को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित दो प्रसामान्य समीकरणों का प्रयोग किया जाएगा :

y = y श्रेणी का योग

Σx = x श्रेणी का योग

n = पदों की संख्या

xy = (x) तथा (y) श्रेणी के पदों के गुणनफल का योग

x^2 = (x) श्रेणी के पदों के वर्गों का जोड़

$$\Sigma y = na + b\Sigma x \text{ ......(i)}$$

$$\Sigma xy = a\Sigma x + b\Sigma x^2 \text{ ......(ii)}$$

$$\delta y^2 = \frac{\Sigma(y - ye)^2}{n}$$

(b) उपर्युक्त दो समीकरणों को हल करने पर 'a' तथा 'b' दो अन्तर मूल्यों का मान ज्ञात हो जाता है। इसके उपरान्त 'a' तथा 'b' के मान को हम सरल रेखा के समीकरण में स्थानापन्न करते हैं।

(ii) संगठिन मूल्य प्राप्त करने के उपरान्त (y) श्रेणी के विचलन ज्ञात किए जाएंगे।

(iii) इसके उपरान्त विचलनों के वर्गों का जोड़ $(y\text{-}ye)^2$ ज्ञात किया जाता है।

(iv) विचलन वर्गों का माध्य निम्न सूत्र द्वारा निकाला जाता है :

(v) (y) श्रेणी का विचरण-मापांक निकाला जाता है तो जो कि प्रमाप विचलन का वर्ग होता है। सूत्र निम्न प्रकार होगा :

$$\sigma y^2 = \frac{\Sigma d^2 y}{n}$$

(vi) सह-सम्बन्ध गुणांक हेतु अन्त में निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाएगा :

$$r = \sqrt{1 - \frac{\delta^2 y}{\sigma^2 y}}$$

$$\text{or } \sqrt{1 - \frac{\text{Un explained Variance}}{\text{Total Variance}}}$$

Example: Calculate the Co-efficient of Correlation from the following by the Least Square Method:

X	:	1	2	3	4	5
Y	:	338	180	142	184	166

Solution :

Values (x)	Values (y)	Product of x and y (xy)	Squares of x (x2)	Computed Values a + bx = ye
1	338	338	1	304 – (34 × 1) = 270
2	180	360	4	304 – (34 × 2) = 236
3	142	426	9	304 – (34 × 3) = 202
4	184	736	16	304 – (34 × 4) = 168
5	166	830	25	304 – (34 × 5) = 134
$\sum x = 15$	y = 1010	xy = 2690	$x^2 = 55$	Total = 1010

y = na + b x or 1010 = 5a + 15b ...(i)

xy = a x + b x^2 or 2690 = 15a + 55b ....(ii)

समीकरण (i) **को** 3 **से गुणा करने तर तथा उसे समीकरण** (ii) **में से घटाने पर निम्न समीकरण प्राप्त होगा :**

2690 = 15a × 55b

3030 = 15a × 45b

– – –

– 340 = 10b

b = – 34

'a' **का मूल्य ज्ञात करने के लिए** 'b' **का मूल्य समीकरण** (i) **में रखने पर**

1010 = 5a + (15 × 34)

1010 = 5a – 510

a = 304

Calculation of y and σ^2 y

	Original values	Computed values	Difference between y $\sum y^2$ = d	Squares of d	Deviation of y from a 202	Squares of Deviation
(X)	(y)	(ye)	(y–ye)	$(y-y_2)^2$	dx	d^2y
1.	338	270	+ 68	4624	+136	18496
2.	180	236	– 56	3136	– 22	484
3.	142	202	– 60	3600	– 60	3600
4.	184	168	+ 16	256	– 18	324
5.	166	134	+ 32	1024	– 36	1296
Total	1010			12640		24200
y				$(y-y_2)^2$		d^2y

Mean of y Series or ay =

Unexplained Variance :

Total Variance :

$$\sigma^2 y = \frac{\Sigma d^2 y}{n} = \frac{24200}{5} = 4840$$

$$r = \sqrt{1 - \frac{\delta^2 y}{\sigma^2 y}} = \sqrt{1 - \frac{2528}{4840}}$$

$$= \sqrt{\frac{2312}{4840}}$$

$$= \sqrt{.477}$$

= + .69 उत्तर

लघु विधि द्वारा हल (Short-cut Method)

न्यूनतम वर्ग की इस लघु विधि द्वारा गणना-क्रिया अधिक सरल हो जाती है। इस विधि के अनुसार प्रसामान्य समीकरणों की मदद से ‘a’ तथा ‘b’ के मूल्य तो ज्ञात करने पड़ते हैं परन्तु ye, $\delta^2 y$ तथा $\sigma^2 y$ आदि मूल्यों को ज्ञात करने की आवश्यकता नहीं होती हैं, सूत्र के आधार पर –

$$r = \sqrt{\frac{a\Sigma y + b\Sigma xy - Ncy^2}{\Sigma y^2 - Ncy^2}}$$

cy = y के समान्तर माध्य एवं कल्पित मूल-बिदु का अन्तर

Σy^2 = y के मूल्यों के वर्गों का जोड़

पिछले उदाहरण को लघु विधि से निकालने पर :

y	–338	180	142	184	166	Total
y^2	–114244	32400	20614	33856	27556	=228220 y^2

a = 304, b = –34, y = 1010, xy = 2690, y^2 = 228220

cy = a – o or 202 –o = 202

$$r = \sqrt{\frac{(304 \times 1010) + (-34 \times 2690) - (5 \times 202 \times 202)}{228220 - (5 \times 202 \times 202)}}$$

$$= \sqrt{\frac{307040 - 91460 - 204020}{228220 - 204020}} \text{ or}$$

$$= \sqrt{\frac{11560}{24200}} = +.69 \text{ उत्तर}$$

UNIT - V

अध्याय - 16

उपकल्पना परीक्षण

(Hypothesis Testing)

उपकल्पना का प्रधान कार्य घटना के सम्बन्ध को स्पष्ट करना है। इसका तात्पर्य यह है कि उपकल्पना को परीक्षण के योग्य होना चाहिए। अतएव तथ्यों के आधार पर उपकल्पना का सत्यापन कर स्वीकार अथवा अस्वीकार किया जाता है। यदि तथ्य उपकल्पना की पुष्टि करते हैं तो उपकल्पना की समस्या को सम्पूर्ण अध्ययन का आधार माना जाता है। इसके परीक्षण में नकारात्मक और सकारात्मक प्रकार के परिणामों की सम्भावना होती है।

उपकल्पना के परीक्षण के लिए, अवलोकन के ऊपर नियंत्रण की आवश्यकता होती है ताकि अन्य सम्भावित सम्बन्ध एवं प्रभावों को दूर किया जा सके। अतएव उपकल्पना को सदैव इस प्रकार होना चाहिए जिसका परीक्षण हो सके और तार्किकता की प्राप्ति में कठिनाई न हो।

स्पष्ट है कि उपकल्पना निर्माण के पश्चात् उसका परीक्षण आवश्यक होता है अन्यथा वह एक अनुमान मात्र रह जाएगी। इसके लिए निम्नलिखित पदों का उपयोग किया जाता है :

1. **परिणामों का निगमन** **(Deducing Consequences):** वास्तव में हम परीक्षण उपकल्पना का नहीं अपितु उसके परिणामों का करते हैं। परिणामों का निश्चय प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से हो सकता है। उदाहरण के लिए, हमारी एक उपकल्पना है – आकाँक्षा, स्तर तथा प्रत्यक्षीकरण में धनात्मक सम्बन्ध है तो –
   - (i) उच्च आकाँक्षा-स्तर वाले बालक दी गई वस्तु का उच्च मूल्याँकन करेंगे।
   - (ii) निम्न आकाँक्षा-स्तर वाले बालक निम्न मूल्याँकन करेंगे।
   - (iii) उच्च मूल्याँकन करने वालों का आकाँक्षा-स्तर उच्च होगा।
   - (iv) निम्न मूल्याँकन करने वालों का आकाँक्षा-स्तर निम्न होगा।

2. **परीक्षण का चयन अथवा निर्माण** **(Selection or Development of Test):** परीणामों का निश्चय कर लेने के पश्चात् ऐसी विधि और उपकरण का चुनाव अथवा निर्माण करते हैं जिसके आधार पर प्रयोग अथवा निरीक्षण करके देखा जा सके कि यह बात होती भी है अथवा नहीं।

3. **निदर्शन आकार का निश्चय** **(Determining Sample Size):** तीसरे स्तर पर यह निश्चय करते हैं कि उपकल्पना के निरीक्षण के लिए कितने निदर्शन की आवश्यकता है जिससे (Type 1 and Type 2 Error) से बचाव हो सके। इसके साथ ही निदर्शन के वितरण की भी जाँच कर लेते हैं कि वितरण सामान्य है अथवा वक्रीय है।

4. **प्रयोग अथवा अवलोकन** **(Experiment or Observation):** इस स्तर पर प्रयोग अथवा अवलोकन के माध्यम से उपकल्पना की पुष्टि के लिए आँकड़ों का संकलन करते हैं।

5. **शून्य उपकल्पना का निर्माण** **(Taking Null Hypothesis):** साँख्यिकीय आधार पर उपकल्पना के परीक्षण के लिए पूर्व में ली गई अनुसन्धान उपकल्पना को शून्य उपकल्पना में परिवर्तित कर लेते हैं।

6. **साँख्यिकीय परीक्षण का चुनाव** **(Selection of Statistical Tests):** शून्य उपकल्पना के निर्माण के पश्चात् उचित साँख्यिकीय परीक्षण विधि का चुनाव किया जाता है। इस बात का निश्चय करते हैं कि ली गई उपकल्पना के परीक्षण के लिए प्राचल अथवा अप्राचल विधियों में से कौन-सी विधि उपयुक्त होगी और कौन-सा परीक्षण उपयुक्त रहेगा।

7. **सार्थकता स्तर का निश्चय** **(Determining Level of Significance):** इस स्तर पर यह निश्चय करते हैं कि सार्थकता का स्तर 01, 50 अथवा इससे भी कम होगा।

8. **क्रान्तिक क्षेत्र अथवा अस्वीकृत क्षेत्र का निश्चय** **(Determining Critical and Rejection Region):** सार्थकता स्तर के निर्धारण के पश्चात् इस बात का अनुमान लगाते हैं कि निरीक्षणों का वितरण किस रूप में प्राप्त होगा तथा एक-पुच्छीय परीक्षण अथवा दो-पुच्छीय परीक्षण के आधार पर वितरण वक्र के अस्वीकृत क्षेत्र का निश्चय किया जाता है।

9. **निर्णय लेना** **(Taking Decision):** अन्त में साँख्यिकीय परीक्षण के पद 6, 7 और 8 के आधार पर निर्णय लेते हैं कि बनाई गई शून्य परिकल्पना वितरण वक्र के अस्वीकृत क्षेत्र में पड़ती है अथवा स्वीकृत क्षेत्र में। इस प्रकार शून्य उपकल्पना के स्वीकार अथवा अस्वीकार होने के पश्चात् प्रारम्भिक अनुसन्धान उपकल्पना को स्वीकर अथवा अस्वीकार कर देते हैं।

अनुसंधान में मार्ग-दर्शन की द ष्टि से उपकल्पना उपयोगी है। इसके द्वारा अनुसंधानकर्ता का ध्यान उपयोगी तथ्यों पर केन्द्रित होता है। परन्तु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उपकल्पना अनुसंधान का अन्तिम लक्ष्य नहीं है।

कभी-कभी अनुसधानकर्ता यह भूल करता है कि उपकल्पना की अनुसंधान ही निष्कर्ष है। इसे प्रमाणित करने के लिए वह तथ्यों का इस प्रकार उपयोग करता है जिससे उपकल्पना सत्य सिद्ध हो। ऐसा करने से अनुसंधान कार्य की वैज्ञानिकता समाप्त हो जाती है। इस सम्बन्ध में अनुसंधानकर्ता को यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उपकल्पना के निर्माण में व्यक्तिगत रुचि और मान्यताओं को कीसी प्रकार का स्थान नहीं देना चाहिए। द्वितीय तथ्यों द्वारा जान-बूझकर उपकल्पना के औचित्य को सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इस सम्बन्ध में **वेस्टावे** (Westaway) का यह कथन उल्लेखनीय है कि, "उपकल्पनाएं वे लोरिया हैं जो असावधान को गाना गाकर सुला देती हैं।"

छोटे प्रतिदर्शों में सार्थकता-परीक्षाएं प्रमुख रूप से निम्न तीन विशिष्ट बंटनों पर आधारित हैं —

1. **स्टुडेंट की टी-बंटन** (Student's t-distribution)
2. **फिशर का जेड-बंटन** (Fisher's Z-distribution)
3. **एफ-बंटन** (F-distribution)

टी-बंटन पर आधारित सार्थकता परीक्षाएं
(Tests of Significance Based on t-Distribution)

लघु प्रतिदर्शों में सार्थकता-परीक्षण के क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान विलियम सीली गोस्सेट (William Sealy Gosset) का है जिन्होंने स्टुडेंट (student) उपनाम से 1908 में टी-प्रतिदर्शज (t-statistic) की संकल्पना की थी इन्हीं के उपनाम पर छोटे प्रतिदर्शजों का प्रतिचयन बंटन, स्टुडेंट का टी-बंटन (student's t-distritution) कहलाता है।

टी-बंटन में 't' समग्र-माध्य के अंतर का प्रतिदर्श माध्य की प्रमाप त्रुटि से अनुपात है। प्रमाण त्रुटि के लिए प्रमाप विचलन बेस्सेल के संशोधन द्वारा ज्ञात किया जाता है। सूत्र रूप में –

$$t = \frac{\overline{X} - \mu}{S}\sqrt{n} \qquad \left(\frac{\overline{X} - u}{\frac{s}{\sqrt{n}}} \right)$$

$\overline{X} =$ प्रतिदर्श-माध्य; समग्र का समांतर माध्य

S = सगग्र के प्रमाप विचलन का सर्वोत्तम अनुपात जो द्वारा निकाला जाता है –

$\sqrt{\frac{\Sigma d^2}{n}}$ सूत्र द्वारा नहीं

μ $\sqrt{}$

n = प्रतिदर्श में इकाइयों की संख्या

t = बंटन का वग्र सममित और एक शिखर वाला होता है जो प्रसामान्य वक्र से मिलता-जुलता है। अंतर यह है कि उसमें कूट शीर्षस्थ या नुकीलापन अधिक होता है। t- वक्र के दोनों सिरे प्रसामान्य वक्र की तुलना में अधिक लंबे (longer tails) होते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि t-वक्र की आकृति प्रतिदर्श-इकाइयों की संख्या पर आधारित होती है। प्रत्येक स्वातंत्र्यांश के लिए t-वक्र का स्वरूप अलग-अलग होता है और t-सारणी में विभिन्न स्वातंत्र्य-कोटि-संख्याओं (df) के लिए 5% (p = .05) और 1% (p = .01) सार्थकता-स्तरों पर t के क्रांतिक मान (critical values) निर्धारित होती हैं।

t के परिगणित मूल्य की तुलना दिये हुए स्वातंत्र्यांश के लिए 5% या 1% सार्थकता स्तर पर ज्ञात t के सारणी मूल्य से की जाती है। यदि t का परिकलित मूल्य, t के सारणी मूल्य (क्रांतिक मान) से अधिक है तो अंतर निश्चित सार्थकता स्तर पर सार्थक माना जाता है और शून्य परिकल्पना असत्य सिद्ध हो जाती है। इसके विपरीत t का परिगणित मूल्य कम होने पर अंतर अर्थहीन होता है जो कि प्रतिचयन उच्चावचनों के कारण उत्पन्न हुआ माना जाता है।

जैसे-जैसे प्रतिदर्श का आकार बढ़ता है t = वक्र आकृति भी प्रसामान्य वक्र के अनुरूप होती जाती है और 30 से अधिक इकाइयों वाले प्रतिदर्श के लिए प्रसामान्य-बंटन के नियम ही लागू होते हैं।

1. **लघु प्रतिदर्श के माध्य की सार्थकता-जांच (Testing the significance of the mean in**

a small sample -t-test): जब यह ज्ञात करना हो कि एक छोटे प्रतिदर्श का समांतर माध्य और समग्र के माध्य में अंतर सार्थक है या नहीं तब निम्न प्रक्रिया अपनायी जाती है।

(i) **शून्य पिरकल्पनाः** यह परिकल्पना की जाती है कि प्रतिदर्श-माध्य और समष्टि-माध्य में कोई अंतर नहीं है।

(ii) **समष्टि के प्रमाप विचलन का आकलनः** प्राचल प्रमाप विचलन की गणना की जाती है –

$$S = \sqrt{\frac{\Sigma(X - \overline{X}^2)}{n-1}} \text{ or } \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{n-1}} \quad \sqrt{\frac{\Sigma d^2 - n(d)^2}{n-1}}$$

(iii) **t-प्रतिदर्शज का परिकलन**

$$t = \frac{\overline{X} - \mu}{S}\sqrt{n}$$

यदि प्रतिदर्श का प्रमाप विचलन $\sqrt{\frac{\Sigma d^2}{n}}$ ज्ञात हो तो t का मान निम्न सूत्र के अनुसार निकाला जाएगा जिससे बेस्सेल के संशोधन का भी समायोजन हो जाये :

$$t = \frac{\overline{X} - \mu}{\sigma}\sqrt{d-1}$$

(iv) **स्वातंत्र्य कोटियों की संख्याः** df = n - k सूत्र द्वारा स्वातंत्र्य कोटियों की संख्या निकाल ली जाती है। यह अधिकतर n - 1 होती है।

(v) **t-का सारणी मूल्यः** स्वातंत्र्य कोटियों की संख्या से संबंधित 5% सार्थकता स्तरपर आधारित t- प्रतिदर्शन का मूल्य सारणी (t-table) से देख लिया जाता है। उदाहरणार्थ, 9 df के लिए 5% (p = .05) स्तर पर t का सारणी मूल्य 2.262 है।

(vi) **निष्कर्षः** यदि t का परिगणित मूल्य t के सारणी मूल्य से अधिक है तो शूल्य परिकल्पना असत्य है और प्रतिदर्श-माध्य को समष्टि-माध्य से अंतर सार्थक है। इसके विपरीत, यदि t का परिगणित मूल्य सारणी मूल्य से कम है तो अंतर अर्थहीन है और शून्य-परिकल्पना सत्य सिद्ध हो जाती है।

t- परीक्षण 1% सार्थकता-स्तर (p = .01) अर्थात् 99% विश्वस्यता-स्तर पर भी किया जा सकता है। t- सारणी में विभिन्न स्तरों के लिए अलग-अलग स्वतंत्र्यांशो से संबद्ध मूल्य दिये रहते हैं। व्यवहार में 5% स्तर का ही प्रयोग किया जाता है।

दो लघु-प्रतिदर्शों के माध्यों के अंतर का सार्थकता-परीक्षण (Testing the significance of difference between two sample means-small samples): दो छोटे प्रतिदर्शों के माध्यों के अंतर की सार्थकता जांचने का उद्देश्य यह ज्ञात करना होता है कि दोनों प्रतिदर्श माध्यों में अंतर सार्थक है या अर्थहीन अथवा दोनों प्रतिदर्श एक ही मूल्य-समष्टि से चुने गये हैं या नहीं। परीक्षण परिकलन निम्न प्रकार होगा –

$$t = \frac{\overline{X}_1 - \overline{X}_2}{S\sqrt{\frac{1}{n_1} + \frac{1}{n_2}}} \text{ or } t = \frac{\overline{X}_1 - \overline{X}_2}{S}\sqrt{\frac{n_1 n_2}{n_1 + n_2}}$$

X_1 और X_2 दोनों प्रतिदर्शों के समांतर माध्य हैं।

n_1 और n_2 दोनों प्रतिदर्शों में इकाइयों की संख्याएं हैं।

$$S = \sqrt{\frac{\Sigma(X_1 - \overline{X}_1)^2 + \Sigma(X_2 - \overline{X}_2)^2}{n_1 = n_2 - 2}} \text{ or } S = \sqrt{\frac{\Sigma d_1^{\ 2} + \Sigma d_2^{\ 2}}{n_1 + n_2 - 2}}$$

यदि दोनों प्रतिदर्शों के प्रमाप विचलन दिये हो तो उनकी सहायता से S निम्न सूत्र द्वारा निकाला जाएगा –

2. (ii) $$s = \sqrt{\frac{n_1\sigma_1^{\ 2} + n_2\sigma_2^{\ 2}}{n_1 + n_2 - 2}}$$

स्वातंत्र्यांश df. = $(n_1\text{-}1) + (n_2\text{-}1) = n_1 + n_2\text{-}2$

यदि परिकलित t, सारणी t के मान से अधिक है तो अंतर सार्थक है अन्यथा अर्थहीन।

3. **'अंतर' परीक्षण-युग्मित-प्रतिदर्श (The 'Difference' test-Paired Samples):** 'अंतर जांच' का प्रयोग उस स्थिति में किया जाता है जब युग्मित समंक दिए हों और एक समान इकाइयों Σ पर किसी घटना का प्रभाव देखना हो। उदाहरण के लिए 10 विद्यार्थियों की 'सांख्यिकी' में परीक्षा ली जाये और उनके प्राप्तांक लिख लिए जायें, फिर एक महीने का विशिष्ट अध्यापन (Coaching) करके उनकी दोबारा परीक्षा ली जाये और प्राप्तांक ज्ञात कर लिए जायें। व्यक्तिगत प्राप्तांकों के अंतर की जांच करके यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अध्यापन से विद्यार्थियों का स्तर बढ़ा है या नहीं। इसी प्रकार किसी दवाई का रोगियों पर प्रभाव, विशेष भोजन का भार पर प्रभाव और रासायनिक खाद का फसल उत्पादन पर प्रभाव ज्ञात करने के लिए 'अंतर जांच' का प्रयोग विशेष उपयोगी होता है।

प्रक्रियाः

(i) 'अंतर जांच' के लिए सर्वप्रथम, घटना के बाद उपलब्ध समंकों का घटना से पूर्व वाले तत्संवादी समंकों में से घटाकर अंतर (व द्धि +, कमी-) निकाल लिया जाता है।

(ii) अंतरों का समांतर माध्य $\overline{D} = \frac{\Sigma D}{n}$ ज्ञात किया जाता है।

(iii) अंतरों के माध्य से उनके अंतरों के विचलन निकालकर विचलन-वर्गों का जोड़, $\Sigma d^2 = \quad (D\text{-}D)^2$, प्राप्त कर दिया जाता है।

(iv) स्वातंत्र्य-संख्या से विचलन वर्ग को भाग देकर वर्गमूल निकाल लिया जाता है। यह S है –

(v) वास्तविक अंतर शून्य ($\mu = 0$) मानकर t- प्रतिशत का निम्न सूत्र द्वारा परिगणन किया जाता है –

(vi) अंत में, n-1 स्वातंत्र्यांश के लिए 5% सार्थकता-स्तर पर t का सारणी मूल्य देख लिया जाता है और यदि परिगणित t> सारणी -t तो 5% स्तर पर अंतर सार्थक माना जाता है अर्थात् घटना का प्रभाव पड़ा है। यदि परिगणित t< सरणी -t तो अंतर अर्थहीन है और घटना का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

छोटे प्रतिदर्शों में सहसंबंध गुणांक की सार्थकता का t-परीक्षण (Testing the Significance of Corrclation Coefficient is Small Samples-t-test): एक द्विचर प्रसामान्य समग्र में से चुने गए n युग्मित समंकों को याद च्छिक प्रतिदर्श के सहसंबंध गुणांक की सार्थकता का परीक्षण करने के लिए t-बंटन का प्रयोग किया जाता है। t-परीक्षण द्वारा इस परिकल्पना की जांच की जाती है कि समष्टि में सहसंबंह गुणांक शून्य (0) है, अर्थात् समष्टि के चर असंबंधित हैं अथवा नहीं। सहसंबंध-गुणांक के t-परीक्षण की विधि पूर्ववत् है परन्तु स्वातंत्र्य कोटियों की संख्या df=n-2 होती है। और t का मान अग्रांकित सूत्र द्वारा निकाला जाता है –

$$S = \sqrt{\frac{\Sigma(D-\overline{D})^2}{n-1}} \quad t = \frac{\overline{D}-0}{S}\sqrt{n} \text{ or } t = \frac{\overline{D}\sqrt{n}}{S} \quad t = \frac{r}{\sqrt{1-r^2}} \times \sqrt{n-2}$$

प्रसरण-अनुपात परीक्षण-एफ जांच
(Variance-Ratio Test-F-test)

कभी-कभी हम इस तथ्य का परीक्षण करना चाहते हैं कि समग्र के प्रसरण या विचरण-मापक (Population variance) के दो स्वतंत्र आकलन सार्थक रूप से भिन्न हैं अथवा दोनों प्रतिदर्श एक ही समान-प्रसरण वाले प्रसामान्य समग्र से निकाले गये हैं या नहीं। दो प्रसरणों के अंतर की सार्थकता-जांच करने के लिए प्रसरण अनुपात-परीक्षण (Variance Rati Test) का प्रयोग किया जाता है। इस विधि को विकसित करने का श्रेय प्रोफेसर रॉनेल्ड फिशर (Prof R. A. Fisher) और जॉजै स्नेडैकॉर (George W. Snedecor) को प्राप्त है। स्नेडैकॉर ने फिशर के सम्मान में प्रसरण-अनुपात जांच का नाम उनके नाम से प्रथम अक्षर एफ के आधार पर, एफ-जांच (F-test) रखा है। F-जांच फिशर के Z- बंटन पर आधारित है। इसकी, प्रक्रिया निम्नलिखित है –

(i) दोनों प्रतिदर्शों के प्रसरण निम्न सूत्रों द्वारा किये जाते हैं –

$$S_1{}^2 = \frac{\Sigma(X-\overline{X})^2}{n1-1}; \quad S_2{}^2 = \frac{\Sigma(X-\overline{X})^2}{n_2-1}$$

(ii) प्रसरण-अनुपात प्राप्त किया जाता है –

$$\text{प्रसरण-अनुपात,} = \frac{\text{ब हत्तर प्रसरण आकलन}}{\text{लघुत्तर प्रसरण आकलन}}$$

$$\text{Variance Ratio, F} = \frac{\text{Larger Estimate of the Population Variance}}{\text{Smaller Estimate of Population Variance}}$$

$$= \frac{S_1^{\,2}}{S_2^{\,2}} \text{ जबकि } S_1^2 > S_2^2$$

(iii) दोनों प्रतिदर्शों में स्वातंत्र्य-कोटियों की संख्या ज्ञात की जाएगी –

अधिक प्रसरण वाले प्रतिदर्श में स्वातंत्र्यांश v_1 और लघुत्तर प्रसरण वाले प्रतिदर्श में स्वातंत्र्यांश v_2 होंगे।

(n-1) v_1 = df. for sample having larger variance

(n-1) v_2 = df. for smaple having smaller variance

(iv) F- सारणी से 5% सार्थकता-स्तर पर v_1 और v_2 के लिए 'मूल्य' देख लिया जाएगा। सारणी में बड़े प्रसरण वाले प्रतिदर्श का स्वातंत्र्यांश बायें से दायें (horizontally) और छोटे प्रसरण से संबंधित स्वातंत्र्यांश पहले खाने में (left hand column) देखकर दोनों के संयोग वाली संख्या उपलब्ध की जाएगी। यह F_{05} का सारणी मूल्य है –

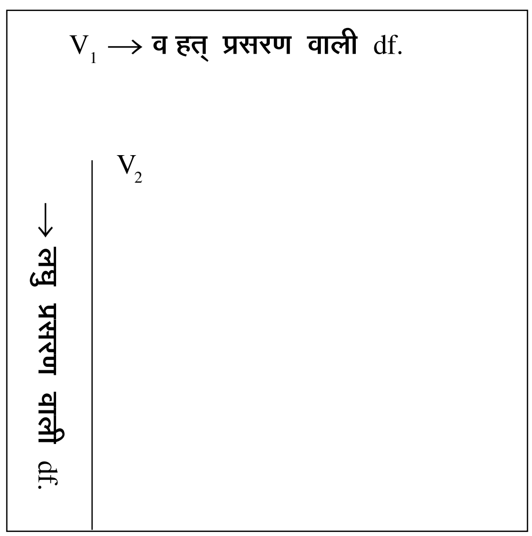

1% सार्थकता-स्तर वाले F- सारणी भी उपलब्ध हैं परन्तु अधिकतर 5% सार्थकता-स्तर का ही प्रयोग किया जाता है। F- सारणियां फिशर और येट्स (Fisher and Yates) तथा स्नेडैकॉर (Snedecor) द्वारा निर्मित की गई है।

(v) **निष्कर्ष:** यदि F का परिकलित मूल्य तत्संबंधी सारणी-मूल्य से अधिक है तो अंतर निश्चित सार्थकता-स्तर पर सार्थक माना जाता है अन्यथा अंतर अर्थहीन होता है।

यदि परिकलित $F > F_{05}$ (v_1 और v_2 के लिए) तो प्रसरण-अनुपात सार्थक है और दोनों

प्रतिदर्श-प्रसरण, समष्टि प्रसरण के सर्वेत्कृष्ट आकलन नहीं हैं अर्थात् दोनों प्रतिदर्श एक ही मूल समष्टि से नहीं लिये गये हैं।

यदि परिकलित $F<F_{.05}$ (v_1 और v_2) तो अनुपात अर्थहीन है और हम यह कह सकते हैं कि दोनों प्रतिदर्श एक समान प्रसरण वाले मूल समष्टि से ही चुने गए हैं।

F- परीक्षण की मान्यताए (Assumptions): प्रसरण-अनुपात परीक्षण (F-test) निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है –

(i) समग्र का बंटन प्रसामान्य (normal) है।

(ii) प्रतिदर्शों में इकाइयों का चयन सरल एवं याद च्छिक होना चाहिए। प्रतिदर्श-इकाइयां स्वतंत्र होनी चाहिएं।

(iii) प्रसरण अनुपात एक से अधिक (>1) होना चाहिए। यही कारण है कि व हत्तर प्रसरण को लघुत्तर प्रसरण से भाग देकर ही F- अनुपात ज्ञात किया जाता है।

(iv) प्रसरण के विभिन्न स्रोतों का संपूर्ण प्रसरण के प्रति योगदान योगात्मक या योज्य (additive) होना चाहिए। विभिन्न प्रतिदर्शों के प्रसरणों के योग द्वारा संपूर्ण समूह का प्रसरण ज्ञात किया जा सकता है।
कुल वर्गों का योग = अंतवर्ग वर्ग-योग + वर्गान्तर्गत वर्ग-योग
प्रसरण-विश्लेषण में इस परिकल्पना का महत्त्वपूर्ण उपयोग किया जाता है।

फिशर का जेड-परीक्षण
(Fisher's Z-test)

प्रोफेसर रोनेल्ड फिशर ने छोटे प्रतिदर्शों में सहसम्बन्ध-गुणांक की सार्थकता की जांच करने के लिए एक विशेष प्रविधि का प्रयोग किया है जिसके अनुसार सहसम्बन्ध गुणांक r का Z-प्रतिदर्शज में रूपान्तर कर लिया जाता है। यही कारण है कि इस विधि को फिशर का जेड़ परीक्षण (Fisher's Z-test) या Z-रूपान्तरण (Z-transformation) कहा जाता है। r को Z में बदलने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है –

$$Z = \frac{1}{2} \log_e \left(\frac{1+r}{1+r} \right)$$

$$Z = 1.1513 \log_{10} \left(\frac{1+r}{1+r} \right)$$

($\log_e = \log_{10} 2.3026$)

Z-प्रतिदर्शज का बंटन प्रसामान्य बंटन के अनुरूप होता है और उसका निर्वचन प्रसामान्य बंटन में प्रयुक्त क्रान्तिक मानों के समान ही किया जाता है।

उपयोग– Z-परीक्षण का उपयोग निम्न दो प्रकार की समस्याओं के हल के लिए किया जाता है –

(i) r के अवलोकित मूल्य का किसी परिकल्पित मूल्य से अन्तर सार्थक है अथवा नहीं।

(ii) दो प्रतिदर्शों के सहसम्बन्ध-गुणांकों (r_1 और r_2) में अन्तर सार्थक है या अर्थहीन।

(इस बात का परीक्षण करने के लिए कि अवलोकन r शून्य से सार्थक रूप से भिन्न है या नहीं, t-जांच का प्रयोग ही श्रेष्ठ माना जाता है।)

r के अवलोकित मूल्य और परिकल्पित-मूल्य के अंतर की सार्थकता।

प्रक्रियाः

(i) सर्वप्रथम r के अवलोकित मूल्य और r के परिकल्पित मूल्य अथवा समष्टि मूल्य (ρ) को निम्न सूत्र द्वारा Z में परिणत कर लिया जाता है –

r की Z-परिणति

ρ की Z = परिणति

Z_s प्रतिदर्श-सहसम्बन्ध गुणांक (r) का Z-रूप है।

Z_p परिकल्पित या समष्टि-सहसम्बन्ध-गुणांक (ρ) का Z-स्परूप है।

(ii) निम्न सूत्र द्वारा Z की प्रमाण त्रुटि ज्ञात की जाती है –

(iii) सार्थकता-अनुपात का निर्धारण –

$$\frac{|Z_s - Z_p|}{\sigma_r}$$

(iv) अन्त में, सार्थकता-अनुपात की तुलना सुनिश्चित सार्थकता-स्तर (5% या 1%) पर प्राप्त क्रान्तिक मान से की जाती है और निम्न प्रकार निष्कर्ष निकाला जाता है –

यदि $\frac{Z_s - Z_p}{\sigma r} > 2.58,$ तो अन्तर 1% स्तर पर सार्थक है अन्यथा नहीं।

यदि $\frac{Z_s - Z_p}{\sigma r} > 1.96,$ तो अन्तर 5% स्तर का सार्थक है।

यदि $\frac{Z_s - Z_p}{\sigma r} > 3,$ तो अन्तर निश्चित रूप से सार्थक है।

अध्याय - 17

काई-वर्ग परीक्षण

(Chi Square Test)

सांख्यिकी के क्षेत्र में काई वर्ग परीक्षण एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं सर्वाधिक प्रचलति अप्राचलीय परीक्षण है। यह परीक्षण वंटन के स्वरूप और प्राचलनों पर आधारित नहीं होती है। इस विधि का प्रयोग गुणों की स्वतंत्रता के परीक्षण के लिए किया जाता है। गुण स्वतन्त्रता की मान्यता के अनुसार ज्ञात प्रत्याशित आव त्तियों को वास्तविक आव त्तियों से घटाने पर प्राप्त राशि के वर्ग को काई वर्ग कहते हैं। इसका प्रयोग दो गुणों की स्वतन्त्रता की जाँच करने के लिए किया जाता हे। काई वर्ग को 'X^2' प्रतीक द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। कोई वर्ग परीक्षण का प्रतीक X^2 ग्रीक वर्णमाला के अक्षर X (chi–काई) का वर्ग है। X^2–परीक्षण और X^2–वंटन का ज्ञान सर्वप्रथम आबे (Abbe) ने 1863 ई. में और हेलमर्ट (Helmert) ने 1875 ई. मे दिया सन् 1900 में कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) ने काई वर्ग परीक्षण को पुनः खोज करके उसका व्यापक प्रयोग किया अब हम कोई वर्ग परीक्षण का परिकलन, विशेषताएँ, उपयोगिताएँ और सावधानियों का अध्ययन करेंगे।

काई-वर्ग परिक्षण की विशेषताएँ
(Characteristics of Chi Square Test)

कोई वर्ग परीक्षण की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ हैं :

(1) **संचयात्मकता का गुण (Additive Property)**: काई-वर्ग परीक्षण का प्रयोग उस समग्र के लिए भी किया जा सकता है, जिसमें अनेक दैव निदेर्शन के द्वारा सूचनादाताओं का चयन किया जाता है। और उनमे अलग-अलग काई वर्गों के मान का योग लेकर सम्पूर्ण समग्र के सम्बन्ध में सत्य, प्रमाणित और विश्वसनीय निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

(2) **स्वतन्त्र संख्याओं पर आधारित (Based on Independence Numbers)**: काई-वर्ग परीक्षण का स्वरूप ऐसा है जो स्वतन्त्र्य संख्याओं पर निर्भर होता है। इस परीक्षण में प्रत्येक संख्या के लिए अलग काई-वर्ग का वक्र बनाया जाता है। इस परीक्षण में जैसे-जैसे स्वतन्त्रता की श्रेणियाँ बढ़ती जाती हैं वैसे-वैसे वक्र की असममिति भी कम होती जाती है।

(3) **वंटन-निरपेक्ष विधि (Distribution Free Method)**: काई-वर्ग परीक्षण जो गणितीय स्वरूप की किसी विशिष्ट प्राक्कल्पना पर आधारित नहीं होता है। यह सैद्धान्तिक वंटन के निरपेक्षता पर आधारित होता है।

(4) **सतत वंटन (Continuous Distribution)**: काई-वर्ग परीक्षण बड़े आकार के निदर्शनो में भी प्रतिचयन वंटन एक सतत वक्र के रूप मे होता है।

(5) **प्राक्कल्पना की जाँच के लिए उपयोगी (Useful for Hypothesis Testing)**: यह विधि तटस्थ प्राक्कल्पनाओं के परीक्षण, निरीक्षण, सत्यापान, प्रमाणिकता और खण्डन सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकालने के लिए सर्वश्रेष्ठ विधि है। काई-वर्ग परीक्षण की उपरोक्त प्रमुख विशेषताओं के कारण इसका उपयोग प्राक्कल्पनाओं की जाँच के लिए सामाजिक विज्ञानों में सर्वप्रचलित है।

काई वर्ग का परिकलन
(Calculation of Chi Square)

काई वर्ग वास्तविक या अवलोकित आव त्तियों और किसी प्राक्कल्पना के आधार पर परिकलिक तत्संवादी, प्रत्याशित या सैद्धान्तिक आव त्तियों के अन्त को कहते हैं काई-वर्ग वंटन के द्वारा यह प्रमाणित रूप से ज्ञात किया जाता है कि ये एक निश्चित क्षेत्र में अवलोकन एवं प्रत्याशा का अन्तर मात्र संयोग है अथवा वैज्ञानिक की प्राक्कल्पना के गलत होने के कारण है। काई-वर्ग का परीक्षण का उपयोग शोध में सांख्यिकी प्राक्कल्पना के परीक्षण के लिए किया जात सकता है। काई-वर्ग का प्रयोग गण स्वातंत्र्य के परीक्षण एवं अन्वायोजन, उत्कृष्टता के परीक्षण के लिए राजनीति विज्ञान और प्रशासन विज्ञान में इसका सर्वाधिक उपयोग किया जाता है।

स्वातन्त्रय परीक्षण की विधि (Method of Test of Independence): काई वर्ग द्वारा दो गुणों में स्वातंत्र्य का परीक्षण निम्न विधि एवं चरणों द्वारा किया जाता है।

(1) **शून्य प्राक्कल्पना की विधि (Null Hypothesis)**: शोधकर्त्ता सर्वप्रथम प्राक्कल्पना का निर्माण करता है, कि दो गुणों मे साहर्च नहीं है अर्थात् वे एक-दूसरे को प्रभावित नहीं करते हैं। एव एक-दूसरे से पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं। वास्तविक आव त्तियों और प्रत्याशित आव त्तियों में अन्तर शून्य (0) होता है। ऐसी प्राक्कल्पना शून्य प्राक्कल्पना (Null Hypothesis) कहलाती है।

1.2 **कोई वर्ग का परिगणन (Calculation of Chi Square)**: शुन्य मान्यता के आधार पर वास्तविक आव त्तियों की सहायता से सभी कोष्ठों की प्रत्याशित आव त्तियो का परिगणन किया जाता है। इस प्रक्रिया को काई-वर्ग का परिकलन कहते हैं। जो इस प्रकार है-

1.2.1 A और B को स्वतन्त्र गुणकारक मानक विभिन्न गुण संयोगों के लिए प्रत्याशित आव त्तियों का परिकलन किया जाता है। इसके लिए सम्बन्धित खाने के जोड़ को सम्बन्धित पंक्ति के जोड़ से गुणा करके कुल जोड़ (N) का भाग दिया है।

1.2.2 काई-वर्ग के परिकलन के दूसरे चरण में वास्तविक आव त्ति (f) में से प्रत्याशित आव त्ति (fe) को घटाकर अन्तर का परिकलन किया जाता है। इसका सूत्र है-$(f-fe)$

1.2.3 वास्तविक आव त्ति और प्रत्याशित आव त्ति के अन्तर के वर्ग का परिकलन किया जाता है। इसका सूत्र हैं-$(f-fe)^2$

1.2.4 चरण तीन के द्वारा ज्ञात किये गए वास्तविक आव त्ति और प्रत्याशित आव त्ति के वर्ग

$(f–fe)^2$ में प्रत्यशित आव त्तियों का भाग देने पर भागफल ज्ञात किया जाता है। इसका सूत्र है-

$$\left[\frac{(f-fe)^2}{fe}\right]$$

1.2.5 सभी अलग-अलग सम्बन्धित वास्तविक आव त्तियों और प्रत्याशित आव त्तियों के वर्ग और उसमें प्रत्याशित आव त्तियों के भाग के बाद प्राप्त $\left[\frac{(f-fe)^2}{fe}\right]$ का योग काई-वर्ग है। जिसका सूत्र निम्न हैं-

$$X^2 = \Sigma\left[\frac{(f-fe)^2}{fe}\right]$$

दो या दो से अधिक गुणों की स्थिति में उपरोक्त वर्णित सूत्र का प्रयोग अधिक किया जाता है। इस उपरोक्त सूत्र को निम्न सूत्रों के रूप में भी प्रदर्शित किया जाता है।-

$$X^2 = \Sigma\left\{\frac{O-E^2}{fe}\right\}$$

जिसमें O, अवलोकित या वास्तविक आव त्ति है तथा E प्रत्याशित आव त्ति है।

कोई-वर्ग के आकलन के उपरोक्त सूत्रों के अतिरिक्त निम्न सूत्र का प्रयोग दो या दो से अधिक गुणों के काई-वर्ग आकलन में भी किया जाता है। जब दो गुणों के परस्पर सम्बन्धों का काई-वर्ग आकलन करते हैं तो उसे निम्न सूत्र द्वारा भी ज्ञात कर सकते हैं-

	(AB)	(aB)	(B)
2 x 2	(Ab)	(ab)	(b)
	(A)	(a)	N

$$X^2 = \frac{N(AB \times ab)-(Ab \times aB)^2}{(AB+aB)(Ab+ab)(AB+Ab)(aB+ab)}$$

$$X^2 = \frac{N(AB \times ab)-(Ab \times aB)}{(B \times b \times A \times a)}$$

उदहारण : निम्न समंकों से कोई-वर्ग का मूल्य ज्ञात कीजिए-

कुल पुरुष = 250

साक्षर = 100

बेरोजगार = 50

साक्षर बेरोजगार = 30

Solution : साक्षर को A एवं बेरोजगार को B मानकर नौ-वर्ग सारिणी में अन्तस्थ वर्ग की आव त्तियाँ निम्नांकित प्रकार से ज्ञात की जाऐगी-

वास्तविक या अवलोकित आव त्तियाँ

(AB) 30	(aB) 20	(B) 50
(Ab) 70	(ab) 130	(b) 200
(A) 100	(a) 150	N 250

प्रत्याशित आव त्तियाँ निम्नांकित प्रकार से ज्ञात की जाऐगी-

प्रत्याशित आव त्तियाँ

$(AB) = \frac{(A)\times(B)}{N}$ 20	$(aB) = \frac{(a)\times(B)}{N}$ 30	(B) 50
$(Ab) = \frac{(A)\times(b)}{N}$ 80	$(ab) = \frac{(a)\times(b)}{N}$ 120	(b) 200
(A) 100	(a) 150	N 250

X^2 का परिकलन

वास्तविक आव त्ति	*f*	प्रत्याशित आव त्ति *Fe*	$f - fe$	$(f - fe)^2$	$\frac{(f - fe)^2}{fe}$
AB	30	20	10	100	$\frac{100}{20} = 5.00$
aB	20	30	–10	100	$\frac{100}{30} = 3.33$
Ab	70	80	–10	100	$\frac{100}{80} = 1.25$
ab	130	120	10	100	$\frac{100}{120} = 0.83$
	$\Sigma f = 250$	$\Sigma fe = 250$			$\Sigma\left[\frac{(f-fe)^2}{fe}\right] = 10.41 = X^2$

अर्थात् $X^2 = 10.41$

दूसरे सूत्र द्वारा X^2 का मूल्य निम्नांकित प्रकार से ज्ञात किया जाएगा-

$$x^2 = \frac{N\{(AB \times ab) - (AB \times aB)\}^2}{(B \times b \times A \times a)}$$

मूल्य रखने पर

$$x^2 = \frac{250\{(30 \times 130) - (70 \times 20)\}^2}{50 \times 200 \times 100 \times 150}$$

$$x^2 = \frac{250(3900 - 1400)^2}{50 \times 200 \times 100 \times 150}$$

$$x^2 = \frac{1562500000}{150000000}$$

$= 10.41$

अर्थात् X^2 का मूल्य $= 10.41$ होगा

स्वातन्त्र्य-जाँच की विधि (Test of Independence): काई-वर्ग द्वारा दो गुणों की स्वतन्त्रता की जाँच निम्नांकित प्रकार से की जाती है-

(i) **शून्य-परिकल्पना** (Null Hypothesis): दोनों में पूर्ण स्वतन्त्रता की परिकल्पना मान ली जाती है। वास्तविक एवं प्रत्याशित आव त्तियों को अन्तर शून्य मान लिया जाता है अतः इस परिकल्पना को शून्य परिकल्पना कहा जाता है। इस परिकल्पना के आधार पर ही दो गुणों की स्वतंत्रता की जाँच की जाती है।

(ii) **कोई-वर्ग का परिकलन** (Calculation of X^2): वास्तविक एवं प्रत्यशित आव त्तियों के आधार पर ऊपर वर्णित द्वारा X^2 का परिकलन कर लिया जाता है।

(iii) **स्वातन्त्र्य अंश** (Degrees of freedom): आसंग सारिणी को कुछ कोष्ठों की आव त्तियाँ ऐसी होती हैं जिन्हें हम स्वतंत्रतापूर्वक ज्ञात कर सकते हैं अर्थात् कुछ आव त्तियों के ज्ञात होने पर शेष आव त्तियों का निर्धारण सरलता से किया जा सकता है। 2×2 की अग्रांकित सारिणी द्वारा स्वातन्त्र्य अंश को स्पष्ट किया जा सकता है-

			योग
	(i)	(ii)	100
	(iii)	(iv)	150
योग	130	120	150

इस सारिणी मे सीमान्त जोड़ दिए हुए हैं, किन्तु कोष्ठों की आव त्तियाँ नहीं हैं, यदि इन चार कोष्ठों मे से किसी एक की आव त्ति ज्ञात हो तो शेष तीन की आव त्तियाँ क्षैतिज या उदग्र जोड़ में से घटाकर प्राप्त की जा सकती है अर्थात् 2×2 सारिणी में स्वतन्त्रता का अंश है। उदाहरण के लिए यदि (1) कोष्ठ की आव त्ति 20 हो तो (ii) कोष्ठ की

आव त्ति 100 – 20 = 80 (iii) कोष्ठ की आव त्ति। 30 – 20 = 100 (iv) कोष्ठ की आव त्ति 120 – 80 = 40 होगी। स्वातन्त्र्य जाँच के लिए स्वातन्त्र्य अंश की गणना कर ली जाती है। यदि सारिणी 2×2 से बड़ी है तो भी उपरोक्त रीति द्वारा स्वातन्त्र्य अंश ज्ञात कर लिया जाता है। स्वतन्त्र्य अंश की गणना निम्नांकित सूत्र द्वारा भी की जा सकती है :

सूत्र[1]: $n = (R - 1)\ (C - 1)$

n = स्वातन्त्र्य अंश (Degrees of Freedom)

R = खानों की संख्या (Number of Row)

C = खानों की संख्या (Number of Columns)

(iv) **काई-वर्ग तालिका (Chi-Square Table):** काई-वर्ग एवं स्वतन्त्रता के अंश की गणना के बाद काई वर्ग तालिका का प्रयोग किया जाता है। काई-वर्ग तालिका में निश्चित सार्थकता के स्वर ज्ञात स्वतन्त्रता के अंश से सम्बन्धित X^2 का मूल्य दिया हुआ होता है। सामान्य 5% सार्थकता के स्तर या .05 सम्भावना से सम्बन्धित X^2 के मूल्य ज्ञात किए जाते हैं। तालिका से ज्ञात यदि X^2 के परिकलित मूल्य से अधिक नहीं है तो शून्य परिकल्पना गलत होगी, किन्तु यदि तालिका से ज्ञात मूल्य X^2 के परिकलित मूल्य से अधिक है तो शून्य परिकल्पना सही होगी अर्थात् दोनों गुण स्वतंत्र होंगे।

(v) **परीक्षण (Test):** कोई वर्ग, स्वातन्त्र्य अंश तथा X^2 का तालिका मूल्य ज्ञात कर शून्य परिकल्पना का परीक्षण किया जाता है।

(अ) यदि 5% सार्थकता के स्तर पर तथा ज्ञात स्वातन्त्र्य अंश पर X^2 का तालिका मूल्य उसके परिकलित मूल्य से अधिक है तो शून्य परिकल्पना सही होगी अर्थात् दोनों गुण स्वतंत्र होंगे।

(ब) यदि 5% सार्थकता के स्तर पर तथा स्वातन्त्र्य अंश पर X^2 का तालिका मूल्य परिकलित मूल्य से कम हो तो शून्य परिकल्पना गलत होगी अर्थात् दोनों गुण स्वतन्त्र न होकर परस्पर सम्बन्धित हैं।

उदाहरण :

निम्नलिखित सारिणी चेचक के आरम्भ होने पर प्राप्त सामग्री दिखाती है-

	आक्रमण हुए	आक्रमण नहीं
टीका लगे हुए	31	469
टीका नहीं लगे हुए	185	1315

चेचक को रोकने में टीके के प्रभाव का परीक्षण कीजिए।

आप अपने परिणाम मे 5% सार्थकता स्तर पर X^2 के द्वारा परीक्षण कीजिए। 5% सार्थकता-स्तर पर स्वातन्त्र्य संख्या 1 के लिए X^2 का मूल्य 3.841 है।

Solution :

चेचक के टीके एवं चेचक के प्रकोप दोनों को गुण स्वतंत्र मानने पर-

	आक्रमण हुए	आक्रमण नहीं	योग
टीका लगे हुए	31 (AB)	469 (aB)	500 (B)
टीका नहीं लगे हुए	185 (AB)	1315 (ab)	1500 (b)
योग (A)	216 (a)	1784 (a)	2000 (N)

वास्तविक आव त्ति (*f*)

	आक्रमण हुए	आक्रमण नहीं	योग
टीका लगे हुए	$\frac{216 \times 500}{2000}$ = 54	$\frac{1784 \times 500}{2000}$ = 446	500
टीका नहीं लगे हुए	$\frac{216 \times 1500}{2000}$ = 162	$\frac{1784 \times 1500}{2000}$ = 1338	1500
योग	216	1784	2000

प्रत्याशित आव त्ति (*fe*)

X^2 का परिकलन

वास्तविक आव त्ति f	प्रत्याशित आव त्ति fe	$f - fe$	$(f - fe)^2$	$\frac{(f - fe)^2}{fe}$
31	54	–23	529	9.797
469	446	+23	529	1.187
185	162	+23	529	3.266
1315	1338	–23	529	0.396
$\sum f = 2000$	$\sum fe = 2000$			$X^2 = 14.646$

5% सार्थकता के स्तर पर स्वातन्त्र्य संख्या 1 के लिए X^2 का सारिणी मूल्य 3.841 है जो कि परिकलित X^2 के मूल्य 14.646 से बहुत कम है अर्थात् हमारी गुण-स्वातन्त्र्य की मान्यता गलत है अर्थात् चेचक को रोकने में चेचक का टीका प्रभावशाली है।

उदाहरण :

एक सार्वजनिक कार्यालय के लिए दो उम्मीदवारों A तथा B के लिए मतों के दो सेम्पैल चुनाव किए गए, जिनमें से एक ग्रामीण क्षेत्र के निवासियों में से किया गया। परिणाम नीचे दिए गए हैं। इस बात की जाँच करिए कि इस चुनाव में क्या क्षेत्र किसी प्रकार मतदान वरीयता से सम्बन्धित है?

(स्वातन्त्र्य संख्या = 1, 5% सार्थकता स्तर पर X^2 का सारिणी मूल्य 3.841 है।)

Vot for ? मत किसको / Area क्षेत्र	A	B	Total योग
Rural ग्रामीण	620	380	1000
Urban नगरीय	550	450	1000
Total योग	1170	830	2000

Solution :

काई-वर्ग परीक्षण द्वारा किसी क्षेत्र विशेष की मत वरीयता की जाँच करेंगे-परिकल्पना = क्षेत्र मतदान वरीयता से सम्बन्धित नहीं है। ग्रामीण क्षेत्र को पहला गुण A तथा A व्यक्ति को दूसरा गुण B मानने पर 2×2 तालिका निम्नांकित प्रकार से होगी-

(AB) 620	(aB) 550	(B) 1170
(Ab) 380	(ab) 450	(b) 830
(A) 1000	(a)	N 2000

$$X^2 = \frac{N[(AB \times ab) - (Ab \times aB)]^2}{B \times b \times A \times a}$$

$$X^2 = \frac{2000[(620 \times 450) - (380 \times 550)]^2}{1170 \times 830 \times 1000 \times 1000}$$

$$X^2 = \frac{2000 \times 70000 \times 70000}{1170 \times 830 \times 1000 \times 1000}$$

$= 10.09$

सारिणी मूल्य 3.841 जो कि ज्ञात मूल्य से कम है अर्थात् हमारी शून्य परिकल्पना गलत है और क्षेत्र मतदान वरीयता से सम्बन्धित है।

येट का संशोधन (Yate's Correction): कोई-वर्ग बंटन के प्रयोग के लिए सभी अन्तस्थ वर्ग की आव त्तियाँ 5 या 5 से अधिक होनी चाहिए, यदि कुछ परिस्थितियों मे एक अन्तस्थ वर्ग की आव त्ति 5 से कम है तो कोई-वर्ग बंटन (X^2 Distribution) की अविच्छिन्नता बनाए रखने के लिए 2×2 सारिणी में येट का संशोधन किया जाता है। यदि येट को संशोधन नहीं किया गया तो X^2 का मान बढ़ा हुआ रहेगा और हो सकता है कि इसके आधार पर हम अपनी मान्यता को गलत सिद्ध कर दें। अतः सही परिणाम प्राप्त करने के लिए येट का संशोधन आवश्यक हो जाता है।

प्रक्रिया

(i) वास्तविक एवं प्रत्याशित आव त्ति के अन्तर में से बीजगणितीय चिन्हों को ध्यान में रखते हुए 0.5 घटा लिया जाता है।

(ii) $[\,|f - fe| - 0.5]$ वर्ग कर लिया जाता है $[\,|f - fe| - 0.5\,]^2$ और इसमें सम्बन्धित प्रत्यशित आव त्ति का भाग कर लिया जाता है।

सूत्र के रूप में - $\Sigma = \frac{[|f - fe| - 0.5]^2}{fe}$

उदाहरण :

निम्न समंको से (i) के संशोधन बिना एवं पेट के संशोधन सहित काई-वर्ग के मूल्य का परिकलन कीजिए तथा परिणाम पर टिप्पणी कीजिए-

साक्षर 20, बेरोजगार 60, साक्षर बेरोजगार 20, कुल 100

Solution :

साक्षरता एवं बेरोजगारी में गुण-स्वतन्त्रता की मान्यता या शून्य परिकल्पना मानने पर-

(i) **येट ने संशोधन के बिना X^2 की गणना :**

वास्तविक आव त्ति

साक्षर बेरोजगार	(AB) 2	(aB) 4	(B) 6
	(Ab) 18	(ab) 76	(b) 94
साक्षर	(A) 20	(a) 80	N 100

प्रत्यशित आव त्ति

बेरोजगार	$\frac{20\times6}{100}$ =1.2	$\frac{80\times6}{100}$ = 4.8	6
	$\frac{20\times94}{100}$ = 18.8	$\frac{80\times94}{100}$ = 75.2	94
	20	80	100

X^2 का परिकलन

f	fe	$f - fe$	$(f - fe)^2$	$\frac{(f-fe)^2}{f}$
2	1.2	+0.8	0.64	0.533
4	4.8	–0.8	0.64	0.133
18	18.8	–0.8	0.64	0.034
75	75.2	+0.8	0.64	0.009
$\sum f = 100$	$\sum fe = 100$			0.709

X = 0.709

एक इकाई स्वातन्त्र्य के लिए 5% सार्थकता के स्तर पर X^2 का सारिणी मूल्य 3.841 है; जो कि परिकलित मूल्य से अधिक है अतः शून्य परिकल्पना (साक्षरता एवं बेरोजगारी में गुण स्वतन्त्रता) सत्य है।

(ii) **येट संशोधन सहित X^2 का परिकलन :**

$\|f-fe\|$	$\|f-fe\|0.5$	$\{\|f-fe\|-0.05\}^2$	$\frac{\{\|f-fe\|-0.5\}}{fe}$
0.8	0.8–0.5=0.3	0.09	0.075
0.8	0.8–0.5=0.3	0.09	0.019
0.8	0.8–0.5=0.3	0.09	0.005
0.8	0.8–0.5=0.3	0.09	0.001
			.100 = .1

X2 = .1

अर्थात् ये संशोधन के बाद भी X^2 का परिकलित मूल्य सारिणी मूल्य से कम है अतः निष्कर्ष पूर्ववत् ही रहेगा। अग्र सूत्र के प्रयोग द्वारा भी येट के संशोधन सहित X^2 का मूल्य ज्ञात किया जा सकता है :

$$X^2 = \frac{N\left[\{|AB\times ab)-(Ab\times aB)|\}-\frac{N}{2}\right]^2}{B\times b\times A\times a}$$

उदाहरण सख्या 4 का उक्त विधि द्वारा निम्नांकित प्रकार के हल किया जा सकता है :

$$X^2 = \frac{100\left[\{|2\times 76)-(18\times 4)|-\frac{100}{2}\right]^2}{6\times 94\times 20\times 80}$$

$$= \frac{100[\{(152-72)\}-50]^2}{902400}$$

$$= \frac{100(30)^2}{902400} = \frac{90000}{902400}$$

= 0.099 या .1 Approx

2 × R सारिणी मे X^2 का परिकलनः यदि सारिणी में 2 खाने और 2 से अधिक पंक्तियाँ (R) है तो निम्नांकित सूत्र द्वारा X^2 का परिकलन किया जाता है :

$$X^2 = \frac{N^2}{NaNb}\left\{\left(\frac{a1^2}{N_1}+\frac{a2^2}{N_2}+.....-\frac{Na^2}{N}\right)\right\}$$

सूत्र का विस्तार R संख्या पर निर्भर करता है। सूत्र मे प्रयुक्त संकेताक्षरो का अर्थ निम्नांकित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है :

a_1	b_1	N_1
a_2	b_2	N_2
a_3	b_3	N_3
. . . ..	. . . .	. . .
Na	Nb	N

अन्वायोजन की उत्कृष्ता की जाँच

(Test of Goodness of Fit)

काई-वर्ग द्वारा सैद्धान्तिक आव त्ति बंटन तथा अवलोकित बंटन में अन्तर का परीक्षण किया जा सकता है अर्थात् इसमें अन्तर केवल दैव प्रतिचयन के कारण है या अन्य कारणों से है। अन्वायोजन की उत्कृष्टता की जाँच निम्नांकित प्रकार से की जाती है।

(i) यदि X^2 का परिकलित मूल्य सारिणी मूल्य से कम है तो यह इस बात का प्रतीक है कि सैद्धान्तिक आव त्ति बंटन तथा अवलोकित बंटन का अन्तर अर्थहीन है; यह केवल दैव प्रतिचयन के कारण है अर्थात् अन्वायोजन उत्तम माना जाएगा।

(ii) X^2 का परिकलित मूल्य यदि सारिणी मूल्य से अधिक है तो यह इस बात को स्पष्ट करता है कि सैद्धान्तिक आव त्ति बंटन तथा अवलोकित आव ति बटन का अन्तर अर्थपूर्ण है; यह केवल दैव प्रतिचयन के कारण नहीं है, ऐसे समय अन्वायोजन उत्तम नहीं माना जाता है।

उदाहरण :

एक रोग से पीड़ित 200 रोगियों के उपचार के सम्बन्ध में निम्नांकित दी गई सूचना के आधार पर बताइए कि क्या नया उपचार परम्रागत उपचार की तुलना में अपेक्षाकृत उत्तम है :

उपचार (Treatment)	अनूकूल प्रतिक्रिया (Favourable Response)	कोई प्रतिक्रिया नहीं (No Response)
नया (New)	60	20
परम्परागत (Conventional)	70	50

आप अपने परिणाम का 5% सार्थकता स्तर पर X^2 के द्वारा परीक्षण कीजिए। 5% सार्थकता स्तर पर स्वातन्त्र्य संख्या 1 के लिए X^2 का मूल्य 3.84 है।

Solution :

परिकल्पना : नया उपचार परम्रागत उपचार से उत्तम नहीं है।

वास्तविक आव त्ति (*f*)

(AB) 60	(aB) 70	(B) 130
(Ab) 20	(ab) 50	(b) 70
(A) 80	(a) 120	N 200

प्रत्याशित आव त्ति (*fe*)

52	78	130
28	42	70
80	120	200

X^2 का परिकलन

वास्विक आव त्ति f	प्रत्याशित आव त्ति fe	$f - fe$	$(f - fe)^2$	$\frac{(f - fe)^2}{fe}$ fe
60	52	8	64	1.23
70	78	–8	64	0.82
20	28	–8	64	2.29
50	42	8	64	1.52
				X^2 = 5.86

X^2 का परिकलित मूल्य सारिणी मूल्य से अधिक है अर्थात् हमारी मान्यता गलत है। नया उपचार परम्परगत उपचार से उत्तम है।

काई-वर्ग परीक्षण के उपयोग
(Use of Chi Square Test)

काई-वर्ग परीक्षण के सांख्यिकी में अनेक महत्त्वपूर्ण उपयोग हैं। इसका आधुनिक अनुसंधान कार्यों में एक महत्त्वपूर्ण उपकरण के रूप में प्रयोग किया जाता है। मुख्य रूप से इसका निम्न परीक्षणों में प्रयोग किया जाता है।

1. **स्वतन्त्रता की जाँच (Testof Independence):** काई परीक्षण द्वारा यह ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है। कि दो गुणों में कोई गुण सम्बन्ध या साहचर्य विद्यमान है या वे एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं। उदाहरणार्थ-एक प्रविधि द्वारा यह प्रयोग किया जाता है कि साक्षरता और मतदान में सम्बन्ध हैं या वे वस्तुतः स्वतन्त्र हैं। नगरीय और ग्रामीण जीवन और इस विशेष दल को मत देने में साहचर्य है या नहीं। पिताओं और उनके पुत्रों के कद में साहचर्य है या नहीं। स्वतन्त्रता की जाँच में पहले दो गुणों को स्वतन्त्र्य मान लिया जाता है कि यह तटस्थ प्राक्कल्पना के आधार पर देखते हैं। जिसके अनुसार प्रत्याशित आव त्तियाँ निकाली जाती हैं। इसका आकलन अवलोकन द्वारा प्राप्त आव त्तियों से अन्तर को ज्ञात करके काई वर्ग का माप का आकलन किया जाता है। अन्त में साक्षरता स्तर पर सम्बन्धित स्वतन्त्र संख्या के अनुरूप सारणी की सहायता से X^2 मूल्य ज्ञात किया जाता है। अगर सारणी द्वारा प्राप्त मूल्य X^2 से परिगणित मूल्य से कम है तो तटस्थ प्राक्कल्पना असत्य है। निष्कर्ष यह निकलता है कि गुणों मे साहचर्य है और वे एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। अगर परिणाम विपरीत आते हैं तो तटस्थ प्राक्कल्पना सत्य मानी जायेगी जिसका अर्थ है गुण स्वतन्त्र है और एक-दूसरे से प्रभावित नहीं होते हैं।

2. **अन्वायोजन-उत्कृष्टता की जाँच (Test of Goodness of Fit):** काई-वर्ग परीक्षण का प्रयोग सैद्धान्तिक एवं अवलोकित बंटन में अन्तर का परीक्षण ज्ञात करने के लिए किया जाता है। इस परीक्षण द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि अवलोकित बंटन सैद्धान्तिक बंटन के कितना अनुरूप है। इसमें अन्तर सार्थक है या अर्थहीन है। अगर परिकल्पित X^2 सारणी में दिये गए मूल्य से अधिक होता है तो निष्कर्ष निकलता है कि आसनजन उत्तम नहीं है। अगर मूल्य कम होता है तो निष्कर्ष यह सामने आता है कि प्रत्याशित एवं अवलोकित आव त्तियों की भिन्नता अर्थहीन है।

3. **सजातीयता की जाँच (Test of Homeogeneity):** X^2 परीक्षण एक प्रकार से स्वतंत्र परीक्षण का ही विस्त त रूप होता है। X^2 के परीक्षण द्वारा यह जाँच करना संभव है कि विभिन्न याद च्छिक प्रतिदर्श एक ही अध्ययन के क्षेत्र से उद्ध त किये गये हैं अथवा भिन्न-भिन्न क्षेत्र से उद्ध त किये गए हैं।

4. **सपाष्टि प्रसरण की जाँच (Test of Population Variance):** शोध कार्य में X^2 का प्रयोग जाँच करने के लिए भी किया जाता है कि जो प्रतिदर्श जिस समग्र से लिया गया है, उस समग्र में एक विनिर्दिष्ट मान है अथवा नहीं। यह परीक्षण इस बात पर आधारित होता है कि याद च्छिक प्रतिदर्श प्रसामान्य समग्र से उद्ध त किया गया है और प्रतिदर्श का प्रमाप विचन X^2 के अनुसार वितरित है।

काई-वर्ग के प्रयोग से सावधानियाँ (Pre Caution in the Application of X^2–Test): सांख्यिकी वेत्ताओं के अनुसार X^2 परीक्षण का प्रयोग करते समय निम्नलिखित सावधानियों का ध्यान रखना चाहिए।

1. **उपयुक्त कोष्ठ आव त्तियाँ (Suitable cell Frequencies):** काई-वर्ग (X^2) जाँच में किसी भी कोष्ठ में 5 से कम आव त्तियाँ नहीं होनी चाहिए। अगर कोष्ठक में 5 से कम आव त्तियाँ हैं तो ऐसे कोष्ठक को निकटवर्ती कोष्ठक के साथ जोड़कर आव त्तियों का समूहन कर लेना चाहिए। कोष्ठक में आव त्ति कम होने पर येट्स के संशोधन का प्रयोग करना चाहिए।

2. **दैव निदर्शन (Random Sampling):** काई-वर्ग (X^2) परीक्षण दैव निदर्शन पर आधारित होना चाहिए। शोधकर्त्ता को यह जाँच कर लेनी चाहिए कि अध्ययन की इकाइयों का चयन दैव निदर्शन विधि से किया गया है।

3. **मूल आव त्ति (Original Frequencies):** काई वर्ग का परिक्षण प्रयोग मौलिक आव त्तियों पर ही करना चाहिए। अगर मौलिक तथा उपलब्ध न हो तथा भाग प्रतिशत अनुपात सम्बन्धी तथा उपलब्ध है तो काई वर्ग परीक्षण का उपयोग नहीं करना चाहिए।

4. **अघटित आव त्ति (None Occurrance of Frequency):** काई-वर्ग परीक्षण में घटना के न घटने की आव त्तियों का भी प्रयोग करना चाहिए।

5. **रेखीय अवरोध (Linear Constraints):** काई-वर्ग परीक्षण में कोष्ठ आव त्तियों के अवरोध रेखीय होने चाहिए।

6. **विवेकपूर्ण आधार (Rational Base):** शोधकर्त्ता को काई-वर्ग में प्रत्याशित आव त्तियों स्वातन्त्र्यांश के क्रान्तिक मान प्राक्कल्पना आदि की जाँच करके यह निश्चित करना चाहिए कि निर्धारण विवेकपूर्ण से किया गया है अथवा नहीं।

7. **आवर्तक माप सम्बन्धी सावधानी (Precaution Related to Repeated Measurement):** वैज्ञानिकों के अनुसार अगर समान इकाइयों के अनेक प्रकार के माप लिये गए हैं तो ऐसी दशा में काई परीक्षण का प्रयोग अर्थहीन है।

अध्याय - 18

अनुसन्धान में कम्प्यूटर की भूमिका

(Role of Computer in Research)

'कम्प्यूटर' शब्द की उत्पत्ति अंग्रेजी के कम्प्यूटर शब्द से हुई है जिसका अर्थ होता है 'गणना करना।' अतः स्पष्ट है कि कम्प्यूटर का सम्बन्ध गणनाओं से ही होगा। लेकिन प्राचीन काल से मनुष्य गणना करने के विभिन्न साधन काम में लाता रहा है। कुटाल गणना के बिना पिरामिड का बनाना सम्भव नहीं होता, न ही बड़े-बड़े शहर, नहरें, बांध, लम्बी-लम्बी सड़के आदि बनाई जा सकती थीं। इन सभी के निर्माण में उच्च तकनीकी कौशल की आवश्यकता थी एवं इससे ठीक और सूक्ष्म गणनाएँ भी की गयी थीं। विज्ञान की प्रगति ने ऐसी गणनाएँ सभी के लिए सुगम करना सम्भव कर दिया है। तत्कालीन बदलती हुई परिस्थितियों में यह आवश्यक हो गया है कि ऐसी मशीन का आविष्कार किया जाए तो इस किस्म की गणनाएँ शीघ्र से शीघ्र और बिना गलती किये कर ले। ऐसी मशीन के बारे में गम्भीरता से सोचा गया और काफी समय, धन और अच्छे वैज्ञानिक को इसमें लगाया गया। परिणामस्वरूप कम्प्यूटर का निर्माण हुआ।

कम्प्यूटर शायद अब तक के आविष्कारों में सबसे उपयोगी वस्तु है। तकनीकी शब्दावली में, कम्प्यूटर की परिभाषा एक ऐसे इलेक्ट्रॉनिक उपकरण के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है जो आंकड़ों को ग्रहण करता है तथा इसमें उपलब्ध कुछ निर्देशों के अनुसार, उन पर कार्य करके, वांछित परिणाम उपलब्ध कराता है। पी. सी. (P. C.) सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाने वाला कम्प्यूटर है। पी. सी. शब्द का तात्पर्य है पर्सनल कम्प्यूटर, यानि आपका अपना कम्प्यूटर। कम्प्यूटरों का आकार भिन्न-भिन्न एक छोटे खेलने के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले कम्प्यूटर, जैसे जेड एक्स स्पेक्ट्रम (ZX–Spectrum) से लेकर एक बड़े फ्रेम वाले सुपर कम्प्यूटर तक होता है।

1995 में कम्प्यूटर के आविष्कार की प्रथम पीढ़ी शुरू हुई थी। कम्प्यूटर तकनीक की व द्धि को पीढ़ी दर पीढ़ी की व द्धि में जाना जाता है। कम्प्यूटर एक ऐसा उपकरण है जो कि गणना करने अथवा लेखा करने का काम करता है। यदि कम्प्यूटर की इस सीमित परिभाषा को देखा जाए तो प्रत्येक वह उपकरण जो गणना करता है इसी श्रेणी में आता है। परन्तु आज कम्प्यूटर का अर्थ केवल इसी अर्थ तक सीमित नहीं रह गया है। कम्प्यूटर एक ऐसा उपकरण है जो सूचनाओं को ग्रहण करके उन्हें संग्रहीत कर लेता है जरूरत पड़ने पर इन सूचनाओं को अंकों, शब्दों या तस्वीरों के माध्यम से प्रदर्शित करता है। कम्प्यूटर आँकिक (Digital) या इसके तुल्यक (Analogue) कोई उपकरण हो सकता है। एक आँकिक कम्प्यूटर आवश्यक रूप से सूचनाओं को शब्दों या प्रतीकों में व्यक्त करेगा जबकि 'Analogue' समरूप कम्प्यूटर सूचनाओं को उनकी माप के अनुसार व्यक्त करेगा क्योंकि अधिकतर आँकिक कम्प्यूटर का प्रयोग किया जाता है इसलिए कम्प्यूटर शब्द को अधिकतर आँकिक कम्प्यूटर का नाम दे दिया जाता है।

कम्प्यूटर की रचना एवं कार्य-प्रणामी
(Structure and Process of Computer)

कम्प्यूटर की कार्य प्रणाली (Working of Computer): कम्प्यूटर पर काम करने वाले व्यक्ति से निर्देश लेकर कम्प्यूटर सूचनाओं पर क्रिया (Processing) करता है और आवश्यक नतीजे

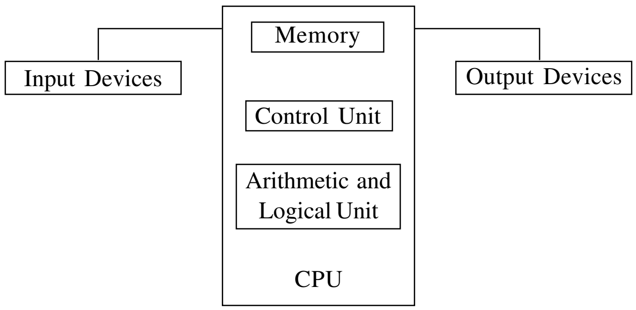

निकालता है। कम्प्यूटर में सॉफ्टवेअर (software) द्वारा जो निर्देश आप देते हैं वह बेसिक इनपुट (Basic Unit) कहलाता है। इस इनपुट को 'की बोर्ड' या माउस अथवा स्कैनर द्वारा कम्प्यूटर में भेजा जाता है।

इसके बाद निर्देश को प्रोसेसिंग क्रिया के लिए प्रोसेसर (Processor) में भेजा जाता है जिस सेंट्रल प्रोसेसिंग यूनिट (Central Processing Unit) कहते हैं। प्रोसेसिंग से हमारा तात्पर्य मोटे तौर पर किसी काम को करने के लिए निर्देश पहुंचाना है।

प्रोसेसिंग हो जाने के बाद प्रोसेसर परिणामों को जिन्हें आउटपुट (output) कहा जाता है। स्क्रीन या प्रिन्टर जिस पर आप चाहें भेज देता है। यदि आप सूचनाओं को भविष्य में इस्तेमाल करने लिए जमा करना चाहते हैं तो आप इन्हें हार्ड डिस्क (Hard Disc) पर या सूचित करने के अन्य साधन जैसी फ्लॉपी डिस्क (Floppy Disc) पर आसानी से संचित रख सकते हैं।

कम्प्यूटर का अनुसन्धान में प्रयोग

कम्प्यूटर का अनुसन्धान में प्रयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। अनुसन्धान में इसका प्रयोग दिनोंदिन कई कारणों से बढ़ता जा रहा है। प्रथमतः कम्प्यूटर में वे सभी बड़ी-बड़ी गणनाएँ आसानी से व शीघ्रता से आंकीत की जा सकती हैं जो कि पहले कभी या तो संभव नहीं हो पाती थी अथवा मानवीय मस्तिष्क द्वारा की जाने पर किसी न त्रुटि की संभावना रहती थी। अतः सबसे पहले कप्यूटर द्वारा परिमाणात्मक तथ्यों की गणना सरलता से कर पाने के कारण इसका अनुसंधान में प्रयोग किया जाता है। द्वितीय लाभ यह है कि कम्प्यूटर बिना अधिक जगह की माँग किये ढ़ेरों तथ्य परिमाणात्मक अथवा व्याख्यात्मक स्वयं में समा लेता है तथा पलक झपकते ही उन्हें पेश भी कर देता है। तथ्यों के प्रेषण में अत्यन्त सुविधा हो जाती है क्योंकि कम्प्यूटर द्वारा वे आसानी से दूसरी प्रति के रूप में निकाले जा सकते हैं। चूँकि सामाजिक विज्ञानों के अनुसन्धान कार्य अधिक से अधिक तथ्य एकत्रीकरण व उनकी प्राप्ति पर निर्भर करते हैं, अतः इस कार्य में कम्प्यूटर की उपयोगिता को नहीं नकारा जा सकता है। प्रत्येक अनुसन्धान कार्य में केवल परिमाणात्मक तथ्यों का ही कार्य नहीं होता है बल्कि इन तथ्यों का वर्गीकरण, विश्लेषण, व्याख्या व अन्य अनेक कार्य होते हैं, किन्तु ऐसा नहीं है कि कम्प्यूटर द्वारा केवल परिमाणात्मक तथ्यों

का ही मापन किया जा सकता है बल्कि कम्प्यूटर शेष सभी कार्य भी उतनी की कुशलता से कर सकता है। कम्प्यूटर एक शब्द के अनेक नये अर्थ खोजने में सक्षम होता है। यह चन्द क्षणों में अनुसंधान सम्बन्धी बड़े-बड़े विवरणों की जाँच करके उसके परिणामों को अनुसन्धानकर्त्ता के सामने पेश कर सकता है।

अनुसन्धान में केवल तथ्यों का ही विवरण, विश्लेषण समाहित नहीं होता है बल्कि उसमें अनेक औद्योगिक मानचित्र, चार्ट, ग्रन्थ, सूची, सन्दर्भो को क्रम से प्रस्तुत करना, अनुक्रमणिका, कुछ नये तथ्य खोजना आदि कार्य भी इसमें सम्मिलित होते हैं। इन सभी कार्यों के लिये कम्प्यूटर का प्रयोग किया जा सकता है व किया जाता है। इन कार्यों के सुविधा पूर्वक सम्पन्न होने से अनुसंधानकर्त्ता अपना ध्यान अनुसंधान विषय पर केन्द्रित कर सकता हैं तथा उस कार्य को अच्छे तरीके से अंजाम दे सकता है। विशेषतः उन अनुसन्धानों में जो कि इस तरीके के है कि उनमें नक्शे तथा अन्य तरीकों से आँकड़ों को प्रदतिर्शत करना होता है। अथवा इन नक्शों में आँकड़ें प्रदर्शित करने होते हैं। कम्प्यूटर इस प्रकार के नक्शे बनाकर आसानी से आँकड़ों को प्रदर्शित कर सकता है। समय का एक बड़ा भाग जो कि अनुसन्धानकर्त्ता इस कार्य में लगाता वह बच जाता है।

मानव विज्ञान व कम्प्यूटरः मानव शरीर रचना विज्ञान में गणित व सांख्यिकी के अनेक तरीके प्रयुक्त किये जाते हैं। सामाजिक मानव विज्ञान में इनकी तकनीकों का प्रयोग काफी देर बार किया गया है पर संस्कृति सम्पर्क, किसी चीज को प्राप्त करने की आवश्यकता, पैमाने बनाना आदि में अनेक परिमाणात्मक तकनीकों का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार कम्यूटर ने इस विषय में भी अपनी जड़ें जमा ली है अर्थात् यहाँ पर भी कम्प्यूटर का प्रयोग किया जाता है।

राजनीति विज्ञान व कम्प्यूटरः राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में भी गणितीय व सांख्यिकी विधियों में अपनी जगह बना ली है। खेल पद्धति व गुटबन्दी की पद्धति ने राजनीति विज्ञान में अपनी गहरी पकड स्थापित कर ली है। चुनावी तथ्यों का विश्लेषण, चुनावों पर अन्य आन्तरिक लोगों का प्रभाव तथा समाजमिति पद्धति का प्रयोग आदि अनेक उदाहरण हैं। खेल पद्धति का प्रयोग किया जाना काफी दुष्कर है तथा इसने कम्प्यूटर के प्रयोग को प्रोत्साहित किया है।

इतिहास व कम्प्यूटरः पुराने सभी तथ्यों को एकत्रित कर उनका क्रमवार अध्ययन करना, वर्गीकरण तथा विश्लेषण करना आसान काम नहीं है, इसलिए इतिहास में भी सांख्यिकीय व गणितीय पद्धति का प्रयोग किया जाता था, किन्तु कम्प्यूटर के आविष्कार ने काफी समस्याओं को हल कर दिया तथा आज इतिहास में भी कम्प्यूटर का प्रयोग किया जाता है।

अर्थशास्त्र व कम्प्यूटरः अर्थशास्त्र में किसी भी अनुसन्धान में अर्थशास्त्र के परिणामों में मॉडल सबसे दुष्कर कार्य है। ये मॉडल प्रत्येक अर्थशास्त्री के सोचने की प्रव त्ति को बदल देते हैं, किन्तु फिर भी मॉडल निर्माण अर्थशास्त्र का एक अभिन्न अंग है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विकास की नयी योजनाओं को लागू करने के लिए आवश्यक था कि पुराने विकास के सभी आँकड़ों को एकत्रित कर उनका विश्लेषण एवं व्याख्या की जाए तथा उनके अनुसार ही नयी नीतियों का निर्माण किया जाए, किन्तु इतने विशाल आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए पुरानी पद्धतियों से कार्य नहीं किया जा सकता था इसलिए नयी पद्धतियों का निर्माण किया गया, किन्तु उनका वास्तव में प्रयोग संदेहास्पद था। इसे मापने के लिए विभिन्न प्रयोग किए गए जो कि अत्यन्त लाभदायक एवं परिणाम प्रदान करने वाले थे। इसने कम्प्यूटर के प्रयोग को बड़े पैमाने पर लागू करने में सहायता प्रदान की। कम्प्यूटर के द्वारा एक साथ बड़े पैमाने पर तथ्यों को डाला जाना

व उनका एक साथ विश्लेषण हो जाना अत्यन्त फायदेमंद साबित हो रहा था। भारत समेत अनेक देशों में, कम्प्यूटर के इनपुट-आउटपुट विश्लेषण तकनीक का लाभ उठाया गया। यदि यह विश्लेषण व्यक्ति द्वारा किया जाता तो इसमें कई वर्षों का समय व कई व्यक्तियों की मेहनत लगती जो कि बहुत व्ययकारक होती, किन्तु कम्प्यूटर ने इस कार्य को अत्यन्त सरल बना दिया तथा इस प्रकार कम्प्यूटर ने अर्थशास्त्र में बहुत लोकप्रियता हासिल की है।

मनोविज्ञान व कम्प्यूटरः मनोविज्ञान में व्यवहारवादी स्कूलों की स्थापना के चिन्तन, मनन की प्रक्रिया को पुराना बना दिया है। व्यवहारवादी स्कूल तथ्य एकत्रीकरण तथा उनके आधार पर स्पष्ट सिद्धान्तों के निर्माण को ज्यादा उचित मानते हैं। सांख्यिकी तकनीकों को शामिल किया गया। तथ्यों की प्रकृति के आधार पर इन तकनीकों को प्रयोग में लाया गया। जो तकनीकों उचित थी उन्हें रखा गया, शेष को काम में नहीं लिया गया और नयी सांख्यिकी तकनीकों को विकसित किया गया। बहुत सी तकनीकें आज बहुआयामी विश्लेषण के लिए संगठित कर ली गई हैं। मापन विधि, कलस्टर तकनीक तथा अन्य काफी तकनीकें मनोविज्ञान के व्यवहारवादी स्कूलों की माँग पर विकसित की गई। 'साइकोमैट्रिका' (Psychometria) जो गणित व सांख्यिकी तकनीकी तथा उनका मनोविज्ञान में प्रयोग का समाचार पत्र था, उसने मनोविज्ञान के क्षेत्र के अनुसन्धानकर्ताओं को बहुत अधिक प्रभावित किया। इन तकनीकों को प्रयोग करने से भारी गणना की आवश्यकता पड़ने लगी और इसने कम्प्यूटर को इस क्षेत्र में प्रविष्ट करवाया। कम्प्यूटर का मनोविज्ञान में प्रयोग दिनों-दिन सफलता पूर्वक तरीके से बढ़ता जा रहा है।

समाज विज्ञान व कम्प्यूटरः कोई भी विषय चाहे वह समाज शास्त्र, शिक्षा या कोई अन्य हो, कम्प्यूटर क्रान्ति से वंचित नहीं रहा है। प्रत्येक समाज विज्ञान के अनुसन्धान कार्य में कम्प्यूटर का प्रयोग किया जा रहा है। जब किसी एक विषय में कुछ निश्चित तकनीकों का प्रयोग कर लिया जाता है तथा उसमें सफलता भी प्राप्त होती है तो अन्य विषयों में भी उसे प्रयुक्त करने की कोशिश की जाती है जिससे कि अच्छे परिणाम प्राप्त किये जा सकें। यह इस कारण से भी होता है कि विभिन्न अनुसन्धानकर्त्ता आपस में इस बारे में एक-दूसरे से बातचीत करते रहते हैं। कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता है कि जब मनोविज्ञान व मानव विज्ञान के क्षेत्र में कम्प्यूटर का प्रयोग किया जा रहा है तो इसी के समान विषय समाज शास्त्र के अनुसन्धान कार्य में कम्प्यूटर का प्रयोग नहीं किया जायेगा। ऐसा संभव नहीं है और इसी कारण से समाज शास्त्र में भी आज अनुसन्धान में कम्प्यूटर का बहुत बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जा रहा है।

कम्प्यूटर के प्रयोग को निर्धारित करने वाले कारक
(Factor deciding use of Computer)

1. किसी भी प्रयोगकर्ता के पास यदि अपना कम्प्यूटर होता है तो वह ज्यादा अच्छी तरह से अपने कार्य को पूरा कर सकता है।
2. केवल निजी कम्प्यूटर होने से ही कार्य पूरा नहीं हो जाता बल्कि उसके बारे में पूर्ण जानकारी होने पर ही उसका सही प्रयोग किया जा सकता है।
3. अनुसन्धानकर्ता को उन सभी तरीकों और कार्य प्रणालियों का ज्ञान आवश्यक रूप से हो जो कि उसके कार्य क्षेत्र में प्रयुक्त जी जाती है।

व्यक्तिगत कम्प्यूटर (PC) को बाजार से काफी आसानी से उपलब्ध हो पाने के कारण तथा उनकी कीमत कम होने के कारण यह लगभग सभी अनुसन्धान केन्द्रों, शिक्षा केन्द्रों तथा व्यक्तिगत

केन्द्रों में भी लगाया जा सकता है। व्यक्गित कम्प्यूटर (PC) में निम्नलिखित गुणों का होनों जरूरी है।

1. **मेमोरी (Memory):** आपके कम्प्यूटर की मेमोरी इसके स्थाई भंडार घर, यानि हार्डहिस्क में होती है, जहाँ आपका सॉफ्टवेयर और डाटा स्थायी रूप से संचित रहता है। आजकल एक औसत सिस्टम की स्थाई संचयन क्षमता 630 मेगावाट एम. बी. (1.2 गीगाबाइट/जी. बी.) होती है। यह स्थायी संचयन क्षमता हार्ड डिस्क ड्राइव कहलाती है। यदि आप विंडोज़ पर काम करना चाहेंगे तो कम से कम 500 एम बी ड्राइव की आवश्यकता पड़ेगी। यह हार्ड डिस्क ड्राइव, जो आप खरीदना चाहते हैं, उसकी क्षमता की निर्णय आपको उस सॉफ्टवेयर के आधार पर करना चाहिए जो आप कम्प्यूटर में लगाना चाहते हैं। किन्तु कम से कम, 80 मेगाबाइट/120 मेगाबाइट की क्षमता होनी जरूरी है।

2. **सेन्ट्रल प्रोसेसिंग यूनिट (Central Processing Unit (CPU):** CUP एक माइक्रोचिप (Microchip) है जो कम्प्यूटर के अंदर लगा रहता है। CPU को Intel 286, 386, 486 इत्यादि नाम दिए गये हैं। यह नंबर जितना अधिक होता है, सिस्टम की क्षमता और गति भी उतनी ही अधिक होती है। माइक्रोचिप की श्रेणी में अभी हाल ही में पेंटियम (Pentium Pro) तथा पेंटियम II (Pentium II) भी मिलने लगे हैं। हो सके तो आप को कम से कम पेंटियम 100 (Pentium 100) खरीदना चाहिए। आप उपरोक्त नंबरों के साथ 'SX' या 'DX' भी लिखा हुआ भी देखते होंगे। यह नाम भी कम्प्यूटर की प्रोसेसिंग क्षमता और गति को दर्शाते है। DX की क्षमता 5X से अधिक होती है।

3. **विडियो सिस्टम (Video System):** विडियों सिस्टम के दो भाग होते हैं। मॉनिटर और छोटा सर्किट बोड (Little Circuit Board) जिसे वीडियों कार्ड भी कहा जाता है। यह वीडियो कार्ड प्रमुख यूनिट के अंदर होता है। दोनों भाग पर दूसरे के अनुकूल होने जरूरी हैं। मॉनिटर एकरंगी (Mono Chrome) अथवा बहुरंगी हो सकता है। मेनोक्रोम या एक रंगी मॉनीटर सस्ते होते हैं। और इसीलिए काफी अधिक मात्रा में प्रयोग किए जाते हैं। किन्तु VGA या SVGA मोनोक्रोम मॉनिटर का प्रयोग करने की सलाह दी जाती है क्योंकि वे आंखों पर बुरा प्रभाव नहीं डालते। रंगीन मॉनिटर द्वारा आप अधिक सॉफ्टवेयरों का प्रयोग कर सकते हैं और खेल-खेल सकते हैं तथा उसके साथ नए ऑपरेटिंग सिस्टम को चला सकते हैं। जहाँ तक वीडियों कार्ड का सवाल है, अधिकांश लोग SVGA (Super Video Graphics Array) प्रकार का मॉनिटर खरीदना पंसद करते हैं, हालांकि HGV, VGA इत्यादि अन्य प्राकर के मॉनिटर भी उपलब्ध हैं।

इनटरनेट का अनुसन्धान में प्रयोगः अनुसन्धानकर्त्ता जब कोई नया अनुसन्धान कार्य शुरू करता है तो उसे पहले से हुए अनुसन्धानों का अध्ययन करना श्रेयस्कर रहता है तथा उनके परिणामों से वह लाभ प्राप्त कर सकता है। अनुसन्धानकर्त्ता उन पूर्व अनुसन्धानों से उनकी तकनीकों का अध्ययन करके उन तकनीकों का प्रयोग अपने अनुसन्धान कार्य में कर सकता है। यदि अनुसन्धानकर्त्ता हर अनुसन्धान प्रतिवेदन का अध्ययन करता है तो यह बहुत समय कारक-व्यय कारक सिद्ध होगा तथा उसे एक संक्षिप्त जगह की सूचनाएँ ही मिल पाएँगी, किन्तु इन्टरनेट एक ऐसा कार्यक्रम है जो उन्हें सम्पूर्ण विश्व के पूर्व-अनुसंधानों का अध्ययन बहुत ही अल्प समय में करवा सकता है। इन्टरनेट पर बैठकर अनुसन्धानकर्त्ता सम्पूर्ण विश्व के उन सभी शोध कार्यक्रमों को देख सकता है जो कि उस विषय के सम्बन्ध में आयोजित

किए गए हैं। सम्पूर्ण शोध कार्यक्रम को बारीकी से कम्प्यूटर पर देखकर उसका अध्ययन किया जा सकता है। इसी प्रकार विश्व के कई पुस्तकालयों की जिन किताबों को इटन्रनेट में डाला गया है, उनका अध्ययन भी किया जा सकता है।

यदि एक ही विषय पर विभिन्न अनुसन्धान विश्वभर में कहीं भी हो रहे हैं तो उस बारे में अलग-अलग अनुसन्धानकर्त्ता आपस में इन्टरनेट पर बातचीत कर सकते हैं। इस प्रकार वह अनुसन्धान विश्वव्यापी व अधिक स्पष्ट होगा। इन्टरनेट में सर्ज ईंजन के द्वारा उन विशेष विषयों तक पहुँचकर उनके बारे में अध्ययन कर उन तथ्यों का अनुसन्धान में प्रयोग किया जा सकता है। एक अनुसन्धानकर्त्ता यदि विषय के बारे में शंकित है तो वह अपने ही विषय पर शोध करने वाले व्यक्ति को अत्यन्त कम व्यय में ई-मेल (E-mail) कर सकता है।

इस प्रकार रिसर्च में यदि इन्टरनेट के फायदों को गिनें तो यह काफी ज्यादा हैं। यदि वास्तव में एक शब्द वाक्य में इसके फायदों का उल्लेख करें तो यह कहा जा सकता है कि इन्टरनेट रिसर्ज के लिए उसी प्रकार जैसे – गागर में सागर भरना इन्टरनेट सूचनाओं का एक गहरा सागर है जिसमें कि बहुत छोटे रूप में सूचनाओं का संकलन किया गया है।

अध्याय - 19
प्रतिवेदन लेखन
(Report Writing)

प्रत्येक सामाजिक सर्वेक्षण अथवा शोध का आधार वैज्ञानिक पद्धति व प्रविधियों द्वारा संकलित तथ्य हैं। पर तथ्यों का ढेर स्वयं कुछ नहीं कर सकता जब तक कि उनका वर्गीकरण व सारणीयन न किया जाए। पर केवल वर्गीकरण व सारणीयन भी निरर्थक है जब तक इनके आधार पर तथ्यों का विश्लेषण व व्याख्या करके कुछ वैज्ञानिक निष्कर्षों को न निकाला जाए। इन निष्कर्षों को यदि सर्वेक्षणकर्त्ता या शोधकर्ता अपने दिमाग में ही भरकर रख दे तो उससे न तो विज्ञान का और न ही किसी और का कोई भला हो सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण सर्वेक्षण व शोध-कार्य के उद्देश्य, क्षेत्र, प्रयुक्त पद्धति व प्रविधियों, संकलित तथ्यों का विवरण, विश्लेषण व व्याख्या तथा निष्कर्षों व सुझावों को एक लिखित रूप दिया जाए जिससे कि वह विज्ञान की एक धरोहर बन सके, दूसरे वैज्ञानिक उसी विषय के सम्बन्ध में फिर से अनुसन्धान कर उसके निष्कर्षों की पुनर्परीक्षा कर सके तथा निष्कर्षों व सुझावों के आधार पर सामाजिक योजना व सुधार की रूपरेखा तैयार की जा सके। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सम्पूर्ण सर्वेक्षण शोध का एक लिखित विवरण तैयार किया जाता है। यही सर्वेक्षण या शोध की रिपोर्ट कहलाता है।

प्रतिवेदन के स्वरूप के सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह किस प्रकार के पाठकों को ध्यान में रखकर लिया गया है। शोध प्रतिवदेन के पाठकों में अन्य सामाजिक वैज्ञानिक बहुधा सबसे महत्वपूर्ण होते हैं। यदि शोध अनुप्रयुक्त विज्ञान के क्षेत्रे में हो तो उसके पाठकों में उसे प्रयुक्त करने वाले भी होने की सम्भावना है। जैसे यदि लोक प्रशासन या व्यापार प्रबन्ध के क्षेत्र में कोई शोध कार्य हुआ हो तो सम्भवतः प्रशासक या प्रबन्धक भी उसके विषय में जानना चाहेंगे। जन-साधारण के कुछ सदस्य भी उसमें रुचि रखने वाले हो सकते हैं। इन विभिन्न प्रकार के लोगों की रुचि और ज्ञान में भेद होगा। सामाजिक वैज्ञानिक तथा कुछ प्रशासन सांखियकीय तथा अन्य प्रकार के विश्लेषण को भी समझने और परखने की स्थिति में होंगे जबकि बहुत से अन्य पाठकों को इस विषय में उतना ज्ञान नहीं होगा। इसलिए प्रतिवदेन लिखते समय शोधकर्ता को यह ध्यान रखना होता है कि उसके पाठक मुख्यतया कौन होंगे और फिर इसे उनके अनुरूप बनाना होता है। यह भी हो सकता है कि प्रतिवेदन कई प्रकार से लिखा जाए– जैसे, एक तो वैज्ञानिक पाठकों के लिए और दूसरे जन-साधारण के लिए।

रिपोर्ट तैयार करने का उद्‌देश्य
(Object of preparing the Report)

सर्वश्री गूड एवं हॉट (Goode and Hatt) ने लिखा है कि शोध-प्रक्रिया वैज्ञानिक के लिए बड़ी

ही रोचक तथा आकर्षक होती है। फिर भी आगे-पीछे कभी-न-कभी एक ऐसी स्थिति आती है जब कि रिपोर्ट तैयार करना आवश्यक हो ही जाता है किसी भी प्रकार के अध्ययन में एक स्थिति ऐसी आती ही है जबकि उसके पश्चात् अध्ययन-कार्य को चालू रखना अनुपयोगी एवं संकलित तथ्यों का और अधिक विश्लेषण व व्याख्या अनावश्यक प्रतीत होने लगती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किन्हीं पूर्व शर्तों के अनुसार एक वैज्ञानिक या आरम्भिक विद्यार्थी के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह एक निर्धारित समय के अन्दर शोध-कार्य को समाप्त कर उसके निष्कर्षों को प्रस्तुत करे। साथ ही शोध या सर्वेक्षण के दौरान में प्राप्त सामग्री एवं नवीन तथ्य इतने रुचिकर होते हैं कि अनुसन्धानकर्ता उसके परिणामों को अन्य लोगों तक पहुंचाने के लिए स्वयं उत्सुक रहता है। अन्त में, जिन-जिन लोगों ने अध्ययन-कार्य में अर्थ, सुझाव, सहायता व समय के रूप में योग दिया है, वे यह जानने के लिए उत्सुक रहते हैं कि उनके सहयोग या सहायता का क्या परिणाम निकाला। इन सब आवश्यकताओं व माँगों को पूर्ति करने के उद्देश्य से ही सर्वेक्षण के अन्तिम चरण में एक रिपोर्ट तैयार की जाती है।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि एक सर्वेक्षण या शोध की रिपोर्ट तैयार करने के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. **ज्ञान का एक प्रलेख प्रस्तुत करना (To present a Document of Knowledge):** प्रत्येक सवेक्षण या शोध-कार्य का निष्कर्ष निश्चय ही किसी-न-किसी प्रकार के ज्ञान का एक स्रोत होता है। इसमें पर्याप्त समय, धन तथा परिश्रम भी लग जाता है। इसके बाद भी अगर अध्ययन से प्राप्त ज्ञान को शोधकर्त्ता केवल अपने ही दिमाग में रख लें तो उस ज्ञान की वास्तविक उपयोगिता स्वतः ही नष्ट हो जाएगी और दूसरों को उससे कोई लाभ नहीं होगा। अतः उसे एक क्रमबद्ध लिखित रूप प्रदान करना परमावश्यक है जिससे कि वह ज्ञान का एक लिखित प्रलेख (Document) बन जाए और विज्ञान की एक धरोहर के रूप में उसे सुरक्षित रखना सरल हो जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वेक्षण या शोध की एक रिपोर्ट अवश्य ही तैयार की जाती है।

2. **ज्ञान के विस्तार के लिए (For the extension of Knowledge):** रिपोर्ट तैयार करने का यह भी कम महत्वपूर्ण उद्देश्य नहीं है। पिछले अध्याय में हम लिख चुके हैं कि तथ्यों के विश्लेषण व व्याख्या से न केवल अध्ययन-विषय का ही स्पष्टीकरण होता है और न केवल उस विषय से सम्बन्धित की कुछ निष्कर्ष निकलते हैं, अपितु इस बात की भी खोज हो जाती है कि उस विषय से सम्बन्धित अन्य कौन-कौन सी समस्याएँ हैं जिनके विषय में आगे और गहन अध्ययन किया जा सकता है। जब अपने शोध-कार्य तथा उसके निष्कर्षों को अनुसन्धानकर्ता एक लिखित रूप देने बैठता है तो वह स्वतः ही अन्य ऐसी अनेक नई समस्याओं, नए प्रश्नों तथा विषयों की ओर भी संकेत करता है जोकि शोध या सर्वेक्षण का विषय बन सकते हैं। इस द ष्टिकोण से रिपोर्ट का एक उद्देश्य अनुसन्धान के नए क्षेत्रों (avenues) से हमें परिचिति करवा कर ज्ञान के विस्तार की निरन्तरता को बनाए रखना है।

3. **अनुसन्धान के परिणामों को दूसरों के सूचनार्थ प्रस्तुत करना (To present the Results of the Investigation for others' Information):** शोधकर्ता के लिए अपने अनुसन्धान के परिणामों को प्रदर्शित करना कई कारणों से आवश्यकत हो जाता है। प्रथमतः शोध-कार्य से प्राप्त निष्कर्षों या परिणामों को सम्बन्धित लोगों अथवा शोध में रुचि रखने वाले व्यक्तियों

के सामने प्रगट करना अनुसन्धानकर्त्ता का कर्तव्य हो जाता है। उदाहरणार्थ, यदि अनुसन्धान का विषय सार्वजनिक महत्व का है तो उसके परिणामों से लोगों को अवगत कराना आवश्यक हो जाता है। द्वितीयः यदि सर्वेक्षण की रिपोर्ट के आधार पर ही कोई सरकारी अथवा गैर सरकारी कार्यवाही होनी है तो भी यह काम रिपोर्ट तैयार न होने तक रुका रहता है। त तीयतः कभी-कभी सरकार किसी विशेष विषय पर सर्वेक्षण इसलिए करवाती है कि उससे सम्बन्धित कोई योजना उसे बनानी होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी रिपोर्ट तैयार करनी जरूरी हो जाती है। चतुर्थतः जिन लोगों ने सर्वेक्षण-कार्य में अपना धन, परामर्श, सहायता व समय देकर सहयोग प्रदान किया है, उन सभी के मन में सर्वेक्षण के परिणामों को जानने की स्वभाविक इच्छा होती है। उनकी सन्तुष्टि के लिए भी रिपोर्ट को तैयार किया जाता है। इसके अतिरिक्त, जब अनुसन्धान-कार्य किसी डिग्री या डिप्लोमा प्राप्त करने के लिए किया जाता है तो उस उद्देश्य की पूर्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक कि रिपोर्ट प्रस्तुत न की जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक कि रिपोर्ट तैयार की जाती है। अन्त में, प्रायः सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त नवीन तथ्य इतने रोचक व रुचिकर प्रतीत होते हैं कि स्वयं अनुसन्धानकर्ता उनके परिणामों को अन्य लोगों को भी दिखाने व आत्मगौरव प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहता है। अनुसन्धान की एक व्यवस्थित रिपोर्ट तैयार हो जाने से उपरोक्त सभी छः उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है।

4. **विषयों में अन्तर्निहित वास्तविक स्थिति को समझाना (To Explain the Actual Conditions Involved):** रिपोर्ट का उद्देश्य केवल अनुसन्धान के निष्कर्षों या परिणामों को व्यक्त करना ही नहीं अपितु उन्हें इस व्यवस्थित व वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करना है कि अध्ययन-विषय के विभिन्न पक्षों की वास्तविकताएँ स्वतः ही प्रगट हो जाएँ और उस रिपोर्ट को पढ़ने वाला प्रत्येक व्यक्ति उनमें अन्तर्निहित वास्तविक स्थिति तथा अन्तः सम्बन्धों को स्पष्ट रूप में समझ सके। सर्वेक्षण या शोध की सार्थकता विषय को केवल स्वयं समझ लेने में नहीं अपितु दूसरों को भी समझाने में है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी रिपोर्ट इस ढंग से तैयार की जाती है कि विषय में रुचि रखने वाले सभी व्यक्ति उसे पढ़कर लाभ उठा कसें तथा अनुसन्धान से प्राप्त नवीन तथ्यों व उनके समाजिक परिणामों को समझ सकें।

5. **वैधता की जाँच (Test of Validity):** जब तक शोध या सर्वेक्षण रिपोर्ट को तैयार नहीं किया जाएगा, तब तक इस बात की जाँच नहीं की जा सकती कि वह अध्ययन प्रामाणिक व प्रयोग सिद्ध है अथवा नहीं। रिपोर्ट की जाँच करके ही यह बताया जाता है कि अनुसन्धान में शुद्ध तथा यथार्थ सामग्री के आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं अथवा केवल अनुमान और संदेहात्मक सूचना ही अध्ययन का आधार है। रिपोर्ट में वर्णित तथ्य व निष्कर्ष सार्वजनिक रूप से प्रकाशित एक विषय बन जाता है। (यदि रिपोर्ट को सरकार के द्वारा गुप्त न रखा जाए)। अतः यदि किसी को भी अध्ययन की वैधता के सम्बन्ध में सन्देह होता है तो वह स्वयं फिर से अनुसन्धान कर उसके निष्कर्षों की परीक्षा व पुर्नपरीक्षा कर सकता है। इस प्रकार की परीक्षा व पुनर्परपरीक्षा से या तो पहले वाले अध्ययन की वैधता सिद्ध होती है अथवा उसके निष्कर्षों को तथ्यपूर्ण रूप में गलत प्रमाणित किया जाता है। दोनों ही दशाओं में विज्ञान की प्रतिष्ठा बढ़ती है। इसलिए यह कहा जाता है। कि परीक्षा व पुनर्परीक्षा के योग्य होना वैज्ञानिक अध्ययन का सबसे उल्लेखनीय गुण है। अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी रिपोर्ट तैयार करना आवश्यक हो जाता है।

अनुसन्धान प्रतिवदेन तैयार करने से सम्बन्धित कुछ सामान्य सिद्धान्त
(General Principles of Preparation of Report)

1. प्रतिवेदन को पाठकों के प्रकार के अनुसार तैयार किया जाना चाहिए। पाठक तीन श्रेणियों में विभाजित किए जा सकते हैं— (क) विशेषज्ञ, (ख) जन-साधारण, (ग) प्रयोगिक अनुसन्धानकर्त्ता। प्रतिवेदन का उद्देश्य अनुसन्धानकर्ता के साथ-साथ संचार श्रोताओं के साथ संचार करना है।
2. प्रतिवेदन स्पष्ट तथा सार्थक होना चाहिए।
3. प्रतिवेदन के अन्तर्गत विस्तार एवं सूक्ष्मता का उचित समावेश होना चाहिए।
4. प्रत्येक स्थान पर समझने के लिए आवश्यक सूचना अवश्य दी होनी चाहिए।
5. पाठकों को समालोचना हेतु प्रर्याप्त सूचना प्रदान की जानी चाहिए।
6. धनात्मक एवं ऋणात्मक दोनों ही प्रकार के निष्कर्षो के साथ ही उन मदों का भी उल्लेख किया जाना चाहिए जिनसे अनुसन्धानकर्ता किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता है।
7. यथासम्भव अध्ययन के परिणामों को अन्य अध्ययनों के परिणामों तथा सामान्य समस्याओं से सम्बन्धित किया जाना चाहिए।
8. यथासम्भव कार्य-रीतियों, विशष्टि-समस्याओं तथा अन्य शीर्षकों से सम्बन्धित ऐसी सूचना को सम्मिलित किया जाना चाहिए जो अन्य अनुसन्धानकर्ता के लिए अभिरुचिपूर्ण हों।
9. सार्थकता परीक्षणों से प्राप्त परिणामों को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाना चाहिए।
10. फुटनोटों (Foo-notes) का प्रयोग आवश्यकतानुसार अवश्य ही किया जाना चाहिए।
11. व्यवहारिक अनुसन्धान प्रतिवेदन में यह भी स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए कि अनुसन्धान परिणामों का प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है तथा इनकी प्रायोगिकता सम्बन्धी सीमाएँ क्या हैं?
12. प्रतिवेदन का कार्य प्ररचना तैयार होते ही आरम्भ कर दिया जाना चाहिए तथा शीघ्रतिशीघ्र समाप्त किया जाना चाहिए।
13. अन्तरिम प्रतिवेदन (Interim Reports) तैयार करते रहना चाहिए। ऐसा करना विशेष रूप से व्यवहारिक अनुसन्धान में आवश्यक है।
14. प्रतिवेदन यथासम्भव सूक्ष्म होने चाहिए।

एक अच्छी रिपोर्ट की विशेषताएँ
(Characteristics of a Good Report)

एक अच्छी रिपोर्ट की विशेषताओं के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हो सकता है क्योंकि 'अच्छे'-'बुरे' की अवधारणा सबके लिए समान नहीं होती। फिर भी सर्वेक्षण की प्रक्रिया और रिपोर्ट को तैयार करना एक टेकनिकल काम होने के कारण एक अच्छी रिपोर्ट की कुछ आधारभूत विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है। वे विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. एक अच्छी रिपोर्ट का ऊपरी डाल-डाल स्वच्छ तथा आकर्षक होता है। सफेद रंग के अच्छे किस्म के कागज पर स्पष्ट तथा सुन्दर ढंग के टाइप से रिपोर्ट को छपवाया जाता है।

साथ ही, उसे अधिक आकर्षक बनाने के लिए अकर्षक शीर्षकों, चित्रों, फोटो आदि का प्रयोग भी आवश्यकतानुसार किया जाता है।

2. रिपोर्ट की भाषा अत्यधिक सन्तुलित होती है। पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग आवश्यकतानुसार अवश्य ही करना पड़ता है। पर इस सम्बन्ध में, जैसा कि डॉ॰ श्यामचरण दुबे का सुझाव है, विषय का स्पष्टीकरण लेखक का उद्देश्य होता है और इसकी सिद्धि के लिए पारिभाषिक शब्दावली-सम्बन्धी सैद्धान्तिक मतभेदों के प्रति लेखक किसी भी प्रकार के विशिष्ट-आग्रह अथवा दुराग्रह को अपनाता नहीं। साथ ही, इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि पारिभाषिक शब्दावली के अत्यधिक प्रयोग से रिपोर्ट कहीं इतनी बोझल और क्लिष्ट न हो जाए कि उसे समझने के लिए विशेषज्ञों की सहायता लेनी पड़े; दूसरी ओर, रिपोर्ट की भाषा ने आलंकारिक तथा साहित्यत्मक शैली भी इतना उग्र रूप धारण न कर ले कि तथ्यों की वास्तविकताओं पर कोई दूसरा ही रंग चढ़ जाए या तथ्यों को बढ़ा चढ़ाकर कहने से सत्यता प्रगट न हो सके। अतः भाषा तथा शैली के सौन्दर्य की ओर झुककर रिपोर्ट को अतिश्योक्तिपूर्ण तथा अस्वाभाविक बना देने की प्रकृति से दूर रहकर ही सन्तुलित भाषा में रिपोर्ट को तैयार किया जाता है।

3. एक अच्छी रिपोर्ट में एक ही प्रकार के तथ्यों को बार-बार दोहराया नहीं जाता क्योंकि ऐसा करने से रिपोर्ट को पढ़ते समय पाठक ऊब जाते हैं। तथ्यों में तार्किक•क्रम अवश्य रहता है। अर्थात् स्वतन्त्र रूप से समझे जाने वाले तथ्य पहले आ जाते हैं और वे तथ्य बाद में प्रदर्शित किए जाते हैं जिनको समझने के लिए दूसरे तथ्यों की आवश्यकता पड़ती है।

4. एक अच्छी रिपोर्ट में तथ्यों का विश्लेषण व व्याख्या वैज्ञानिक तौर पर और सुस्पष्ट रूप में होती है ताकि रिपोर्ट को पढ़कर ही लोगों को यह विश्वास हो जाए कि रिपोर्ट में जो कुछ कहा गया है वह काल्पनिक नहीं है अपितु तथ्ययुक्त तथा प्रयोग-सिद्ध है। इसके लिए सूचनाओं के स्त्रोतों का उल्लेख रिपोर्ट में प ष्ठतल-टिप्पणियों आदि (Footnotes and Reference) के रूप में प्रत्येक अध्ययन में दे दिया जाता है।

5. एक अच्छी रिपोर्ट में जो भी निष्कर्ष निकाले जाते हैं वे सभी प्रामाणिक, विश्वसनीय तथा वैज्ञानिक विकास के उपयुक्त रूप में प्रमाण-सहित प्रस्तुत किया जाता है अर्थात् उन कारणों का भी उल्लेख किया जाता है जिन पर कि वह निष्कर्ष आधारित है।

6. एक अच्छी रिपोर्ट में व्यवहारिकता का तत्व भी स्पष्ट होता है। अर्थात् उच्चस्तरीय रिपोर्ट इस प्रकार की होती है कि उसे पढ़कर अधिक-से-अधिक लोग लाभ उठा से। इस प्रकार की रिपोर्ट से केवल ज्ञान की ही व द्धि नहीं अपितु कुछ व्यावहारिक लाभ भी होता है। अच्छी रिपोर्ट सामाजिक प्रगति व समाज-सुधार से संबंधित भविष्य-योजनाओं के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान करती है।

7. एक अच्छी रिपोर्ट में अध्ययन-पद्धति व प्रविधियों, अध्ययन क्षेत्र, निदर्शन आदि के सम्बन्ध में स्पष्ट तथा विस्त त विवरण होता है और साथ ही सूचना के सभी स्त्रोतों उल्लेख किया जाता है। ऐसा करने का उद्देश्य यह होता है कि यदि किसी भी व्यक्ति को अध्ययन के निष्कर्षों के सम्बन्ध में सन्देह हो तो वह रिपोर्ट में उल्लेखित प्रविधियों आदि की सहायता से उन निष्कर्षों की वैधता की जाँच कर सकता है।

8- एक अच्छी रिपोर्ट के अध्ययन में आई कठिनाइयों तथा सर्वेक्षण की सीमाओं (Limitations) का भी स्पष्ट रूप में उल्लेख होता है। दूसरे शब्दों में, कमियों को छिपाकर अध्ययन के पूर्णतया यथार्थ होने की डींग नहीं हांकी जाती है। ऐसा न करने का एक और उद्देश्य होता है और वह यह है कि अध्ययन की कठिनाइयों व कमियों को ईमानदारी से स्वीकार करने पर भविष्य के अध्ययनों में अन्य सर्वेक्षणकर्ताओं द्वारा पहले से ही उनके सम्बन्ध में सचेत रहने तथा उन्हें दूर करने के लिए आवश्यक कदम उठाने का अवसर मिलता है।

प्रतिवेदन की रूपरेखा
(Outline of Report)

एम. पार्टन ने प्रतिवेदन की निम्नलिखित रूपरेखा प्रस्तुत की है -

1. **प्रस्तावना सम्बन्धी सामग्री (Prefeatory Material):**
   - (अ) शीर्षक प ष्ठ,
   - (ब) सन्दर्भ सारिणी,
   - (स) उदाहरणों, सारिणियों, एवं चार्टों की सूची,
   - (द) प्रस्तावना, प्राक्कथन अथवा संचारण पत्र,
   - (य) परिणामों का सारांश, सार अथवा संस्तुतियाँ।
2. **प्रतिवेदन का मजमून अथवा विषय (Subject & Matter of Report):**
   - (अ) परिचयः
     - (क) उद्देश्य-समस्या का कथन एवं परिभाषण,
     - (ख) विषय क्षेत्र-सर्वेक्षण का समय, स्थान एवं सामग्री,
     - (ग) संगठन एवं कार्यरीति (यहाँ सामान्य विवरण होना चाहिए किन्तु विस्तुत विवरण परिशिष्टों में होना चाहिए)
       - i) प्रयोग में लाए गए ढंग एवं प्रविधियाँ,
       - ii) अनुसूचियाँ अथवा प्रश्नावलियाँ अथवा प्रयुक्त पत्रों की प्रतिलिपियाँ,
       - iii) इन्हें कभी-कभी परिशिष्टों में भी रखा जाता है।
   - (ब) परिणामों का विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरणः
     - (क) तथ्यों का प्रतिवेदन—आँकड़ों, सारिणियों, रेखाचित्रों इत्यादि का प्रस्तुतीकरण,
     - (ख) आँकड़ों का विश्लेषण एवं विवेचन,
     - (ग) प्रस्तुत किए गए आँकड़ों पर आधारित निष्कर्ष एवं सम्भव संस्तुतियाँ,
     - (घ) आवश्यक सामग्री का सूक्ष्म साराँश (यदि यह ऊपर एक में नहीं दिया गया है)।
3. **पूरक सामग्री (Supplementary Material):**
   - (अ) परिशिष्ट (इनमें प्रायः सर्वेक्षण में प्रयुक्त प्रतिदर्शन एवं अन्य प्रणालियों का विस्त त प्रतिवेदन होता है),
   - (ब) ग्रन्थ सूची,
   - (स) सूची,

(द) शब्द-संग्रह (यदि परिभाषा की आवश्यकता रखने वाले वैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग किया हो)।

यदि अनुसन्धान कार्य विभिन्न चरणों में किया गया है तो रैचले मार्क्स द्वारा प्रस्तावित निम्नलिखित रूपरेखा को प्रयोग में लाया जा सकता है—

शीर्षक
(Heading)

1. सामान्य परिचय,
2. सामग्री एवं ढँगों का सामान्य विवरण,
3. प्रथम चरणः
   (अ) परिचय
   (ब) सामग्री एवं ढँग,
   (स) परिणामों का प्रस्तुतीकरण,
   (द) परिणामों पर विचार-विमर्श।
4. **द्वितीय चरणः**
   (अ) परिचय
   (ब) सामग्री एवं ढँग,
   (स) परिणामों का प्रस्तुतीकरण,
   (द) परिणामों पर विचार-विमर्श
5. **त तीय चरणः**
   (अ) परिचय
   (ब) सामग्री एवं ढँग,
   (स) परिणामों का प्रस्तुतीकरण,
   (द) परिणामों पर विचार-विमर्श
6. सामान्य विचार-विमर्श।

अनुसंधान-प्रतिवेदन की प्रमुख कसौटियाँ
(Major Criteria of Research Report)

एक अच्छे प्रतिवेदन की प्रमुख कसौटियाँ निम्नलिखित निश्चित की जा सकती हैं—

1. क्या प्रतिवेदन में शोध समस्या (प्राक्कल्पना) को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है?
2. क्या प्रतिवेदन में अध्ययन की सामग्री एवं विषय-क्षेत्र को स्पष्ट रूप से लिख गया है?
3. क्या प्रतिवेदन में प्रयोग की गई अवधारणाओं को परिभाषित किया गया है?
4. क्या प्रतिवेदन में तथ्य-संकलन की प्रविधियों का स्पष्ट वर्णन किया गया है?
5. क्या प्रतिवेदन में वर्गीकरण, संकेतीकरण, सारणीयन एवं अन्य अन्य उदाहरणों सम्बन्धि सामग्री का उपयोग तर्कसंगत, क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित रूप से किया गया है।
6. क्या प्रतिवेदन को कहीं तोड़-मरोड़ कर तो प्रस्तुत नहीं किया गया है?

7. क्या शोध की सीमाओं का स्पष्ट वर्णन किया गया है?
8. क्या पाठकों की द ष्टि से प्रतिवेदन की भाषा, शैली आदि सरल और बोधगम्य है?
9. क्या प्रतिवेदन को व्यवस्थित एवं सावधानीपूर्वक तरीकों से प्रस्तुत किया गया है?
10. क्या परिणामों की शोधकर्ता ने अन्य सम्बन्धित उपलब्ध शोध-परिणामों से तुलना की है?
11. क्या शोधकर्त्ता ने विषय से सम्बन्धित भविष्य में शोध की सम्भावनाओं के लिए सुझाव दिए हैं?

अनुसन्धान-प्रतिवेदन का प्रकाशन
(Publication of Research Report)

अनुसन्धान के प्रतिवेदन का प्रकाशन एवं उसकी सफलता अनेक कारकों पर आधारित होती हैं। कुछ प्रमुख कारकों को यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है—

1. प्रतिवेदन के विषय की रुचि का क्षेत्र क्या है? उसके पाठक किस वर्ग एवं श्रेणियों के हैं? उनकी सम्भावित संख्या क्या होगी? प्रतिवेदन का पाठक-सामाज में महत्त्व क्या होगा?
2. प्रतिवेदन का आकार, प ष्ठों की संख्या, प्रत्येक प ष्ठ पर शब्दों की संख्या कितनी होगी? सारणियों, रेखाचित्रों आदि की संख्या एवं प्रकृति कैसी है?
3. प्रतिवेदन का प्रकाशन-मूल्य कितना होगा? उसका विक्रय-मूल्य कितना होगा? प्रकाशक एवं शोधकर्ता का लाभ का क्या प्रतिशत होगा?
4. संस्करण का आकार क्या होगा?
5. प्रतिवेदन के भविष्य में संस्करणों के प्रकाशन की क्या सम्भावनाएँ हैं?
6. प्रतिवेदन के शोधकर्त्ता की योग्यता क्या हैं? उसके प्रतिवेदन की सफलता की सम्भावना क्या है?